

हिन्दी सन्त साहित्य के विशेष सन्दर्भ में —

महाकवि भूधरदास :

एक समालोचनात्मक अध्ययन

(हिन्दी विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर की पी- एच.डी. उपाधि
हेतु स्वीकृत शोध प्रबन्ध, सन् 1993)

लेखक एवं सम्पादक :

डॉ. नरेन्द्रकुमार जैन शास्त्री

जैनदर्शनाचार्य, एम. ए. (हिन्दी, संस्कृत), बी. एड., पी- एच.डी.

प्रकाशक :

पं. सदासुख ग्रंथमाला

अन्तर्गत श्री वीतराग विज्ञान स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट

डॉ. नन्दलाल मार्ग, पुरानी मण्डी, अजमेर (राज.)

प्रकाशकीय

श्रद्धेय पण्डितप्रवर सदासुखदास जी कासलीवाल की साधना स्थली अजमेर में अध्यात्मरसिक घर्मानुरागी श्री पूनमचंदजी लुहाड़िया द्वारा दिनांक 16 अप्रैल 1985 को श्री वीतराग विज्ञान स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट अजमेर की स्थापना की गई; जिसके अन्तर्गत श्री सीमन्धर जिनालय में प्रतिदिन दैनिक पूजन, स्वाध्याय, भक्ति आदि के अलावा विशेष अवसरों पर विशिष्ट पूजा, विधान, शिक्षण शिविर, वैराग्योत्पादक सांस्कृतिक कार्यक्रम आदि के द्वारा वीतराग जिनशासन को आराधना एवं प्रभावना हो रही है।

जैन विद्वानों की परम्परा को अक्षुण्ण रखने के लिए श्री कुन्दकुन्द कहान दि. जैन तीर्थसुरक्षा ट्रस्ट बम्बई द्वारा पण्डित टोडरमल दि. जैन सिद्धान्त महाविद्यालय के अन्तर्गत पं. सदासुखदास दि. जैन सिद्धान्त विद्यालय स्थापित करके अजमेर ट्रस्ट ने 25 छात्रों के पठन-पाठन, निवास, भोजनादि का खर्च सन् 1995 से स्थायी रूप से देना प्रारम्भ किया है।

जैन धर्म के प्रचार-प्रसार हेतु समर्पित श्री कुन्दकुन्द शिक्षण संस्थान बम्बई, अनुपलब्ध दि. जैन साहित्य उपलब्ध कराने हेतु श्री कुन्दकुन्द शोध संस्थान अजमेर व पण्डित सदासुख ग्रन्थमाला, अजमेर (जिसके अन्तर्गत अभी तक 7 पुष्प प्रकाशित हो चुके हैं) ये सब श्री पूनमचंदजी लुहाड़िया की महत्त्वपूर्ण परिकल्पनाएँ हैं।

जैन समाज की उदीयमान प्रतिभाओं को प्रोत्साहित करने हेतु ट्रस्ट ने अगस्त 1995 जयपुर शिविर में पं. टोडरमल दि. जैन सिद्धान्त महाविद्यालय जयपुर के पी-एच. डी. करने वाले भूतपूर्व 5 स्नातक - डॉ. श्रेयांस सिंघई, डॉ. सुदीप जैन, डॉ. नरेन्द्र जैन, डॉ. योगेश जैन एवं डॉ. राजेश जैन को सम्मानित किया। अगस्त 96 जयपुर शिविर में श्रीमती डॉ. मुन्नीदेवी जैन वाराणसी को "हिन्दी गद्य के विकास में जैन मनीषी पं. सदासुखदास का योगदान" विषय पर पी-एच.डी. करने पर 21 हजार की राशि, प्रशस्ति पत्र आदि देकर सम्मानित किया। भविष्य में भी ट्रस्ट इस दिशा में कृत संकल्पित रहेगा।

पण्डित नरेन्द्रकुमारजी पं. टोडरमल दि. जैन सिद्धान्त महाविद्यालय जयपुर के प्रतिभाशाली छात्र रहे हैं। इन्होंने सन् 1982 की शास्त्री परीक्षा में सर्वोच्च स्थान प्राप्त किया था। शास्त्री, जैनदर्शनाचार्य, एम.ए. (हिन्दी, संस्कृत), बी.एड. करने के बाद इन्होंने पण्डित भूधरदास जी पर यह शोधकार्य किया है।

इनके इस शोध प्रबन्ध में 9 अध्याय हैं; जिनमें हिन्दी संत साहित्य का अन्वेषणात्मक परिचय महाकवि पं. भूधरदास का व्यक्तित्व, जीवन परिचय, उनके द्वारा रचित प्रसिद्ध महाकाव्य पार्श्वपुराण, मुक्तक काव्य जैन शतक, पदसंग्रह आदि अलौकिक कृतियों का भावपक्षीय एवं कलापक्षीय समालोचनात्मक अनुशीलन, उनके दार्शनिक, आध्यात्मिक एवं वैराग्यमूलक धार्मिक विचार व चिन्तन शैली, हिन्दी संत साहित्य के विशेष सन्दर्भ में उनका तुलनात्मक अध्ययन, उल्लेखनीय विशिष्ट योगदान आदि विषयों पर बहुत गहराई से प्रकाश डाला गया है।

यह शोध प्रबन्ध हिन्दी संत साहित्य की दृष्टि से तो महत्वपूर्ण है ही, आध्यात्मिक एवं धार्मिक दृष्टि से भी इसकी अपनी मौलिकता एवं गरिमा है। वीतराग जिनशासन में अध्यात्म एवं वैराग्य का सुन्दर समन्वय पं. भूधरदास जी की सभी रचनाओं में सहजरूप में ही मिल जाता है। उनके द्वारा रचित बारह भावनाएँ, अनेक आध्यात्मिक पद एवं जैन शतक सभी आत्माओं मुमुक्षुओं के कंठहार हैं। “पार्श्वपुराण” महाकाव्य तो अपने आप में अनूठा है ही - ऐसी सभी रचनाओं का अनुशीलन करने वाले इस शोध प्रबन्ध के प्रकाशन से ट्रस्ट गौरवान्वित है।

देश-विदेश में ख्यातिप्राप्त, तार्किक, आध्यात्मिक विद्वान डॉ. हुकमचन्द जी भारिल्ल ने हमारे विशेष अनुरोध पर यह अति धार्मिक एवं प्रभावी प्रस्तावना लिखी है; जिसमें उन्होंने अनेक महत्वपूर्ण मनन योग्य तथ्यों को उजागर किया है। ट्रस्ट आपका बहुत-बहुत आभारी है।

इस लोकोपयोगी ग्रन्थ के प्रकाशन एवं मूल्य कम करने हेतु श्री कुन्दकुन्द कहान दि. जैन तीर्थ सुरक्षा ट्रस्ट बम्बई, पूज्य श्री कानजीस्वामी स्मारक ट्रस्ट देवलाली तथा अन्य दातारों ने जो अनुदान राशि प्रदान की है (सूची अलग से प्रकाशित है) ट्रस्ट उनके प्रति आभार व्यक्त करता है।

हमें आशा है कि महाकवि पण्डित भूधरदास जी की वैराग्य एवं अध्यात्म समन्वित विशिष्ट धार्मिक रचनाओं के अध्ययन से सभी धर्म प्रेमी बंधुओं को नैतिक, धार्मिक जीवन एवं मोक्षमार्ग की ओर अग्रसर होने की पावन प्रेरणा प्राप्त हो सकेगी।

विनीत :

हीराचन्द बोहरा

मंत्री, वीतराग विज्ञान स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट, अजमेर

प्रस्तावना

— डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल, जयपुर

मोक्षमार्ग प्रकाशक जैसे प्रौढ़ ग्रन्थ के लेखक महापण्डित टोडरमलजी और पुराण ग्रन्थों के वचनिकाकार पण्डित दौलतरामजी कासलीवाल के समकालीन विद्वान कविवर भूधरदासजी, नाटक समयसार जैसे ग्रन्थ के रचयिता कविवर बनारसीदासजी द्वारा आगरा में स्थापित अध्यात्म सैली में संस्कारित हुए थे। आप उक्त सैली के अपने समय के प्रमुख विद्वान थे।

महापण्डित टोडरमलजी के अनन्य सहयोगी साधर्मी भाई ब. रायमल्लजी जहाँ एक ओर पण्डित दौलतरामजी कासलीवाल से मिलने उदयपुर गए, टोडरमलजी से मिलने लखपुर आए; वहीं वे भूधरदासजी से मिलने आगरा भी गए थे। जैसा कि उनके द्वारा लिखित जीवन पत्रिका के निम्नांकित अंश से स्पष्ट है -

“पीछें राणा का उदैपुर विषै दौलतराम तेरापंथी, जैपुर के जयस्यंघ राजा के उकील¹ तासूं धर्म अर्थ मिले। बाकै संस्कृत का ज्ञान नीकां, बाल अवस्था सूं ले वृद्ध अवस्था पर्यन्त सदैव सौ पचास शास्त्रां का अवलोकन कीया और उहाँ दौलतराम के निमित्त करि दस बीस साधर्मी वा दस बीस बायां सहित सैली का बणाव बणि रह्या। ताका अवलोकन करि साहिपुरै पाछा आए।

पीछें केताइक दिन रहि टोडरमल्ल जैपुर के साहूकार का पुत्र ताकै विशेष ज्ञान जानि वासूं मिलने के अर्थ जैपुर नगरि आए। सो इहां वाकू नहीं पाया, अर एक वंसीधर किंचित् संयम का धारक विशेष व्याकरणादि जैनमत के शास्त्रां का पाठी, सौ पचास लइका पुरुष बायां जा नखैं² व्याकरण छन्द अलंकार काव्य चरचा पढ़ै, ता सूं मिले।

पीछें वानें छोडि आगरै गए। उहाँ स्याहगंज विषै भूधरमल्ल साहूकार व्याकरण का पाठी घणां जैन के शास्त्रां का पारगामी तासूं मिले और सहर विषै एक धर्मपाल सेठ जैनी अग्रवाल व्याकरण का पाठी मोती कटला कै चैतालै शास्त्र का व्याख्यान करै, स्याहगंज कै चैतालै भूधरमल्ल शास्त्र

का व्याख्यान करे, और सौ दोय सै साधमी भाई ता सहित वासूं मिलि फेरि जैपुर पाछा आए ।

पीछें सेखावाटी विषै सिंघाणां नग्न तहां टोडरमल्लजी एक दिल्ली का बड़ा साहूकार साधमी ताकै समीप कर्म कार्य के अर्थि वहां रहै, तहां हम गए । अर टोडरमल्लजी सूं मिले, नाना प्रकार के प्रश्न कीए, ताका उत्तर एक गोमट्टसार नामा ग्रन्थ की साखि सूं देते भए । ता ग्रन्थ की महिमा हम पूर्वे सुणी थी, तासूं विशेष देखी । अर टोडरमल्लजी का ज्ञान की महिमा अद्भुत देखी ।¹”

साधमी भाई रायमलजी के उक्त कथन से यह तो स्पष्ट हो ही जाता है कि भूधरदासजी पण्डित टोडरमलजी के समकालीन थे और उनके समान प्रसिद्धि प्राप्त भी थे । वे व्याकरण के पाठी और जैन शास्त्रों के पारगामी विद्वान थे । वे जगन्नाथ के स्थाहनाज के जिनमंदिर में अवचन किया करते थे । टोडरमलजी के समकालीन होते हुए भी वे टोडरमलजी से उम्र में बीस वर्ष बड़े थे; क्योंकि टोडरमलजी का जन्म विक्रम संवत् 1775-76 सम्भावित है² और भूधरदासजी का जन्म वि. सं. 1756-57 माना जाता है ।³

यद्यपि भूधरदासजी जिन-अध्यात्म परम्परा के प्रतिष्ठित विद्वान और वैरागी प्रकृति के सशक्त कवि थे; तथापि तत्कालीन राजनैतिक, सामाजिक और साहित्यिक विषम परिस्थितियों के बीच उन्हें अपनी धारा को प्रवाहित करना था । यही कारण है कि वे तत्कालीन कवियों की काव्य रचना पर खेद और आश्चर्य व्यक्त करते हुए जनता को इसप्रकार सावधान करते हैं —

राग उदै जग अंध भयो, सहजै सब लोगन लाज गंवाई ।

सीख बिना नर सीख रहे, विसनादिक सेवन की सुधराई ॥

ता पै और रचें रस काव्य, कहा कहिये तिनकी निदुराई ।

अंध असूजन की अंखियान में, झोंकत हैं रज रामदुहाई ॥⁴

राग के उदय के कारण यह सम्पूर्ण जगत अंधा हो रहा है और सभी लोगों ने लज्जा छोड़ दी है । अरे भाई ! सप्त व्यसनों की सुघड़ता तो सभी

1. जीवन पत्रिका : पण्डित टोडरमल : व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व के अन्त में प्रकाशित ।

2. पण्डित टोडरमल : व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व - डॉ. भारिल्ल पृष्ठ 44-53

3. प्रस्तुत शोध ग्रन्थ - तृतीय अध्याय

4. जैनशतक छन्द 65

लोग बिना शिक्षा के ही सीख रहे हैं। ऐसा होने पर भी उन लोगों की निष्पूरता की क्या बात करें; जो लोग श्रृंगार रस की काव्य रचना कर उन्हें व्यसनों में फंसने के लिए उत्तेजित करते रहते हैं। मैं राम की कसम खाकर कहता हूँ कि वे लोग उन दीन-हीन लोगों की आंखों में धूल झोंक रहे हैं; जो कि स्वयं अंधे हैं और जिन्हें कुछ भी दिखाई नहीं देता।

तात्पर्य यह है कि दीन-हीन अंधे लोग तो दया के पात्र होते हैं, उन्हें तो सन्मार्ग दिखाया जाता है; पर ये दुष्ट लोग उन लोगों की आंखों में भी धूल झोंक रहे हैं, उन्हें गलत रास्ते पर चलने की प्रेरणा दे रहे हैं। इससे अधिक बुरा और क्या कार्य होगा?— यह बात गंभीरता से विचार करने योग्य है।

महाकवि भूधरदासजी तो यह चाहते हैं कि व्यसनों में डूबे जगत के प्राणियों को भोगों से विरक्त कर आत्मकल्याण की प्रेरणा दी जानी चाहिए; जिससे वे विषयों से विरक्त होकर जीवन को सफल और सार्थक बनावें।

अरे भाई ! इस जगत में जंजाल बहुत हैं और समय बहुत कम; तथा हम सभी की शक्ति बहुत ही सीमित है; इसलिए समय रहते चेत जाने में ही लाभ है; क्योंकि समय के निकल जाने पर यदि बात खयाल में भी आ गई तो कुछ भी करना संभव न होगा। यह बात कवि हृदय में बहुत गहराई से बैठी हुई है। यही कारण है कि कवि करुणा विगलित होकर अपने पाठकों से कहता है कि —

जो लों देह तेरी काहू रोग सों न घेरी,
जो लों जरा नाहिं नेरी जासौं पराधीन परिहै ।
जो लों जमनामा बैरी देय न दमामा जो लों,
मानै कैना रामा बुद्धि जाय न विगरिहै ॥
तो लों मित्र मेरे निज कारज संवार ले रे,
पौरुष थकेंगे फेर पीछे कहा करिहै ।
अहो आग लागे जब झोपरी जरन लागै,
कुआ के खुदाय तब कौन काज सरिहै ॥¹

जबतक तेरे इस शरीर को रोगों ने नहीं घेरा है, जबतक पराधीन करने वाला बुढ़ापा नजदीक नहीं आया है, जबतक यमराज रूपी शत्रु ने नगाड़ा नहीं बजाया है, जबतक पत्नी कहना मानती है और जबतक बुद्धि विकृत नहीं हुई है; तबतक हे मित्र ! अपने आत्मकल्याण के कार्य को कर ले, जीवन को संभाल ले; क्योंकि जब पुरुषार्थ शक जाएगा, तब तू क्या करेगा, क्या कर सकेगा ? अरे भाई ! आग के लग जाने पर जब झोपड़ी जलने लग जाए; तब कुएं के खोदने से क्या लाभ होने वाला है ? इस बात पर जरा गम्भीरता से विचार करो ।

जैनशतक के उक्त छन्द में समय रहते आत्मकल्याण कर लेने की पावन प्रेरणा तो दी ही गई है; साथ में अन्तिम पंक्ति में 'आग लग जाने पर कुएं के खोदने से क्या लाभ ?'—इस लोकोक्ति का भी प्रसंगानुसार सुन्दरतम प्रयोग किया गया है ।

कवि को इस बात का बहुत ही दुःख है कि दुनियादारी में उलझे जगत-जन जगत की विचित्रता, क्षणभंगुरता और दुःखमयता देखकर भी चेतते क्यों नहीं हैं ? उन्हें इस महादुर्लभ मनुष्य भव की महिमा क्यों नहीं आती ?

वे लिखते हैं —

काहू घर पुत्र जायौ, काहू के वियोग आयौ;

काहू राग-रंग काहू रोआ-रोई करी है ।

जहाँ भान ऊगत उछाह गीत गान देखे;

सांझ समै ताही थान हाय-हाय परी है ॥

ऐसी जग रीति को न देखि भयभीत होय;

हा-हा नर मूढ़ तेरी मति कौनै हरी है ।

मानुष जनम पाय सोवत विहाय जाय;

खोवत करोरन की एक-एक घरी है ॥¹

एक ही समय में किसी के घर पुत्रोत्पत्ति की खुशी का प्रसंग है तो किसी घर पुत्रादि के वियोग का दुःखद प्रसंग बन रहा है ; कोई राग-रंग में मस्त है तो किसी के घर रोना-धोना हो रहा है ।

यह तो भिन्न-भिन्न घरों की बात हुई ; किन्तु देखने में तो ऐसा भी आता है कि जहाँ एक ओर एक ही घर में सूर्योदय के समय बड़े ही उत्साह के साथ गीत गाते देखा जाता है; वहीं दूसरी ओर उसी घर में सूर्यास्त के समय हाय-तोबा मची हुई है — यह भी देखा जाता है ।

जगत की इसप्रकार की स्थिति देखकर भी यह प्राणी भयभीत नहीं होता । हाय-हाय, हे मूढ़ नर ! तेरी बुद्धि कहाँ चली गई है, तेरी बुद्धि का अपहरण किसने कर लिया है कि इतनी सी बात भी तेरी समझ में नहीं आ रही है ।

इस अमूल्य मनुष्य जन्म को पाकर तू उसे सोने में ही गमा रहा है । तुझे नहीं मालूम कि तू जिस मनुष्य जीवन को यों ही बर्बाद कर रहा है, वह कितना कीमती है, उसकी एक-एक घड़ी करोड़ों रुपयों की है । करोड़ों की एक-एक घड़ी तू यों ही बर्बाद कर रहा है ।

इसप्रकार हम देखते हैं कि कविवर भूधरदासजी का न केवल काव्य ही, अपितु उनका जीवन भी अध्यात्म रस और वैराग्यभाव से सराबोर है ।

अध्यात्मप्रमियों में अत्यन्त लोकप्रिय एवं सम्यग्दृष्टियों की परिणति का दिग्दर्शन करने वाला प्रसिद्ध पद 'अब मेरे समकित सावन आयो' भी आपकी ही रचना है ; जिसमें अध्यात्म रस के साथ-साथ श्रावण मास में होने वाली प्रकृति की रमणीय छटा का भी मनोहारी चित्रण है । सांग रूपक के ऐसे सशक्त प्रयोग बहुत कम देखने को मिलते हैं । वह पद मूलतः इसप्रकार है—

अब मेरे समकित सावन आयो ॥

बीति कुरीति मिथ्यामति ग्रीष्म, पावस सहज सुहायो ॥

अब मेरे समकित सावन आयो ॥ टेक ॥

अनुभव-दामिनी दमकन लागी, सुरति घटा घन छायो ।

बोले विमल विवेक पपीहा, सुमति सुहागिन भायो ॥

अब मेरे समकित सावन आयो ॥ 1 ॥

गुरु धुनि गरज सुनत सुख उपजे, मोर सुमन विहसायो ।

साधक भाव अंकुर उठे बहु, जित तित हरष सवायो ॥

अब मेरे समकित सावन आयो ॥ 2 ॥

भूल धूल कहिं मूल न सूझत, समरस जल भर लायो ।

‘भूधर’ को निकसे अब बाहिर, जिन निरचू घर पायो ॥

अब मेरे समकित सावन आयो ॥ 3 ॥

अब मेरे जीवन में सम्यक्त्वरूपी श्रावण मास आ गया है । धार्मिक कुरीति मिथ्यामतिरूपी ग्रीष्म ऋतु बीत गई है और सहज सुख-शान्तिदायक सम्यक्त्व सुरीतिरूप वर्षा ऋतु आ गई है । इसप्रकार अब मेरे जीवन में सम्यक्त्वरूपी श्रावण मास आ गया है ।

आत्मा के अनुभवरूप बिजली चमकने लगी है, आत्म-स्मृतिरूप मेघों की धनीभूत घटा छा गई है, निर्मल विवेक रूपी पपीहा बोलने लगा है और सुमति रूपी सुहागिन (सौभाग्यवती नारी), प्रसन्न हो गई है; इसप्रकार अब मेरे जीवन में सम्यक्त्वरूपी श्रावणमास आ गया है ।

जिसप्रकार मेघों की गर्जना सुनकर मयूर प्रमुदित हो उठते हैं, नाचने लगते हैं; तद्विधप्रकार सत्पुरुष की गर्जना सुनकर मेरा मन रूपी मोर प्रसन्न हो उठा है, आनन्दित हो उठा है और उसमें साधकभाव के बहुत से अंकुर फूट पड़े हैं तथा यत्र-तत्र-सर्वत्र सबाया हर्ष छा गया है । इसप्रकार अब मेरे जीवन में सम्यक्त्वरूपी श्रावण मास आ गया है ।

प्रयोजनभूत तत्त्वों सम्बन्धी भूलरूपी धूल मूल से समाप्त हो गई है, अतः कहीं भी दिखाई नहीं देती तथा समतारूपी जल सर्वत्र ही भर गया है; जीवन में समता आ गई है । कविवर भूधरदासजी कहते हैं कि जब मैंने इसप्रकार का निरचू घर प्राप्त कर लिया है तो अब मैं इस निरचू घर से बाहर क्यों निकलूँ? अब तो मैं सदा इस निरचू घर में ही रहूँगा; क्योंकि अब मेरे जीवन में सम्यक्त्वरूपी सावन आ गया है ।

भयंकर वर्षा होने पर भी जिस घर में पानी अन्दर नहीं आता ; उसे निरचू घर कहते हैं । गाँवों में कच्चे मकान होते हैं । वर्षा होने पर उनमें पानी चूने लगता है, टपकने लगता है ; उससे उन्हें बहुत परेशानी होती है, सभी सामान खराब हो जाता है । अतः उनके मन में ऐसे घर की कामना सदा ही

बनी रहती है जो भयंकर बरसात में भी चुए नहीं। ऐसे घर की प्राप्ति होने पर उन्हें बहुत प्रसन्नता होती है और वे उस घर से बाहर नहीं निकलना चाहते, आराम से उसी में रहना चाहते हैं।

लगता है कविवर भूधरदासजी को भी ऐसे ही घर में रहना पड़ा होगा, जो वर्षा आने पर चूता होगा। यह भी हो सकता है कि उन्होंने श्रावणमास में ही इस पद की रचना की हो; जिसमें उन्होंने इस पावस ऋतु के श्रावण मास की सर्वप्रकार ऋतु सम्बन्धी अनुकूलता के अनुभव के साथ-साथ चूने वाले घर की प्रतिकूलता का भी अनुभव किया हो। इस कारण सहज भाव से सम्यक्त्वरूपी सावन की महिमा बखान करते-करते वे आत्मानुभवरूपी निरचू घर से बाहर ही नहीं निकलने की बात करने लगे हैं।

उक्त पद में श्रावणी वर्षा ऋतु का सांगोपांग वर्णन है। ग्रीष्म की गर्मी का समापन, पावस का सहज सुहावनापन, बिजली का चमकना, घने काले बादलों का छा जाना, पपीहा का बोलना, सुहागिनों का मन मोहित होना, बादलों का गरजना, मोरों का मुदित होना, नाचना, अंकुरों का फूटना, सर्वत्र हर्ष का छा जाना, धूल का कहीं भी दिखाई न देना और सर्वत्र जल ही जल दिखाई देना आदि वर्षा ऋतु की सभी विशेषताओं का सुन्दरतम वर्णन इस पद में है और इन सभी को सम्यक्त्व प्राप्ति से होने वाले आनन्द से जोड़ा गया है।

इस पद में प्रकृति का मानवीकरण किया गया है, पावस की प्राकृतिक मनोहारी छटा को सम्यग्दर्शन रूप आत्मीय भाव के रूप में प्रस्तुत किया गया है; जो काव्यकला के भावपक्ष और कलापक्ष का सुन्दरतम निदर्शन है।

इसप्रकार हम देखते हैं कि महाकवि भूधरदासजी का सम्पूर्ण पद्य साहित्य भावपक्ष और कलापक्ष दोनों ही दृष्टियों से पूर्णतः समृद्ध साहित्य है।

डॉ. नरेन्द्रकुमार जैन शास्त्री ने इस शोध-प्रबंध में महाकवि भूधरदास के व्यक्तित्व और कर्तृत्व को विषय बनाकर एक महती आवश्यकता की पूर्ति की है। जैनसाहित्य की उपेक्षा अब तक यह कहकर की जाती रही है कि वह साम्प्रदायिक साहित्य है, धार्मिक साहित्य है। अब कुछ समय से शोधार्थियों का ध्यान इस ओर गया है। इस कारण थोड़ा-बहुत कार्य इस दिशा में हुआ

है । इस दिशा में अब तक जो भी कार्य हुआ है; उसमें इस शोध-प्रबंध का भी महत्वपूर्ण स्थान होगा ।

डॉ. नरेन्द्रकुमार जैन शास्त्री स्वयं अध्यात्मरुचि सम्पन्न अध्ययनशील विद्वान एवं धुन के धनी, दृढ़ संकल्पी व्यक्ति हैं । इस अनुसार पर उनके दृढ़ संकल्प को उजागर करने वाली एक घटना का उल्लेख करना मुझे आवश्यक प्रतीत होता है ।

बी. ए. करने के बाद वे व्यवसाय में लग गए थे, किन्तु जब उन्हें पता चला कि पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर में जैन विद्या के अध्ययन का एक महाविद्यालय आरम्भ हुआ है तो व्यवसाय छोड़कर उसमें प्रवेश के लिए आ गए । जब वे आये, तब सभी स्थान भर चुके थे और वे पचास प्रतिशत से कम अंक लेकर पास हुए थे ; अतः उनका प्रवेश सम्भव न हुआ । ऐसी स्थिति में भी वे यहाँ डटे ही रहे और कहने लगे कि जब पुरुषार्थ करने पर आत्मा को पाया जा सकता है तो फिर यहाँ प्रवेश कैसे नहीं होगा ?

उनके संकल्प को देखकर करीब एक माह बाद उन्हें इस शर्त के साथ प्रवेश दिया गया कि यदि वे पचास प्रतिशत से अधिक अंक पाकर पास न हुए तो उन्हें पूरे वर्ष का सम्पूर्ण खर्च देना होगा और अगले वर्ष प्रवेश से वंचित रहेंगे । फलस्वरूप उन्होंने इतना श्रम किया कि हमें उनसे यह कहना पड़ा कि आप चिन्ता न करें, इतना श्रम न करें कि स्वास्थ्य गड़बड़ा जाए । अन्ततः वे सर्वाधिक अंको से उत्तीर्ण हुए । हमारे पास चार वर्ष रहे और सदा सर्वाधिक अंक प्राप्त करते रहे ।

उन्होंने इस कृति के निर्माण में भी अथक् श्रम किया है । उन्होंने इसमें न केवल अपनी प्रतिभा का परिचय दिया है; अपितु महाकवि भूधरदासजी व्यक्तित्व और कर्तृत्व को भी भली-भांति उजागर किया है । मैं उनके सुन्दरतम भविष्य की मंगल कामना करता हूँ और शुभाशीष देता हूँ कि वे न केवल साहित्यजगत में सक्रिय रहें; अपितु आत्मकल्याण के मार्ग में भी आगे बढ़ें, शुद्धात्मा का अनुभव कर अतीन्द्रिय आनन्द एवं आत्मिक शान्ति प्राप्त करें ।

आत्मवक्तव्य

सन् 1985 में एम.ए. संस्कृत परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण करने के पश्चात् शोध कार्य करने की प्रबल इच्छा हुई, परन्तु विचार मूर्त रूप न ले सका। सन् 1987 में मैंने जैनदर्शन में आचार्य परीक्षा भी प्रथम श्रेणी से उत्तीर्ण कर ली। उस समय राजस्थान विश्वविद्यालय में संस्कृत विभाग के अन्तर्गत जैन अनुशीलन केन्द्र के निदेशक डा. भागचन्द जैन “भास्कर” थे। वे नागपुर विश्वविद्यालय से प्रतिनियुक्ति पर यहाँ आये थे। विशेष कृपा से शोधकार्य हेतु उनके निर्देशन की स्वीकृति प्राप्त होने पर मैंने “जैन दर्शन में कारण कार्य मीमांसा” विषय पर शोध की रूपरेखा विश्वविद्यालय को प्रस्तुत करते हुए पंजीयन की समस्त कार्यवाही पूर्ण कर शोध कार्य शुरू कर दिया। इस बीच डा. जैन अपने नगर नागपुर वापस चले गये और मुझे विश्वविद्यालय द्वारा शोध निर्देशक के परिवर्तन का आदेश प्राप्त हो गया। नियति को इस विषय पर शोधकार्य स्वीकार्य नहीं था। सन् 1989 में मैंने एम.ए. हिन्दी की परीक्षा भी प्रथम श्रेणी से उत्तीर्ण कर ली तथा हिन्दी में ही शोधकार्य करने का निश्चय कर लिया।

चूँकि प्रारम्भ से ही मेरी रुचि जैन धर्म में थी, अतः हिन्दी में भी ऐसे कवि पर शोध करना चाहता था; जो जैन कवि होने के साथ-साथ साहित्यकार भी हो। जैन कवि बनारसीदास पर शोधकार्य हो चुका था। अतः उसी कड़ी में मुझे भूधरदास महत्वपूर्ण प्रतीत हुए। भूधरदास पर शोधकार्य करने हेतु मुझे प्रो. जमनालाल जैन, इन्दौर ने भी काफी प्रेरित किया। अतः भूधरदास पर शोध कार्य करने का मेरा दृढ़ निश्चय हो गया। इस शोधकार्य करने के अन्य अनेक कारण रहे -

- 1 विभिन्न भाषाओं में विभिन्न विषयों पर जैन विद्वानों द्वारा अनेक ग्रंथ रचे गये; परन्तु अब तक उनका सही मूल्यांकन नहीं हो सका है। अतः जैन हिन्दी साहित्य के प्रमुख विद्वान भूधरदास पर शोधकार्य करके उनका उचित मूल्यांकन करने का विचार मन में आया।
- 2 प्रायः जैन साहित्य को धार्मिक एवं साम्प्रदायिक मानकर उपेक्षित किया जाता रहा है और जैन कवि एवं साहित्यकारों पर शोधकार्य कम ही हुआ है। अतः जैन कवि भूधरदास पर शोध करने का विचार उदित हुआ।

3. हिन्दी संत साहित्य की कई विशेषताएँ भूधरसाहित्य में दृष्टिगोचर होती हैं। अतः हिन्दी संत साहित्य के विशेष सन्दर्भ में भूधरदास का समालोचनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया।
4. महापण्डित राहुल सांस्कृत्यायन, आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, डॉ. हीरालाल जैन, डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल आदि विद्वानों के शोधपूर्ण लेखों, निष्पक्ष विचारों से यह प्रतीत हुआ कि धार्मिक होने मात्र से कोई रचना साहित्य की कोटि से पृथक् नहीं की जा सकती है; अतः जैन साहित्य और साहित्यकारों का अध्ययन करना चाहिए। इसी कड़ी में भूधरदास के व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व का अध्ययन किया गया।

जैन साहित्यकारों ने हिन्दी साहित्य की महती सेवा की एवं उसके विकास में पर्याप्त योगदान दिया, परन्तु हिन्दी साहित्य के इतिहास को लिखने वाले लेखकों ने उनके नाम एवं योगदान की कोई विशेष चर्चा नहीं की। इस शृंखला में भूधरदास के योगदान पर विचार किया गया; जिससे उनका हिन्दी साहित्य में स्थान निश्चित किया जा सके।

इसके अतिरिक्त कुछ अन्य महत्वपूर्ण तथ्य हैं; जिनसे प्रभावित होकर मैं भूधरदास पर शोधकार्य करने में प्रवृत्त हुआ। वे हैं-

1. मध्यकालीन जैन कवियों में भूधरदास का सर्वोच्च स्थान है।
2. "पार्श्वपुराण" नामक महाकाव्य के रचयिता होने के कारण भूधरदास "महाकवि" हैं।
3. भूधरदास तत्कालीन शृंगारपरक कविता के आलोचक हैं।
4. वे जैनशतक एवं विभिन्न पदों में भक्ति, वैराग्य, धर्म एवं अध्यात्म को अभिव्यक्त करने वाले धार्मिक व आध्यात्मिक कवि हैं।
5. भूधरदास सर्वाधिक प्रसिद्ध कवि हैं। उनके द्वारा रचित कई स्तुतियाँ, पार्श्वपुराण में लिखी गई बारह भावनाएँ एवं बज्रनाभि चक्रवर्ती की वैराग्य भावना - जैन समाज में अति लोकप्रिय हैं। साथ ही उनके द्वारा रचित "जैनशतक" श्री दिगम्बर जैन महिला आश्रम, इन्दौर में स्थित समवशरण मन्दिर में तथा पार्श्वपुराण के अन्तर्गत लिखे गये

“बाबीस परीषद्” चित्र सहित श्री दिगम्बर जैन सिद्ध क्षेत्र सोनागिर के चन्द्रप्रभु भगवान के मुख्य मन्दिर में संग्रहालय पर उत्कीर्ण हैं। ये सब उनकी कीर्ति के प्रत्यक्ष प्रमाण हैं।

उपर्युक्त सभी कारणों को ध्यान में रखते हुए मैंने अपने शोध का विषय “हिन्दी संत साहित्य के विशेष सन्दर्भ में महाकवि भूधरदास : एक समालोचनात्मक अध्ययन” निश्चित करके प्रस्तुत शोध प्रबन्ध लिखा है। प्रस्तुत शोध प्रबन्ध नौ अध्यायों में लिखा गया है; जिनका संक्षिप्त सारांश निम्नलिखित है -

प्रथम अध्याय में संत साहित्य का सर्वांगीण अनुशीलन करते हुए “संत” शब्द का अर्थ एवं लक्षण, संत साहित्य की विशेषताएँ, संत साहित्य का काव्यादर्श, संत परम्परा, संत काव्य के साहित्य-असाहित्य की समीक्षा, संतयुगीन परिस्थितियाँ, संतों का प्रदेश, संत साहित्य की प्रासंगिकता आदि पर विचार किया गया है।

द्वितीय अध्याय में भूधरदास की समययुगीन परिस्थितियों का राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक एवं साहित्यिक दृष्टि से विवेचन किया गया है।

तृतीय अध्याय में भूधरदास के जीवनवृत्त और व्यक्तित्व पर प्रकाश डाला गया है। जीवनवृत्त के अन्तर्गत नाम, शिक्षा, परिवार, निवास स्थान, एवं कार्यक्षेत्र का विवेचन करने के साथ-साथ जन्म-मृत्यु एवं रचनाकाल का निर्धारण किया गया है।

भूधरदास की समयांकित प्रथम कृति जैनशतक वि.सं. 1781 की रचना है। दूसरी कृति पार्श्वपुराण का रचनाकाल वि. सं. 1789 है। तीसरी गद्यकृति “चर्चासमाधान” का रचनाकाल वि.सं. 1806 है। इसप्रकार भूधरदास का रचनाकाल 25 वर्ष सिद्ध होता है।

विभिन्न अन्तः साक्ष्यों के आधार पर भूधरदास का जन्म समय प्रथम रचना जैनशतक वि.सं. 1781 से लगभग 25-26 वर्ष पूर्व वि.सं. 1756-57 तथा मृत्युकाल अन्तिम रचना से लगभग 16-17 वर्ष बाद वि.सं. 1822-23 सिद्ध होता है। इस प्रकार भूधरदास का समय वि.सं. 1756-57 से वि.सं. 1822-23 तक कुल 65 वर्ष निश्चित होता है। भूधरदास अठारहवीं शती के प्रमुख जैन कवि हैं।

भूधरदास का व्यक्तित्व अनेक गुणों से विभूषित था। वे कवि, अध्यात्मरसिक, प्रवचनकार, समाधानकर्ता, निराभिमानी, विनम्र, मिष्टभाषी, पक्षपातविरोधी, खोजी एवं जिज्ञासु, विचारशील, धैर्यशील, भाग्यवादी, धार्मिक, नैतिक एवं सदाचारी, विरक्त, आत्मोन्मुखी, भक्त एवं गुणानुरागी, हिंसा एवं वैर के विरोधी, सामाजिक बुराईयों व दुर्बलताओं के कट्टर विरोधी तथा रीतिकालीन कवियों द्वारा की गई शृंगारपरक रचनाओं के आलोचक के रूप में दृष्टिगत होते हैं।

चतुर्थ अध्याय में रचनाओं का वर्गीकरण गद्य और पद्य के रूप में करते हुए एकमात्र गद्यकृति “चर्चासमाधान” का विस्तृत विवेचन किया गया है।

पद्य के अन्तर्गत महाकाव्य “पार्श्वपुराण” तथा मुक्तक काव्य के रूप में महाकाव्येतर रचनाएँ जैनशतक एवं पदसंग्रह या भूधरविलास का विवेचन किया गया है। इनके अतिरिक्त फुटकर रचनाओं के रूप में विनतियाँ, स्तोत्र, आरतियाँ, अष्टक काव्य, निशि भोजन भुंजन कथा, गीत, तीन चौबीसी की जयमाला, विवाह समय जैन की मंगल भाषा, ढाल, हुक्का पच्चीसी या हुक्का निषेध चौपाई, बधाई, जकड़ी, होली, जिनगुणमुक्तावली, भूपालचतुर्विंशतिभाषा, बारह भावना, सोलहकारण भावना, वैराग्यभावना, बाबीस परीषह आदि का नामोल्लेख पूर्वक परिचय दिया गया है। ये समस्त रचनाएँ मुक्तक काव्य में ही समाहित हैं।

पंचम अध्याय के रूप में भूधरदास की रचनाओं का भावपक्षीय अनुशीलन किया गया है। भूधरदास की महाकाव्यात्मक रचना “पार्श्वपुराण” का महाकाव्य के लक्षणों के आधार पर मूल्यांकन करते हुए कथानक, चरित्र चित्रण, प्रकृति चित्रण, रस निरूपण, उद्देश्य कथन आदि का विस्तृत विवेचन किया गया है। साथ ही पार्श्वपुराण का महाकाव्यत्व तथा वैशिष्ट्य बतलाया गया है।

महाकाव्येतर रचनाओं में मुख्यतः मुक्तक काव्य के अन्तर्गत समाहित जैनशतक और पदसंग्रह ही हैं। जैनशतक शतक-परम्परा की महत्वपूर्ण कृति है। उसमें जैनधर्म और उससे सम्बन्धित स्तुति, नीति, उपदेश, वैराग्य आदि का सुन्दर वर्णन है। इसकी भावपक्षीय विशेषताओं का विषय के अनुसार विवेचन किया गया है। पदसंग्रह या भूधरविलास के कई पद जिनदेव, जिनवाणी, जिनगुरु एवं जिनधर्म आदि से सम्बन्धित हैं तथा कई पद आध्यात्मिक भावों से युक्त हैं। इसप्रकार ये समस्त पद स्तुतिपरक या भक्तिपरक, नीतिपरक, अध्यात्मपरक

एवं उपदेशपरक हैं। कुछ पद नेमि-राजुल के वियोग श्रृंगार से सम्बन्धित हैं; जिनमें राजुल की पीड़ा अभिव्यक्त हुई है। इन पदों में समाहित भावों को पदसंग्रह के भावपक्षीय अनुशीलन के रूप में प्रस्तुत किया गया है।

षष्ठ अध्याय में भूधरदास के रचनाओं का कलापक्षीय अनुशीलन किया गया है। इसके अन्तर्गत भूधरदास द्वारा प्रयुक्त भाषा, छन्दविधान, अलंकार-विधान, प्रतीकयोजना, मुहावरे एवं कहावतों का विस्तृत विवेचन किया गया है।

सप्तम अध्याय में भूधरदास के दार्शनिक, धार्मिक एवं नैतिक विचारों का उद्धरणों सहित सप्रमाण विवेचन प्रस्तुत किया गया है।

दार्शनिक विचारों के अन्तर्गत भूधरदास ने जैनदर्शन के सभी प्रमुख विषय विश्व, जीव, अजीव (पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल) आस्त्र-बन्ध के रूप में संसार के कारण तत्त्व या मुक्तिमार्ग के बाधक तत्त्व, संवर-निर्जरा के रूप में संसार के नाशक या मोक्षमार्ग के साधक तत्त्व, मोक्ष के रूप में साध्यतत्त्व, वस्तुस्वरूपात्मक अनेकान्त एवं उसका प्रतिपादक स्याद्वाद, निश्चय-नय व व्यवहारनय, सप्तभंगी, पंचास्तिकाय, प्रदेश एवं उसकी सामर्थ्य, हेय-ज्ञेय-उपादेय तत्त्व, पुनर्जन्म एवं कर्मसिद्धान्त आदि का वर्णन किया है।

धार्मिक विचारों में जैनधर्म, धर्म के अंग-आचार और विचार, धर्म का स्वरूप-वस्तुस्वभाव, सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान-सम्यग्चारित्र, धर्म प्रवृत्तिपरक, सम्यग्दर्शन का विस्तृत विवेचन, देव-शास्त्र-गुरु का स्वरूप, भेदविज्ञान एवं आत्मानुभव, सम्यग्ज्ञान का स्वरूप, सम्यग्चारित्र-सकल चरित्र एवं देश चरित्र का वर्णन किया है।

सकल चरित्र के अन्तर्गत मुनिधर्म के रूप में पाँच महाव्रत, पाँच समिति, तीन गुप्ति, पाँच इन्द्रियजय, छह आवश्यक एवं सात शेष गुणों का कथन किया है। साथ ही अनित्य आदि बारह भावनाएँ, उत्तमक्षमादि दशधर्म, क्षुधा-तृषादि बाबीस परीषह, अनशनादि बारह तप, दर्शन विशुद्धि आदि सोलह कारण भावनाओं का विवेचन किया है।

देशचारित्र या गृहस्थधर्म के अन्तर्गत श्रावक के पाक्षिक, नैष्ठिक और साधक प्रकारों को ध्यान में रखते हुए पाक्षिक श्रावक के आचरण के रूप में मद्य, मांस, मधु, पंच उदुम्बर फल, जुआ, चोरी, शिकार, वेश्यासेवन आदि सप्तव्यसनों के दोष बतलाते हुए उनके त्याग का उपदेश दिया है। नैष्ठिक

श्रावक के आचरण को दर्शन, व्रत आदि ग्यारह प्रतिमाओं के रूप में प्रतिपादित किया है। साथ ही श्रावक उपर्युक्त सभी व्रतों का पालन करता हुआ समाधिमरण करता है। इस प्रकार धार्मिक विचारों में मुनिधर्म एवं गृहस्थ धर्म का वर्णन हुआ है।

नैतिक विचारों में सज्जन-दुर्जन, कामी, अन्धपुरुष, दुर्गतिगामी जीव, कुक्कवियों की निन्दा, कुलीन की सहज विनम्रता, महापुरुषों का अनुसरण, पूर्वकर्मानुसार फल प्राप्ति, धैर्यधारण का उपदेश, होनहार दुनिवार, काल सामर्थ्य, राज्य और लक्ष्मी, मोह, भोग एवं तृष्णा, देह व संसार का स्वरूप, समय की बहुमूल्यता, मनुष्य अवस्थाओं का वर्णन एवं आत्महित की प्रेरणा, राग और वैराग्य का अन्तर व वैराग्य कामना, अभिमान निषेध, धन के संबंध में अज्ञानी का चिन्तन, धनप्राप्ति भाग्यानुसार, मन की पवित्रता, हिंसा का निषेध, सप्तव्यसन का निषेध, मिष्ट वचन बोलने की प्रेरणा, मनरूपी हाथी का कथन आदि अनेक विषयों का वर्णन किया है।

अष्टम अध्याय में हिन्दी संत साहित्य के विशेष सन्दर्भ में भूधरसाहित्य की समानताओं और असमानताओं का विस्तृत विवरण देते हुए भूधरदास का मूल्यांकन किया गया है।

नवम अध्याय में सम्पूर्ण विषयवस्तु का उपसंहार किया गया है। साथ ही भूधरदास के योगदान पर भी विचार किया गया है।

अन्त में परिशिष्ट के रूप में सन्दर्भग्रंथों की सूची, पत्र पत्रिकाओं की सूची, शोधोपयोगी सामग्री प्राप्त कराने में सहयोगी ग्रंथालयों की सूची एवं प्रकाशन हेतु आर्थिक सहायता देने वाले दातारों की नामावली प्रस्तुत करके शोधप्रबन्ध समाप्त किया गया है।

यह शोध प्रबन्ध परमादरणीय श्रद्धेय गुरुवर्य स्व. डॉ. नरेन्द्र भानावत एवं डॉ. रामप्रकाश कुलश्रेष्ठ के निर्देशन में लिखा गया है। उन्होंने प्रथम भेट में ही मुझे स्वीकृति प्रदानकर कृतार्थ कर दिया। उनके मंगल आशीर्वाद एवं अमूल्य मार्गदर्शन से ही यह कार्य निर्विघ्न पूर्ण हो सका है। मैं हृदय से उनका अत्यन्त कृतज्ञ एवं श्रद्धाभिभूत हूँ।

डॉ. जे.पी. श्रीवास्तव, खरगोन एवं डॉ. देवेन्द्रकुमार जैन शास्त्री, नीमच का भी मैं हृदय से आभारी हूँ; जिन्होंने मुझे समय-समय पर पर्याप्त निर्देशन प्रदान किया। विषयनिर्धारण में प्रो. जमनालाल जैन, इन्दौर का विशेष आभारी

हूँ; जिन्होंने मुझे इस विषय पर शोध करने हेतु प्रेरित किया। डॉ. प्रकाशचन्द जैन, इन्दौर का अति कृतज्ञ हूँ; जिनका मार्गदर्शन मेरा पथप्रदर्शक बना। शोध सामग्री उपलब्ध कराने में विभिन्न शास्त्र भण्डारों, जैन मन्दिरों एवं पुस्तकालयों के अधिकारियों ने जो सहयोग दिया; उसके लिए उन सभी का मैं हार्दिक आभारी हूँ। अपनी सहधर्मिणी श्रीमती निशि जैन की प्रशंसा किये बिना भी नहीं रह सकता; जिसकी सतत प्रेरणा एवं सहयोग मेरा संबल रहा।

परम श्रद्धेय गुरुवर्य डॉ. हुकुमचन्दजी भारिल्ल ने अपनी अमूल्य प्रस्तावना लिखकर मुझे उपकृत किया तथा परमादरणीय ब्र. यशपालजी ने प्रस्तुत शोध प्रबन्ध आलोचान्त पढ़कर अमूल्य सुझाव दिये, संशोधन किया। एतदर्थ मैं दोनों महानुभावों का चिरक्रणी रहूँगा। इसे लिखने की मूल शक्ति मुझे पूज्य गुरुदेव श्री कानजीस्वामी एवं पण्डित टोंडरमल स्मारक ट्रस्ट जयपुर से प्राप्त हुई है। मेरे ऊपर किये गये इनके असीम उपकार को भुलाना संभव ही नहीं है।

इस कार्य में प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में जिन-जिन महानुभावों का सहयोग प्राप्त हुआ है, उन सबके प्रति भी कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ। साथ ही प्रकाशन हेतु पं. सदासुख ग्रंथमाला, अजमेर के संस्थापक अध्यक्ष श्री पूनमचन्द लुहाड़िया, कम्प्यूटर कम्पोजिंग हेतु श्री अखिल बंसल एवं मुद्रण हेतु श्री सोहनलाल जैन को अपना बहुमूल्य सहयोग देने के लिए धन्यवाद देता हूँ।

इस शोधग्रन्थ को उपलब्ध कराने का वास्तविक श्रेय उन महानुभावों, ट्रस्टों एवं मण्डलों को जाता है; जिन्होंने हमें आर्थिक सहयोग प्रदान किया है। उनके प्रति मैं हृदय से अपनी कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ तथा धन्यवाद देता हूँ। सभी दातारों की सूची अन्त में दी गई है। प्रचारार्थ ग्रंथ की कीमत लागत मूल्य से भी कम रखी गई है।

आशा है प्रस्तुत शोध प्रबन्ध महाकवि पं. भूधरदास के व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व को उजागर करते हुए उपयोगी सिद्ध होगा।

भवदीय

डॉ. नरेन्द्रकुमार जैन

स्नातकोत्तर शिक्षक (हिन्दी), केन्द्रीय विद्यालय

एक अभिमत

डॉ. रामदीन मिश्र

एम. ए., डी. लिट्

भूतपूर्व अध्यक्ष एवं प्रोफेसर

हिन्दी विभाग, पटना विश्वविद्यालय, पटना

मैंने इस शोध प्रबन्ध को आद्यन्त पढ़ा है और पाया है कि यह एक मौलिक एवं उपयोगी शोधकार्य है। सन्तकाव्य भक्तिकालीन हिन्दी साहित्य की एक शाखा मात्र ही नहीं है वरन् यह आध्यात्मिक चिन्तन और साहित्य की एक प्रवृत्ति है; जो सिद्धों-नाथों से लेकर अद्यावधि प्रवहमान रही है। महाकवि भूधरदास इसी परम्परा की एक कड़ी है। यह बात और है कि वे जैनधर्म के अनुयायी थे और उनकी रचनाएँ जैन सिद्धान्तों, विश्वासों और आचरण की पोषक हैं किन्तु इससे उनका साहित्यिक महत्त्व कम नहीं हो जाता।

शोधकर्ता ने महाकवि भूधरदास के साहित्यिक अवदान का हिन्दी सन्त साहित्य सन्दर्भ में एक समालोचनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करने का महत्वपूर्ण कार्य किया है।

भूधरदास का समय विक्रम की अठारहवीं शती के उत्तरार्द्ध से विक्रम की उन्नीसवीं शती के प्रथम दो दशकों तक अनुमानित है। हिन्दी साहित्य के इतिहास में यह समय रीतिकाल का है, जिसके अन्तर्गत महाकाव्य की कोई उल्लेखनीय रचना नहीं मिलती। भूधरदास ने अपनी रचना 'पार्श्वपुराण' के द्वारा इस काल की इस कमी को पूरा किया है। इसीप्रकार अपनी रचना 'चर्चा समाधान' के द्वारा भूधरदास ने हिन्दी गद्य के क्षेत्र में योगदान दिया है। वार्ता साहित्य के बाद यह रचना ब्रजभाषा गद्य के अत्यन्त प्रौढ़ रूप का उदाहरण प्रस्तुत करती है। इन दोनों कारणों से भूधरदास का हिन्दी साहित्य के विकास में अन्यतम योगदान है जो अभी तक सम्बद्ध विद्वानों की आँखों से ओझल था। लेखक ने भूधर साहित्य के इस पक्ष का उद्घाटन कर निश्चय ही एक स्तुत्य कार्य किया है।

तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करते हुए लेखक ने सन्तकाव्य एवं भूधरदास की रचनाओं के साम्य और वैषम्य पर प्रकाश डाला है। चूँकि भूधरदास भी सन्त परम्परा के ही कवि थे; अतः दोनों में अनेक समताओं का होना स्वाभाविक है। पुनः चूँकि दोनों के आध्यात्मिक विश्वास अलग-अलग स्रोतों से विकसित हुए; अतः विषमता का होना उतना ही अनिवार्य है। शोधकर्ता ने सभी सम्बद्ध तथ्यों का विधिवत् विश्लेषण-विवेचन कर उपयुक्त एवं विश्वसनीय निष्कर्ष निकाले हैं। विवेचन में यथोचित शोध-प्रविधि का अवलम्बन लिया गया है। यह शोध प्रबन्ध प्रकाशन के सर्वथा उपयुक्त है।

सभी दृष्टियों से मेरे विचार में यह एक मौलिक कार्य है और हिन्दी शोध के क्षेत्र में एक निश्चित अवदान है।

अनुक्रमणिका

1.	प्रकाशकीय	श्री हीराचन्द बोहरा	iii
2.	प्रस्तावना	डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल	v
3.	आत्मवक्तव्य		xiii
4.	एक अभिमत	डॉ. रामदीन मिश्र	xx

प्रथम अध्याय

	सन्त साहित्य : एक अनुशीलन	1-91
(क)	सन्त का अर्थ एवं लक्षण	1
(ख)	सन्त साहित्य की विशेषताएँ या मुख्य प्रवृत्तियाँ	12
(ग)	सन्त साहित्य का काव्यादर्श : भावपक्ष एवं कलापक्ष	56
(घ)	सन्त परम्परा	65
(ङ)	सन्त मत पर अन्य प्रभाव या सन्त मत के आधार	68
(च)	सन्त काव्य : साहित्य असाहित्य का निर्णय	77
(छ)	सन्तयुगीन परिस्थितियाँ तथा सन्तों का प्रदेश	84
(ज)	सन्त साहित्य की प्रासंगिकता	87

द्वितीय अध्याय

	भूधरयुगीन पृष्ठभूमि	93-109
(क)	राजनीतिक परिस्थितियाँ	93
(ख)	सामाजिक एवं आर्थिक परिस्थितियाँ	97
(ग)	धार्मिक परिस्थितियाँ	101
(घ)	साहित्यिक परिस्थितियाँ	105

तृतीय अध्याय

	जीवन वृत्त एवं व्यक्तित्व	111-133
(क)	जीवनवृत्त	111-119
	नाम 112, शिक्षा 112, परिवार 115, निवास स्थान एवं कार्य क्षेत्र 115, जन्म मृत्यु एवं रचना काल 115	
(ख)	व्यक्तित्व	120
	महाकवि 120, अध्यात्मरसिक 120, प्रवचनकार 120, समाधानकर्ता 121, निरभिमानी 121, विनम्र 122, मिष्टभाषी 122, पक्षपात विरोधी 123, खोजी एवं	

जिज्ञासु 123, विचारशील 123, धैर्यशील 124,
भाग्यवादी 124, धार्मिक 125, नैतिक एवं सदाचारी
126, विरक्त 127, आत्मोन्मुखी 127, भक्त एवं
गुणानुरागी 128, हिंसा एवं वैर के विरोधी 129

चतुर्थ अध्याय

रचनाओं का वर्गीकरण एवं परिचयात्मक अनुशीलन	135-176
(क) रचनाओं का वर्गीकरण	135-137
(ख) रचनाओं का परिचयात्मक अनुशीलन	138-176
गद्य साहित्य : चर्चा समाधान 138, पद्य साहित्य : पार्श्वपुराण (महाकाव्य) 156, जैनशतक (मुक्तक काव्य) 159, पदसंग्रह या भूधरविलास (मुक्तक काव्य) 161, विभिन्न फुटकर रचनाएँ (मुक्तक काव्य) - विनतियाँ 166, स्तोत्र 167, आरतियाँ 168, अष्टक काव्य 168, निशिभोजन भुञ्जन कथा 168, गीत 170, तीन चौबीसी की जयमाला 170, विवाह समै जैन की मंगल भाषा 170, ढाल 171, हुक्का पच्चीसी या हुक्का निषेध चौपाई 172, बधाई 172, जकड़ी 172, होली 173, जिनगुणमुक्तावली 173, भूपाल चतुर्विंशति भाषा 174, बारह भावना 174, सोलहकारण भावना 175, वैराग्य भावना 175, बाईस परीषह 175	

पंचम अध्याय

भूधरदास की रचनाओं का भावपक्षीय अनुशीलन	177-281
(अ) महाकाव्यात्मक रचना पार्श्वपुराण का भावपक्षीय अनुशीलन	177-242
(क) महाकाव्य का स्वरूप : विभिन्न विद्वानों की दृष्टि में 178, पार्श्वपुराण का महाकाव्यत्व : मूल्यांकन के विशिष्ट बिन्दु 183, कथानक एक दृष्टि -सर्गानुसार कथासार 184, कथानक की सर्गबद्धता एवं छन्दबद्धता 188, कथा प्रवाह या संबंध निर्वाह 189, अन्विति एवं प्रभाव (धार्मिक स्थल) 190, महानता एवं पुराणसम्मतता 194, परम्परागतता एवं नवीन उद्भावनाएँ 197, प्रबन्ध काव्य की दृष्टि से कथानक पर विचार एवं प्रबन्ध की विशेषताएँ 199	
(ख) पार्श्वपुराण में चरित्र चित्रण 202 प्रधान पात्रों का चरित्र चित्रण-	

- नायक पार्श्वनाथ 203, प्रतिनायक संवर (कमठ का जीव) 211,
गौण पात्रों का चरित्र चित्रण- राजा अरविन्द 217, मंत्री विश्वभूति
एवं उनकी पत्नी 217, राजा विद्युत्गति एवं रानी
विद्युत्माला 217, राजा ब्रजवीर्य एवं रानी विजया 218,
राजा अश्वसेन एवं रानी वामादेवी 218, राजा श्रेणिक 219
- (ग) पार्श्वपुराण में प्रकृति चित्रण - 219
- (घ) पार्श्वपुराण में रस निरूपण - (अंगीरस) शांत रस 228,
अन्य रस- शृंगार रस 231, हास्य रस 232, करुण रस 233,
वीररस 233, रौद्ररस 234, भयानक रस 234, वीरत्स रस 235,
अद्भुत रस 235, वात्सल्य रस 236, भक्ति रस 236
- (ङ) पार्श्वपुराण की रचना का उद्देश्य 238
- (च) महाकाव्येतर रचनाओं का भावपक्षीय अनुशीलन 244-279
मुक्तक का अर्थ (परिभाषाएँ एवं विशेषताएँ) 244, मुक्तक एवं
प्रबन्ध में भेद 246, जैनशतक का भावपक्षीय विश्लेषण 247,
पदसंग्रह या भूधरविलास का भावपक्षीय अनुशीलन 264,
संख्य भाव 269, दास्यभाव 270, प्रेम भाव 273, शांत भाव 275,
आत्मा का कथन 276, पापों को छोड़ने का उपदेश एवं
मानव जीवन की दुर्लभता 276, मन की पवित्रता 277,
अभिमान का निषेध 277, गुरु का स्वरूप एवं महत्त्व 278,
माया का वर्णन 279, शरीर के रूपक 279, श्रद्धानी जीव एवं
समकित सावन का महत्त्व 280, हिंसा का निषेध 281

षष्ठ अध्याय

- भूधरदास का कलापक्षीय अनुशीलन 283-330
- (क) भाषा 283, पार्श्वपुराण की भाषा 286, जैन शतक की भाषा 287,
भूधर विलास या पद संग्रह की भाषा 289, प्रकीर्ण पद या
फुटकर रचनाओं की भाषा 290
- (ख) छन्द विधान 299
- (ग) अलंकार विधान 311
- (घ) प्रतीक विधान 316
- (ङ) मुहावरे और कहावतें 320
- (च) भूधरदास की गद्य शैली 328

सप्तम अध्याय

- भूधरदास द्वारा प्रतिपादित दार्शनिक, धार्मिक
 एवं नैतिक विचार 331-421
- (क) दार्शनिक विचार - 331
- उपादेय, हेय एवं ज्ञेय तत्त्व 332, विश्व 332, अनेकान्त एवं
 स्याद्वाद 333, जीव विषै सातों भंग निरूपण 338,
 जीव निरूपण 339, अजीव तत्त्व कथन 344, पुद्गल द्रव्य
 कथन 345, धर्मद्रव्य 345, अधर्म-आकाश-कालद्रव्य कथन 346,
 पंचास्तिकाय-विवरण 347, प्रदेश तथा उसकी शक्ति का
 कथन 348, आश्रय-बन्ध तत्त्व कथन 348,
 संवर-निर्जरातत्त्व कथन 349, मोक्ष तत्त्व कथन 350,
 निश्चयनय और व्यवहार नय 350, पुनर्जन्म एवं कर्म सिद्धान्त 351
- (ख) धार्मिक विचार - 352
- जैन धर्म 353, धर्म के अंग : विचार और आचार 354,
 धर्म क्या है ? वस्तु का स्वभाव धर्म 356, सम्यग्दर्शन
 ज्ञान चरित्र रूप धर्म 357, धर्म प्रवृत्तिपरक 359,
 सम्यग्दर्शन 360, देव शास्त्र गुरु 364, भेदविज्ञान एवं
 आत्मानुभव 367, सम्यग्ज्ञान 369, सम्यग्चारित्र 370,
 सकल चारित्र या मुनि धर्म 371, पाँच महाव्रत 372, पाँच
 समिति 372, तीन गुप्ति और पाँच इन्द्रिय जय 372, छह
 आवश्यक और सात शेष गुण 373, बारह भावनाएँ 373,
 दस धर्म 378, बाबीस परीषह 380, बारहतप 385,
 सोलह कारण भावनाएँ 387, देश चारित्र या गृहस्थ
 धर्म 390, दर्शन प्रतिमा- पाँच उदुम्बर, फल, मद्य, मांस, मधु,
 सप्तव्यसन आदि के दोष एवं उनका निषेध निरूपण 392-397
 व्रत प्रतिमा- पाँच अणुव्रत, तीन गुणव्रत, चार
 शिक्षाव्रत 399-400, सामायिक प्रतिमा 401, प्रोषध प्रतिमा,
 सचित्त त्याग प्रतिमा, दिवा-मैथुन त्याग, ब्रह्मचर्य,
 आरम्भ त्याग-परिग्रह त्याग-अनुमति त्याग-उदिष्ट त्याग
 प्रतिमा 401-402, सल्लेखना या समाधिमरण 403
- (ग) नैतिक विचार 404

सज्जन दुर्जन वर्णन 404, कामी 406, अन्ध पुरुष
 406, दुर्गतिगामी जीव 406, कुकवियों की निन्दा 407,
 कुलीन की सहज विव्रमता 407, महापुरुषों का अनुसरण 407,
 पूर्व कर्मानुसार फल प्राप्ति 408, पूर्व पापोदय में धैर्य धारण
 का उपदेश 408, होनहार दुर्निवार 408, काल सामर्थ्य 409,
 राज्य और लक्ष्मी 410, मोह 410, भोग एवं तृष्णा 410, देह 411,
 संसार का स्वरूप एवं समय की बहुमूल्यता 412,
 अवस्थाओं का वर्णन एवं आत्महित की प्रेरणा 413, राग और
 वैराग्य का अन्तत्व वैराग्य कामना 415, अभिमान निषेध 417,
 धन के संबंध में चिन्तन, धनप्राप्ति भाग्यानुसार 417, मन की
 पवित्रता 418, हिंसा का निषेध 418, सप्त व्यसन निषेध 419,
 मिष्ट वचन की प्रेरणा 420, मन रूपी हाथी का वर्णन 420

अष्टम अध्याय

हिन्दी संत साहित्य में भूधर साहित्य का मूल्यांकन 423-435
 सन्त शब्द का अर्थ 423, सन्त परम्परा 425,
 सन्त मत पर अन्य प्रभाव या सन्त मत के आधार 425,
 साहित्य-असाहित्य का निर्णय 426, सन्त काव्यादर्श 426,
 सन्त साहित्य की विशेषताएँ-समानताएँ 428, असमानताएँ 432

नवम अध्याय

उपसंहार : भूधरदास का योगदान 437-444
 (क) उपसंहार 437
 (ख) भूधरदास का योगदान 440
 परिशिष्ट 445-455
 (क) सन्दर्भ ग्रंथ सूची 445
 (ख) पत्र-पत्रिकाओं की सूची 452
 (ग) शोधोपयोगी-सामग्री प्राप्ति में सहयोगी ग्रंथालयों की सूची 454
 (घ) दातारों की सूची 455-456

महाकवि भूधरदास : एक परिचय

जन्मकाल — विक्रम संवत् 1756-57

मृत्युकाल — विक्रम संवत् 1822-23

शिक्षा — पं. बनारसीदास द्वारा प्रवृत्तित आध्यात्मिक संगोष्ठी 'सैली' में सम्पन्न ।

निवास स्थान व कार्यक्षेत्र — आगरा

प्रमुख रचनाएँ — चर्चा समाधान (गद्य साहित्य),

पार्श्वपुराण (महाकाव्य), जैनशतक (मुक्तक काव्य),

पदसंग्रह या भूधरविलास एवं विभिन्न फुटकर रचनाएँ (मुक्तक काव्य)

“आगरे में बालबुद्धि भूधरखण्डेलवाल, बालक के ख्यालसों कवित्त कर जानेहै ।
ऐसे ही करत भयौ जैसिंहसवाई सूबा, हाकिम गुलाबचन्द आवे तिहि थाने है ॥
हरिसिंह साहके सु वंश धर्मानुरागी नर, तिनके कहै सौ जोरि कीनी एक ठानेहै ।
फिरि-फिरि प्रेरे मेरे आलस को अन्त भयो, इनकी सहाय यह मेरो मनमाने है ॥

अर्थ — मैं, भूधरदास खण्डेलवाल आगरा में बालकों के खेल जैसी कविता (रचना) करता हूँ । ये उक्त छन्द मैंने सवाई जयसिंह सूबा के हाकिम श्री गुलाबचन्द्र जी और श्री हरिसिंहशाह के वंशज धर्मानुरागी पुरुषों के कहने से एकत्रित किये हैं । उन्हीं लोगों की पुनः पुनः प्रेरणा से मेरे आलस्य का अन्त हुआ है । मैं उनका हृदय से आभार मानता हूँ ।

— जैनशतक पद्य 106

प्रथम अध्याय

सन्त साहित्य : एक अनुशीलन

- (क) सन्त का अर्थ एवं लक्षण
- (ख) सन्त साहित्य की विशेषताएँ
- (ग) सन्त साहित्य का काव्यादर्श : भावपक्ष या कलापक्ष
- (घ) सन्त परम्परा
- (ङ) सन्त मत पर अन्य प्रभाव
- (च) सन्त काव्य : साहित्य असाहित्य का निर्णय
- (छ) सन्तयुगीन परिस्थितियाँ एवं सन्तों का प्रदेय
- (ज) सन्त साहित्य की प्रासंगिकता

(क) सन्त शब्द का अर्थ या लक्षण

“सन्त” शब्द हिन्दी आलोचना का एक परिभाषिक रूढ़ शब्द है। हिन्दी आलोचना में यह शब्द निर्गुण ब्रह्म की उपासना करने वाले, नीची जातियों में उत्पन्न होने वाले, जाति-पाँति, कुशाकूत एवं बाह्याडम्बरों का विद्रोह करने वाले कबीर, रैदास, दादू, नानक, दरिया आदि के लिये प्रयुक्त होता है। प्रारम्भ में कबीर आदि को संत कहने में लोग हिचकते थे, इसीलिये आचार्य रामचन्द्र शुक्ल¹ और डॉ. पीताम्बरदत्त बड़ध्वाल² ने संत के साथ निर्गुण विशेषण का प्रयोग निरन्तर किया है; परन्तु वर्तमान में यह शब्द कबीर आदि निर्गुणोपासकों के लिये रूढ़ एवं प्रचलित हो गया। इस प्रकार यह शब्द एकाएक अपनी समस्त पूर्ववर्ती उदात्त परम्परा से विच्छिन्न होकर नितान्त संकुचित, रूढ़ एवं साम्प्रदायिक अर्थ सीमा में बँध गया है। जबकि उदात्त अर्थ में यही शब्द ऋग्वेद से लेकर ईसा की बीसवीं शती तक निर्विवाद रूप से सदसद्विवेकशील, वैरागी, निर्लिप्त, मायातीत या मोह राग द्वेष रहित महापुरुष के अर्थ में प्रयुक्त होता आया है।

संकुचित अर्थ को रूढ़ या प्रचलित अर्थ तथा उदात्त अर्थ को सही अर्थ भी कहा जा सकता है। “सन्त” शब्द के सही अर्थ के संदर्भ में ऋग्वेद से लेकर आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं के साहित्य तक कोई विवाद नहीं रहा और न ही कोश ग्रंथों में “सन्त” शब्द के अर्थ को लेकर कहीं कोई विवाद मिलता है। सर्वप्रथम “हिन्दी साहित्य कोश भाग - 1” में इस अर्थान्तर को उजागर किया गया है। परन्तु वर्तमान में हिन्दी आलोचना में “सन्त” शब्द के रूढ़, प्रचलित या संकुचित अर्थ तथा सही या उदात्त दोनों अर्थों का प्रयोग किया जाता है। इन दोनों अर्थों को ध्यान में रखकर सन्त के लक्षण एवं विशेषताएँ विवेच्य हैं।

सन्त शब्द : सही या उदात्त अर्थ - भारतीय साहित्य में अत्यन्त प्राचीन काल से यह शब्द प्रयुक्त होता आया है। ऋग्वेद³ तैत्तिरीय उपनिषद्⁴

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास रामचन्द्र शुक्ल 2. निर्गुण सम्प्रदाय—डॉ. पीताम्बरदत्त बड़ध्वाल
3. सुवर्ण विप्राः कवयो वचोभिरेकं सन्तं बहुधा कालयन्ति । ऋग्वेद 10.114.5 “क्रान्तदर्शो विप्रलोक्य उस एक व अद्वितीय सत् का ही वर्णन अनेक प्रकार से किया करते हैं।”

4. असदेव स भवति असद्ब्रह्मेति चेत् वेद । अस्ति ब्रह्मेति चेत् वेद संतमेनं विदुर्बुधाः ॥

(ततो विदुरिति) तैत्तिरीय उपनिषद् 2, 6, 1

(यदि पुरुष “ब्रह्म असत् है” जानता है तो वह स्वयं भी असत् हो जाता है और यदि ऐसा जानता है कि “ब्रह्म है” तो ब्रह्मवेत्ता लोग उसे भी सत् समझा करते हैं)

एवं छान्दोग्य उपनिषद्¹ में इसका प्रयोग “ एक ” एवं “ अद्वितीय परमतत्त्व ” के लिये एकवचन में किया गया मिलता है। गीता में “ ओम् तत्सदिति निर्देशो ब्रह्मणस्त्रिविधः ” कहकर सत् को ही ब्रह्म या परमात्मा तथा सत्य का वाचक भी कहा गया है। जबकि मूल रूप में “ सत् ” शुद्ध अस्तित्व मात्र का वाचक है। “ महाभारत ” में इसका प्रयोग सदाचारी के अर्थ में हुआ है तथा सन्त को आचार लक्षण वाला कहा गया है।² “ भागवत ” में यह पवित्रात्मा के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। भागवतकार के अनुसार सन्त संसार को पवित्र करने वाले तीर्थों को भी पवित्र करने वाले होते हैं।³ “ भगवद्गीता ” में सन्त का प्रयोग सद्भाव और साधुभाव के अर्थ में हुआ है।⁴ “ भर्तृहरि ” ने सन्त शब्द का प्रयोग परोपकार परायण व्यक्तियों के लिये किया है। उनके अनुसार सन्त स्वेच्छा से दूसरों का हित करने में लगे रहते हैं।⁵ कालिदास ने इसका प्रयोग बुद्धिमान एवं सदसद्विवेकशील व्यक्ति के लिये किया है।⁶ “ धम्मपद ” में इसका प्रयोग शान्ति के अर्थ में हुआ है।⁷

इस प्रकार सम्पूर्ण प्राचीन संस्कृत साहित्य में “ सन्त ” शब्द का प्रयोग पहले परमतत्त्व या अद्वितीय सत् रूपी ब्रह्म के लिये तथा बाद में अनेक आदर्श एवं अनुकरणीय सत्गुणों से युक्त व्यक्तियों के लिये हुआ है।

मध्ययुगीन साहित्य में भी सन्त शब्द का यही अर्थ दृष्टिगोचर होता है। सम्पूर्ण निर्गुण और सगुण भक्ति साहित्य में सन्त शब्द का प्रयोग बहुलता से दिखाई देता है तथा उसका अर्थ भी अतिशय उदारता से वर्णित किया गया है।

निर्गुण भक्ति साहित्य के प्रतिनिधि कवि कबीर के मत से सन्त वे हैं जिनका कोई दुश्मन नहीं है, जो निष्कामवृत्ति वाले हैं, साईं से प्रीति करते हैं, और विषयों से निर्लिप्त होकर रहते हैं।

1. “ असदेव सौम्येदमम असौदेकमेवा द्वितीयं ” - छान्दोग्य उपनिषद् द्वितीय खण्ड 1

2. आचारलक्षणो धर्मः सन्तश्चाचार लक्षणः महाभारत

3. प्रायेण तीर्थाभिगमावदेशैः स्वयं ही तीर्थानि पुनन्ति सन्तः भागवत 1, 19, 8

4. सद्भावे साधुभावे च सदित्येतत्प्रयुज्यते : श्रीमद् भागवद्गीता 17, 26

5. सन्तः स्वयं परहिते विहिताभियोगः भर्तृहरि

6. पुराणमित्येव न साधु सर्वं न चाधि काव्यं नवमित्यवद्यम् ।

सन्तः परीक्ष्यान्यतरद् भजन्ते मूढः परप्रत्ययनेन बुद्धिः ॥ मालविकाग्निमित्रम् कालिदास
अंक 1

7. अधिगच्छे पदे सन्तं संख रूप समं सुखं - भिक्षु बग गाथा 9

निरखैरी निहकामता साईं सेती नेह ।

विधिया सैं न्यारा रहे, संतनि कौ अंग एह ॥¹

सारी दुनियाँ दुखी है, सुखी अकेला संत है जिसने मन को जीत लिया है-

तन धरि सुखिया कोइ न देखे, जो देखे सो दुखिया हो ।

कहै कबीर सकल जग दुखिया, संत सुखी मन जीती हो ॥²

शरीर केले का वन है, मन मदमत गज है, ज्ञान अंकुश है और संत महावत है -

काया कजरी वन अहै, मन कुंजर मैमत ।

अंकुस ज्ञान रतन है, खेवट बिरला संत ॥³

राम भक्ति में स्थिर एक सन्त ही है जिस पर लोभ की लहर का असर नहीं होता है -

जिघरा जाहुगे हम जानी ।

आवैगी कोई लहरी लोभ की, बूडैगा बिनु प्राणी ।

कहै कबीर तेरा सन्त न जाइगा, राम भगति ठहरानी ॥⁴

माया संतों की दासी है । जगदीश का स्मरण करते हुए सन्त माया का अनासक्त भोग करते हैं और जब चाहते हैं उसे लात मारकर छोड़ देते हैं -

माया दासी संत की, ऊभी देइ असीस ।

बिलसी अरू लाता छड़ी, सुमरि सुमरि जगदीश ॥⁵

जिसके (ब्रह्म के) लिए योग, यज्ञ और तप करना पड़ता है वे राम सदा सन्तों के पास रहते हैं । जो प्रसाद देवों को दुर्लभ हैं वे सन्त के पास सदा सुलभ हैं । भक्त वत्सल हरि इन सन्तों में ही विराजते हैं ।

1. कबीर ग्रंथावली - डॉ. पारसनाथ तिवारी पृष्ठ 156, 24

2. वही पृष्ठ 52, 53, पद 90

4. वही पृष्ठ 54 पद 92

3. वही पृष्ठ 228 साखी 2

5. वही पृष्ठ 235 साखी 5

भयो लाभ चरना अमृत को, महाप्रसाद की आसा ।
 जाकौ जोग जगिग तप कीजै, सो सन्तन की पासा ॥
 जा प्रसाद देवन को दुस्लभ, संत सदा ही पाहीं ।
 कहै कबीर हरि भगत जछल है, सो संतन के माहीं ॥ ¹

स्पष्ट है कि कबीर ने सन्त शब्द का प्रयोग उन मायातीत महापुरुषों के अर्थ में किया है जो निर्वैर, निष्काम और निर्विषय होते हैं, कनक-कामिनी के प्रति अनासक्त हैं, लोभ-मोह, मद-मत्सर, आशा-तृष्णा आदि का जिन पर कोई असर नहीं होता है, जो इन्द्रियों और मन को वश में रखते हैं और साई के प्रति एकनिष्ठ प्रीति वाले होते हैं । कबीर ² और सुन्दरदास ³ ने सन्त को राम के समान ही माना है अर्थात् राम और सन्त को एक ही माना है । साथ वे यह भी कहते हैं कि -

“सन्तन माहे हरि बसे, सन्त बसे हरि माहीं” ⁴

पलटूसाहब लिखते हैं कि सन्त के लिए भक्ति और प्रेम ही सब कुछ है । उसे न चार पदार्थ चाहिए, न मुक्ति । ऋद्धि-सिद्धि, स्वर्ग-नरक, तीर्थ-व्रत, पुण्य-प्रताप आदि किसी की भी उसे इच्छा नहीं रहती । वह ज्ञान के खड्ग से सांसारिक विपत्तियों का नाश करके दुःखी व्यक्ति को सुखी करता है । वही जीवों का उद्धार करता है । राम और सन्त में कोई भेद नहीं है । ⁵ तुलसी साहब, ⁶ सहजोबाई, ⁷ दयाबाई, ⁸ दरिया साहब ⁹ (मारवाड वाले), दादूदयाल ¹⁰ आदि-सभी कहते हैं कि सन्त विवेकी, दयावान, क्षमाशील, त्यागी, विश्वबन्धुत्व में विश्वास करने वाला और समस्त विकारों से परे होता है । वह जहाँ भी रहता

1. कबीर ग्रंथावली - डॉ. तिवारी तिवारी पृष्ठ 20 पद 33

2. कबीर ग्रंथावली - संत राम है एको पृष्ठ 33

3. सुन्दरसार - उहै ब्रह्म गुरु सन्त उह, वस्तु विराजित एक । पृष्ठ 2

4. वही पृष्ठ 264, 48

5. सन्त काव्य, कुण्डलिया 13 पृष्ठ 526, रेखता 2, पृष्ठ 532

6. सन्त बानी संग्रह भाग 1 पृष्ठ 229

7. वही भाग 1 पृष्ठ 158

8. वही भाग 1 पृष्ठ 177

9. वही भाग 1 पृष्ठ 128

10. वही भाग 1 पृष्ठ 86

है, चारों ओर ज्ञान का प्रकाश फैलाता रहता है। वह आध्यात्मिकता का ऐसा रूप होता है, जो व्यवहार में सिद्ध हो गया है।

सन्तों की उपर्युक्त विशेषताएँ ऊपर ऊपर से आरोपित न होकर सहज है, अन्तर्मन से निस्सृत है। यही कारण है कि कोटि असन्तों से घिरे रहने पर भी वे अपनी सन्त वृत्ति का त्याग नहीं करते - वैसे ही जैसे सर्प चन्दन से लिपटे रहते हैं किन्तु चन्दन अपनी स्वाभाविक शीतलता का त्याग नहीं करता-

सन्त न छोड़ै संतई, जो कोटिक मिलहि असन्त ।

गराय धुलंगल नेखिऔ, तऊ सीतलता न तजंत ॥

मध्य युग के सगुण भक्ति साहित्य में भी सन्त शब्द की ऐसी ही अर्थ-स्थिति है। सगुण भक्ति साहित्य के प्रतिनिधि कवि गोस्वामी तुलसीदास ने सन्त की विशद चर्चा अनेक प्रसंगों में “रामचरितमानस” में की है। वे सन्त शब्द को असज्जन और खल का विपरीतार्थक मानते हैं।¹ उनके मत से सन्त कोमल चित्त और कारुणिक होते हैं -

“नारद देख विकल जयन्ता । लागि दया कोमल चित्त सन्ता ॥”²

उनका न कोई हित होता है न अनहित। वे अच्छे फूल की तरह सुगंध देने वाले होते हैं -

बंदऊ संत समान चित, हित अनहित नहिं कोई ।

अंजलिगत सुभ सुमन जिमि, सम सुगंधकर दोई ॥³

सन्त भ्रमर की तरह गुणग्राही,⁴ निर्मल जल की तरह स्वच्छ,⁵ और मोह मदहीन हृदय वाले होते हैं।⁶ वे सदसदविवेकी हंस की तरह गुणों को दूध के समान ग्रहण कर लेते हैं और दुर्गुणों को वारि-विकार की तरह त्याग देते हैं -

1. बंदऊ विधिपद रेनु भवसागर जेहिं कीन्ह जहं ।

संत सुधा ससि धेनु प्रगटे खल विष बारूनी ॥ मानस बालखण्ड दोहा 14

2. मानस अरण्यकाण्ड दोहा 2 चौपाई 5 3. मानस बालकाण्ड दोहा 3 क

4. मधकर सरस सन्त गुन ग्राही— मानस अरण्यकाण्ड दोहा 10

5. सन्त हृदय निर्मल जस बारी— वही अरण्यकाण्ड दोहा 39 चौपाई 4

6. सरिता सर निर्मल जल सोहा । सन्त हृदय जस गत मद मोहा ॥

वही किष्किंधाकाण्ड दोहा 16 चौपाई 2

जड़ चेतन गुनदोषमय, बिस्व कीन्ह करतार ।

संत हंस गुन गहहिं पथ, परिहरि वारि विकार ॥¹

जो दूसरों के हित के लिए अपने शरीर का त्याग कर देते हैं, सन्त उनकी प्रशंसा करते हैं -

धर हित लागि तजै जो देही : संतन संत प्रसंसाहि तेही ।²

सन्तों को दूसरों के द्रोह की बात याद ही नहीं रहती-

बिसरे गृह सपनेहुँ सुधि नाहिं । जिमि पर द्रोह सन्त मन नाहीं ॥³

सन्तों की यही बड़ाई है कि बुरा करने वाले का भी भला करते हैं -

उमा संत कइ इहइ बड़ाई । मंद करत जो करत भलाई ॥⁴

कोटि विघ्न पड़ने पर भी उनका मन नीति का त्याग नहीं करता है -

भूमि न छांडत कवि चरन, देखत रिपु मद भाग ।

कोटि विघ्न ते संत कर, मन जिमि नीति न त्याग ॥⁵

सन्त का हर काम, वृक्ष, नदी, पहाड़, पृथ्वी की तरह दूसरों के हित के लिए होता है -

सन्त बिट्य सरिता गिरि धरनी । पर हित हेतु सबन्ह कै करनी ॥⁶

तुलसीदास के अरण्यकाण्ड में नारद को संतों के लक्षण श्री राम के द्वारा विस्तार से बतलाये हैं ।⁷ इसी प्रकार उत्तरकाण्ड में भी "सन्त हृदय नवनीत समाना," "परुष वचन कबहुँ नहिं बोलहिं", "कोमल चित्त दीनन्ह पर दाया", "विगत काम मन नाम परायन", आदि कहकर सन्तों के अनेक गुणों पर प्रकाश डाला है ।

इस प्रकार स्पष्ट है कि सम्पूर्ण मध्ययुगीन निर्गुण भक्ति साहित्य एवं सगुण भक्ति साहित्य में सन्त शब्द अपनी पूर्ववर्ती उदात्त अर्थ परम्परा का निर्वाह करता हुआ ही दृष्टिगोचर होता है ।

हिन्दी आलोचना को छोड़कर शेष समस्त आधुनिक हिन्दी साहित्य में भी आज यह शब्द अपने परम्परा प्राप्त उदात्त अर्थ में ही प्रयुक्त होता है ।

1. मानस बालकाण्ड दोहा 6

3. वही उत्तरकाण्ड दोहा 16 चौ.

5. वही लंकाकाण्ड दोहा 34 ख

7. वही अरण्यकाण्ड दोहा 45, 46

2. मानस बालकाण्ड दोहा 64 चौपाई 2

4. वही सुन्दरकाण्ड दोहा 41 चौ. 4

6. वही उत्तरकाण्ड दोहा 125 चौ. 3

आधुनिक काल में सन्त शब्द के उदात्त अर्थ को ध्यान में रखते हुए अनेक विद्वानों ने अपने विचार व्यक्त किये हैं उनमें कतिपय निम्नलिखित हैं -

1. आचार्य परशुराम चतुर्वेदी के अनुसार - “सन्त शब्द को (इसके अस् होने वाले मूल के कारण) हम उस व्यक्ति विशेष का बोधक कहेंगे जिसने सत् रूपी परमतत्त्व का अनुभव कर लिया है और जो इस प्रकार अपने साधारण व्यक्तित्व से उठकर उसके साथ तद्रूप हो गया है अथवा उसकी उपलब्धि के फलस्वरूप अखण्ड सत्य में पूर्णतः प्रतिष्ठित हो गया है।”¹

2. श्री वियोगी हरि ने लिखा है कि - “सत्य आचरण जिन्होंने अपने जीवन में पूरा किया, सत्य का चिन्तन किया, सत्य को वाणी पर उतारा, मन, वचन, कर्म से उसका आचरण किया और आचरण करने के बाद जो रसास्वादन मिला उसे सारे संसार में बिखेर देने के लिए जिनके मन में व्याकुलता होती है, जिन्हें लगता है कि उन्हें जो मधुर रस मिला, वह दूसरों को भी देते चले जायें वे ही सन्त हैं।”²

3. श्री वासुदेवशरण अग्रवाल के अनुसार- “सन्त वह है जो पृथ्वी पर निवास करते हुए दिव्य लोक का सन्देश भूतल पर लाता है, जो पक्षी के समान आकाश में उड़कर भी वृक्ष पर आकर विश्राम करता है, जो व्यष्टि के केन्द्र में ऊँचा उठकर समष्टि-जीवन के प्रति आस्थावान होता है, जो स्वार्थ को त्याग कर सामूहिक हित की बातें सोचता है।”³

4. डॉ. नरेन्द्र भानावत के अनुसार - “सामान्यतः जो सत्य पर चले हों वे सन्त, जो आत्मा का शाश्वत अमर सन्देश सुनाते हों वे सन्त, जिनका सत् अर्थात् अस्तित्व हमेशा बना रहे, जो समाज की अनिवार्य निधि हो वे सन्त हैं।”⁴

5. डॉ. पीताम्बरदत्त बड़धवाल - “सन्त अध्यात्म विद्या का व्यवहार सिद्ध स्वरूप है। अध्यात्मवादी तत्त्वचिंतक जिन महान सिद्धान्तों का अन्वेषण और निरूपण करते चले आये हैं, उनकी उसे स्वयं अपने में अनुभूति हुई होती है। उनका उसे शास्त्रीय वाचनिक ज्ञान न हो, दर्शन अवश्य होता है। वह अध्यात्म का व्याख्याता चाहे न हो, अध्यात्मचेता होता है। वह दृष्टा है। “दृष्टा” संत

1. सन्त साहित्य की भूमिका— आचार्य परशुराम चतुर्वेदी पृष्ठ 62

2. भूमिकान्त (साप्ताहिक पत्र इन्दौर) दिनांक 25 दिसम्बर 1961 पृष्ठ 1

में प्रकाशित श्री वियोगी हरि का लेख “सन्तों की परम्परा”

3. साहित्य सन्देश (सन्त साहित्य विशेषांक) डा. वासुदेवशरण अग्रवाल का लेख “सन्त” पृष्ठ 5

4. साहित्य के त्रिकोण— डॉ. नरेन्द्र भानावत पृष्ठ 133

एकमात्र - “संतत्व” को अपने में और अपने को एकमात्र “संतत्व” में देखता है इसलिए वह संत है।¹

6. धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी का विचार है कि सच्चा संत इस संसार में रहकर भी इसके विकारों से परे है।² वह जल में कमल के पते तथा जलपक्षी के समान है जो जल में रहकर भी भीगता नहीं है।³

7. डा. विनयमोहन के अनुसार - जो आत्मोन्नति सहित परमात्मा के मिलन भाव को साध्य मानकर लोकमंगल की कामना करता है वह सन्त है।⁴

इस प्रकार व्यापक अर्थ में किसी भी ईश्वरोन्मुख सज्जन पुरुष को सन्त कह सकते हैं।

कोश ग्रन्थों में भी इसके सही या उदात्त अर्थ को लेकर कभी कोई विवाद नहीं रहा। “सन्त” शब्द की व्युत्पत्तियाँ भी इसके उदात्त अर्थ की ओर ही संकेत करती हैं। सन्त शब्द की व्युत्पत्ति खोजने के लिए विद्वानों ने सत्, सन्, शान्त एवं अंग्रेजी के सेण्ट आदि शब्दों के प्रयोग एवं अर्थ विभिन्नता आदि की पर्याप्त समीक्षा की है।

आचार्य परशुराम चतुर्वेदी के अनुसार - “सन्त” शब्द हिन्दी भाषा के अन्तर्गत एक वचन में प्रयुक्त होता है किन्तु यह मूलतः संस्कृत “सन्” का बहुवचन है। “सन्” शब्द भी अस् - होना धातु से बने “सत्” का पुल्लिङ्ग रूप है, जो शतृप्रत्यय लगाकर प्रस्तुत किया जाता है और जिसका अर्थ केवल होने वाला व रहने वाला हो सकता है। इस प्रकार सन्त शब्द का मौलिक अर्थ शुद्ध अस्तित्व मात्र का ही बोधक है और इसका प्रयोग भी इसी कारण उस नित्यवस्तु या परमतत्त्व के लिए अपेक्षित होगा जिसका नाश नहीं होता, जो “सदा एक रस व अधिकृत रूप में विद्यमान” रहा करता है और जिसे सत्य के नाम से भी अभिहित किया जा सकता है।⁵

डॉ. पीताम्बरदत्त बड़ध्वाल के अनुसार सन्त शब्द की व्युत्पत्ति दो प्रकार से की जाती है। कुछ विद्वान इसको “शान्त” शब्द से व्युत्पन्न मानते हैं और

1. योग प्रवाह — डॉ. पीताम्बरदत्त बड़ध्वाल पृष्ठ 158

2. संत कवि दरिया : एक अनुशीलन डॉ. धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी पृष्ठ 150

3. वही पृष्ठ 150

4. हिन्दी को मराठी सन्तों की देन आचार्य विनयमोहन पृष्ठ 56

5. आचार्य परशुराम चतुर्वेदी — उत्तरी भारत की सन्त परम्परा पृष्ठ 4

कुछ इसको “संत” शब्द का बहुवचन रूप (सन्तः) मानते हैं जो अब एकवचन में प्रयुक्त होने लगा है।¹

इसी प्रसंग में वेददर्शनाचार्य श्री मण्डलेश्वर श्री स्वामी गणेश्वरानन्द महाराज द्वारा समीक्षित संत शब्द की चार व्युत्पत्तियों को² तथा डा. राजदेवसिंह द्वारा प्रदत्त व्युत्पत्तियों को भी देखा जा सकता है।³

उपर्युक्त सभी सन्दर्भों एवं उद्धरणों से स्पष्ट होता है कि वैदिक युग से लेकर मध्ययुग तक के साहित्य में एक ओर सन्त शब्द का प्रयोग परमतत्त्व के साधक के अर्थ में हुआ है और दूसरी ओर साधु, सत्पुरुष और भक्त के अर्थ में। एक अर्थ में वह ब्रह्म है तथा दूसरे अर्थ में वह ब्रह्म का स्वरूप है। आधुनिक साहित्य में सन्त शब्द अस्तित्व वाचक होकर जहाँ एक ओर सत्य की तरफ संकेत करता है वहाँ दूसरी ओर साधुता का भी बोध कराता है। इस प्रकार जहाँ कबीर आदि निर्गुण सन्त इसके अन्तर्गत समाहित होते हैं वहाँ सूरदास, तुलसीदास आदि सगुणोपासक भक्त भी इसी अर्थ को चरितार्थ करते हैं। निर्गुण सन्तों और सगुण भक्तों के साथ-साथ वस्तुतः यह शब्द उन सभी आध्यात्मिक रुचि एवं प्रवृत्ति वाले साधनशील व्यक्तियों का बोध कराता है। जिनकी एक कड़ी भूधरदास भी हैं। तत्त्वतः “सन्त” और “भक्त” में कोई अन्तर नहीं है। भक्त भगवान की धारणा करता है तथा सन्त “सत्” की। दोनों ही पारमार्थिक सत्य या तत्त्व से सम्बन्धित हैं। हिन्दी आलोचक निर्गुणोपासकों को सन्त तथा सगुणोपासकों को उनसे पृथक् करने के लिए भक्त कहते आये हैं। निश्चय ही यह अन्तर व्यवहारिक है, सैद्धान्तिक नहीं।

आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं के समस्त भक्ति साहित्य में सन्त और भक्त शब्द समानार्थक या एकार्थक रूप में प्रयुक्त हुए हैं जबकि हिन्दी आलोचना में सगुण ब्रह्म में आस्था रखने वालों को भक्त कहा जाता है और निर्गुण ब्रह्म में आस्था रखने वालों को सन्त। आधुनिक हिन्दी समीक्षकों के मत से कबीर आदि सन्त थे। सूर, तुलसी, आदि भक्त थे। भक्तों के विषय में नितान्त प्रामाणिक माने जाने वाले “भक्तमाल” में भक्त और सन्त में कोई भेद नहीं किया गया है। वहाँ कबीर भी भक्त हैं और तुलसी भी। जबकि आलोचना में आजकल तुलसी को सन्त कहना या कबीर को भक्त कहना अज्ञान सूचक माना जाता है।

1. योग प्रवाह— डॉ. पीताम्बरदत्त बड़धवाल पृष्ठ 158

2. सन्त दर्शन — डॉ. त्रिलोकनारायण दीक्षित पृष्ठ 3

3. शब्द और अर्थ: सन्त साहित्य के सन्दर्भ में - डॉ. राजदेव सिंह प्रथम संस्करण पृष्ठ 51-57

सन्त शब्द : रूढ़, प्रचलित या संकुचित अर्थ

सन्त शब्द आजकल अपनी पूर्ववर्ती उदात्त अर्थ स्थिति से विच्छिन्न होकर ऐसे ज्ञानी निर्गुण सन्तों के अर्थ को द्योतित करता है; जो नीची जातियों में उत्पन्न हुए हैं, ब्राह्मण, वेद और सगुण ब्रह्म में आस्था नहीं रखते हैं, जाति-पाँति के बन्धनों को अस्वीकार करते हैं, आदि सन्त कबीर या कबीर जैसे किसी अन्य सन्त को अपना गुरु मानते हैं तथा उनके मत या सम्प्रदाय, रीति-नीति, आचार-विचार, साधना एवं साधना के लक्ष्यों की सीधी परम्परा से सम्बद्ध हैं।

उपर्युक्त रूढ़ और प्रचलित अर्थ की पुष्टि गोस्वामी तुलसीदास के रामचरितमानस में वर्णित सन्तों के मौलिक अश्रुतपूर्व एवं साम्प्रदायिक से लगने वाले उन लक्षणों से भी होती है जिनका उल्लेख तुलसीदास ने उत्तरकाण्ड के “कलि महिमा”¹ वाले प्रसंग में की है।

गोस्वामी तुलसीदास के अनुसार ये तथाकथित सन्त तेली, कुम्हार, चाण्डाल, भील, कोल, कलवार आदि अधमवर्गों में उत्पन्न होने वाले थे।² जो पुराण और वेद की प्रामाणिकता में विश्वास नहीं करते हैं।³ ब्राह्मण के प्रति जिनमें कोई श्रद्धा नहीं थी, जो अनेक जप-तप और व्रतों का अनुष्ठान करते थे।⁴ व्यासगद्दी पर बैठकर धर्मोपदेश देते थे, ब्राह्मणों से विवाद करते थे और स्वयं को ब्राह्मण कहते थे।⁵ उन पर अपने ज्ञान का रोब डालकर उन्हें ज्ञान का उपदेश देते थे, जनेऊ पहनकर कुदान लेते थे।⁶ और ब्राह्मणों से अपनी पूजा करवाते थे।⁷ शिव

1. रामचरितमानस (गीताप्रेस गोरखपुर उत्तरकाण्ड दोहा 97-110 तक

2. जे बरनाधम तेलि कुम्हार । स्वपच किरात कोल कलवारा ॥ वही दोहा 100 चौपाई 3

3. नहिं मान पुरान न बेदहिं जो । हरि सेवक सन्त सही कलि सो ॥

वही दोहा 101 चौपाई 4

4. सुद्र करहिं जप तप व्रत जाना । बैठि बरासन कहहिं पुराना ॥

वही दोहा 100 चौपाई 5

5. बादहिं सुद्र द्विजन्ह सन हम तुम्हते कछु घाटी ।

जानई ब्रह्म सो विप्रवर आँखि देखावहिं डाँटि ॥ वही दोहा 99 ख

6. सुद्र द्विजन्ह उपदेसहिं ग्याना । मेलि जनेऊ लेहिं कुदाना ॥

मानस वही दोहा 99 चौपाई 1

7. ते विप्रन्ह सन आपु पुजावहिं । उभयलोक निह हाथ नसावहिं ॥

वही दोहा 100 चौपाई 4

के प्रति इनमें आस्था थी और पौराणिक देवताओं¹ तथा विष्णु के प्रति द्रोह भाव था।² इन मिथ्या दंभ करने वालों को सभी लोग सन्त कहते हैं।³

तुलसीदास सन्त-लक्षण में ब्राह्मण के प्रति आस्था एवं पूज्यबुद्धि⁴ तथा दाशरथि राम की परब्रह्मता तथा रामकथाश्रवण⁵ आदि को आवश्यक मानते हैं। वे ब्राह्मणश्रेष्ठता, दाशरथि राम की भगवत्ता तथा वेद-पुराण की महत्ता न मानने वालों के लिए जिन-जिन विशेषणों का प्रयोग करते हैं; वे सब विशेषण मौलिक, अश्रुतपूर्व, साम्प्रदायिक तथा द्वेषगर्भित प्रतीत होते हैं।⁶

कुछ प्रश्न : कुछ उत्तर

सन्त शब्द के अर्थ निर्धारण के सम्बन्ध में पहला प्रश्न यह है कि कबीर आदि निर्गुणोपासकों के लिए ही “सन्त” शब्द का प्रयोग क्यों होने लगा ? “सन्त”⁷ शब्द इतना रूढ़ और साम्प्रदायिक कैसे बन गया ?

इस प्रश्न के उत्तर में अनेक संभावनाएँ की जा सकती हैं, अनेक अनुमान लगाये जा सकते हैं - (क) “सन्त” पद के उपर्युक्त संकुचित एवं रूढ़ अर्थ निर्धारण में तुलसीदास द्वारा मान्य नए सन्त लक्षणों से पर्याप्त सहायता मिलने की सम्भावना है।

(ख) “सन्त” शब्द का निर्गुणोपासक कबीर आदि के लिए रूढ़ एवं साम्प्रदायिक अर्थ बीसवीं शताब्दी में हिन्दी आलोचना एवं अनुसंधान की प्रगति के साथ हुआ है।⁸ आधुनिक हिन्दी आलोचना में सन्त शब्द की पारिभाषिक मर्यादा बिल्कुल नई है।⁹

1. सिव सेवक मन क्रम अरु बानी । आनदेव निन्दक अधिमानी ॥

रामचरितमानस (गीताप्रेस गोरखपुर) उत्तराखण्ड दोहा 97 चौपाई 1

2. मैं छल मल संकुल मति नीच जाति बस मोह ।

हरिजन द्विज देखे जरदं करउ भिन्नु कर द्रोह ॥ वही दोहा 105 क

3. मिथ्यारंभ दंभ रत जोई । ता कहूँ सन्त कहइ सब कोई ॥ वही दोहा 98 चौपाई 2

4. सुनि मुनि संतन के गुन कहऊँ । जप तप व्रत दम संजम नेमा ॥

गुरु गोविन्द विप्र पद प्रेमा ॥ मानस अरण्यकाण्ड दोहा 46 चौपाई 2

5. राम कथा ससि किरन समाना । सन्त चकोर करहिं जेहि पाना ॥

वही बालकाण्ड 47 चौपाई 4

6. वही बालकाण्ड दोहा 47

7. सन्तों की सहज साधना— डॉ. रामदेवसिंह पृष्ठ 33

8. वही पृष्ठ 37

9. वही पृष्ठ 37

(ग) इस सम्बन्ध में यह भी अनुमान लगाय है कि - “सन्त शब्द का प्रयोग किसी समय विशेष रूप से केवल उन भक्तों के लिए ही होता था, जो विट्ठल या वारकरी सम्प्रदाय के प्रधान प्रचारक थे और जिनकी साधना निर्गुण भक्ति के आधार पर चलती थी। सन्त शब्द इनके लिए प्रायः रूढ़ सा हो गया था और कदाचित् अनेक बातों में उन्हीं के समान होने के कारण उत्तरी भारत के कबीर साहब तथा अन्य ऐसे लोगों का भी वही नामकरण हो गया।”¹

दूसरा प्रश्न, सन्त को निर्गुण उपासक तथा भक्त को सगुण उपासक मानकर दोनों में अन्तर करने की वृत्ति कैसे विकसित हुई ?

इसका उत्तर यह है कि प्रारम्भ में ईसाई सन्तों और भारतीय भक्तों में अन्तर बताने के लिए सन्त और भक्त में भेद किया गया, न कि सगुण को भक्त और निर्गुण को सन्त बताने के लिए; क्योंकि भक्तिशास्त्र के ग्रन्थों में निर्गुण ब्रह्म और सगुण ब्रह्म दोनों को ही भक्ति का विषय माना गया है।²

भारतीय भक्तों और ईसाई सन्तों के अन्तर को लेकर चलने वाले विवाद के समय ही कबीर आदि सन्तों का साहित्य प्रकाश में आया। कबीर आदि सन्तों के साहित्य की निर्गुण सत्ता के प्रति प्रेम निवेदन करने वाले ईसाई सन्तों से पर्याप्त समानताएँ हैं, इसीलिए स्वभावतः तुलसी आदि सगुणभक्तों से ईसाई सन्तों को जिन आधारों पर भिन्न सिद्ध किया गया था; उन्हीं आधारों पर सगुण उपासक तुलसी आदि और निर्गुण उपासक कबीर आदि को भी परस्पर भिन्न सिद्ध कर दिया गया।³

(ख) सन्त साहित्य की विशेषताएँ या मुख्य प्रवृत्तियाँ

किसी भी साहित्य की विशेषताएँ अनुभूति अर्थात् भावपक्ष और अभिव्यक्ति अर्थात् कलापक्ष की दृष्टि से विवेच्य होती हैं। सन्त साहित्य की भावपक्ष और कलापक्ष सम्बन्धी अनेक विशेषताएँ हैं। विभिन्न विद्वानों ने सन्त साहित्य की विविध विशेषताओं की ओर ध्यान दिलाकर उनकी विवेचना की है।

1. उत्तरी भारत की सन्त परम्परा — परशुराम चतुर्वेदी प्रथम संस्करण पृष्ठ 7

2. भक्ति रसामृत सिन्धु 1.12 भारतीय संस्कृति और साधना — म. प्र. —

पं. गोपीनाथ कविराज एवं निर्गुण भक्ति : स्वरूप एवं परम्परा — डॉ. राजदेव सिंह

3. सन्तों की सहज साधना : (प्रथम खण्ड संत) डॉ. राजदेव सिंह पृष्ठ 40

डा. पवनकुमार जैन¹ ने सन्त साहित्य की जिन भावपक्षीय विशेषताओं की विवेचना की है वे हैं -

1. लोकपरक अभिव्यक्ति	2. धार्मिक चेतना
3. विचार स्वातन्त्र्य	4. व्यक्तिगत जीवन में पवित्रता
5. ज्ञान की अपेक्षा अनुभव को महत्त्व	
6. प्रेमपरक लोकाश्रित साधना	
7. गुरु का महत्त्व	8. ध्यान एवं समाधि
9. परमतत्त्व, माया, जीवात्मा आदि का विवेचन	
10. अहिंसा	11. सामाजिकता
12. सत्यान्वेषण	

डॉ. मुक्तेश्वर तिवारी² ने सन्त कवियों की निम्नलिखित विशेषताओं पर प्रकाश डाला है -

1. वर्ग और सम्प्रदाय विहीनता
2. सन्तों का ब्रह्मवादी होना
3. सन्तों के ज्ञान में अनुभूति की प्रधानता
4. नाम स्मरण सन्त साधना की प्रमुखता
5. सन्त कवियों की सर्वग्राही समन्वयवादी प्रवृत्ति
6. सन्त कवियों में रचना शैली की अपेक्षा भावों की प्रधानता
7. सन्त कवियों द्वारा मुक्तक या स्वान्तः सुखाय रचना
8. सन्त कवियों के उपास्य निर्गुण और सगुण से परे अनिर्वचनीय तत्त्व
9. सन्तों की माया का मोहिनी और विकराल - दोनों रूप।

1. महावीर वाणी के आलोक में हिन्दी का सन्त काव्य— डॉ. पवनकुमार जैन पृष्ठ 86 से 91

2. मध्ययुगीन सूफी और सन्त साहित्य— डॉ. मुक्तेश्वर तिवारी पृष्ठ 211 से 214

डॉ. शिवकुमार ¹ ने सन्त काव्य की निम्नांकित विशेषताओं का उल्लेख किया है -

1. निर्गुण ईश्वर में विश्वास
2. बहुदेववाद एवं अवतारवाद का विरोध
3. सद्गुरु का महत्त्व
4. जाति पाँति के भेद-भाव का विरोध
5. रूढ़ियों एवं आडम्बरों का विरोध
6. रहस्यवाद
7. भजन एवं नामस्मरण
8. श्रृंगार वर्णन एवं विरह की मार्मिक उन्नतियाँ
9. लोक संग्रह की भावना
10. नारी के प्रति दृष्टिकोण (नारी माया का प्रतीक)
11. माया से सावधानता
12. गेय मुक्तक शैली का प्रयोग।

सन्त साहित्य अपने आप में अति विशाल एवं व्यापक है इसलिए विभिन्न विद्वानों ने उसकी पृथक्-पृथक् विशेषताएँ बतलायी हैं। उनमें कुछ प्रमुख विषयगत, भावगत, एवं भाषा-शैलीगत विशेषताएँ या मुख्य प्रवृत्तियाँ विवेचन सहित निम्नलिखित हैं -

1. निर्गुण ब्रह्म या निर्गुण राम में विश्वास - इस क्षणभंगुर जीवन में जो परमधेय है वह परमतत्त्व, परमब्रह्म परमात्मा है। वेद पुराण आदि सभी उसके विषय में बतलाते हैं, परन्तु फिर भी वह अनिर्वचनीय या अकथनीय ही है। वह परमतत्त्व निर्गुण, निराकार, अनुपम, त्रिगुणातीत, भावाभावविनिर्मुक्त, द्वैताद्वैतविलक्षण, अलख, अलभ, अनाम एवं अरूप है। कबीर के अनुसार वह तत्त्व पूर्ण सत्य है उसे जान लेने का दावा न-वे स्वयं करते हैं और दूसरों का दावा स्वीकार करते हैं। वह जैसा कहा जाता है, वैसा नहीं है, वह तो जैसा है वैसा ही है।

(क) जस तू तस ताहि कोई न जान, लोग कहे सब आनहि आन।

(ख) जस कहिये तस होत नहि, जस है तैसा होई।

(ग) जहुवां प्रगटि बजावाहु जैसा, जस अनमै कहिया तिन तैसा।

- (घ) कहिये को सोभा नहीं, देख्या ही परवान ।
 (ङ) अविगत अकल अनुपम देख्या कहता कहया न जाई ।
 सैन करै मन रहसै, गुगे जानि मिठाई ॥
 अविगत की गति क्या कहूँ, जसकर गांव न नांव ।
 गुन विहुन का पेछिए, काकर धरिये नांव ॥

कबीर ग्रन्थावली के उपर्युक्त सभी उद्धरणों से वह परमतत्त्व निर्गुण, निराकार, अनुपम, अनिर्वचनीय प्रकट होता है, अन्य पदों में वह सगुण तथा विराट रूप में भी कथित है, जहाँ कबीर उसे सृष्टिकर्ता, कुम्भकार की तरह भी कहते हैं वहाँ ब्रह्मा कोटि महादेव, कोटि सूर्य चन्द्र आदि उसकी शोभा बढ़ाते हैं परन्तु अन्ततः वह तत्त्व निरपेक्ष एवं अनिर्वचनीय ही है। सन्तों ने जिस त्रिगुणातीत निर्गुण निराकार परमब्रह्म को स्वीकार किया है, उसी का नाम “राम” है। वह “राम” दशरथ का पुत्र नहीं है। कबीर व अन्य सन्तों के अनुसार दशरथ के बेटे “राम” का बखान करने वाला राम नाम से असली मर्म से परिचित नहीं है-

दशरथ सुत तिहुँलोक बखाना । राम नाम को परम है जाना ॥

सन्तों के मत से इस अविगत की गति लक्ष नहीं की जा सकती। चारों वेद, सम्पूर्ण स्मृतियाँ और पुराण व नौ व्याकरण कोई उस निर्गुण ब्रह्म का मर्म नहीं समझ सका -

निर्गुन राम जपहुँ रे भाई । अविगत की गति लखी न जाई ॥
 चारि वेद और सुप्रित पुराणा । नौ व्याकरानां मरम न जाना ॥¹

उस राम का कोई रूप नहीं है, रंग तथा देह नहीं है वह तो निरंजन है -

“रूप वरण वाके कछु नाहीं, सहजो रंग न देह ।”²

उसका कोई नाम-निशान नहीं है। भूख-प्यास का गुण उसमें नहीं है। वह घट-घट में समाया हुआ है पर उसका मर्म कोई नहीं जानता। वह समस्त वेद और भेद से विवर्जित है, पाप और पुण्य से अतीत है, ज्ञान और ध्यान का अविषय है, स्थूल और सूक्ष्म से परे है, भेष और भीख से बाहर है -

राम के नाई नीसान वागा, ताका मरम न जानै कोई ।
 भूख त्रिखा गुण वाकै नाहि, घट घट अंतरि सोई ॥

वेद बिबर्जित भेद बिबर्जित, बिबर्जित पाप रु पुन्य ।
 ग्यान बिबर्जित ध्यान बिबर्जित, बिबर्जित अस्थूल सुन्य ॥
 भेष बिबर्जित भीख बिबर्जित, बिबर्जित इयंभक रूप ।
 कहै कबीर तिहुँ लोक बिबर्जित, ऐसा तत्त अनूप ॥¹

उसमें न समुद्र है न पर्वत, न धरती है न आकाश, न सूर्य है न चन्द्र, न पानी है, न पवन, न नाद है न बिन्दु, न काल है न काया, न जप है न तप । जोग, ध्यान और पूजा भी वह नहीं है । वह शिव शक्ति और अन्य कोई देवता भी नहीं है ।

वह चार वेद और व्याकरण भी नहीं है ।² वह अगुण और सगुण दोनों से ऊपर है, अजर और अमर दोनों से अतीत है, अरूप और अवर्ण दोनों से परे है, पिण्ड और ब्रह्माण्ड दोनों से अगम्य है ।³ वह “है” और “नहीं” दोनों से रहित है ।⁴ उसे द्वैत-अद्वैत, भाव-अभाव, आदि के पक्षों में बाँटकर नहीं देखा जा सकता है । उस पूर्ण को देखने के लिए पूर्ण दृष्टि की जरूरत है -

खंड-खंड करि ब्रह्म को परब-परब लीया बांटी ।

दादू पूरण ब्रह्म तजि बंधे मरम की गांठि ॥⁵

इस प्रकार सन्तों का सदसद्विलक्षण, भावाभावविनिर्मुक्त, अगम, अलख, निरजंन, निर्गुण एकमात्र सत्ता वाला राम अनाम होने पर भी नाममय है । यह ठीक है कि वह अरूप है लेकिन यह भी ठीक है कि सारे रूप एकमात्र उसी के हैं । सन्तों का राम निर्गुण है लेकिन गुणमय भी वही है । संसार में जहाँ भी कोई गुण दिखता है, कोई सत्य, कोई शिव, कोई सुन्दर अपनी आभा से चमत्कृत करता है वह आभा उसी राम की होती है । सहजोबाई के शब्दों में सहज ब्रह्म का स्वरूप द्रष्टव्य है -

नाम नहीं औ नाम सब, रूप नहीं सब रूप ।

सहजो सब कहु ब्रह्म है, हरि प्रगट हरि गुण ॥

निराकार आकार सब, निर्गुन और गुनवन्त ।

हैं नाहीं स्र रहित है, सहजो यों भगवन्त ॥⁶

1. कबीर ग्रन्थावली दोहा पद 220

3. वही पद 180

5. बानी (ज्ञानसागर) पृष्ठ 110

2. वही पद 219

4. सन्तबानी संग्रह भाग 1 पृष्ठ 165

6. सन्तबानी संग्रह भाग 1 पृष्ठ 165

रैदास की दृष्टि में राम के अतिरिक्त शेष सब कुछ असहज है। वे एकमात्र राम को सार वस्तु तथा सहज मानते हैं।¹

सन्तों के निर्गुण ब्रह्म के सम्बन्ध में डा. राजदेवसिंह का यह कथन भी माननीय है - “सन्तों के निर्गुण राम को शंकर अद्वैत के निर्गुण ब्रह्म का समशील मानना ठीक नहीं है। ऐसा मानकर जब भी सन्तों के ब्रह्म निरूपण की परीक्षा की गई तो उसमें भयंकर असंगतियाँ दिखाई पड़ती हैं। आचार्य शंकर के निर्गुण ब्रह्म को सामने रखकर देखने से लगता है कि कबीरदास कभी तो अद्वैतवाद की ओर झुकते दिखाई देते हैं और कभी एकेश्वरवाद की ओर, कभी वे पौराणिक सगुणभाव से भगवान को पुकारते हैं और कभी निर्गुणभाव से, असल में उनका कोई स्थिर तात्त्विक सिद्धान्त नहीं था।”²

सन्तों के अनुसार इस अनिर्वचनीय तत्त्व की अपने अन्तस्तल में प्राप्ति के लिए कुण्डलिनी शक्ति के जागरण की आवश्यकता पड़ती है। योग विज्ञान के अनुसार हमारे मेरूदण्ड में विभिन्न ग्रन्थियों के रूप में नादों से ऊपर तक छह चक्र पाये जाते हैं। वे क्रमशः मूलाधार, स्वामिष्ठान, मणिपूरक, अनाहत, विशुद्ध और आज हैं। इनका रूप भिन्न-भिन्न संख्याओं के दलों वाले कमल के पुष्पों की भाँति है। सर्वोपरि मस्तिष्क स्थित सहस्रार चक्र (सहस्रदल) कमल है। मूलाधार चक्र के नीचे सर्पिणीस्वरूपा कुण्डलिनी शक्ति का निवास है। प्राणायाम की साधना से वह शक्ति प्रबुद्ध होकर क्रमशः विभिन्न चक्रों को पार कर सहस्रार चक्र में जाकर लीन हो जाती है हमारी समस्त शक्तियाँ केन्द्रित होकर एक दिव्य ज्योति के आनन्द में मग्न हो जाती है। यही ब्रह्म साक्षात्कार है। कबीर ने कहा है - “प्राणायाम द्वारा पवन को उलटकर षट्चक्रों को बेधते हुए सुषुम्ना को भर दिया जिस कारण सूर्य और चन्द्र का संयोग होते ही सद्गुरु के कथनानुसार ब्रह्माग्नि प्रज्वलित हो गयी और सारी क्रमनाएँ, वासनाएँ, अहंकार भस्म हो गए।³ जब सूर्य और चन्द्रमा का संयोग कर दिया तब अनाहत शब्द होने लगा और जब अनाहत बजने लगा, तब स्वामी के साथ विराजने लगा। जब चिन्ता निश्चल हो गयी तब रामरसायन पीने को मिल गया और जब रामरसायन पिया तब काल का अन्त हो गया, अमरत्व की प्राप्ति हो गई।”⁴

1. रैदासबानी, पद 21 पृष्ठ 11 2. सन्तों की सहज साधना— डा. राजदेव सिंह पृष्ठ 174

3. कबीर ग्रन्थावली के पद, (अर्थ) उत्तरी भारत की संत परम्परा श्री परशुराम चतुर्वेदी से उद्धृत पृष्ठ 203

4. भक्तिकाव्य में रहस्यवाद डॉ. रामनारायण पाण्डेय पृष्ठ 221, 22 तथा भारतीय संस्कृति और साधना म. म. गोपीनाथ कविराज पृष्ठ 330

2. **राम नाम का महत्त्व** - सन्तों द्वारा प्रतिपादित अनिर्वचनीय परमतत्त्व नाम जप द्वारा प्राप्त किया जा सकता । शब्द ब्रह्म भी है और ब्रह्म प्राप्ति का साधन भी है । अतएव सन्तों ने व्यक्तिगत जीवन में नाम-जप किया है तथा समाज के लिए नाम स्मरण की महत्ता भी बतलायी है । नाम जप का महत्त्व निर्विवाद है ।

स्मृतियों, पुराणों तथा बौद्ध, शैव, वैष्णव, शाक्त आदि तन्त्रों में नाम जप का महत्त्व एवं उसके बाह्य-आन्तरिक, स्थूल-सूक्ष्म आदि विविध प्रकारों का पर्याप्त मात्रा में विवेचन उपलब्ध होता है । प्राचीन साहित्य में भी नाम-स्मरण का महत्त्व बतलाया गया है । श्री मद्भागवत् गीता में कहा है -

अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरन्ति नित्यशः ।

तस्याहं सुलभः पार्थ नित्यमुक्तस्य योगिनः ॥ ¹

नारद पुराण का कथन है कि -

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामेव केवलम् ।

कलौ नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा ॥ ²

कबीर आदि नाम को मूल तथा अन्य मन्त्रों को डाल बताते हुए कहते हैं -

आदि नाम सब मूल है, और मन्त्र सब डार ।

कहे कबीर निज नम बिनु, बूडि मूआ संसार ॥ ³

नानक के अनुसार राम नाम से ही उद्धार सम्भव है अतः इसका नित्य भजन करना चाहिए -

“कह नानक भजु राम नाम नित आते होत उधार” ⁴

सन्त चरनदास राम नाम को जीवन के प्रत्येक कार्य-कलाप में समाविष्ट करते हुए कहते हैं -

नामहिं ले जल पीजिए, नामहिं लेकर खाह ।

नामहिं लेकर बैठिए, नामहिं ले चल राह ॥ ⁵

सन्त गरीबदास के अनुसार नाम-दीप ही अलक्ष्य को लक्षित करा सकता है-

अगम अनाहद भूमि है, जहाँ नाम का दीप ।

एक पलक बिछुरै नहीं, रहता नैनो बीच ॥ ⁶

1. गीता 8/14

2. नारदपुराण

3. संतबानी संग्रह, भाग 1

4. संतबानी संग्रह, भाग 2 पृष्ठ 47 5. संतबानी संग्रह, भाग 1 6. संतबानी संग्रह, भाग 1

सहजोबाई का कथन है कि नाम-जप से श्रेष्ठ साधन भवसागर संतरण के लिए अन्य कोई नहीं है -

सहजो भवसागर बहै, तिमिर बरस घनघोर ।

तामें नाम जहाज है, पार उतारै तोर ॥¹

नाम-जप के सम्बन्ध में डॉ. राजदेवसिंह का यह कथन अति माननीय है -

“नाम जप के सम्बन्ध में वैदिक-अवैदिक, सगुण-निर्गुण, भारतीय-अभारतीय सभी परम्पराओं में पर्याप्त आस्था बुद्धि मिलती है और संसार के सभी सन्तों, भक्तों और रहस्यवादियों ने इस नाम जप को निःश्रेयस प्राप्ति का अव्यर्थ साधन माना है।”²

सन्तों ने जिस निर्गुण राम की उपासना और राम नाम के जप का बहुशः व्याख्यान किया है वह उनके निर्गुण-सगुण सम्बन्धी अविवेक का परिचायक न होकर उनकी नाम के प्रति एकान्त निष्ठा का परिचायक है। वस्तुतः उनका सदसद्विलक्षण, भावाभावविमुक्त, निर्गुण ब्रह्म ईश्वराद्वयवाद के अद्वैत ब्रह्म की तरह स्वतन्त्र है। शैव मत और सन्त मत की यह एक बड़ी विशेषता है कि वह न शुष्क ज्ञानमार्ग है और न ज्ञानहीन भक्तिमार्ग। उसमें ज्ञान और भक्ति दोनों का सामंजस्य है। इनकी भक्ति अज्ञानमूलक द्वैतभाव से उत्पन्न नहीं है। वस्तुतः वह परिस्फुट अद्वैत की अवस्था है और एक हिसाब से यह परिस्फुट द्वैत की अवस्था भी है परन्तु यह अलौकिक द्वैत है इसीलिए यहाँ एक साथ भक्ति और ज्ञान का, चित् और आनन्द का समावेश दिखाई पड़ता है।

3. आत्मा - सन्तों ने जीव या आत्मा को ब्रह्म का अंश माना है। उसे खोजने के लिए कहीं जाने की आवश्यकता नहीं है। वह घट-घट व्यापी है। वह साधक की आत्मा में ही समाया हुआ है। वह अजर है, अमर है, अनादि अनंत है, अविनश्वर है। उससे ही यह जगत् भासता है। उसी के आलोक में ये सारी प्रक्रियाएँ होती हैं। उसके चले जाने पर शरीर में प्राण नहीं रहते। वही ब्रह्मस्वरूप है। उसी की खोज वांछनीय है। उसके श्रेष्ठत्व एवं अमरत्व का ज्ञान साधक को अपनी ओर आकर्षित करता है, इसीलिए साधक इसे जानने के लिए उन्मुख हो जाता है। इस सम्बन्ध में कबीर का कथन है -

1. संतबानी संग्रह, भाग 1

2. संतों की सहज साधना : डॉ. राजदेव सिंह

ज्यों तिल माहीं तेल है, ज्यों चकमक में आग ।
 तेरा साईं तुझ में, जागि सकै तो जाग ॥
 सब घट मेरा साइथा, सूनी सेज न कोय ।
 बलिहारी वा घाट की, जा घट परघट होय ॥

सन्त मलूकदास कहते हैं -

नाहि आतग जगै, मरे । काहु काल न धूँ, शरी ॥
 जैसे घन भठ नासतें नाहि नसैं आकास ।
 तैसे देहर के नसे, नहि कछु ताकों आस ॥

सन्त सुन्दरदास जीव को ब्रह्म का अंश मानकर उसे अविनाशी बतलाते हैं-
 ना वह उपजै बीनसै, ना कबहु भरमाय ।
 अंश ब्रह्म का होइ रहे, ना आवै न जाय ॥

पुनः कबीर का यह कथन भी माननीय है -

जल में कुम्भ, कुम्भ में जल है, बाहर भीतर पानी ।
 फूट्य कुम्भ, जल जलहि समाना, यहु तत कह्यौ गियानी ॥

4. भक्ति एवं प्रेम - सन्त मत के अनुसार भक्ति आडम्बर विहीन होती है ; इसीलिए सन्त काव्य में नवधाभक्ति का कर्मकाण्ड सम्मत एवं परम्परा समर्थित रूप नहीं मिलता । महर्षि शाण्डिल्य के अनुसार "सा परानुरक्तिरीश्वरे" एवं देवर्षि नारद के अनुसार "सात्वस्मिन् प्रेमस्वरूपा" अर्थात् परमेश्वर में अतिशय प्रेमस्वरूपा भावना ही भक्ति है । भक्ति तो भक्ति ही है चाहे वह सगुण की हो या निर्गुण की । भक्तिमार्ग ज्ञान एवं योगमार्ग की अपेक्षा अत्यन्त सरल, सरस एवं हितकारक है । इस मार्ग में इन्द्रियों के दमन तथा मन के शमन करने की आवश्यकता नहीं, अपितु मात्र मन की सकल प्रवृत्तियों को अपने आराध्य में केन्द्रित कर देना है । यह मार्ग सर्वसाधारण के लिए भी सुग्राह्य है । सन्तों ने भक्ति की श्रेष्ठता अनेक प्रकार से प्रतिपादित की है ।

सन्त दादूदयाल भक्ति के बिना जीवन को निरर्थक मानते हुए कहते हैं कि-

"दादू हरि की भगति बिना धिग जीवन कलि माहि"

सन्त पलदूदास भगवान के दरबार में एक मात्र भक्ति को ही श्रेष्ठ बतलाते हैं -

"साहिब के दरबार में, केवल भक्ति विचार"

सन्त गरीबदास कहते हैं कि बिना भक्ति के मन की वासनाएँ एवं अनेक प्रकार के सन्देह नहीं मिटते हैं -

बिना भगति क्या होत है, कासी करखट लेह ।

फिटे नही मन वासना, बहु विधि भरम संदेह ॥

सन्तों के अनुसार परमतत्त्व को खोजने के लिए बाहर के किसी आडम्बर, पूजा-पाठ, मन्दिर मूर्ति आदि की कोई आवश्यकता नहीं है। अन्तरतम के चंचल तत्त्वों को स्थिर करने से मोक्ष जैसे सर्वश्रेष्ठ सिद्धि भी प्राप्त हो जाती है। सन्तों का भक्ति योग इसी पृष्ठभूमि में आया है। अपने पूर्ववर्ती साधकों की तरह सन्तों ने भी बाह्याडम्बर का तिरस्कार किया और अन्तरतम में उस परमतत्त्व को खोजने का प्रयास किया। जहाँ पूर्ववर्ती साधकों ने सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण प्रेमतत्त्व की उपेक्षा की, वहाँ कबीर, रैदास, नानक, दादू आदि सन्तों ने इस प्रेम तत्त्व पर सबसे अधिक बल दिया।

प्रेम बराबर जोग ना। प्रेम बराबर ज्ञान।

प्रेम भक्ति बिन साधिवो। सब ही थोथा ज्ञान ॥

सन्तों द्वारा इस प्रेम तत्त्व को शुद्ध आचार एवं निर्विषय चित्त की स्वस्थ भूमिका देकर पूर्ववर्ती साधकों द्वारा आदृत सिद्धियों की उपेक्षा करते हुए अन्तरतम में स्थित परम प्रेममय भगवान के प्रति एकनिष्ठ प्रीति को महत्त्वपूर्ण माना गया। साथ ही इसके लिए सदाचार, ब्रह्मचर्य, विनीतभाव, समर्पण बुद्धि आदि को अनिवार्य बतलाया गया है।

सन्तों की दृष्टि में भक्ति ही सहज है और भक्ति की साधना ही एक मात्र सहज साधना है। भक्ति के सामने आठ सिद्धियाँ और नौ निधियाँ तो तुच्छ हैं ही, साथ ही मुक्ति भी हीन है -

चारि पदारथ मुक्ति बापुरी, अठसिधि नौ चेरी।

माया दासी ताके आगे, जहं भक्ति निरजैन तेरी ॥¹

भक्ति शास्त्रीय ग्रन्थों में भक्ति के सम्बन्ध में अनेक बातें कही गई हैं। भागवत के मत से धर्म, योग और ज्ञान के साधक जो कुछ कर्म, तप, ज्ञान, वैराग्य योग, दान, धर्म या अन्य श्रेय के साधनों द्वारा प्राप्त करते हैं, उसे भगवद्-भक्ति

के द्वारा अनायास ही प्राप्त कर लेते हैं।¹ भाव, भक्ति और विश्वास के बिना संशय का मूलेच्छेद नहीं होता, हरिभक्ति के बिना मुक्ति निर्मूल है -

भाव भगति विसवास बिनु, कहै न संशयमूल ।
कहै कबीर हरि भगति बिनु, मुक्ति नही ॐ मूल ॥²

भगवान से प्रेम हो जाने पर सभी संशय समाप्त हो जाते हैं तथा काम, क्रोधादि विकार पलायन कर जाते हैं -

मेरे संसे कोई नहीं, हरि सौं लागा हेत ।
काम क्रोध सौं जूझन, चौड़े मांड खेत ॥³

इस प्रेम भक्ति से ज्ञान का जन्म होता है और अज्ञान मिटता है -

प्रेम भक्ति सूं उपजै ज्ञाना । होय चांदना धिटै अज्ञाना ॥⁴

भक्ति परमप्रेमस्वरूपा है, गूँगे के गुड़ की तरह अनिर्वचनीय है। भवसागर में डूबने वाले का एक मात्र सहारा यह प्रेम ही है। इस प्रेम के बिना जीव की कोई गति नहीं है। प्रेम अकेले भक्त ही नहीं करता, अपितु भगवान भी प्रेम का ही भूखा है। भक्त भगवान को भूल जाय परन्तु भगवान भक्त को नहीं भूलते हैं-

जे हम छाड़ै राम को, तो राम न छाड़ै ।
दादू अमली अमल बै, मन क्यूं करि काढ़ै ॥⁵

सन्त अगर उस परमप्रिय के दरवाजे पर प्रेम के भिखारी बनकर हाजिर होते हैं, तो राम भी दूल्हा बनकर उनके घर पर आ विराजता है -

दुलहिन गावहु मंगलाचार ।
हम घरि आए राजा राम भरतार ॥⁶

दुनिया की प्रीति स्वार्थ की प्रीति होती है, लेकिन भक्त और भगवान की प्रीति बिना स्वार्थ की प्रीति होती है -

स्वारथ को सब कोई सगा, जग सगला ही जानि ।
बिन स्वारथ आदर करै, सो परि की प्रीति पिछानी ॥⁷

1. भागवत 11, 20 32-3

2. कबीर ग्रन्थावली तिवारी पृष्ठ 118, 1

3. कबीर ग्रन्थावली तिवारी पृष्ठ 180, 11

4. चरनबानी पृष्ठ 15

5. सन्त काव्य पृष्ठ 292 : 32

6. कबीर ग्रन्थावली तिवारी पद 5

7. कबीर ग्रन्थावली तिवारी पृष्ठ 159 : 42

सन्तों ने इस जगत को दुःखमय देखा था। उन्हें कोई भी शरीरधारी सुखी नहीं दिखा। सुखी तो एक सन्त है। उसके सुख का कारण भी प्रेम है। इस प्रेम से संशय का नाश होता है तथा प्रिय से मिलन होता है -

पंजर प्रेम प्रकासिया, आगी जोति अनन्त।

संशय खूटा सुख भया, मिला पियारा कन्त ॥¹

यह प्रेम भाग्यवानों को ही मिलता है। इस प्रेम के बिना भक्ति भी सच्ची नहीं होती -

भाग बिना नाहि पाइये, प्रेम प्रीति की भक्त।

बिना प्रेम नहिं भक्ति कछु, भक्ति भयों सब ज्वत् ॥²

प्रेम के बिना भक्ति निरर्थक और दंभमात्र रह जाती है -

प्रेम बिना जो भक्ति है, सो निज दंभ विचार।

उदर भरन के कारने, जनम गवायों सार ॥³

सन्तों की भक्ति एवं प्रेम के सम्बन्ध में अन्य अनेक बातें भी महत्वपूर्ण हैं। यथा - जब तक विषयों के प्रति आकर्षण बना रहता है वह प्रेमस्वरूपी भगवान् हृदय में नहीं आता और जब वह मन में बस जाता है तो चित्त विषयों से अलिप्त हो जाता है -

बिछै पियारी प्रीति सौं, तब हरि अंतरि नाहि।

जब अंतरि हरिजी बसै, तब विछिया सौं चित्त नाहि ॥⁴

भक्ति से विषयों का त्याग और विषयों के त्याग से भक्ति सम्भव होती है।⁵ सन्तों के अनुसार भक्ति शास्त्रचर्चा का विषय नहीं करनी या आचार का विषय है।⁶ सत्संग के बिना भाव उत्पन्न नहीं होता है और भाव के बिना भक्ति उत्पन्न नहीं होती।⁷ सन्त नाम जप को सबसे बड़ी साधना मानते हैं, लेकिन वे भाव को वैकल्पिक कभी नहीं मानते। भाव अगर न हो तो राम कहने से गति नहीं मिल सकती, उसी तरह जैसे खांड कहने से मुँह भीठा नहीं होता, आग कहने से पाँव नहीं जलता, जल कहने से प्यास नहीं बुझती, भोजन कहने से भूख नहीं मिटती और धन कहने से दारिद्र्य नहीं जाता। आदमी के साथ

1. कबीर ग्रन्थावली, तिवारी पृष्ठ 167 : 7

4. कबीर ग्रन्थावली तिवारी पृष्ठ 157 : 30

6. कबीर सन्त काव्य पृष्ठ 188 : 46

2 व 3. सन्त कबीर की साखी पृष्ठ 41

5. रैदास सन्तकाव्य, पृष्ठ 214 :

7. सन्त काव्य, पृष्ठ 223 : 25

तोता भी राम का नाम लेता है तो क्या वह मुक्त हो जाता है ? नहीं । अतः भक्ति के लिए भाव अनिवार्य है -

पंडित वाद बदै सो झूठा ।

राम कहे दुनिया गति पावै, खांड कहैं मुख पीठा ॥

सन्तों का हरि तब प्रसन्न होता है, जब उसे प्रीति के साथ भजा जाए । भूख के बिना जैसे अन्न का स्वाद नहीं मिलता; उसी तरह प्रीति के बिना भक्ति बेस्वाद होती है -

प्रीति सहित जे हरि भजैं, तब हरि होहि प्रसन्न ।

सुन्दर स्वाद न प्रीति बिनु, भूष बिना ज्यों अन्न ॥

सन्तों की भक्ति के सम्बन्ध में आचार्य परशुराम चतुर्वेदी का यह कथन द्रष्टव्य है -

“सन्तों की भक्ति साधना स्वभावतः निर्गुण एवं निराकार की उपासना के अन्तर्गत आती है और उसे “अभेद भक्ति” का भी नाम दिया जाता है; किन्तु उन्होंने अपने इष्ट “सत्” को कोरे अशरीरी वा भावात्मक रूप में ही नहीं समझा है । उनके तद्विषयक प्रकट किये गए उद्गारों से जान पड़ता है कि उसे सगुण निर्गुण से परे बतलाते समय उन्होंने एक प्रकार का अनुपम व्यक्तित्व भी दे डाला है । वे उसे सर्वव्यापक राम कहकर उसका विश्व के प्रत्येक अणु में विद्यमान रहना तथा सभी के रूपों में भी दीख पड़ना मानते हैं । इसके सिवाय वे उसे सद्गुरु, पति, साहब, सखा आदि भी समझते हैं । इन भावों के साथ उसके प्रति अनेक प्रकार की बातें कहा करते हैं । वे उसमें दयादाक्षिण्यादि गुणों का आरोप करते हैं । प्रत्यक्ष न होने पर विरह के भाव व्यक्त करते हैं और उससे मुक्ति की याचना भी किया करते हैं । फिर भी वे केवल भजन भाव में ही मग्न रहने वाले “भक्त” नहीं जान पड़ते । अपने व्यक्तिगत जीवन में सदाचार-सम्बन्धी सामाजिक नियमों का पालन करना भी आवश्यक मानते हैं । वे लोग अनासक्त प्रवृत्ति मार्गी एवं कर्मठ व्यक्ति हैं ।”

भक्तिमार्ग भाव की साधना है । अनेक सांसारिक प्रपंचों में पड़ा हुआ मनुष्य अपने वास्तविक “स्वभाव” को भूल जाता है । अपने वास्तविक स्वभाव को जानना निःसन्देह अति कठिन है । हम जो नहीं हैं, उसे प्रकट करते फिरते हैं; जो वास्तव में है, उसकी खुद भी जानकारी नहीं रखते । किसी प्रकार अपने वास्तविक भाव या स्वभाव को जान लेते, तो संसार के समस्त पचड़े एवं कष्ट स्वयं ही समाप्त हो जाते । अपने भाव को जानने के लिए सम्यक् पुरुषार्थ एवं

कठिन साधना की आवश्यकता होती है। संसार ऊपरी आवरण को ही पहिचानता है। गुरु की कृपा, भगवान का आग्रह-अनुग्रह, सत्संग का प्रभाव, अपना चिन्तन-मनन हमें बता सकता है कि ऊपरी आवरणों के भीतर हमारा अपना भाव या स्वभाव क्या है? जिस समय अपने "भाव" का ज्ञान हो जाता है अर्थात् "स्व" का ज्ञान होने पर "पर" का ज्ञान स्वयमेव हो जाता है। "स्वभाव" का ज्ञान होने पर "परभाव" या "विभाव" का ज्ञान भी हो जाता है। जो स्वभाव दशा में रहते हैं। वे भोले भाव से रघुराई (ईश्वर) या परमतत्त्व को पा लेते हैं।

"कहै कबीर जो रहे सुभाई, भौरे भाव मिले रघुराई"।¹

जिसे स्वभाव की प्राप्ति हो गई, आत्मानुभवरूपी भक्ति मिल गई, उसे देवलोक, इन्द्रलोक, तपलोक, सत्यलोक, निधिलोक, शिवलोक, बैकुण्ठ आदि लोक तथा मोक्ष आदि परमपद भी इसी जिन्दगी में जीते जी उपलब्ध हो जाता है।² यह भक्ति ही सहज है। इस भक्ति के मिलने पर विषयतृष्णा एवं माया का अपवारण होता है परन्तु यह सब उस माधव, विठ्ठल या राम की कृपा से ही सम्पन्न होता है।³ यह भक्ति अहं के पूर्णत्याग, एकनिष्ठता, इन्द्रियनिग्रह और ईश्वर के प्रति परानुरक्ति के योग से मिलती है। हरि की संगति से आन्तरिक मोह और शारीरिक ताप दोनों मिट जाते हैं। हृदय में उस परमब्रह्म के प्रकट होते ही दिन-रात या चौबीस घण्टे का सुख सहज रूप से प्राप्त हो जाता है-

हरि संगति सीतल भया, मिटा मोह तन ताप।

निसि बासर सुख निधि लहा, जब अन्तरि प्रगटा आप॥⁴

5. वैराग्यपूर्वक मानवीय गुणों का महत्त्व — ज्ञानपूर्वकवैराग्य योग एवं भक्ति के लिए आवश्यक है। मन में विषय भोगों के प्रति आकर्षण नष्ट हुए बिना ईश्वरीय प्रेम या भक्ति असम्भव है। सच्चा ज्ञान या विवेक ही वैराग्य को जागृत करता है और वैराग्य द्वारा ही व्यक्ति भगवद्भक्ति की ओर उन्मुख होता है। मोह-माया पर विजय प्राप्त किए बिना वैराग्य की प्राप्ति असम्भव है और वैराग्य भाव के बिना ईश्वर भक्ति नहीं हो सकती है। जिस प्रकार साधना के क्षेत्र में आत्म-परिष्कार और ब्रह्म-साक्षात्कार के क्षेत्र में नाम जप, योगसाधना, वैराग्य-भावना, सद्गुरु और सत्संग का महत्त्व सन्त साहित्य में सर्वत्र दृष्टिगोचर होता है। उसी प्रकार सामान्य जनसमाज को कल्याण के पथ पर अग्रसर करने के लिए कुछ मानवीय गुणों का महत्त्व प्रतिपादित किया गया है। ये मानवीय गुण, जो मानव के व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन में उन्नायक हैं, हितकरक

1. कबीर ग्रन्थावली, तिवारी पद 77

2. सन्त काव्य, पृष्ठ 394 : 9

3. कबीर ग्रन्थावली, तिवारी पद 43, पद 48, पद 198

4. वही, पृष्ठ 170 साखी

हैं, विपत्ति के क्षणों में दुविधा और किंकर्तव्यविमूढ़ता के क्षणों में मानव के लिए सुख-सन्तोष देने वाले होते हैं। सन्त साहित्य में इनको अपनाने, जीवन में उतारने पर जोर दिया गया है। सत्य, दया, क्षमा, सन्तोष आदि गुणों को ग्रहण करने तथा काम, क्रोध, लोभ, मद, मोह आदि दोषों को त्यागने का उपदेश सन्तों ने अनेक प्रकार से दिया है।

कबीर कहते हैं -

कामी क्रोधी लालची, इनसे भक्ति न होय।

भक्ति करे कोई सुरमा, जाति धरन कुल खोय ॥

अहंकार तथा क्रोध को त्याज्य बतलाते हुए कहा गया है -

कोटि करम लागै रहै, एक क्रोध के सार।

किया कराया सब गया, जब आवा अहंकार ॥

महान् व्यक्ति को क्षमा धारण करने की प्रेरणा देते हुए कथन है -

छिमा बड़ेन को चाहिए, छोटन को उत्पात।

कहा विष्णु को घटि गवो, जो भृगु भारी लागत ॥

एक स्थान पर कहा है -

“कुटिल वचन साधु सहै और सौ सह्य न जाय”।

सन्त पलटूदास दया का महत्त्व बताते हुए कहते हैं कि वही पीर है, जो दूसरे की पीर जानता है -

पसटू सोई पीर है, जो जाने पर पीर।

जो पर पीर न जानई, सो काफिर वेपीर ॥

सन्तोष को सर्वश्रेष्ठ धन माना गया है -

गोधन गजधन वाजिधन, और रत्न धन खान।

जब आवै सन्तोष धन, सब धन धूरि समान ॥

काम-भोग का विरोध करते हुए कबीर ने कहा है कि जिस तरह सूर्य के प्रकाश से सामने रात्रि की स्थिति असंभव है, ज्ञान के प्रकाश में अज्ञान का रहना असंभव है। उसी तरह जहाँ काम प्रबल है, वहाँ प्रेम की स्थिति असंभव है। जहाँ प्रेम होता है, वहाँ काम नहीं रह सकता -

सूर परकास तहँ रैन कह पाइए, रैन परकास नहिँ सूर भासै।

ज्ञान परकास अज्ञान तहँ पाइए, होय अज्ञान तहँ ज्ञान नासै ॥

काम बलवान तहं प्रेम कहं पाइए, प्रेम जहं होय तहं काम नाहि ।

कहै कबीर यह संत विचार है, समझ विचार कर देख माहीं ॥¹

कामिनी के अंगो के प्रति विरक्ति हरि में अनुरक्ति की पहली शर्त है ।² हरि सारे अपराध माफ कर सकता है किन्तु कामिनी में आसक्ति माफ नहीं कर सकता ।³ कामियों ने इन्द्रिय विषयों के स्वाद के पीछे भक्ति को भी विकृत कर दिया है ।⁴ कामी को कितना ही समझाओ कुबुद्धि नहीं जाती, वह निरन्तर विष (विषय-वासना, जहर) की तलाश में रहता है । अमृत (भक्ति, सुधा) उसे पसन्द ही नहीं आता है ।⁵

प्रेम का मार्ग वीरों का मार्ग है, कायरों का नहीं । प्रिया या प्रेमी के साथ कोने में पड़े रहकर मुक्ति नहीं मिलती, इसके लिए इन्द्रियों से खुले आम जूझना पड़ता है ।⁶ मन से जूझना पड़ता है ।⁷ काम क्रोध से जूझना पड़ता है ।⁸ जो शूर है, वह एक तरफ से लड़कर सब तरफ से लड़ता है ।

परम प्रिय सच्चाई से मिलता है, चतुराई से नहीं । उसे पाने के लिए लोभ, लोकाचार, काम, क्रोध और अहंकार का त्याग जरूरी है -

चतुराई न चतुरभुज पड़ौ । जब लगि मन माधौ न लगइऔ ।⁹

परिहरु लोभ अरु लोकाचारु । परिहरु काम क्रोध हंकारु ।

कहै कबीर जो रहै सुभाई । भौरे भाव मिलै रघुराई ॥¹⁰

सन्तों ने दुनिया की चतुराई को अच्छी तरह से समझा था, वे उसे आग लगाने लायक मानते हैं । लोग अधिक से अधिक धन कमाने को चतुराई समझते हैं । वे इतना धन चाहते हैं कि स्वयं भी खाए और अगली पीढ़ियों का व्यवसाय भी चल सके -

जारों मैं या जग की चतुराई ।

राम भजन नहिं करत बाबरे, जिनि यहु जगत बनाई ॥

माया जोरि जोरि करे इकठी, हम खैहें तरिका व्योसाई ।

सो धन चोर मूसि लै जावै, रहा सहा लै जाई जंवाई ॥¹¹

1. कबीर : द्विवेदी पृष्ठ 259 : 37 2. कबीर ग्रन्थावली, तिवारी पृष्ठ 158 : 41

3. वही पृष्ठ 233 : 13

4. वही पृष्ठ 233 : 14

5. वही पृष्ठ 234 : 21

6. कबीर ग्रन्थावली, तिवारी पृष्ठ 179 : 6

7. वही पृष्ठ 180 : 10

8. वही पृष्ठ 140 : 11

9. वही पृष्ठ 180 : 9

10. कबीर ग्रन्थावली, तिवारी पृष्ठ पद 77

11. कबीर ग्रन्थावली, तिवारी पद 164

धनप्राप्ति के सम्बन्ध में सन्त सुन्दरदास का यह कथन अति माननीय है -

तु कुछ और विचारत है नर, तेरा विचार धर्यो ही रहैगो ।
कोटि उपाय करे धन के हित, भाग लिख्यो तितनो ही लहैगो ॥
भोर कि सांझ घरी पल मांझ सु, काल अचानक आये रहैगो ।
राम भज्यो न किये कछु सुकिरित, सुन्दर यूँ पछिताई रहैगो ॥¹

जीवन की क्षणभंगुरता निम्नलिखित पंक्तियों में द्रष्टव्य है -

- 1 गारी केरा तुरखुदा, जल भागुषा की जात :
देखत ही छिप जायेगा, ज्यों तारा परभात ॥²
- 2 कबीर थोड़ा जीवना, मांडे बहुत मदान ।
सबहि उभा में लगि रहा, राव रंक सुल्तान ॥³
- 3 का मांगू कुछ धिर न रहाई । देखत नैन चला जग जाई ॥
एक लखपूत सया लख नाती । ता रावन घर दिया न बाती ॥
लंका सा कोट समुद सी खाई । ता रावन की खबर न पाई ॥⁴
- 4 यह तन कांचा कुंभ है, लिये फिरे धा साथ ।
टपका लागा फूटिया, कछु नहीं आया हाथ ॥⁵

इस मानव शरीर को पाकर चौरासी लाख योनियों में पुनः पुनः चक्कर न खाना पड़े । अतः सम्पत्ति के चक्कर में न पड़कर भगवद्भजन करना ही श्रेयस्कर है । सहजोबाई का कथन है -

धन जीवन सुख सम्पदा, वारद की सी छाहिं ।
सहजो आखिर धूप है, चौरासी के माहिं ॥
चौरासी योनि भुगत, पायो मनुष्य शरीर ।
सहजो चूके भक्ति बिनु, फिर चौरासी पीर ॥⁶

पलटू साहब का मानव मात्र के लिए उद्बोधन है -

पलटू नर तन पाइ के, घूरख भजै न राम ।
कोऊ ना संग जायगा, सुत दारा धन धाम ॥⁷

6. अहंकार या मान तथा विषय-तृष्णा का त्याग - सन्तों का सहज निर्गुण ब्रह्म या राम है जो हृदय की पवित्रता तथा चित्त की निर्मलता के साथ इन्द्रिय-विषयों की आसक्ति तथा अहंकार के त्याग से प्राप्त होता है। उस परम प्रिय को पाने की पहली शर्त है आपा (मैं या अहंकार) का निःशेष भाव से त्याग। कबीर के अनुसार अहंकार के रहते हुए हरि नहीं मिल सकता। हरि के मिलने पर अहंकार उसी प्रकार क्षीण हो जाता है, जैसे दीपक के देखते ही अन्धकार नष्ट हो जाता है -

जब मैं था तब हरि नहीं, अब हरि है मैं नाहिं।

सब अधियारों मिटि गथा, दीपक देखा माहिं ॥¹

सन्तों के अनुसार निर्वाण पद पाने के लिए अपने में ही उत्पन्न होने वाले मिथ्या गर्व, गुमान, मद, मत्सर आदि का त्याग तथा विनम्रता का होना आवश्यक है -

झूठा गर्व गुमान तजि, तजि आपा अभिमान।

दादू दीन गरीब हूँ, पाया पद निर्वाण ॥²

सन्त मान या अहंकार को माया के रूप में भी स्वीकार करते हैं। दादू ने इस मान को सुषिम या सूक्ष्म माया कहा है और बताया है कि धन सम्पत्ति रूपी मोटी माया को तो लोग छोड़ देते हैं, पर मान-प्रतिष्ठा को वे नहीं छोड़ पाते हैं।³ कबीर भी यही मानते हैं कि विषय-तृष्णारूपी माया तो छोड़ भी दी जाती है, पर मान छोड़ते नहीं बनता। इस मान ने बड़े-बड़े मुनियों को भी ग्रस्त कर रक्खा है। यह मान सभी को खा जाता है।⁴ इसीलिए इस मान-अभिमान को छोड़ने का उपदेश सन्तों ने पग-पग पर दिया है।

सन्त विषय-तृष्णा को भी माया मानते हुए उसे मुक्ति की साधना में सबसे बड़ा बाधक मानते हैं। तृष्णा अर्थात् इन्द्रिय विषयों के उपभोग से कोई कभी भी संतुष्ट नहीं हो सकता है। तृष्णारूपी अग्नि तो विषय - भोगरूपी ईंधन डालने से उत्तरोत्तर बढ़ती जाती है। सम्पूर्ण संसार इस तृष्णारूपी ज्वाला में जल रहा है।

1. कबीर ग्रन्थावली, पृष्ठ 166 साखी 1

2. दादू, पृष्ठ 366 साखी 7

3. कबीर ग्रन्थावली, पृष्ठ 330 साखी 18

4. कबीर ग्रन्थावली, पृष्ठ 335 साखी 3 तथाप पृष्ठ 234 साखी 14

कबीर कहते हैं -

त्रिस्ता अग्नि प्रलय किया, तृप्त न कबहुं होय ।

सुर नर मुनि और रंक सब, भस्म करते हैं सोय ॥ ¹

जो वन में जाकर इन्द्रियों के दमन की साधना नहीं कर सका, वह विषयों में लिप्त रहकर क्या निर्लिप्त रहेगा ? जब उच्च श्रेणी के साधक सनक-सनंदन, शिव, विरंचि, अनेक बुद्धिमान लोग, योगी, जटाधारी आदि ² भी इस तृष्णा से नहीं बच सके तो फिर हीन कोटि का मायासक्त संसारी इससे कैसे बच सकता है ? परिणाम यही होता है कि पंचक्रान्त गुणों के मुक्त अभोग के समर्थक सहज सहज कहते रहते हैं और "सुत बित कामिनि काम" के पीछे बेहताशा भागते रहते हैं -

सहजैं सहजैं सब गए, सुत बित कामिनि काम ।

एकमेक हवै मिलि रह, दास कबीरा राम ॥ ³

परन्तु सन्त उसे सहज कहते हैं ; जिसमें विषयों का त्याग हो -

सहज सहज सब कोई कहै, सहज न चीन्हैं कोई ।

जिन सहजै बिखिया तजी, सहज कहावै सोई ॥ ⁴

आशा-तृष्णा को जो छोड़ नहीं सका उसे सन्तों ने कभी सुखी रूप में नहीं देखा । इन्द्रिय-विषयों का त्याग, काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि से विरक्ति भौतिक सुखों के परित्याग बिना कोई कभी सच्चा सुख-शान्ति प्राप्त नहीं कर सका । अतः सन्तों ने इसके त्याग की प्रेरणा दी है ।

7. नारी के वासनात्मक रूप की निन्दा - सन्तों ने जहाँ एक ओर विषय - भोग की निन्दा की है, वहाँ दूसरी ओर विषय भोग का निमित्त, साधन या सामग्री स्त्री की भी कटु आलोचना की है । सन्त जहाँ एक ओर काम क्रोधादि को त्याज्य बतलाते हैं, वहाँ दूसरी ओर वे उनके साधनों को भी हेय प्ररूपित करते हैं ।

1. कबीर ग्रन्थावली तिवारी पृष्ठ 25

3. वही पृष्ठ 243 साखी 3

2 वही पृष्ठ 25 पद 43

4. वही साखी

संत स्त्री को काली नागिन मानते हैं। जो तीनों लोकों के विषयियों को खा जाती है -

कामिनी काली नागिनी, तीनिउं लोक मझारी।

राम सनेही ऊबै, विषई खाए झारि॥¹

नारी भक्ति, मुक्ति और ज्ञान-तीनों को नष्ट कर देती है-

नारि नसावै तीनि गुन, जो जन पासै होई।

भगति मुक्ति निज ज्ञान में, पैसि न सकई कोई॥²

स्त्री अपनी हो या दूसरे की, उसका भोग करने वाला सीधे नरक जाता है-

नारी पराई आपनी, भुगतें नरकहि जाई।

आगि आगि सब एक हूँ तामैं हाथ न बाहि॥³

कामिनी के अंगों से विरक्ति ईश्वर में अनुरक्ति के लिए अति आवश्यक है-

कामिनि अंग अरत भए, रत भए हरि नांक।

साथी गोरखनाथ ज्यों, अघर भए कलि माहि॥⁴

स्त्री जगत की जूठन है। वह अच्छे बुरे का अन्तर स्पष्ट करती है- जो लोग उससे पृथक् रहते हैं, वे उत्तम हैं और जो उसके साथ क्रीड़ा करते हैं, वे निम्न हैं-

जोरु जूठनि जगत की, भले बुरे का बीच।

उत्तिम ते अलगा रहै, मिलि खेलैं ते नीच॥⁵

हरि अन्य अपराधों को क्षमा भी कर देते हैं, परन्तु कामी के लिए उनके पास कोई स्थान नहीं -

अंधा नर चेते नहीं, कटै न संसे मूल।

और गुनह हरि बकसि है, कामी डाल न मूल॥⁶

सन्तों के अनुसार काम प्रत्यक्ष काल है, अपार शक्ति वाला योद्धा है और जब यह शरीर में उमगता है, तो ज्ञानियों को भी चंचल बना देता है -

काम नहीं यह काल है, काम अपर्बल खीर।

जब उमगत है देह में, ज्ञानिन करत अधीर॥⁷

1. कबीर ग्रन्थावली तिवारी पृष्ठ 232 साखी 12

2. वही साखी 7

3. वही पृष्ठ 233

4. वही पृष्ठ 158 : 41

5. वही पृष्ठ 234 साखी 20

6. वही पृष्ठ 233 : 13

7. पंचग्रन्थी पृष्ठ 298

इस काम ने किस किस को नहीं ठगा ? सनक-सनन्दन, शिव, शुकदेव, ब्रह्मा, विद्वान लोग, जोगी, जटाधारी सभी इसके सामने परास्त हो गये ।¹ वैसे तो सभी इन्द्रियों के विषयों का ग्रहण काम के अन्तर्गत होता है, परन्तु अपने विशिष्ट अर्थ में यह स्त्री-पुरुष विषयक आसक्ति का सूचक है । सन्त इस काम के कट्टर विरोधी हैं । वे मानते हैं कि जिसने इस काम को जीत लिया वही ज्ञानी और सिद्ध है ।² यह काम विजय ही सरलता देने वाली है ।³ चूँकि स्त्री काम की प्रेरक एवं सहायक है; अतः सन्तों ने उसे माया स्वरूप कहकर विष की बेलि, नरक का द्वार आदि प्ररूपित करते हुए उसकी तीव्र आलोचना की है । प्रायः सभी सन्तों ने स्त्री को काम का साधन स्वीकार कर उसके प्रति निन्दापरक दृष्टिकोण अपनाया है ।

8. माया की निन्दा - सन्तों ने माया शब्द के प्रयोग द्वारा विषय-तृष्णा, कामपरता, कनक-कामिनी, धन-मान, अहंकार, लाभ, मोह, स्वार्थ, सत्त्व, रज, तम आदि अनेक अर्थों का बोध कराया है ।⁴ वे माया के विद्या-अविद्या, सत्-असत् तथा अनिर्वचनीय जैसे भेदों के चक्र में न पड़कर उपर्युक्त अर्थों का वाचक मानकर ही उसे अपनी सिद्धि में बाधक स्वीकारते हुए उसे त्यागने की प्रेरणा देते हैं । स्थूल रूप में वे लौकिक और आध्यात्मिक उत्कर्ष के मार्ग की हर छोटी-बड़ी बाधा को माया कह देते हैं । सन्तों के अनुसार जगत इन्हीं हीनतर आसक्तियों का परिणाम है । जीव इन्हीं के बन्धनों से बँधे हैं । ये सब ही जीव को सहज नहीं होने देते । निर्वाण में यह सबसे बड़ी बाधा है । विषय-तृष्णा के अर्थ में माया का प्रयोग बहुतायात से हुआ है । डॉ. राजदेवसिंह का कथन है कि - “सन्त साहित्य में माया के लगभग 95 प्रतिशत प्रयोग विषयासक्ति को ही माया मानने-मनवाने का आग्रह करते हैं ।”⁵

सन्तों ने कामिनी के लिए भी माया शब्द का प्रयोग किया है । कामिनी के रूप में माया मोहिनी है । ज्ञानी-अज्ञानी सबको वह मोह लेती है । ऐसे खींच-खींच कर बाण मारती है कि भागने पर भी नहीं छोड़ती ।⁶ कबीर कनक और कामिनी को विषफल मानते हैं, जिनके खाने से तो मौत हो ही जाती है; परन्तु

1. कबीर ग्रन्थावली तिवारी पृष्ठ 43 पृष्ठ 77

2. पंचग्रन्थी पृष्ठ 299 साखी 77

3. कबीर ग्रन्थावली तिवारी पृष्ठ 242 साखी 3

4. सन्तों की सहज साधना — डॉ. राजदेव सिंह पृष्ठ 213

5. वही पृष्ठ 213

6. कबीर ग्रन्थावली तिवारी पृष्ठ 235 साखी 4

देखने मात्र से विष चढ़ जाता है।¹ साथ ही वे कहते हैं कि मुग्ध मनुष्य कनक - कामिनी रूपी कालपाश को वैसे ही देख नहीं पाता; जैसे आँखों के सामने जलती हुई आग को मोहपाश में बँधा हुआ पतंगा देखकर भी नहीं देख पाता और उसमें कूदकर जल मरता है।² दादू कनक और कामिनी को माया का प्रत्यक्ष विग्रह मानते हैं। उनके मत से यह सर्पिणी माया ही कनक-कामिनी बनकर सबको डँसती फिरती है। ब्रह्मा, विष्णु महेश भी इस कनक - कामिनी की तृष्णा से अछूते नहीं हैं।³

धन सम्पत्ति के अर्थ में माया शब्द का पर्याप्त प्रयोग हुआ है। उदाहरणार्थ -

- 1 माया जोरि जोरि करै इकठी, हम खैहें सरिका व्यौसाई।
सो धन चोर मूसि लें जावै, रहा सहा सै जाई जवाई॥⁴
- 2 यह माया कहु कौन की, काकै संग लागी रे।
गुदरी सी ठठि जाइगी, चित चेति अभागी रे॥⁵
- 3 धन के अन्धे आपि न बुझहु, काहि बुझावहु भाई।
माया कारनि बिद्या बेचहु, जनय अबिरथा जाई॥⁶

कुछ सन्तों ने माया का प्रयोग अनेक अर्थों में एक साथ ही किया है। उदाहरण के लिए सुन्दरदास का एक प्रयोग द्रष्टव्य है :-

- घर में बहुत भई माया, तब तौ न फूस्यो अंग समाया।
बहुरि त्रिया सौं बाधी माया, सुन्दर छाँडि जगत की माया॥⁷

इसमें माया क्रमशः धनसम्पत्ति, प्रेम एवं प्रपंच के अर्थ में प्रयुक्त हुई है। इसी प्रकार दादू धन-सम्पत्ति के लिए मोटी माया तथा मान- प्रतिष्ठा के लिए सूक्ष्म माया का प्रयोग करते हैं—

1. वही पृष्ठ 233 : 9

2. वही पृष्ठ 39 पद 67

3. दादू पृष्ठ 249 साखी 41

4. कबीर ग्रन्थावली, तिवारी पद 164 पृष्ठ 96

5. वही पद 96 पृष्ठ 191

6. वही पद 111 पृष्ठ 191

7. सन्त सुधासार, प्रथम खण्ड पृष्ठ 608 साखी 4

मोटी माया तजि गए, सुखिम लीए जाइ ।

दादू को छूटै नहीं, माया बड़ी बलाई ॥¹

काम, क्रोध, और अहंकार के अर्थ में कबीर ने माया का प्रयोग किया है—

“माधौ कब करिहौ दाया । काम, क्रोध हंकार विआपै नां छूटे माया”²

सन्त साहित्य में आशा, तृष्णा, लोभादि के अर्थ में माया का प्रयोग होता है -

थाकै नैन सुवन सुनि थाके, थाकी सुंदरि काया ।

जापन भरना ये दोइ थाके, एक न थाकी माया ॥³

अहंकार के लिए भी माया कहा गया है -

“मैं अरु मोर, तोर तौ माया, जैहि बस कीने जीव निकाया”⁴

इस प्रकार सन्तों ने माया को महाठगिनी मानते हुए नागिन, साँपिन, भूजंगी, चण्डाली, वेश्या, बालविधवा या बालरण्डा, बिलाई, विलैया आदि अनेक शब्दों का प्रयोग किया है ।⁵

सन्तों के माया सम्बन्धी विचार पर्याप्त रूप में अद्वैत वेदान्त से प्रभावित है । दादू ने माया को समझाते हुए ब्रह्म को सत्य और जगत को मिथ्या मानने वाली अद्वैत वेदान्ती धारणा का पूरी तरह निर्वाह किया है ।⁶ कबीर ने भी माया को कभी शुद्ध अद्वैत वेदान्तियों की तरह,⁷ तो कभी वल्लभ के शुद्धाद्वैत और निम्बार्क के द्वैताद्वैतवादी⁸ वेदान्त की तरह चित्रित किया है । संत रज्जब ने शांकर अद्वैत की ही तरह माया को असत् कहा है और संसार को मायादर्पण में ब्रह्म की छाया बताया है ।⁹ साथ ही माया के विषय में बातें पाण्डित्य एवं बुद्धिवाद से बोझिल नहीं हैं और इसीलिए वे सही अर्थों में वेदान्ती भी नहीं

1. सन्त सुधासार, प्रथम खण्ड पृष्ठ 330 साखी 18

2. कबीर ग्रन्थावली, तिवारी पृष्ठ 22 पद 36

3. वही पृष्ठ 52 पद 88

4. वही पृष्ठ 214 पद 32

5. सन्तों की सहज साधना — डॉ. राजदेव सिंह पृष्ठ 225 से 228 तक

6. दादू पृष्ठ 234-235 साखी 82-91

7. कबीर ग्रन्थावली, तिवारी पद 67 तथा 76

8. वही पद 57

9. सन्त सुधासार, प्रथम खण्ड पृष्ठ 514

है।¹ सन्तों की बानियों में पाप्त प्राप्ति सम्बन्धी विचारों में बहुधा माया को झूठी, तत्त्वशून्य और आनी जानी कहकर हेय कहा गया है। साथ ही ईश्वर को परमसत्य मानकर उसे उपादेय कहा गया है -

दादू जनम गया सब देखतां, झूठी से संग लागि।

साँचे प्रीतम कौ मिलैं भागि सकै तौ भागि ॥²

इस प्रकार सन्तों ने माया शब्द का अनेक अर्थों में प्रयोग करते हुए पर्याप्त निन्दा की है।

9. गुरु का महत्त्व - साधक के जीवन का परमोद्देश्य ब्रह्म साक्षात्कार है। ब्रह्म-साक्षात्कार का मार्ग प्रशस्त करने वाला, सांसारिक विघ्न बाधाओं से बचाने वाला मन पर नियन्त्रण करने का उपाय बताने वाला, अज्ञानरूपी अन्धकार को दूर करने वाला तथा सच्चा ज्ञान देने वाला गुरु ही है। वह ज्ञानप्रदाता सद्गुरु किसी से भी तुलनीय नहीं है। प्राचीन साहित्य से लेकर सन्त काव्य तक सद्गुरु की महिमा का अटूट गान हुआ है। आज भी सर्वत्र गुरु महिमा के सम्बन्ध में सुना जाता है -

गुरुब्रह्मा गुरुर्विष्णुः, गुरु देवो महेश्वरः।

गुरु साक्षात्परं ब्रह्म, तस्मै श्री गुरवे नमः ॥

कबीर तो गुरु को ईश्वर से भी बड़ा मानते हुए कहते हैं—

गुरु गोविन्द दोउ छड़े, काँके लागू पाय।

बलिहारी गुरु आपकी, जिन गोविन्द दिथा बताय ॥³

साथ ही वे कहते हैं - गुरु की महिमा का कोई अन्त नहीं है अर्थात् उनकी महिमा अनन्त है, उन्होंने मेरे ऊपर अनन्त उपकार किया है; क्योंकि उन्होंने मेरे अगणित ज्ञान चक्षुओं को खोलकर असीम ब्रह्म का दर्शन कराया है—

(1) सतगुरु की महिमा अनन्त, अनन्त किया उपकार।

लोचन अनन्त उधाड़िया, अनन्त दिखावणहार ॥⁴

1. सन्तों की सहज साधना — डॉ. राजदेव सिंह पृष्ठ 231

2. दादू पृष्ठ 227 : 46

3. कबीरदास, सन्त सुधासार साखी 14 पृष्ठ 120

4. कबीर ग्रन्थावली गुरुदेव कौ अंग पृष्ठ 1 (चौथा संस्करण)

गुरु की महिमा सचमुच अवर्णनीय है -

धरती सब कागद करू, लेखनि सब बन जाय ।

सात समंद की मसि कर, गुरु-गुन लिखा न आय ॥

कबीर कहते हैं कि "मैं तो अज्ञान से भरी लौकिक मान्यताओं और पाखण्डयुक्त वेद के पीछे चला जा रहा था कि सामने से सद्गुरु मिल गये और उन्होंने ज्ञान का दीपक मेरे हाथ में दे दिया" -

पीछें लागे जाइ था, लोक वेद के साथि ।

आगे थैं सतगुरु मिल्या, दीपक दीया हाथि ॥¹

सुन्दरदास के दयालु गुरु ने तो परमात्मा का दर्शन भी करा दिया है -

परमात्म सों आत्मा, जुदे रहे बहुकाल ।

सुन्दर मेलत करि दिया, सद्गुरु मिले दयाल ॥²

दादू को गुरुदेव के आशीर्वाद या प्रसाद से अगाध आगम के दर्शन हुए हैं-

दादू गैल भाहि गुरुदेव मिल्या, पाया हम परसाद ।

मस्तक मेरे कर धरया, देख्या अगम अगाध ॥³

साथ ही वे भक्ति-मुक्ति का भंडार मिलना तथा भगवान के दर्शन होना भी सद्गुरु के मिलने पर ही मानते हैं -

सद्गुरु मिलै तो पाइये, भक्ति मुक्ति भंडार ।

दादू सहजै देखिए, साहिब का दीदार ॥⁴

गरीबदास सद्गुरु को पारसरूप बताते हैं ; जो साधक शिष्य को क्षण मात्र में स्वर्ण बना देता है -

सतगुरु पारस रूप है, हमरी लोहा जात ।

फलक बीच कंचन करे, पलटे पिण्डा गात ॥

सद्गुरु ऊपर से दण्डित भी करता है तथा अन्दर से हाथ का सहारा देकर निर्माण और उन्नति का पथ भी प्रशस्त करता है-

1. कबीर ग्रन्थावली (गुरुदेव को अंग) पृष्ठ 2 साखी 11

2. सुन्दर दर्शन, डॉ. त्रिलोकीनारायण दीक्षित इलाहाबाद पृष्ठ 177

3. सन्त सुधासार दादू, पृष्ठ 449 साखी 1

4. सन्त दर्शन दादू गुरुदेव को अंग पाद टिप्पणी 3 पृष्ठ 22

डॉ. त्रिलोकीनारायण दीक्षित साहित्य निकेतन कानपुर

गुरु कुम्हार सिब कुंभ है गढ़ि गढ़ि काढे खोट ।

अन्दर हाथ सहार दे बाहर बाहै चोट ॥

कबीर की दृष्टि में सदगुरु वही है जो शब्दबाण को सफलतापूर्वक चला सके और जिसके लगते ही शिष्य का मोहजाल विदीर्ण हो जाय -

सतगुरु लई कमाणैं करि, बाहणै लागा तीर ।

एक जु बाह्या प्रीति सैं भीतरी रह्या सरीर ॥ ¹

सदगुरु ने ऐसा अन्दरूनी घाव किया है कि साधक अन्दर से चूर चूर हो गया अर्थात् उसका अहंकार भीतर से नष्ट हो गया -

सतगुरु साँचा सूरमा, नख सिख मारा पूर ।

बाहर घाव न दीसई, भीतर चकनाचूर ॥

पलटू साहब गुरुरूपी जहाज से भवसागर पार होना मानते हैं -

“भवसागर के तरन को पलटू सन्त जहाज” ²

इस प्रकार सम्पूर्ण सन्त साहित्य में सदगुरु की महिमा बहुविध वर्णित है ।

10. सत्संग का महत्त्व - सन्त साहित्य में जहाँ सदगुरु का महत्त्व है, वहाँ सत्संग की भी महिमा है । सदगुरु और सत्संग की महिमा के प्रख्यापन में सगुण भक्तों और निर्गुण सन्तों में कोई भेद नहीं है । सत्संग से कुप्रवृत्तियों पर आधत होकर सत्प्रवृत्तियों का मार्ग प्रशस्त होता है और व्यक्ति सम्यक् उन्नति के पथ पर आरुढ़ होता है । सन्तों की संगति निमिष मात्र में करोड़ों अपराधों को नष्ट कर देती है -

एक घड़ी आयी घड़ी, आयी हूँ से आय ।

कबीर संगत साधु की, कटे कोटि अपराध ॥

सन्तों की संगति अति दुर्लभ है, तभी तो सन्त गरीबदास कहते हैं कि पण्डित और ज्ञानी तो संसार में अनन्त हैं, किन्तु साधु सन्त विरले ही मिलते हैं-

पण्डित कोटि अनन्त हैं, ज्ञानी कोटि अनन्त ।

श्रोता कोटि अनन्त है, विरले साधु सन्त ॥

1. कबीर ग्रन्थावली (गुरुदेव को अंग) पृष्ठ 2 साखी 11

2. सन्त सुधासार, पलटूसाहब, गुरु का अंग, (दिल्ली दूसरा खण्ड) पृष्ठ 267 साखी 16

कबीर का कथन है कि चाहे दारिद्र्य भोगना पड़े, रूखा सुखा खाने को मिले, फिर भी साधु की संगति मली है तथा वैभव और अच्छे भोजन के साथ भी दुर्जनों का संग ठीक नहीं है—

कबीर संगत साधु की, औ की भूसी खाय ।

खीर खांड भोजन मिले, साठक संग न जाय ॥

11. सहज साधना - सभी सन्त सहज साधना के पक्षधर थे, परन्तु उनकी सहज साधना सिद्ध योगियों और नाथपंथियों की सहज साधना से पृथक् है। जहाँ सिद्ध योगी या सहज यानी पंच कामगुणों अर्थात् पंचेन्द्रियविषयों को भोगते हुए मुक्ति मानते हैं।¹ वहाँ सन्तों का मानना है कि विषयतृष्णा सींचने से बुझती नहीं, बल्कि और अधिक बढ़ती जाती है।² सिद्ध उन्मुक्त भोग के समर्थक थे, परन्तु कबीर ने सर्वप्रथम तत्कालीन समाज द्वारा स्वीकृत मुक्त इन्द्रियोपयोग वाले सहज का विरोध किया। सिद्धों के लिए जो सहज था, सन्तों के लिए वही असहज था। सिद्धों का सहज “महासुख” है, जो पंच कामगुणों के भोग से प्राप्त होता है। जबकि सन्तों का सहज राम है; जो चित्त की निर्मलता, इन्द्रिय-विषयों का त्याग और अहंकार के क्षय से प्राप्त होता है। सन्त कबीर उसे ही सहज कहते हैं; जिसमें विषयों का त्याग हो—

(1) सहजै सहजै सब गए, सुत बित कामिनि काम ।

एकमेक ह्वै मिलि रहा, दास कबीरा राम ॥³

(2) सहज सहज सब कोई कहै, सहज न सीन्है कोई ।

जिहि सहजै विख्या तजी, सहज कहावै सोई ॥⁴

इस प्रकार सन्तों की सहज साधना में विषयभोगजन्य कष्टों, संघर्षों एवं दुरुहताओं से हमेशा के लिए छुटकारा मिल जाता है।

12. सहज समाधि - सन्तों के अनुसार प्रभु के नामस्मरण में निरन्तर स्थित होना ही सहज समाधि है। सहज समाधि वह ध्यान का समाधि है; जिसमें कायक्लेश द्वारा अपने आपको विशेष प्रक्रियाओं से साधित करने की आवश्यकता नहीं है। इस स्थिति में शुद्ध अन्तःकरण की स्वाभाविक शक्ति प्रकट हो जाती

1. पंचकामगुणेषोअणहिं (अरू) णिचिन्तधिणेहिं ।

एब्बेलण्ण परम पठ किम्बहुबोल्लियेहिं ॥ दोहाकोष गीति दोहा 144 तथा 48

2. तूनां सींची न बुझे, दिन-दिन बढ़ती जाय। कबीर ग्रन्थावली, तिवारी, पृष्ठ 236 साखी 13

3. कबीर ग्रन्थावली, तिवारी, पृष्ठ 242 साखी 1

4. वही साखी 3

है जिसमें कृत्रिमता स्वतः विलीन हो जाती है। इसमें दैनिक जीवन के प्रत्येक कार्य को ब्रह्म उपासना का ही अंग समझा जाता है और दुःखविहीन मनः स्थिति बन जाती है। कबीर कहते हैं -

साधों सहज समाधि भली।

गुरुप्रताप जा दिन सो जागि, दिन दिन अधिक चली ॥

जहाँ तहाँ डोलों सो परिकरमा, जो कछु करौ सो सेवा।

जब साँवों तब करौ दण्डवत, पूजों और न देवा ॥

कहाँ सो नाम सुनौ सो सुमिरन, खावों पीवों सो पूजा।

गिरह उजाड़ एक समलेखो, भाव मिटावों दूजा ॥

आंख न मूदौ, कान न रूथो, तनिक कष्ट नहिं धारै।

खुलै नैन पहिचानौ, हँसि हँसि सुन्दर रूप निहारै ॥

कायिक और मानसिक क्लेश का सहज समाधि में कोई स्थान नहीं है -

काहे को कलपत फिरै, दुखी होय बेकार।

सहजै सहजै होइगा, जो रचिया करतार ॥

सहजोबाई की प्रेरणा है -

ऐसा सुमिरन कीजिए, सहज रहे लो लाय।

बिनु जिभ्या बिन तालुवै, अन्तर सुरति लगाइ ॥

सन्तों के मत से सहज साधना एवं सहज समाधि के लिए मन को मार लेना या वश में कर लेना प्रमुख है। विषय ग्रहण का मूल अधिष्ठान मन है। यह मन विषयों के स्वाद में पड़कर अनेक कर्म करता है। मत्त मन को वश में करने के लिए इसे शरीर के भीतर घेर कर मारो, जब भी यह आदेशों की उपेक्षा करे, अंकुश दे देकर इसे रोको—

मैमंता मन मारि रै मनहीं माहैं घेरि।

जब ही चालै पीठि दै, अंकुस दै दै फेरि ॥

विषयानुरागी अर्थात् चंचल प्रवृत्ति वाला मन जब ध्यान का अभ्यासी हो जाता है तो यह निश्चल और निर्मम होकर ब्रह्मसाधना में सहायक बन जाता है। ब्रह्मसाक्षात्कार या आत्मानुभूति में यदि साधक निरन्तर स्थिर रह सकता है तो वह सहज समाधि में स्थित हो जाता है। इसमें हठयोग साधना में उत्पन्न काया के क्लेश का निषेध कर सहज भाव से समाधि की स्थिति प्राप्ति होने पर

बल दिया जाता है। इस सहज समाधि में मनुष्य संसार में साधारण रूप से रहते हुए विधि निषेधों के चक्र में पड़ते हुए जगत के सभी दृश्यमान पदार्थों के रूप रंग को, सौन्दर्य को उस परमतत्त्व की ही अभिव्यक्ति समझकर आनन्दित रहता है और निरन्तर प्रभु का नाम जप करता रहता है। सन्तों की सहज साधना एवं सन्तों की पूर्ववर्ती साधना के सम्बन्ध में डा. राजदेवसिंह का यह कथन माननीय है - “सन्त मत के उद्भव के कुछ समय पहले से ही भारतीय सामन्ती समाज का ढाँचा ढीला पड़ने लगा था और धीरे-धीरे नई समाज व्यवस्था रूप लेने लगी थी। सामाजिक ढाँचे में घटित परितर्वनों के कारण सिद्धों द्वारा कल्पित और समाज में व्यापक रूप से स्वीकृत आचरित मुक्त और मर्यादित भोगवाला सहज असहज बनता गया था। इस असहजता को सबसे पहले और सबसे अधिक सही ढंग से आदि संत कबीर ने समझा था और उसके खिलाफ जोरदार आवाज उठाई थी। सामन्ती समाज व्यवस्था के मृतमूल्यों और आचार विचारों को निरर्थक सिद्ध करके, नए युग के अनुरूप नई आचार पद्धति को दृढ़मूल प्रतिष्ठा देने वालों में सन्त सर्वप्रथम और सर्वाधिक सचेष्ट थे। सन्तों के समय और समाज के लिए सिद्धों को उन्मुक्त भोग और नाथों की हठसाधना दोनों असहज हो गए थे।”¹

आगे वे लिखते हैं - “सम्पन्न लोगों की मुक्त भोग वाली असहजता विपन्न वर्गों के लिए जिस तरह घातक सिद्ध हो सकती है, स्वेच्छा से विषयों का त्याग करने वाली सहजता उस तरह से सम्पन्न वर्गों के लिए घातक न होकर अनुकूल ही सिद्ध होती है। अतः सन्तों ने जिस सहज साधना का प्रचार किया है, वह अग्राह्य किसी के लिए नहीं है और अगर उसे अपना लिया जाए तो सुखद सभी के लिए है; उसी तरह जैसे मुक्तभोग की सुविधा में रहकर भी अगर कोई विषयों का त्याग कर देता है, मन को आडम्बरहीन तथा पवित्र बना लेता है तो उसका लाभ ही लाभ है।”²

सन्तों की सहज समाधि के सन्दर्भ में आचार्य परशुराम चतुर्वेदी का निम्नलिखित कथन भी उल्लेखनीय है -

“सन्तों की नाम स्मरण - साधना इस प्रकार जप की विधि के स्वयं निष्पन्न होते रहने के कारण “अजपाजाप” के नाम से प्रसिद्ध है। इस समाधि का नाम भी इसके योगाभ्यासियों द्वारा प्रयास पूर्वक लगायी जानी वाली “समाधि” से भिन्न होने के कारण “सहज समाधि” कहलाता है।”³

1. सन्तों की सहज साधना, डॉ. राजदेव सिंह पृष्ठ 10

2. वही पृष्ठ 11

3. सन्त साहित्य की रूपरेखा, आख्य परशुराम चतुर्वेदी, पृष्ठ 52

13. योग साधना - सन्त कवियों ने योग साधना को ईश्वर प्राप्ति का एक अनुपम साधन माना है। सन्त सुन्दरदास ने योग के भेदों का सविस्तार वर्णन किया है। नाथपंथी योगियों की साधना पद्धति हठयोग की थी किन्तु सन्त कवियों ने अष्टांग योग को अधिक महत्त्व दिया है। सन्त हठयोगियों की तरह देह को "सब कुछ" न मानकर "कुछ भी नहीं" मानते हैं। सन्त शरीर को साध्यसिद्धि का साधन मानकर भी अन्ततः इसे अनावश्यक बतलाते हैं। वे प्रत्येक शरीरधारी को दुखी ही देखते हैं -

“तन धरि सुखिया कोई न देख्य, जो देखा सो दुखिया हो”¹

अनिर्वचनीय तत्त्व की प्राप्ति के लिए कुण्डलिनी शक्ति की जागरण की आवश्यकता पड़ती है। योग विज्ञान के अनुसार हमारे मेरूदण्ड के छह चक्रों में सहस्रार चक्र या सहस्रदल कमल सबसे ऊपर है। मूलाधार चक्र के नीचे कुण्डलिनी शक्ति स्थित है। प्राणायाम की साधना से वह शक्ति प्रबुद्ध होकर क्रमशः विभिन्न चक्रों को पार कर सहस्रार चक्र में जाकर लीन हो जाती है। सहस्रार चक्र में कुण्डलिनी शक्ति के लीन होने पर दिव्य आनन्द का अनुभव होता है। कबीर ने सहस्रदल कमल में झरने वाले अमृत का पान करने का बारम्बार उपदेश किया है -

अवधू गगन मण्डल घर कीजै ।
अमृत झरै सदा सुख उपजै बंक नाथ रस कीजै ॥
मूल बाँधि सर गगन समादा सुषुमन यों तन लाली ।
काम क्रोध दोऊ भया पलीता तहां जोगणी आगी ॥
मनवां जाय दरीबै बैठक मगन भया रसि लागी ।
कहै कबीर जिय संसा नांही सबद अनाहद बागी ॥²

यहां गगन मण्डल से तात्पर्य सहस्रदल कमल (ब्रह्म निवास), बंकनाल = वक्र चन्द्रमा (अमृतागार) जोगणी = कुण्डलिनी शक्ति। कामक्रोधादि के भस्म होने पर कुण्डलिनी शक्ति जग जाती है और मन रसमग्न हो जाता है।

सन्तों की योग साधना के सम्बन्ध में डॉ. नगेन्द्र द्वारा सम्पादित “हिन्दी साहित्य का इतिहास” का निम्नलिखित कथन द्रष्टव्य है—

“सन्त (कवियों) साधकों में एक वर्ग ऐसा है जो योग साधना से पूर्णतया प्रभावित है। सोहं, हंस, इंगला, पिंगला, सुषुम्ना, सुरति, निरति आदि का उल्लेख

तो सभी ने किया है। परन्तु हठयोगी साधना की सूक्ष्मताओं का ज्ञान और अनुभव कबीरदास, सुन्दरदास तथा हरिदास निरंजनी को विशेष रूप से था। उन्होंने सामान्य जनता के लिए सहज साधना का विधान किया है तथा विशिष्ट साधकों को कुण्डालिनी की साधना के योग पर अप्रसर होने का उपदेश दिया है। इनके काव्य में वर्णित योग प्रक्रिया अनुभव समर्थित है। वैसे हठयोग, ध्यानयोग, प्रेमयोग आदि योग-विधियों का जितना पुस्तकीय एवं अनुभूतिमूलक ज्ञान सुन्दरदास को था, उतना अन्य किसी सन्त कवि को नहीं। दादू, नानक, रैदास, जम्भनाथ, सींगा, भीषण, रज्जब, बावरी साहब, मलूकदास, बाबालाल आदि की साधना पद्धति में योगतत्त्व की प्रधानता नहीं है। इन्होंने कहीं - कहीं सुरत-योग, शब्द योग आदि का उल्लेख तो किया है किन्तु उतनी अन्तरंगता और आग्रह के साथ नहीं।”¹

14. रहस्यवाद - सन्तों की रचनाओं का उद्देश्य अपनी अनुभूति की अभिव्यक्ति करना रहा है। जब किसी साधारण तथा इन्द्रियगत अनुभव को ही व्यक्त करना अति कठिन है तो फिर असाधारण एवं इन्द्रियातीत अनुभव को व्यक्त करना तो दुस्साध्य है ही। ऐसी स्थिति में अभिव्यक्ति में अस्पष्टता आ जाने के कारण कवि की रचना बहुधा रहस्यमयी बन जाती है, तब उसके परिचित प्रतीकों के प्रयोग अपूर्व अनुभव के विधायक बन जाते हैं। किसी भी इन्द्रियातीत वस्तु का अनुभव प्रतीकों के माध्यम से व्यक्त किया जा सकता है, परन्तु प्रतीकों का आधार सामान्यतः इन्द्रियगम्य वस्तुएँ ही बना करती हैं ऐसी दशा में उन दोनों में पूर्ण सामंजस्य की समस्या भी उत्पन्न हो जाती है। “सन्तों ने ऐसे प्रतीकों के प्रयोग बार-बार किये हैं और इस प्रकार हमारे लिए कुछ ऐसे चित्रों का निर्माण करते आये हैं, जो उनकी उक्त भावना का न्यूनाधिक अनुकरण कर सकें। भाषा उन्हें इस कार्य में पूरी सहायता स्वाभावतः नहीं कर पायी है। इसके लिए उनके जितने ऐसे प्रयोग हुए हैं, वे अधिकतर दोषपूर्ण हो गए हैं। सन्तों ने जहाँ-जहाँ स्वानुभूति से भिन्न-भिन्न विषयों के वर्णन किये हैं, वहाँ वहाँ उनकी प्रतिभा तथा अभ्यास के अनुसार भाषा, छन्द एवं शैली में भी उन्हें बराबर सफलता मिलती गई है। वहाँ पर उनकी योग्यता स्पष्ट ही दीखती है।”²

अनुभव का अर्थ है प्रत्यक्ष ज्ञान। परमतत्त्व का प्रत्यक्ष ज्ञान अर्थात्

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास— सम्पादक डॉ. नगेन्द्र पृष्ठ 131

2. सन्त साहित्य की रूपरेखा, आचार्य परशुराम चतुर्वेदी, पृष्ठ 73

ब्रह्मात्मक स्वानुभूति में आनन्दातिरेक एवं भाव विहवलता के कारण ऐसी अपूर्व स्थिति बन जाती है कि ज्ञाता, ज्ञान, ज्ञेय एकमेक होते हुए "मजा" "स्वाद" या आनन्द रूप में परिणित हो जाते हैं। इस स्थिति को शब्दों द्वारा व्यक्त नहीं किया जा सकता है और यही स्थिति "रहस्यवाद" संज्ञा से अभिहित कर दी जाती है क्योंकि कि व्यक्त करने के बार-बार प्रयत्न करने पर भी वह अभिव्यक्त नहीं हो पाती और उसकी अभिव्यक्ति पाठक या श्रोता को चकित करती हुई गूढ़ता या जटिलता उत्पन्न करती हुई अस्पष्ट बनी रहती है। सन्त कबीर ने उस दशा का वर्णन निम्नलिखित प्रकार से किया है-

अविगत अकल अनुपम देख्या, कहता कहा न जाई ।
सैन करै मन ही मन रहसै, गूगै जानि मिठाई ॥
आपै भै तथ आपा निरख्या, अपन पै आपा सुझ्या ।
आपै कहत सुनत पुनि अपना, अपन मैं आपा बूझ्या ॥¹

सन्त रविदास के अनुसार इस दशा में पूर्ण शांतिमय सन्तोष की भी स्थिति आ जाती है और तब उस परमतत्त्व विषयक भजनादि तक की भी कोई आवश्यकता नहीं रह जाती है। उनका कहना है। -

गाइ गाइ अबका कहि गाऊँ, गावनहार को निकट बताऊँ ॥
जब लग है या तन की आस, तब लग करै पुकारा ।
जब मन मिथ्यौ आस नहि तन की, तब को गावनहारा ॥²

सन्तों के काव्य में सांकेतिक भाषा और प्रतीकों का प्रचुर रूप में प्रयोग हुआ है। सन्तों के प्रतीकों द्वारा रहस्यानुभूति की अभिव्यक्ति निम्नांकित प्रकार से हुई है—

(1) चेतन अचेतन की समरसता के प्रतीक यथा - "जल में कुंभ, कुंभ में जल है बाहर भीतर पानी" ।

(2) जीवन की सामान्य उपयोगिता वस्तुओं के माध्यम से अनन्त की कल्पना यथा वायु, जल, अन्नादि में ब्रह्म, ब्रह्म की स्थिति की कल्पना। सन्तों के सहस्रदल कमल, सूर्य, चन्द्र आदि इस प्रकार के प्रतीक हैं।

(3) मानवीय सम्बन्धों के रूप में परमतत्त्व की कल्पना - यथा पिता-पुत्र,

1. कबीर ग्रन्थावली, काशी ना. प्र. सभा पद 6 पृष्ठ 90

2. रैदास की बानी, बे. प्रे. प्रयाग, पद 3 पृष्ठ 3

पति-पत्नी, स्वामी-सेवक आदि सम्बन्धों की कल्पना । प्रायः सभी सन्तों ने इन प्रतीकों को अपनाया है ।¹

सन्तों ने वात्सल्य, दाम्पत्य, सख्य भावों सम्बन्धी प्रतीकों का प्रयोग किया है । इसके अतिरिक्त सन्त साहित्य में और भी कई प्रकार के प्रतीकों का प्रयोग हुआ है । उदाहरणार्थ सांकेतिक प्रतीक, पारिभाषिक प्रतीक, संख्यामूलक प्रतीक और रूपात्मक प्रतीक ।²

अनिर्वचनीय तत्त्व जब मन और बुद्धि का भी विषय नहीं है तो फिर वाणी का विषय कैसे हो सकता है ? अतः लौकिक माध्यमों से उस अलौकिक तत्त्व का वर्णन करते समय वाणी लड़खड़ा जाती है । वह लड़खड़ाती वाणी उलटी सीधी-सी प्रतीत होने लगती और उसे उलटवांसी कहा गया । सन्त कवियों के पूर्व गोरख ने ऐसी वाणी को “उलटी चरचा” नाम दिया । कबीर ने इसे “उलटिवेद” या “उलटवेद” कहा, पलटूसांख्य ने इसे “उलटावती” का नाम दिया । “उलटवांसी” शब्द का प्रयोग उन्नीसवीं शताब्दी में सन्त तुलसीसाहब (हाथरस वाले) ने किया ।³ अन्य सन्तों ने इसे अकथ कथा, अकथ कहानी, अचरज ख्याल, गुप्त मत की बात आदि शब्दों से अभिहित किया है । ऐसी भाषा संधाभाषा या सन्ध्याभाषा कही गयी है ।

प्रतीकों का चयन जीवन के विभिन्न क्षेत्रों - परिवार, व्यवसाय, प्रकृति, पशु पक्षी, जगत आदि से किया गया है । उदाहरणार्थ - अमृत वर्षा अर्थात् ब्रह्म साक्षात्कार की अनुभूति के लिए अमीरस, महीरस आदि, आत्मा के लिए हंस, इच्छा या कामना के लिए घोड़िन, जोरू, बकरी आदि, काल के लिए सिंह, कुण्डलिनी के लिए उलटी गंगा, पनिहारिन, साँपिन, जीवात्मा के लिए दुलहिन, पनिहारी, त्रिकुटी के लिए उलटा कुँआ, गगन मण्डल, त्रिवेणी आदि, ब्रह्म के लिए खसम, बाप, समुद्र आदि ।

सन्त साहित्य में योग के कुछ पारिभाषिक शब्दों का भी प्रयोग हुआ है । जैसे - अजपाजाप, अनाहतनाद, अमृत, उन्मनी अवस्था, अवधू, उलटी गंगा, औंधा-कुँआ, गगन मण्डल, पिण्ड, ब्रह्माण्ड, दीपक, विवाह आदि । अजपाजाप वह है, जो श्वास प्रश्वास की क्रिया से ही आन्तरिक जप प्रक्रिया चलती रहती है, जीभ हिलाने या माला के दाने गिनने की आवश्यकता नहीं रहती । अनाहत

1. हिन्दी सन्त साहित्य— डॉ. त्रिलोकीनारायण दीक्षित पृष्ठ 196 2. वही पृष्ठ 199-200

3. हिन्दी सन्तों का उलटवांसी साहित्य— डॉ. भागीरथ मिश्र पृष्ठ 4

नाद वह दिव्य संगीत है, जो साधक को सिद्धि के क्षणों में ब्रह्मसाक्षात्कार से पूर्व अपनी आत्मा में सुनायी देता है। औंधा कुँआ सहस्रार चक्र में ध्यानावस्थिति है। दीपक अध्यात्म ज्ञान का प्रकाश है, जो सद्गुरु से प्राप्त होता है और माया मोहबंधकार को मिटा देता है। पिण्ड का अर्थ साधक का शरीर और ब्रह्माण्ड का अर्थ स्वतः स्पष्ट है ही। जो कुछ ब्रह्माण्ड में है, वही सम्पूर्ण दृश्य पिण्ड में भी है। विवाह का अर्थ जीवात्मा और परमात्मा का संयोग या मिलन है। इस प्रकार की भाषा एक विशेष प्रकार की मनः स्थिति को प्रकट करने वाली होने से, स्वयं में विशेष शब्दावली रखने के कारण "सन्धा या सन्ध्या भाषा" कहलायी।

15. विरह - आध्यात्मिक विरहानुभूति का सन्त साहित्य में विशेष महत्त्व है। ईश्वररूपी पति को प्राप्त करने के लिए साधक की आत्मारूपी नारी को कभी-कभी काफी निराशा प्रतीत होती है, विरह महसूस होता है। सन्त प्रिय के मिलन के लिए विरह को आवश्यक मानते हैं।

हंसि हंसि कन्त न पाइअै, जिन पाया तिन रोई।

हांसि खेलां पिड मिलै, तो नहीं दुहागिनी कोई ॥

(कबीर ग्रन्थावली तिवारी पृष्ठ 143 साखी 38)

जो विरह को कष्टदायक मानते हैं उनके लिए कबीर का कथन है कि विरह विरह कहकर चीखना बेकार है, जिस शरीर में विरह का संचार नहीं हुआ वह श्मशान की तरह है -

बिरहा बिरहा मति कहौ, विरहा है सुलतान।

जिहि घटि विरह न संचरै, सो घट सदा मसान ॥¹

सन्तों ने विरहानुभूति की अभिव्यक्ति अनेक कल्पनाओं के द्वारा की है। विरह में प्रभावित अश्रुओं के लिए रहट के व्यापार की,² विरह पीड़ित भक्त के नेत्रों के लिए विरह कमण्डल हाथ में लिये विरक्त योगी³ की, विरहिणी नारी के लिए "जल बिन मछली"⁴ की, विरह के लिए भुजंगम⁵ की सुन्दर कल्पनाएँ कबीर के द्वारा की गई हैं। यह विरह भुजंग कबीर के अंग अंग को खा रहा

1. कबीर ग्रन्थावली, तिवारी पृष्ठ 143 साखी 16

2. सन्त साहित्य संग्रह भाग — 1 पृष्ठ 15/5

4. वही पृष्ठ 14/1

3. वही पृष्ठ 15/13

5. वही पृष्ठ 15/9

है। विरह ज्वर ऐसा तीव्र है कि वह आठों प्रहर शरीर को विदग्ध किए रहता है। विरह में कबीर का शरीर रक्त, मांस रहित हो गया है। कबीर के विरह में इतनी तीव्रता है कि वह जिस वृक्ष के नीचे शीतलता पाने के लिए बैठते हैं, वह स्वयं जल जाता है।¹ दादू की विरहिणी मौन और शान्त है। उसकी दशा बड़ी शोचनीय और दयनीय है। प्रिय का पथ देखते देखते उसके केश श्वेत हो गए।² सुन्दरदास की विरहिणी जिसमें से धुआँ भी न निकले - इस प्रकार अन्दर ही अन्दर जलकर भस्म हो जाना चाहती है।³ दरिया साहब ने विरहिणी आत्मा के वन वन भटकने की कल्पना की है। वह सतत् प्रियतम की खोज में अनुरक्त रहती है।⁴ दरिया साहब (मारवाड़ वाले) ने विरह व्याकुल आत्मा के लिए ऐसी व्यथा की कल्पना की है कि उसका शरीर पीला पड़ गया है, मन का माधुर्य समाप्त हो गया है, दिन रात नींद नहीं आती, भूख विलीन हो गई है।⁵

इन सन्त कवियों ने जहाँ अपने अज्ञात प्रियतम के प्रति आत्मविभोर होकर विरह और व्यथा का वर्णन किया है, वहाँ रागात्मक तत्त्व अपनी पूर्ण तन्मयता और हृदयस्पर्शता के साथ साकार हो उठा है। उनके विरह के पदों में मीरा की सी तन्मयता, सूर की सी सरलता और विद्यापति का सा सौन्दर्य है। कबीर जैसा अक्खड़ भी विरह वेदना से त्रस्त होकर सौ सौ आँसू बहाने लगता है। विरह भावों की तीव्रता निम्नलिखित पंक्तियों में द्रष्टव्य है -

- (1) बहुत दिनन की जोखती, बाट तुम्हारी राम।
जिय तरसै तुझ मिलन कैं, मन नाहि विश्राम॥
- (2) अंखियाँ तो झाँई परी, पंथ निहारि निहारि।
जीभखियाँ छाला पड़या, नाम पुकारि पुकारि॥
- (3) आइ न सकौं तुझ पै, सकैं न तुझ बुलाइ।
जियरा यौही लेहुगे, विरह तपाइ तपाइ॥

तीव्र विरह वेदना की अनुभूतियों के अनन्तर इन कवियों के भावुक जीवन में मिलन की घड़ियों का भी आगमन होता है। वे अपना सारा पौरुष, सारा गर्व

1. सन्त बानी संग्रह भाग - 1 पृष्ठ 17/27

2. वही पृष्ठ 81/2

3. वही पृष्ठ 109/2

2. वही पृष्ठ 128/4

5. वही पृष्ठ 145/5

एवं सारी अकस्मात् को भूलकर किसी नवीन किशोरी की चैति कोमलता से गद्गद, लाज से विभोर और प्यार से विह्वल हो उठते हैं। प्रियतम के महल की ओर अग्रसर होते हुए उनके पैर सौ-सौ बल खाने लगते हैं, हृदय में तरह तरह की शंकाओं का आन्दोलन उठने लगता है -

मन प्रतीत न प्रेम रस, ना इस तन में ढंग।

क्या जाणौं उस पीव सँ, कैसे रहसी रंग ॥

अन्त में मधुर मिलन के वे क्षण भी आते हैं ; जब कि उसकी सारी शंकाएँ, सारी लज्जाएँ और समस्त तर्क वितर्क रस के प्रवाह में बह जाते हैं -

जोग-जुगत से रंग महल में, पिय पाये अनमोल रे।

कहत कबीर आनन्द भयो है, बाजत अनहद ढोल रे ॥

इस प्रकार संत काव्य में श्रृंगार की दोनों अवस्थाओं - विरह और संयोग का चित्रण अनुभूतिपूर्ण शब्दों में हुआ है।

16. आचरण या व्यवहार की महत्ता तथा कथनी करनी का ऐक्य - संत आचरण या व्यवहारवादी हैं। उनकी किसी व्यक्ति, वस्तु, आस्था और विश्वास की सबसे बड़ी कसौटी व्यवहार है। कथनी की अपेक्षा करनी और रहनी का मूल्य अधिक है। व्यक्तिगत स्तर पर मनुष्य की पहचान रहनी से होती है और सामाजिक स्तर पर उसकी करनी से। यही रहनी और करनी-उसके समस्त अन्तर्बाह्य आचार को रूप देती है। संत विचारहीनता को उतना बड़ा दोष नहीं मानते, जितना आचारहीनता को। उनकी सबसे के लिए एक मात्र कसौटी आचरण ही है। जो व्यक्ति कथनी और करनी में अन्तर रखते हैं उनके लिए कबीर का कथन है -

(1) जैसी मुखतैं नीकसै, तैसी चालैं नाहिं।

मानुख नहीं ते स्थान गति, बांधे जमपुर जाहिं ॥¹

(2) कथणी कथी तौ क्या भया, जे करणा ना इहराइ।

कालबूत के कोट ज्यू, देखत ही ढहि जाइ ॥²

सन्तों ने कथनी और करनी में समानता का प्रचार किया। कथनी - करनी की एकता के कारण ही उन्होंने साधु सन्तों को अधिक सम्मान का पात्र घोषित

करते हुए आचरण या व्यवहार की श्रेष्ठता पर बल दिया। साथ ही मात्र कथनी करने वाले पंडितों की उपेक्षा की। पंडितों की कथनी तथा ज्ञान के प्रति कबीर की निम्नांकित पंक्तियाँ अति मननीय हैं -

(1) पंडित केरी पोथिया, ज्यों तीतर का ज्ञान।

औरन सगुण बतावहीं, आपन फन्द न जान॥

(2) पंडित और मसालची, दोनों सूझै नाहिं।

औरन को करै चांदना, आप अंधेरे माहिं॥

इसी प्रकार कबीर ने पुस्तकीय ज्ञान की निरर्थकता को निम्नलिखित शब्दों में बतलाया है -

पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुआ, पंडित भया न कोय।

ढाई आखर प्रेम का, पढ़ै सो पंडित होय॥

इस प्रकार सन्त कथनी - करनी के ऐक्य के समर्थक तथा आचरण या व्यवहार के पक्षपाती हैं। उनकी रहनी के विषय में डॉ. राजदेवसिंह का यह कथन द्रष्टव्य है - "सहज ढंग से विषयों को छोड़ देना ही सन्तों की सहजता है। सन्त इसी सहजता के पक्षधर हैं। स्पष्ट है कि सन्तों की सहजता करनी और रहनी का विषय है। वैसे कथनी का विषय यह कभी नहीं रही। सन्तों का सहज, उनकी रहनी को पारिभाषित करता है। विषयासक्ति का त्याग, तन और मन की पवित्रता, भगवान के प्रति एकान्तनिष्ठा, कथनी और करनी का अभेद - सन्तों की रहनी के ये ही मूल आधार स्तम्भ हैं।"¹

17. समन्वय एवं समाज सुधार की भावना - प्रतिनिधि सन्त कवि कबीर के समय देश की राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक आदि परिस्थितियाँ विशेष प्रकार की थी। दिल्ली सुलतानों ने हिन्दुओं के ऊपर अत्याचार किये। लोगों को बलात् मुसलमान बनाया। समस्त समाज में भौलवियों, मुल्लाओं, पण्डितों तथा पाखण्डी साधुओं का जोर था। धार्मिक क्षेत्र में एक दूसरे के प्रति शत्रुता बहुत गहरी होती चली जा रही थी। ऐसे समय में कबीर ने हिन्दू मुसलमानों में एकता स्थापित करने, विभिन्न धर्मों में समन्वय करने का प्रयास किया तथा समाज में व्याप्त पाखण्ड, रूढ़िवादिता, जातिवाद व साम्प्रदायिकता का घोर विरोध किया।

1. सन्तों की सहज साधना— डॉ. राजदेव सिंह पृष्ठ 110

सन्त कवियों के उपदेशों में विधि और निषेध दोनों पक्षों का समन्वय हुआ। जहाँ एक ओर उन्होंने निर्गुण ईश्वर, राम नाम की महिमा, सत्संगति, भक्ति भाव, परोपकार, दया, क्षमा आदि का वर्णन करते हुए इनका समर्थन पूरे उत्साह से किया है, वहाँ दूसरी ओर मूर्तिपूजा, धर्म के नाम पर की जाने वाली हिंसा, तीर्थ, व्रत, रोजा, नमाज आदि धार्मिक विधि विधानों, बाह्याडम्बरों, जाति-पाँति का भेदभाव आदि की आलोचना करते हुए डटकर विरोध किया है।

सन्त कबीर ने हिन्दुओं और मुसलमानों में समन्वय करने का पूर्णतया प्रयास किया। कबीर ने जातिगत, वंशगत, धर्मगत, संस्कारगत, विश्वासगत और शास्त्रगत रूढ़ियों, परम्पराओं तथा अन्धविश्वासों के माया जाल को बुरी तरह छिन्न भिन्न कर दिया था।

जहाँ वे एक ओर पण्डितों को खरी खोटी सुनाते हैं तो दूसरी ओर मुत्लाओं की कटु आलोचना करते हैं। एक ओर मूर्तिपूजा, तीर्थ यात्रा आदि को सारहीन बताते हैं, तो दूसरी ओर नमाज, रोजा, हज आदि की निरर्थकता सिद्ध करते हैं। वे कहते हैं—

अरे इन दोऊन राह न पाई ।

हिन्दुन की हिन्दुआई देखो, तुरकन की तुरकाई ॥

मूर्ति पूजा के प्रति कबीर का कथन है -

(1) दुनिया ऐसी बाबरी, पाथर पूजन जाय ।

घर की चकिया कोई न पूजै, जेहि का पीसा खाय ॥

(2) पाहन पूजै हरि मिलै, तो मैं पूजो पहार ।

तातै यह चक्की भली, पीस खाय संसार ॥

नमाज के प्रति कबीर कहते हैं -

कौंकर पाथर जोरि के, मस्जिद लई बनाय ।

ता चहि मुस्ला बाँग दे, क्या बहरा हुआ खुदाय ॥

जातिवाद का विरोध करते हुए कबीर ने कहा है -

(1) “जाति पाँति पूछे नही कोई, हरि को भजे सो हरि का होइ ।”

(2) जौ तू वाग्न बगनी जाया, तो आन बाट हवै क्यों नहीं आया ।

जौ तू तुरक तुरकनी जाया, तो भीतर खतना क्यों न कराया ॥

कबीर हिन्दू धर्म और इस्लाम धर्म तथा उनके इष्टदेव, विधि, विधान आदि को अलग-अलग नहीं मानते हैं। उनके अनुसार हिन्दू और इस्लाम धर्म-दोनों का एक ही उद्देश्य है। मूल रूप में दोनों एक ही हैं परन्तु कहने सुनने के लिए दो हैं -

गहना एक कनक ते कहिये, तामें भाव न दूजा।

कहन-सुनन की दुइ करि राखी, इक नमाज इक पूजा ॥

कबीर ने मन-वचन-कर्म में समन्वय करने का उपदेश देते हुए बाहरी आडम्बरों का विरोध किया है। वे कहते हैं -

माला फेरत जुग गया, गया न मन का फेर।

कर का मनका डारि दे, मन का मनका फेर ॥

इसी प्रकार शास्त्र ज्ञान की निस्सारता एवं अनुभवज्ञान या ईश्वरीय प्रेम की महत्ता के बारे में उनका कथन है -

पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुआ, पंडित भया न कोय।

ढाई आखर प्रेम का, पढ़ै सो पंडित होय ॥

सन्तों की उपर्युक्त प्रवृत्तियों के सम्बन्ध में बाबू गुलाबराय का यह कथन दर्शनीय है - “मध्यकालीन हिन्दी सन्त कवियों के आचार विचार, उनका अक्खड़पन और खण्डन मण्डन की वृत्ति आदि सभी परम्परागत हैं। कबीर ने हिन्दू विधि विधानों का जो खण्डन किया अथवा बाह्याचार पर अत्यन्त निर्ममता पूर्वक प्रहार किया है, वह न तो मुसलमानी जोश था और न प्रच्छन्न रूप से इस्लाम प्रचार की भावना की उपज। उन्होंने जो कुछ कहा है, उसकी लम्बी परम्परा थी। पुस्तकीय ज्ञान के प्रति उपेक्षा, जाति-पाँति का विरोध, बाह्याचार के प्रति अनास्था, धार्मिक कट्टरता एवं दुराग्रह के प्रति आक्रोश की भावना, समरसी भाव से स्वसंवेदन ज्ञान पर जोर, चित्तशुद्धि पर बल आदि केवल कबीर के मस्तिष्क की उपज नहीं थी, अपितु किसी न किसी रूप में ये सभी बातें कम से कम हजार वर्षों से चली आ रही थीं।”¹

सन्तों की विषय वस्तु के सम्बन्ध में आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने एक स्थान पर लिखा है - “निर्गुण मतवादी सन्तों के केवल उग्र विचार ही भारतीय नहीं हैं; उनकी समस्त रीति-नीति, साधना, वक्तव्य, वस्तु के उपस्थापन की प्रणाली, छन्द और भाषा पुराने भारतीय आचार्यों की देन हैं।”²

1. हिन्दी काव्य विमर्श, गुलाबराय पृष्ठ 32

2. हिन्दी साहित्य की भूमिका, आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी पृष्ठ 28

सन्त साहित्य की शैलीगत या कलापक्ष सम्बन्धी विशेषताएँ-

सन्तों के लिए काव्य एक साधन है, साध्य नहीं। सन्तों ने हृदय की सत्यानुभूति को अभिव्यक्त करने के लिए काव्य को माध्यम बनाया। इस अभिव्यक्ति में वे काव्य के समस्त बहिरंग उपादान रस, छन्द, अलंकार आदि बिसर गये। चूँकि सन्त कवि और कवि कर्म को हेय मानते थे। अतः उन्होंने काव्य सौन्दर्य की अभिवृद्धि हेतु कृत्रिम साधनों की भी उपेक्षा की। यद्यपि उन्होंने सप्रयास अलंकारादि का प्रयोग नहीं किया, किन्तु फिर भी सन्त काव्य में रस, छन्द, अलंकारादि स्वतः आ गये हैं। इस सम्बन्ध में आचार्य परशुराम चतुर्वेदी का कथन द्रष्टव्य है -

"इसके रचयिताओं का ध्यान जितना वर्ण्य विषय की ओर है, उतना इनकी रचना शैली की ओर नहीं। यही इस साहित्य की एक प्रमुख विशेषता भी है।"¹

भाषा - सुन्दरदास को छोड़कर प्रायः सभी सन्त कवि अशिक्षित या अर्धशिक्षित थे। साथ ही पिछड़ी हुई जातियों तथा परिवारों में समुत्पन्न हुए थे; अतः इनकी भाषा सरल, कृत्रिमतारहित, भावानुकूल, जन साधारण के उपयुक्त, कहीं कहीं अपरिष्कृत, व्याकरण के दोषों से युक्त साधारण कोटि की है।

सन्त कवि भ्रमणशील थे। अतः उनकी भाषा प्रादेशिक भाषाओं या बोलियों के अप्रत्यक्ष प्रयोग से स्वाभाविक रूप से मिश्रित भाषा हो गई, जिसे विद्वान "सधुक्कड़ी" या "खिचड़ी भाषा" कहते हैं। साथ ही सन्तों ने अपने मत को, विचारों को या अनुभूतियों को जनप्रिय बनाने के लिए क्षेत्रीय भाषा के शब्दों का बाहुल्य के साथ प्रयोग किया है। कुछ सन्त कवियों ने जानबूझ कर भाषा में विविधता का समावेश किया है। जैसे - सन्त सुन्दरदास की भाषा में राजस्थानी, गुजराती, पंजाबी, पूर्वी, अरबी, फारसी, अपभ्रंश तथा संस्कृत तक के शब्दों का सम्मिश्रण है। इसी प्रकार कबीर, दादू दयाल, मलूकदास आदि ने भी अनेक भाषाओं के शब्दों का प्रयोग किया है। सन्तों ने सरल से सरल भाषा में दुरूह से दुरूह दार्शनिक विषयों एवं आध्यात्मिक अनुभूतियों की व्यंजना बड़ी सरलता से की है।

शैली - सन्तों ने शुद्ध मुक्तक शैली में काव्य रचना की। सन्तों के काव्य में गीतकाव्य के तत्त्व- भावात्मकता, वैयक्तिकता, संगीतात्मकता, सूक्ष्मता

और भाषा की कोमलता मिलती है। सन्तों की विषयवस्तु का सम्बन्ध स्थूल भौतिक जगत से न होकर सूक्ष्म आध्यात्मिक भावों से है। अतः उन्होंने प्रतीकों के माध्यम से अपनी बात व्यक्त की है। इसके लिए उन्होंने सन्ध्या भाषा या सन्ध भाषा (रहस्यात्मक भाषा) का प्रयोग करना पड़ा है। इसे ही उलटवांसी कहा गया। इस सम्बन्ध में आचार्य परशुराम चतुर्वेदी का कथन है कि -

“इन्होंने (सन्तों ने) सिद्धों, मुनियों तथा नाथपंथियों की भांति सर्वजन सुलभ प्रतीकों का सहारा लेने तथा जनभाषा में ही सब कुछ कह डालने की प्रणाली को भी अंगीकार किया। सिद्ध लोग कभी कभी अपनी महत्त्वपूर्ण बातें एक प्रकार की “सन्ध्या भाषा” की शैली में भी कहा करते थे, जो बहुत कुछ गूढ़ हुआ करती थीं। नाथपंथियों ने उसका प्रयोग “उलटी चरचा” के नाम से किया और वही सन्तों के यहाँ “उलटवासी” या “विपर्यय” नाम से प्रसिद्ध हुई।”¹

छन्द - सन्त साहित्य में अधिकतर साखी (दोहा) छन्द का प्रयोग किया गया है। इसके अलावा सबद (निर्गुण ब्रह्म का आख्यान करने वाले गेय पद) रमैणी (चौपाई दोहा-दोनों का सम्मिलित रूप) कवित्त, सबैया, छप्पय, अडिल्ल, कुण्डलियाँ, त्रिभंगी, बरवै, हंसपद झूलना आदि छन्द भी प्रयुक्त हुए हैं। सन्तों के काव्य को काव्य के रूप की दृष्टि से मुक्तक काव्य तथा गीति काव्य दोनों रूपों में माना है।² डॉ. कोमलसिंह सोलंकी का कथन है कि “सन्तों की रचनाओं में प्रायः निम्नलिखित काव्य रूपों का प्रयोग मिलता है -

(1) साखी	(2) शब्द (गेय पद)	(3) रमैणी	(4) बावती
(5) चौंतीसा	(6) थिती	(7) वार	(8) चांचर
(9) बसंत	(10) हिंडोला	(11) ककहरा	(12) बेलि
(13) बिरदुली	(14) विप्रमतीसी	(15) आदि मंगल।” ³	

साखी के बारे में कबीर का कथन है -

साखी आंखी ज्ञान की, समुझि देखु मन माहि।

बिन साखी संसार का, झगरा छूटत नाहि॥

साखी की रचना दोहा छन्द में की गई है, किन्तु सभी साखियाँ इसी छन्द में नहीं मिलती हैं। इन साखियों में अन्य छन्द जैसे दोहा, चौपाई, श्याम,

1. सन्त साहित्य की रूपरेखा — आचार्य परशुराम चतुर्वेदी पृष्ठ 15

2. नाथपंथ और निर्गुण सन्त काव्य — डॉ. कोमलसिंह सोलंकी पृष्ठ 299

3. वही पृष्ठ 300

हरिपद, गीता आदि के भी अनेक उदाहरण मिल जाते हैं।¹ सन्तों की साखी के मुक्तक मुख्यतः चार प्रकार के माने जा सकते हैं -

(1) रहस्यवादी मुक्तक	(2) ज्ञानसम्बन्धी मुक्तक
(3) नीतिपरक मुक्तक	(4) साधनासम्बन्धी मुक्तक। ²

सन्तों के गेय पद को शब्द कहा गया है। डॉ. रामकुमार वर्मा उन्हें शब्द- ब्रह्म के लिए प्रयुक्त कथन मानते हैं अथवा वह उपदेश शब्द रूप में पद का ही रूप है, जो संगीत के स्वरों में गाया जाता है।³ वस्तुतः सन्तों के "शब्द" "भजन" अथवा "गेय पद" ही है, विषय की दृष्टि से इन्हें चार वर्गों में रक्त सकते हैं -

(1) उपदेशात्मक और नीतिपरक	(2) वैराग्य सम्बन्धी
(3) सिद्धान्त निरूपक	(4) विरह मिलन के पद। ⁴

इन पदों में जहाँ भाव-गाम्भीर्य है, वहाँ संगीत की स्वच्छता और अभिव्यक्ति का मुखर रूप भी है। वैसे अनेक सन्तों को संगीत का ज्ञान भी था,⁵ किन्तु संगीत का ज्ञान ही गीतिकव्य का प्रेरक नहीं है। सन्तों ने यद्यपि राग गौड़ी, राग बिलावल, राग सोरठ, राग बसन्त, सारंग तथा राग घनाश्री आदि रागों में पदों को सजाया है; किन्तु ये राग-रागनियाँ सन्त काव्य के गीतितत्त्व से सीधी सम्बन्धित नहीं मानी जा सकती है।⁶ इसके अनन्तर सन्त काव्य में मारू, भैरव, टोंडी, असावरी, रामकली, मलार, कल्याण, कान्हड़ी, केदार, नट आदि रागों का भी प्रयोग हुआ है। इस प्रकार सन्तों के छन्द उनके भाव के अनुगामी हैं; किन्तु सन्तों ने प्रयोग के सम्बन्ध में काव्य शास्त्र के नियमों की कभी चिन्ता नहीं की।

अलंकार - सन्त साहित्य में अलंकार विधान सप्रयास न होकर स्वतः सिद्ध स्फूर्त है। उनके साहित्य में केवल उन्हीं अलंकारों का बाहुल्य है जिनकी योजना कवि की प्रतिभा अज्ञात रूप से भावों को प्रभावपूर्ण बनाने के लिए किया करती है। इसीलिए उपमा, रूपक, अनुप्रासदि अलंकारों का अधिक प्रयोग हुआ

1. कबीर साहित्य की परख — परशुराम चतुर्वेदी पृष्ठ 186

2. काव्यरूपों के मूल स्रोत और उनका विकास— डॉ. शकुन्तला दुबे पृष्ठ 387

3. हिन्दी साहित्य का द्वितीय खण्ड पृष्ठ 238

4. काव्यरूपों के मूल स्रोत और उनका विकास— डॉ. शकुन्तला दुबे पृष्ठ 177

5. सन्त काव्य — परशुराम चतुर्वेदी पृष्ठ 10

6. नाथपंथ और निर्गुण सन्त काव्य — डॉ. कोमलसिंह सोलंकी पृष्ठ 304

हैं। उनके रूपक और उपमाएँ दैनिक जीवन से सम्बन्धित एवं हृदयहारी हैं। सन्त सुन्दरदास जैसे सुशिक्षित सन्त कवि भी अलंकारों के बाह्य प्रदर्शन के विरोधी हैं, परन्तु फिर भी उनके काव्य में अनेकानेक अलंकारों का प्रयोग हुआ है। सन्तों की रचनाओं में मिलने वाला अलंकार विधान ऊपर से लादा हुआ प्रतीत न होकर अपने विचारों की स्पष्टता एवं रोचकता के लिए प्रयुक्त किया गया है।

“सन्त काव्य में अर्थालंकारों का ही प्रयोग अधिक रूप में मिलता है। सन्तों के अर्थालंकार आध्यात्मिक अभिव्यक्ति में सहायक प्रतीत होते हैं। इस प्रकार गूढ़ एवं अप्रस्तुत रूपों की अभिव्यक्ति में ही सन्तों में अलंकारों का प्रयोग विशेष द्रष्टव्य है; जो प्रतीकात्मक ढंग से प्रतिपाद्य विषय को स्पष्ट करने के लिए प्रयोग में लाये गये हैं। आध्यात्मिक तत्त्वों की स्थूल अभिव्यक्ति एक कठिन कार्य है, उसका स्पष्टीकरण दृष्टान्त के द्वारा किया गया है; जिसकी परम्परा अत्यन्त प्राचीन है। आनन्दातिरेक में विह्वल सन्तों की बानियों में यमक, अनुप्रास आदि का स्वरूप भी मिल जाता है। सन्तों की रचनाओं में मिलने वाले मुख्य अलंकार निम्नलिखित माने जा सकते हैं -

अर्थालंकार - रूपक, विभावना, अन्योक्ति, अर्थान्तरन्यास, दृष्टान्त, तुल्ययोगिता, एकावली, काव्यलिंग, उपमा, अन्योपमा, उत्प्रेक्षा, विरोधाभास, विचित्र, विषय, व्यतिरेक, कारणमाला, क्रम, परिणाम, भेदकातिशयोक्ति, लोकोक्ति।

शब्दालंकार - अनुप्रास, यमक, वीप्सा, निर्मात्रिक।”¹

डॉ. त्रिलोकीनारायण दीक्षित ने सन्त काव्य में प्रयुक्त 55 अलंकारों के नाम दिये हैं।²

सन्तों ने दो प्रकार के साहित्य की रचना की है। प्रथम सामान्य वर्ग के लिए, द्वितीय सम्प्रदायों के विशेष अधिकारियों के लिए। जो साहित्य जन सामान्य के लिए लिखा गया उसमें सरलता, सहजता, सजीवता और प्रभावित करने की अद्वितीय शक्ति है। इसमें माधुर्य और प्रासाद गुण, नादसौन्दर्य तथा रसपरिपाक भी हैं; किन्तु जो साहित्य सम्प्रदाय के अधिकारियों के लिए है, उसमें

1. नाथपंथ और निर्गुण सन्त काव्य — डॉ. कोमलसिंह सोलंकी पृष्ठ 312

2. हिन्दी सन्त काव्य डॉ. त्रिलोकीनारायण दीक्षित पृष्ठ 312

गूढ़ता, विलक्षणता तथा चमत्कारप्रधानता दृष्टिगोचर होती है। इसमें प्रतीक प्रयोग तथा उलटवासियों के भी प्रयोग दर्शनीय है।

निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि सन्त कवियों ने हिन्दी साहित्य को विचारों की अटूट सम्पदा दी, जिससे सम्पूर्ण विश्व को तथा मानव समाज को कल्याण के पथ का पथिक बनाया जा सकता है। व्यक्तित्वान के साथ-साथ समाज कल्याण किया जा सकता है। परमतत्त्व की खोज या निर्गुण ब्रह्म की उपासना, प्रेम, सहज समाधि की स्थिति, सद्गुरु एवं सत्संग की महिमा, दया, क्षमा, सन्तोष, विश्वबन्धुत्व आदि की भावनाओं का प्रचार तथा रूढ़ियों, अन्धविश्वासों एवं बाह्याडम्बरो का विरोध सन्त साहित्य की अनुपम विशेषताएँ हैं। काव्य के कलात्मक सौन्दर्य की दृष्टि से रूपकों के प्रयोग, प्रतीकयोजना, उलटवासी उक्तियाँ, सन्ध्या भाषा का प्रयोग आदि अपने आप में विशिष्ट उपलब्धि हैं। जनसाधारण के प्रतिनिधित्व के रूप में "सधुक्कड़ी भाषा" द्वारा सरल, सहज, भावानुकूल अधिव्यक्ति भी सन्त साहित्य की अद्वितीय विशेषता है। वास्तव में सन्त साहित्य का हिन्दी साहित्य के लिए अद्भुत एवं अनुपम योगदान है, जो हमारे गर्व करने योग्य है और सदैव रहेगा।

इस अध्याय का उपसंहार हम डॉ. रामकुमार वर्मा के निम्नलिखित शब्दों से करते हैं - "जब धर्म के मानदण्डों में नवीन परिवर्तन हो रहे थे और उसे अनेक परिस्थितियों से संघर्ष करना पड़ रहा था उस समय सन्त सम्प्रदाय ने धर्म का ऐसा स्वाभाविक, व्यावहारिक और विश्वासमय रूप उपस्थित किया कि वह विश्वधर्म बन गया और शताब्दियों के लिए जन-जागरण का सन्देश लेकर चला। उसने अन्धविश्वासों को तोड़कर समाज का पुनः संगठन किया, जिसमें ईर्ष्या-द्वेष के लिए कोई स्थान नहीं था। समाज के लिए जिस स्तर तक देववाणी नहीं पहुँच सकती थी तथा धार्मिक ग्रन्थों की गहराई की थाह जिनके द्वारा नहीं ली जा सकती थी, उन्हें धर्मप्रवण बनाकर आशा और जीवन का सन्देश सुनाना सन्त सम्प्रदाय द्वारा ही सम्भव हो सका था। पुरातन का संशोधन और नवीन का संचयन करने में सन्त सम्प्रदाय ने विशेष अन्तर्दृष्टि का परिचय दिया। राजनैतिक, धार्मिक और सामाजिक दिशाओं में इस सम्प्रदाय ने जो कार्य किया है, उसे इतिहास कभी भुला नहीं सकेगा।"

(ग) सन्त साहित्य का काव्यादर्श : भावपक्ष एवं कलापक्ष

किसी भी काव्य का मूल्यांकन प्रायः दो आधारों पर किया जाता है - पहला अनुभूति या भावपक्ष, दूसरा अभिव्यक्ति या कलापक्ष। काव्य के इन दोनों पक्षों में अनुभूति को काव्य की आत्मा तथा अभिव्यक्ति को उसके शरीरके रूप में माना गया है। आत्मा के बिना शरीर का कोई साकार रूप नहीं है। दोनों का सुन्दर समन्वय ही भारतीय काव्य का लक्ष्य रहा है। इस दृष्टि से सन्तों का काव्य विचारणीय है।

विरोधों एवं प्रशस्तियों से अनुप्राणित हिन्दी का निर्गुण सन्त काव्य ज्ञानधारा में एक ओर अपने को उस परम्परा से जुड़ा हुआ पाता है, जिसका अनुभव शास्त्र के विधि विधानों से ऊपर है, जो गूंगे के गुड़ के समान स्वयं आस्वाद की वस्तु है, तो दूसरी ओर लोक भाषा की अलिखित परम्परा से जुड़ा हुआ है, न जिसके पास परिमार्जित भाषा है, न छन्द, न अलंकार। निर्गुण भावधारा में एक ओर मानव के सम्पूर्ण जीवन का लक्ष्य है, तो दूसरी ओर ऊपरी कलासज्जा एवं रूप निखार की ओर से उदासीनता। यह उदासीनता संत कवियों के उस दृष्टिकोण की परिचायिका है, जिसके द्वारा वे सत्य के उद्घाटन में बाह्य अथवा स्थूल के प्रति पूर्णतया अवज्ञा करते हैं। परस्पर इन दो विरुद्ध मान्यताओं के मध्य इस विस्तार को देखकर निर्गुण संत काव्य के सम्बन्ध में विशिष्ट मंतव्य अतिरंजनायुक्त ही प्रतीत होते हैं। इन दोनों मंतव्यों के मध्य भी कुछ विद्वानों ने विचार किया है।¹

सन्त काव्य के सम्बन्ध में डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी के विचार भी द्रष्टव्य हैं—“मूलवस्तु चूंकि वाणी के अगोचर है, इसीलिए केवल वाणी का अध्ययन करने वाले विद्यार्थी को अगर भ्रम में पड़ जाना हो तो आश्चर्य की कोई बात नहीं है। वाणी द्वारा उन्होंने उस निगूढ़ अनुभवैकगम्य तत्त्व की ओर इशारा किया है, उसे “ध्वनित” किया है। ऐसा करने के लिए उन्हें भाषा द्वारा रूप खड़ा करना पड़ा है और अरूप को रूप के द्वारा अभिव्यक्त करने की साधना करनी पड़ी है। काव्यशास्त्र के आचार्य इसे ही कवि की सबसे बड़ी शक्ति बताते हैं। रूप के द्वारा अरूप की व्यंजना, कथन के जरिये अकथ्य का ध्वनन,

काव्य शक्ति का चरम दिग्दर्शन नहीं तो क्या है ? फिर भी वह ध्वनित वस्तु ही प्रधान है, ध्वनित करने की शैली और सामग्री नहीं।"¹

डॉ. श्यामसुन्दरदास का मत है कि "सन्तों की विचारधारा सत्य की खोज में बही है, उसी का प्रकाश करना उनका ध्येय है। उनकी विचारधारा का प्रवाह जीवनधारा के प्रवाह से भिन्न नहीं।"²

डॉ. कोमलसिंह सोलंकी कहते हैं कि - "सन्त कवि साधक है, कविता उनका कर्म नहीं है, अनुभूति ही उनके लिए प्रधान है।"³

डॉ. पीताम्बरदत्त बड़ध्वाल का कथन है - "निर्गुणियों के लिए काव्य का कोई मूल्य नहीं। उनके लिए कविता का उद्देश्य एक साधन मात्र है। वे सत्य के प्रचारक थे और कविता को उन्होंने सत्य के प्रचार का एक महत्वपूर्ण साधन मान रखा था। वे केवल थोड़े से शिक्षितों के लिए ही नहीं कहते थे, उनका लक्ष्य उन सर्वसाधारण हृदयों पर अधिकार करना था जो जनता के प्रधान अंग थे। संस्कृत और प्राकृत जो धर्मग्रन्थों तथा काव्य के लिए भी परिष्कृत भाषाएँ समझी जाती थी, उनके सामने उपेक्षित बन गयी।"⁴ एक स्थान पर वे लिखते हैं - "निर्गुण सम्प्रदाय के प्रवर्तकों ने अपने सर्वजनोपयोगी उपदेशों के लिए जनभाषा हिन्दी को ही अपनाया था। इसलिए उसका प्रतिरूप हिन्दी के काव्य साहित्य में सुरक्षित है। सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक आदि अनेक कारणों ने मिलकर इस आन्दोलन के रूप में वह नवीनता और भाव की वह गहनता प्रदान की जो इसकी विशेषता है।"⁵

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है कि "इस पंथ का प्रभाव शिष्ट और शिक्षित जनता पर नहीं पड़ा; क्योंकि उसके लिए न तो इस पन्थ में कोई नई बात थी, न नया आकर्षण। संस्कृत बुद्धि, संस्कृत हृदय और संस्कृत वाणी का वह विकास इस शाखा में नहीं पाया जाता, जो शिक्षित समाज की अपनी ओर आकर्षित करता। पर अशिक्षित और निम्नश्रेणी की जनता पर इन संत महात्माओं का बड़ा भारी उपकार है। उच्च विषयों का कुछ आभास देकर, आचरण की

1. कबीर— डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी पृष्ठ 220

2. हिन्दी साहित्य— डॉ. श्यामसुन्दरदास पृष्ठ 155

3. नाथपंथ और निर्गुण सन्त काव्य — डॉ. कोमलसिंह सोलंकी पृष्ठ 31

4. हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय— डॉ. पीताम्बरदत्त बड़ध्वाल पृष्ठ 340

5. वही पृष्ठ 2

शुद्धता पर जोर देकर, आडम्बरों का तिरस्कार करके, आत्मगौरव का भाव उत्पन्न करके उन्होंने इसे ऊपर उठाने का स्तुत्य प्रयत्न किया।”¹

सन्तों ने कविता के लिए कविता नहीं की। उनकी दृष्टि में कविता किसी उद्देश्य का साधनमात्र है। वे सत्य के प्रचारक थे और कविता को उन्होंने सत्य के प्रचार का एक प्रभावपूर्ण साधन मान रखा था। वे उस अलभ्य का अनुभव करते हैं, जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता। कबीर ने कहा है -

अविगत अकल अनुपम देख्य, कहता कहाँ न जाई।

सैन करे मन ही मन रहे सैं, गूंगे जानि मिठाई॥²

सन्त दादू भी कहते हैं -

कैसे पारिख पचि मुए, कीमत कही न जाई।

दादू सब हैरान है, गूंगे का गुड़ खाई॥³

सन्त मानव जीवन को कामक्रोधादि मानसिक रोगों से मुक्त कर उसे शुद्ध सक्षम बनाने में तथा विश्व कल्याण के कार्यों में निरत रहते थे। एक विशेष प्रकार का जीवनदर्शन संतकाव्य में अभिव्यक्त हुआ है, जिसमें संसार की निस्सारता एवं जीवन की क्षणभंगुरता का प्रतिपादन करते हुए कामक्रोधादि से परे रहकर सर्वशक्तिमान परमात्मा निर्गुण ब्रह्म के साक्षात्कार हेतु नित्य निरत रहने की प्रेरणा दी गई है।

निर्गुण ब्रह्म के साक्षात्कार की विचित्र, विशिष्ट दिव्यानुभूति को अभिव्यक्ति प्रदान करने में विद्वानों की भाषा की भी परीक्षा हो जाती है। फिर अशिक्षित नातिशिक्षित संत कवियों की भाषा उस अनुभूति को अभिव्यक्ति प्रदान करने में कहाँ सक्षम थी? अतः सांसारिक प्रतीकों के माध्यम से अलौकिक अनुभूति का चित्रण किया गया है और सहज ही उलटवासी-साहित्य का सृजन हो गया। इस सम्बन्ध में डॉ. बड़धवाल लिखते हैं कि निर्गुण समुदाय के सन्त कवि सांकेतिक (प्रतीकात्मक या गुह्य) भाषा में कथन किया करते थे। आध्यात्मिक क्षेत्र में पदार्पण करने वाले सभी कवियों को सांकेतिक भाषा की शरण लेनी पड़ती है।⁴

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास— आचार्य रामचन्द्र शुक्ल पृष्ठ 71

2. कबीर ग्रन्थावली पृष्ठ 90

3. दादू की बानी, सन्त सुधासार पृष्ठ 467

4. हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय— डॉ. पीताम्बरदत्त बड़धवाल पृष्ठ 337

काव्य में अनुभूति को प्रकट करने की कला का भी कम महत्व नहीं है। भाव और विचार के साथ कवियों का कला तथा शैली पक्ष भी महत्वपूर्ण माना गया है। अभिव्यक्ति की कला साधन ही है, साध्य नहीं। डॉ. नगेन्द्र कवियों की कला के सम्बन्ध में लिखते हैं कि—“वास्तविक रूप में तो किसी कवि की कला उसकी सम्पूर्ण आत्मा की अभिव्यक्ति होती है। विभिन्न अनुभूतियों से निर्मित उसका आत्मा अपनी अभिव्यक्ति के लिए प्रयत्न करता हुआ सहजरूप में रंग, रेखा, शब्द आदि में बंधा जो आकार प्राप्त कर लेता है, वही उसकी कला है।”¹ इसी सन्दर्भ में उन्होंने आगे लिखा है - “आत्मा के स्वरूप को समझने के लिए शरीर का अध्ययन जितना महत्व रखता है उतना महत्व हमें इस बाह्य प्रयत्न को अवश्य देना पड़ेगा।”² सन्तों के काव्य का कलापक्ष उनकी अनुभूति की उज्ज्वलता के कारण स्वतः ही निखर आया है। प्रतीक योजना, अलंकार योजना, उनके काव्य का स्वाभाविक सौन्दर्य बन गयी है। भाषा के निखार पर उनका ध्यान बिल्कुल ही नहीं था। उनकी भाषा अनगढ़ सौन्दर्य को अपने में समाए हुए थी। कई जगह अनुभूति की गहनता में भाषा टूटी फूटी, अव्यवस्थित भी हो गयी है, किन्तु वह अपना अर्थ सुविज्ञ पाठक तक प्रेषित कर ही देती है। अभिप्राय यह है कि काव्य रचना सन्तों का लक्ष्य कभी नहीं रहा, सन्तों ने अपने लक्ष्य की प्राप्ति में जो कुछ अभिव्यक्त किया, वह अनुभूति इतनी तीव्र और जनमानस को स्पर्श करने वाली हुई कि जनजीवन में सन्तों की अभिव्यक्तियाँ काव्य के रूप में प्रतिष्ठित हो गयी। साथ ही जो आचार्य ब्रह्मानन्द सहोदर स्वरूप रस की सहजानुभूति को अर्थात् अनुभूति पक्ष को अभिव्यक्ति पक्ष से अधिक मूल्यवान मानते हैं, उनकी दृष्टि में सन्त काव्य उत्कृष्ट कोटि की भावानुभूति मानी गयी; किन्तु जो आचार्य शब्द शिल्प, अलंकार और बाह्य रूप सज्जा को ही काव्य का प्रमुख लक्षण मानते हैं, उनकी दृष्टि में सन्तों की कविता काव्य की कोटि में स्थान नहीं पा सकी। इसीलिए कुछ विद्वान सन्त काव्य को साहित्य मानते हैं, जबकि कुछ उसे साहित्य की सीमा से बाहर रखते हैं।

विभिन्न भारतीय एवं पाश्चात्य विद्वानों के अनुसार काव्यरचना का मूलाधार “स्वान्तःसुखाय” है। प्रत्येक रचना के मूल में कवि की अपनी अनुभूति,

1. देव और उनकी कविता डॉ. नगेन्द्र पृष्ठ 174

2. वही पृष्ठ 174

विचार और भावनाएँ रहती हैं। उनको अभिव्यक्ति देकर कवि जहाँ एक ओर हृदय का भार हल्का करता है, तो दूसरी ओर एक दिव्य आनन्द का अनुभव करता है। जहाँ एक ओर उसकी रचना स्वान्तःसुखाय होती है, तो दूसरी ओर उसमें समाज कल्याण या विश्वकल्याण की भावना भी निहित होती है। इसी प्रकार एक वर्ग नैतिकता आदि के लिए काव्य को प्रयोजनीय मानता है, तो दूसरा इसके विरुद्ध है। पर इतना निर्विवाद है कि काव्य या साहित्य हमारी अनुभूतियों को तीव्र करने के लिए अधिक प्रयोजनीय है। जीवन को समुन्नत, सुसंस्कृत तथा परिष्कृत बनाने के लिए काव्य का प्रमुख योगदान है।

भारतीय एवं पाश्चात्य मनीषियों ने जिन काव्यादर्शों एवं काव्यप्रयोजनों की चर्चा की। हिन्दी के सन्त कवियों ने उन्हें स्वीकार नहीं किया; क्योंकि सन्तों को लौकिक ऐश्वर्य एवं यश की तालसा नहीं थी। जिन सन्तों ने संसार को तुच्छ एवं सारहीन समझकर उसका परित्याग कर दिया था, उनके काव्य द्वारा लौकिक व्यवहार एवं यशोपार्जन की शिक्षा महत्वहीन थी। सन्तों ने अपने समय के किसी प्रचलित आदर्श को ग्रहण नहीं किया। उन्होंने काव्यशास्त्र, छन्द, पिङ्गल आदि के नियमों का न तो अध्ययन किया था और न उन्हें इनमें कोई आस्था थी। इसके विरुद्ध उन्होंने काव्य और काव्यशास्त्र के अन्य आवश्यक तत्वों की निन्दा एवं आलोचना की। साथ ही काव्यशास्त्र के नियमों की परवाह किये बिना उन्होंने तीव्र अनुभूति एवं गहन चिन्तन के आधार पर काव्य रचना की।

सन्तों ने अपनी काव्य रचना द्वारा यह भी सिद्ध कर दिया कि अनुभूति या भाव ही काव्य की आत्मा है और काव्य की आत्मा दृढ़ और उच्च है तब फिर भाषा, शैली, अलंकार आदि रूप बाह्य वातावरण एवं अन्य उपकरण तो स्वतः जुट जायेंगे। इसीलिए सन्तों ने काव्य को कला की दृष्टि से नहीं देखा और न ही उन्होंने काव्य एवं कवि को सम्मान्य ही माना। इसीलिए कबीर तो “कवि कवीनैं कविता मूयै”¹ तक कह देते हैं। पर फिर भी उन्होंने काव्य को स्वाभिव्यक्ति का माध्यम बनाया, इसलिए उनका काव्य अध्ययनीय अवश्य है। सन्त कवियों की रचनाओं में उनके काव्यविषयक आदर्श मिलते हैं।

कबीर ने अपने काव्यादर्श के बारे में लिखा है -

प्रेम भगति ऐसी कीजिए, मुखि अमृत बरिखै चन्द ।

आपहि आप विचारिये, तब केता होइ आनन्द रे ॥

तुम्ह जिनि जानो गीत है, यह निजब्रह्म विचार ।

केवल कहि समझाइया, आत्म साधक सार रे ॥ ¹

“मेरे इस पद को तुम साधारण गीत के रूप में मत जानो । इसमें मेरा “ब्रह्म विचार” निहित है । इसमें मैंने आत्म-साधना का सार भरकर उसे अपने शब्दों द्वारा केवल प्रत्यक्ष कर देने की चेष्टा की है ।” इस “ब्रह्म विचार” में आने वाले अलौकिक आनन्द को उन्होंने “आपहि आप विचारिये, तब केता होइ आनन्द रे” कहकर स्पष्ट कर दिया है । इससे प्रतीत होता है कि वे अपनी इस प्रकार की रचना को आत्मानुभूति की अभिव्यक्ति से अभिन्न रूप में देखते हैं । साथ ही वे इस विचार से भी अनुप्राणित जान पड़ते हैं कि “यदि मैं अपनी साखियों की रचना करूँगा तो सम्भव है कि उससे प्रेरणा पाकर भवसागर में पड़े हुए दुःख सहने वाले लोगों को उसके पार तक पहुँचने का अवसर मिल जाय” -

हरिजी यहै विचारिया, साषी कहाँ कबीर ।

भौ सागर में जीव हैं, जे कोई पकड़ै तीर ॥ ²

इसी प्रकार वे कविता को जग जंजाल के गुणगान का माध्यम बनाने के विरोधी थे । उनकी दृष्टि में वही वास्तविक कवि है, जो ब्रह्म के साक्षात्कार का गायन अथवा रचना करे । कवि के शब्दों में ही -

जग भव का गावना गावै ।

अनुभव गावै सो अनुरागी है ॥

भाषा के विषय में भी कबीर का अपना आदर्श है । वे संस्कृत भाषा की तुलना में लोकभाषा या साधारण बोलचाल की भाषा को अधिक उपयुक्त मानते हैं । संस्कृत एक सीमित समूह की भाषा है; अतः उससे केवल कुछ व्यक्ति ही

1. कबीर ग्रन्थावली, का. ना. प्र. स. पद 5 पृष्ठ 89

2. वही पृष्ठ 56

लाभ उठा सकते हैं। जबकि देशीभाषा जनता की भाषा है; अतः सभी के लिए सुगम एवं सरल सिद्ध हो सकती है।

कबीर संस्कृत को कूप जल के समान सीमित मानते हैं तथा भाषा जन साधारण की बोली, को वे सरिता के स्वच्छ बहते हुए जल के समान उपयोगी मानते हैं —

“संस्कीरत है कूपजल भासा बहता नीर”

कबीर का भाषादर्श यह भी सिद्ध करता है कि वे साहित्य और कला को जनता से दूर की वस्तु या जन-जीवन से भिन्न नहीं मानते हैं। उनके अनुसार जो भाषा या काव्य जनता की पहुँच से दूर है, उसे वे उपयोगी नहीं मानते हैं।

सन्त नानक शब्द रचना या साखी रचना को ब्रह्म के प्रति वास्तविक या सच्ची प्रीति नहीं मानते हैं। उनके मत से शब्दों और साखियों में अभिव्यक्त प्रेम वास्तविक नहीं है, वह केवल बाह्य दिखावा है। छन्दों में हृदय के सच्चे भावों की अभिव्यक्ति सम्भव नहीं है। इसीलिए इनका रचयिता निश्चय ही जमपुर में दुःख का भागी बनता है —

शब्दन साखी सची नहीं प्रीति।

जमपुर जाहिं दुखाँ की रीति ॥¹

इसी प्रकार उन्होंने पुस्तकज्ञान, वेद, कतेब आदि की निन्दा की है -

वेद कतेब तिनि मोहिआ से फूफ सुणावहि लोई।

नरक सुर्ग पत्थर दिसै चिहु गुण सहसा होइ।

पूछ हूँ वेद पढ़तिआ विणु नावै मुठी रोई ॥²

सन्त मलूकदास की दृष्टि में वही रचना कविता है, जिसमें उस ब्रह्म का गुणगान हो; जिसके कारण संसार में अस्तित्व प्राप्त हुआ है। वे प्राकृत विषयों पर काव्य रचना को हेय समझते हैं -

अदम कवित्त का जिसकी कविताई करूँ,

याद करूँ उसको जिन पैदा मुझे किया है।

गर्भ बास पाला आतस में नहि जाला,

तिसकों में बिसारूँ तो मैं किसकी आस जिया हूँ ॥³

1. प्राणसंगली पृष्ठ 24

2. वही पृष्ठ 217

3. मलूकदास की बानी पृष्ठ 31

सन्त कवि जगजीवन साहब ने अपनी रचनाओं में वेद, पुराण, ग्रन्थ आदि की कटु निन्दा की है। उनके अनुसार बिना भजन, भक्ति सब निःसार है; चाहे काव्य-रचना हो या ग्रन्थ-रचना। अनेक पुराणों का पारायण करता हुआ “अहर्निश” कविताई करता हुआ, मानव बिना ब्रह्मज्ञान के निःसार है। तत्त्व के अभाव में कवि व्यर्थ ही तत्त्वरहित पदार्थों में फंसे रहते हैं—

पढ़ै पुराण ग्रन्थ रात दिन करै कविताई सोई।

ज्ञान कथै शब्द कहु तबहु भक्ति न होई ॥¹

सन्त रैदास की दृष्टि में आत्मा के सत्स्वरूप का दर्शन करना ही काव्य का लक्ष्य है। वे हरितत्त्व के बिना सारी पण्डित वाणी को थोथी मानते हैं -

थोथा पण्डित, थोथी बानी। थोथी हरि बिनु सबै कहानी ॥²

पलटू साहब साखी, साबदी, कविता आदि सभी को प्रपंच मानते हैं। एक मात्र निर्गुण ब्रह्म की भक्ति ही सार्थक है, बाकी सब व्यर्थ है -

पलटू सब परपंच है, करै सो फिर पछितात।

एक भक्ति में जानौ, और झूठ सब बात ॥³

सन्त कवि बुल्ला साहब की दृष्टि में शब्दों द्वारा ज्ञान के प्रदर्शन मात्र से कोई बड़ा अथवा महत्त्वपूर्ण कवि नहीं बन जाता है। महत्ता वास्तविक रूप में विश्वास और अनुभव की है—

का भयो शब्द के कहे, बहुत करि ज्ञान दे।

मन परतीत नहीं तो, कहा जम जान दे ॥⁴

दरिया साहब (मारवाड़ वाले) सबका सार एवं काव्य का एक मात्र लक्ष्य निर्गुण राम का स्मरण मानते हैं -

सकल कवित का अरथ है, सकल बात की बात।

दरिया सुमिरन राम का कर लीजे दिन रात ॥⁵

सुन्दरदास सभी सन्तों में सर्वाधिक शिक्षित भाषाविज्ञ थे। उन्होंने काव्य में शुद्ध कवित्त, मोहकता, सरसता, तुकान्तता, छन्दबद्धता आदि को आवश्यक

1. शब्द संग्रह पृष्ठ 75 2. रैदास की बानी पृष्ठ 26

3. पलटू साहब की बानी पृष्ठ 26

4. बुल्ला साहब की बानी पृष्ठ 25

5. दरिया साहब मारवाड़ वाले की बानी पृष्ठ 9

कहा है, परन्तु काव्य का प्राण “हरिजस” है और उसके बिना वह शवतुल्य कहा जा सकता है।

ओढेर काण से तुक अमिल, अर्थहीन अंधो यथा।

कहि सुन्दर हरिजस जीव है, हरिजस बिन मृत कहि तथा ॥¹

जिस प्रकार प्राणविहीन शरीर आकर्षण राहत हो जाता है; उसी प्रकार हरिजस के बिना काव्य फीका एवं नीरस प्रतीत होता है। इस प्रकार सुन्दरदास का काव्यादर्श सर्वप्रथम ब्रह्म यशोगान है तदनन्तर काव्य सौन्दर्य, काव्य सरसता आदि। सन्त अनन्तदास काव्य को दुष्कर्मनाश करने में सहायक मानते हैं। उनके अनुसार काव्य वही है, जो दुष्कर्मा को नष्ट करके नये संस्कारों का निर्माण कर सके -

यह परचयी सुनै जो कोई। सहजै सब सुख पावै सोई।

वक्तां श्रोता पावै मोसा। नासे कर्म हेत के दोषा ॥²

सन्त बोधदास भी काव्य-रचना का उद्देश्य सम्पूर्ण कर्मों का नाश मानते हैं -

पढ़हि सुनिहि जो कोइ, सन्त प्रचई गरब यह।

भला ताहिं का होइ, कठिन करम कटि जाहि सब ॥³

इस प्रकार सभी सन्तों का काव्यादर्श ब्रह्म का गुणगान या हरि का यशोगान, बाह्याचारों की आलोचना, सहज देशभाषा, सरल शैली एवं अलंकारादि रहित साधारण छन्द है। सन्तों ने कवि और काव्य की निन्दा करने पर भी काव्य रचना ब्रह्मस्मरण में सहायक तथा आध्यात्मिक उन्नति में सहायक मानकर की है। काव्य निर्माण उनका लक्ष्य नहीं था, उन्होंने जो दिव्य अनुभूति की थी उसे सामान्य जनता तक पहुँचाने के माध्यम की खोज में कविता स्वयं ही सहायक हो गयी। कविता उनकी अनुभूति को अभिव्यक्त करने का साधन मात्र है परन्तु “वही सब कुछ है” इस भाव का समर्थन किसी भी सन्त कवि ने नहीं किया। सन्त कवियों का आन्तरिक रूप “सन्त” है और बाह्य रूप “कवि”। वे अनुभूति के स्तर पर “सन्त” है और अभिव्यक्ति के स्तर पर “कवि”। हिन्दी साहित्य में उनकी विचारधारा, भाव, विश्वास और उनकी अभिव्यक्ति का विशेष ढंग-इन दोनों प्रकार से उनके काव्य का मूल्यांकन किया जा सकता है।

1. सुन्दर ग्रंथावली द्वितीय खण्ड पृष्ठ 972

2. परिचयी साहित्य — डॉ. त्रिलोकीनारायण दीक्षित पृष्ठ 53

3. वही पृष्ठ 73

(घ) सन्त परम्परा

हिन्दी साहित्य में 13 वीं शती से 18 वीं शती तक अनेक निर्गुण सन्त कवियों का आविर्भाव हुआ। इस सन्त कवियों को कालक्रमानुसार तीन भागों में बाँट सकते हैं।¹

1. पूर्वकालीन सन्त (12 वीं शती से 15 वीं शती तक) - सन्त कवियों में कबीर सर्वश्रेष्ठ एवं केन्द्र स्थानीय है। सन्त कवियों की परम्परा का प्रारम्भ गीत-गोविन्दकार सन्त जयदेव (समय 1179 ई.) से होता है। जयदेव, सद्गना, लालदेव या लल्ला, नामदेव, त्रिलोचन आदि कबीर से पूर्व काल के सन्तों में प्रमुख हैं।

2. मध्यकालीन सन्त (15 वीं शती से 18 वीं शती तक) - कबीर के सम-सामायिक सन्तों में स्वामी-रामानन्द, राघवानन्द, सेनबाई, पीपा, रैदास, धन्नाभगत तथा कबीर के शिष्यों में कमाल, तत्त्वाजीवा, ज्ञानीजी, जागूदास, भागोदास और सूरत गोपाल आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

कबीर के पश्चात् पंथ निर्माण की प्रवृत्ति को बल मिला। जिसके फलस्वरूप अनेक पंथों एवं सम्प्रदायों का निर्माण हुआ। साथ ही कुछ सन्त इन पंथों से पृथक् रहकर भी अपना अस्तित्व कायम रखे रहे। पंथों में कुछ प्रमुख हैं - कबीर पंथ, नानक पंथ या सिख धर्म, खालसा सम्प्रदाय (सं. 1550 से 1600 तक)² साध-सम्प्रदाय निरंजनी सम्प्रदाय, लालपन्थ, दादू पन्थ, बावरी पन्थ, एवं मलूक पंथ (सं. 1600-1700 तक)³ बाबालाली सम्प्रदाय, धामी या प्रणामी सम्प्रदाय, सतनामी या सत्यनामी सम्प्रदाय (कोटवा शाखा, छत्तीसगढ़ी शाखा) धरनीश्वरी सम्प्रदाय, दरियादासी सम्प्रदाय, दरिया पन्थ, शिवनारायणी सम्प्रदाय, चरणदासी सम्प्रदाय, गरीब पन्थ, पानप पंथ, रामसनेही सम्प्रदाय।⁴ कुछ सन्त पंथ से पृथक् भी प्रसिद्ध हुए हैं, जिनमें दीन दरवेश, सन्त बुल्लेशाह, बाबा किनाराम आदी प्रमुख हैं।⁵

3. आधुनिकयुगीन सन्त (18 वीं शती से वर्तमान तक) आधुनिक युग में भी कुछ पंथों का प्रादुर्भाव हुआ। यथा साहिब पंथ (तुलसी साहब)

1. हिन्दी सन्त साहित्य— डॉ. त्रिलोकीनारायण दीक्षित पृष्ठ 27

2. वही पृष्ठ 44 से 58 2. वही पृष्ठ 59 से 70

2. वही पृष्ठ 71 से 83 2. वही पृष्ठ 84 से 85

नांगी सम्प्रदाय (सन्त डेढराज) राधास्वामी सत्संग, (लाला शिवदयाल सिंह खत्री स्वामीजी) सन्त मत तथा सम्प्रदाय से पृथक् सन्तों में स्वामी रामतीर्थ, महात्मा गाँधी आदि उल्लेखनीय हैं।¹

डॉ. त्रिलोकीनारायण दीक्षित² के अलावा आचार्य परशुराम चतुर्वेदी³ एवं मेकालिफ⁴ ने भी जयदेव से इस काव्य परम्परा का प्रारम्भ माना है। डॉ. विष्णुदत्त राकेश⁵ ने तो स्पष्ट शब्दों में इनका समय 13 वीं शताब्दी स्वीकार करने में कोई अनौचित्य नहीं माना है। डॉ. रामेश्वरप्रसाद सिंह ने इसे जयदेव से 19 वीं शताब्दी के महात्मा गाँधी तक विस्तृत माना है।⁶

डॉ. मुक्तेश्वर तिवारी ने भी सन्त परम्परा को तीन भागों में बाँटा है -

1. कबीर के पूर्ववर्ती सन्त - नामदेव, जयदेव आदि।
2. कबीर और उनके समकालीन सन्त - रैदास, पीपा आदि।
3. कबीर के परवर्ती सन्त और सन्त सम्प्रदाय - दादू, नानक, सुन्दरदास आदि।⁷

सन्त परम्परा के सन्दर्भ में नवीन दृष्टि :- आचार्य परशुराम चतुर्वेदी द्वारा लिखित पुस्तक "उत्तरी भारत की सन्त परम्परा" तथा उसी को आधार या प्रमाण मानकर अन्य विद्वानों द्वारा मान्य सन्त परम्परा के सन्दर्भ में डॉ. राजदेवसिंह का यह कथन विशेष ध्यान देने योग्य है - "आचार्य परशुराम चतुर्वेदी ने कबीर के पूर्वकालीन सन्तों में जैदेव, नामदेव, सधना, लालदेव, वेणी और त्रिलोचन का उल्लेख किया है। स्पष्ट है कि सन्तपरम्परा का प्रारम्भ वे इन्हीं से मानते हैं लेकिन गोस्वामी तुलसीदास द्वारा "मानस" के कागधुशुण्डि - गरुड़ सम्वाद में

1. हिन्दी सन्त साहित्य— डॉ. त्रिलोकीनारायण दीक्षित पृष्ठ 86 से 89 तथा उत्तरी भारत की सन्त परम्परा डॉ. परशुराम चतुर्वेदी।

2. वही पृष्ठ 27

3. सन्त साहित्य के प्रेरणा स्रोत आचार्य परशुराम चतुर्वेदी पृष्ठ 13 — 14

4. दी सिक्ख रिलीजन भाग 6 — मेकालिफ पृष्ठ 16

5. उत्तर भारत के निर्गुण पंथ साहित्य का इतिहास पृष्ठ 13 — 14

6. सन्त काव्य में योग का स्वरूप — डॉ. रामेश्वरप्रसाद सिंह पृष्ठ 56

7. मध्ययुगीन सूफी और सन्त साहित्य— डॉ. मुक्तेश्वर तिवारी।

उल्लिखित सन्त लक्षणों तथा आधुनिक हिन्दी समीक्षा में स्वीकृत "सन्त" शब्द की जिस पारिभाषिक मर्यादा की छानबीन करते हुए हमने जिन सन्त लक्षणों का निर्धारण किया है, उनको ध्यान में रखकर देखा जाए तो सन्त परम्परा को इतने पीछे नहीं ले जाया जा सकता।¹ वारकरी सन्त नामदेव एवं त्रिलोचन से सन्त परम्परा का सम्बन्ध जोड़ पाना ऐसी स्थिति में सम्भव नहीं है।² जहाँ तक सन्त सधना, वेणी और कश्मीरी भक्तिन लल्ला योगिनी या लालदेव का सम्बन्ध है इनके विषय में इतनी क्षीण सूचनाएँ उपलब्ध हैं कि उन पर से कोई स्थिर मत नहीं बनाया जा सकता।³

इस देश में नीची जातियों में उत्पन्न होने वाले तथा वेद, ब्राह्मण और वर्णाश्रम व्यवस्था की प्रामाणिकता पर अविश्वास करने वाले लोग बहुत पुराने जमाने से रहते आए हैं। सिद्ध और नाथ इसी तरह की परम्परा वाले व्यक्ति थे। लेकिन राम-नाम के प्रति आस्था और दाशरथि राम की भगवत्ता के प्रति अनास्था रखने वालों का कोई बहुत पुराना प्रमाण नहीं मिलता।⁴ ब्राह्मणश्रेष्ठता में अविश्वास करने वाले, वेद में आस्था न रखने वाले, वर्णाश्रम व्यवस्था को अस्वीकार करने वाले लोगों की परम्परा इस देश में काफी पुरानी है लेकिन उपलब्ध साहित्य एवं अन्य सम्बद्ध सूचनाओं के हिसाब से दाशरथि राम की भगवत्ता को अस्वीकार करने वाले प्रथम व्यक्ति कबीर थे।⁵ कबीर के बाद तुलसी के पहले इस तरह के और भी बहुत सारे सन्तों का साहित्य हमें मिलता है — इन सन्तों के आदि पुरुष कबीर थे। कबीर को "आदि सन्त" मानने का प्रचलन भी है।⁶

आदि सन्त कबीर की परम्परा में पड़ने वाले सन्तों में रैदास, घन्ना, पीपा, सेना और कमाल अति प्रसिद्ध हैं। कहा जाता है कि कमाल कबीर का पुत्र भी

1. सन्तों की सहज साधना (सन्त परम्परा) डॉ. राजदेव सिंह पृष्ठ 42—43

2. वही पृष्ठ 44

3. वही पृष्ठ 44

4. वही पृष्ठ 50

5. वही पृष्ठ 51

6. वही पृष्ठ 52

था और शिष्य भी। शेष चार को कबीर का गुरुभाई बताया जाता है। "रहस्यत्रयी के टीकाकार ने कबीर, पीपा रमादास (रविदास या रैदास) धन्ना और पद्मावती को स्वामी रामानन्द का शिष्य बताया है -

कबीरश्च रमादासः सेना पीपा घनास्तथा ।

पद्मावती तदर्थश्च बडेते च जितेन्द्रियाः ॥ ¹

इन सन्तों की जीवनी की समीक्षा करते हुए आचार्य परशुराम चतुर्वेदी ने लिखा है कि "सम्भव है उक्त सभी सन्त एक ही समय और एक ही साथ ऐसी स्थिति में वर्तमान भी नहीं रहे होंगे, जिससे उनका स्वामी रामानन्द का शिष्य और आपस में गुरुभाई होना किसी प्रकार सिद्ध किया जा सके।"²

डॉ. पवनकुमार जैन पूर्वोक्त सन्त परम्परा का समर्थन करते हुए भी अपना विशेष मत इस प्रकार व्यक्त करते हैं - "वास्तव में सन्त साहित्य या सन्तों का कोई वर्गीकरण नहीं किया जा सकता है; क्योंकि उनकी वाणियों और उपदेशों में इतनी अधिक समानता है कि उन्हें किसी वर्ग में स्थापित नहीं किया जा सकता है। स्वयं कबीर ने अपने हाथ से कुछ नहीं लिखा। उनके अनेक भक्तों ने कबीर के नाम से अनेक पदों की रचना की। अधिकांश सन्त बहुत पढ़े लिखे नहीं थे; अतः उनकी वाणियों को अधिक प्रामाणिक न मानकर उनके मतों को ही अधिक प्रमाणित मानना चाहिए। जैसे - गुरु की महत्ता, वैराग्य का महत्त्व, संसार की असारता, ईश्वर की एकता, ईश्वर को प्राप्त करने की साधना, निर्गुण ईश्वर की भावना, यौगिक साधना के द्वारा परम शिव या ईश्वर की प्राप्ति आदि। इस आधार पर सन्त परम्परा का प्रारम्भ 1308 अर्थात् 14 वीं शती से माना जा सकता है; क्योंकि इसके पूर्व के सन्त मुख्य रूप से हिन्दी के नहीं हैं।"³

(ड) सन्त मत पर अन्य प्रभाव या सन्त मत के आधार

सन्त साहित्य पर उपलब्ध अनेक विद्वानों के विचार एवं अनेक खोजपूर्ण गवेषणाओं के कारण सन्त मत पर अन्य प्रभाव या सन्त मत के आधार पर

1. उ. भा. सं. परम्परा पृष्ठ 224 से उद्धृत

2. उ. भा. सं. परम्परा पृष्ठ 227 से उद्धृत

3. महावीर वाणी के आलोक में हिन्दी का सन्त काव्य— डॉ. पवनकुमार जैन पृष्ठ 59

विचार करते समय यह बात अति स्पष्ट हो जाती है कि सन्त मत ने विविध प्रभावों को ग्रहण किया था। उसके भावपक्ष एवं कलापक्ष के अनेक सांस्कृतिक एवं दार्शनिक आधार हैं; जिनका विवेचन निम्नलिखित है—

सन्त मत के दार्शनिक एवं सांस्कृतिक आधार उपनिषद्, वेदान्त, नाथपन्थ, इस्लाम धर्म, बौद्धधर्म तथा सूफी मत आदि हैं। उन्होंने उपनिषद् से ब्रह्म, जीव, जगत और माया सम्बन्धी विचारों के साथ-साथ तत्सम्बन्धी उपमानों और अप्रस्तुत योजनाओं को ग्रहण किया है। वेदान्त से सन्तों ने ब्रह्म एवं माया सम्बन्धी विवेचन के साथ आत्मा की अखण्डता, एकरसता, अद्वैतता, अकथनीयता आदि ग्रहण की हैं। नाथपन्थी योगियों से शून्यवाद, गुरु की महत्ता, योगसम्बन्धी साधनापद्धति तथा तन्त्रसाधना भी सन्तों द्वारा आत्मसात् की गई है। सन्त साहित्य में एकेश्वरवाद का समर्थन तथा मूर्तिपूजा, अवतारवाद, सामाजिक असमानता आदि का विरोध इस्लामधर्म के प्रभाव के सूचक हैं। सूफियों के साधनात्मक एवं भावनात्मक आदर्शों के साथ-साथ दाम्पत्य प्रतीकों की योजना तथा प्रेम, सहिष्णुता, वैदिक कर्मकाण्डों एवं बाह्याचारों की आलोचना में बौद्धधर्म का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है।¹

इस प्रकार सन्त साहित्य में उपनिषदों एवं वेदान्त का दार्शनिक विवेचन, ब्रजयानियों की तान्त्रिक साधना, सिद्धों की गूढ़ोक्तियाँ (उलटवासियाँ) नाथपन्थ की योगसाधना, बौद्धों का दुःखवाद एवं बाह्याचारों की आलोचना, सूफियों का प्रेम, इस्लाम का एकेश्वरवाद आदि सभी किसी न किसी रूप में समाहित हैं। इन सबके अतिरिक्त कुछ विद्वानों² ने वैष्णव भक्ति आन्दोलन एवं महाराष्ट्रीय सन्तों का प्रभाव सन्त काव्य पर बताते हुए प्रेमतत्त्व वैष्णवों से लिया हुआ माना है न कि सूफी मत से। इसके लिए उन्होंने दोनों के प्रेम निरूपण में अन्तर भी स्पष्ट किया है।

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास, सम्पादक डॉ. नगेन्द्र सन्तकाव्य पृष्ठ 138 से 142

2. साहित्यिक निबन्ध— डॉ. गणपतिचन्द्र गुप्त, सन्त काव्य उद्गम स्रोत और प्रवृत्तियाँ पृष्ठ 91-93 तथा साहित्यिक निबन्ध डॉ. शान्तिस्वरूप गुप्त सन्त काव्य पृष्ठ 362-363

कई विद्वानों ने सन्त साहित्य पर जैनधर्म का प्रभाव भी स्वीकार किया है - श्री अगरचन्द नाहटा ने "सन्मति वाणी" पत्रिका में पं. नमदिश्वर चतुर्वेदी के एक निबन्ध "सन्त साहित्य में जैन सन्तों का योगदान" का उल्लेख किया है।¹ इस निबन्ध में श्री चतुर्वेदी ने स्पष्ट रूप से जैन सन्तों की वाणी में प्रयुक्त जैन दर्शन की मान्यताओं के प्रभाव को सन्त साहित्य पर स्वीकार किया है।

डॉ. पवनकुमार जैन ने लिखा है - "जैन भगवत्कृतियों की आत्मशुद्धि एवं आचार शुद्धि की दृष्टि से सन्त बड़े प्रभावित थे। मोक्ष से जोड़ने वाली साधना को जैनों ने योग कहा था और सन्तों का इस विचार से अवरोध था। जैनों के साहित्य में ध्यान का विस्तृत विवेचन मिलता है।"²

डॉ. रामेश्वरप्रसादसिंह की मान्यता है कि सामाजिक दृष्टिकोण से जैन और बौद्ध की दया तथा आचार को सन्त कवियों ने अपनाया। डॉ. सिंह का स्पष्ट मत है कि "जैन सन्त कवियों एवं इनके पूर्ववर्तियों कुछ जैनाचार्यों ने हिन्दी के सन्त काव्य को प्रेरित करने में प्रभूत योग दिया है। हिन्दी निर्गुण सन्त काव्य बहुलांशतः प्रेरित प्रभावित हुआ है, यह निस्सन्देह कहा जा सकता है।"³

डॉ. मुक्तेश्वर तिवारी के मतानुसार जैनदर्शन का आधार नैतिक संयम है। प्राचीन मत-मतान्तरों से प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष से प्रभावित होकर हमारे हिन्दी सन्त कवियों ने भी अपने सम्पूर्ण साधना का मूल आधार नैतिक संयम को ही माना है। नैतिक संयम के अन्तर्गत उन्होंने सत्य, अहिंसा, अस्तेय, अपरिग्रह, इन्द्रिय-निग्रह, दया, क्षमा, कथनी- करनी का एकत्व, विश्वास, श्रद्धा, विनय, मृदु वचन, धैर्य, स्वावलम्बन, परिश्रम, सरल जीवन, परहित साधना, सेवाभाव, साधुसंगति आदि सभी सृजनात्मक कर्मों को लिया है।⁴

डॉ. शिवकुमार की मान्यता है कि संतकाव्य पर जैन मुक्तक काव्य का प्रभाव देखा जा सकता है।⁵

1. शोध प्रबन्ध पत्रिका अप्रैल 1979, बिहार राष्ट्र भाषा परिषद्

2. महावीर वाणी के आलोक में हिन्दी का सन्त काव्य— डॉ. पवनकुमार जैन पृष्ठ 92

3. सन्त साहित्य में योग का स्वरूप— डॉ. रामेश्वरप्रसाद सिंह पृष्ठ 59

4. मध्ययुगीन सूफी और सन्त साहित्य— डॉ. मुक्तेश्वर तिवारी पृष्ठ 292-293

5. हिन्दी साहित्य : युग और प्रवृत्तियाँ— डॉ. शिवकुमार पृष्ठ 124

डॉ. गोविन्द त्रिगुणायत ने स्वीकार किया है कि सन्त लोग जैन दर्शन से परिचित थे।¹

सन्तों ने न तो वेद पढ़े थे और न, कुरान अपितु देशभर में फैले हुए योगियों का सत्संग अवश्य किया था। यह सत्संग ही इन सन्तों की वाणी का मूल स्रोत है। इन योगियों में जैन योगियों का भी सत्संग अवश्य हुआ होगा। अतः सन्त काव्य को जैनाचार्यों से प्रभावित माना जा सकता है। इस सम्बन्ध में डॉ. पवनकुमार जैन लिखते हैं कि - “उन्होंने जैन दर्शन के सिद्धान्तों को प्रत्यक्ष रूप से अपनाने की सम्भवतः कोई चेष्टा नहीं की थी; फिर भी तत्कालीन जैन मुनियों की सत्संगति के प्रभाव से जैनदर्शन के कुछ सिद्धान्तों की छाया उनकी विचारधारा पर पड़ गयी है। अध्यात्म पक्ष की अपेक्षा सन्त लोग जैनदर्शन के आचार पक्ष से अधिक प्रभावित हुये हैं। उनमें सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यगचारित्र से सम्बन्धित अनेक उक्तियाँ मिलती हैं। कुछ सन्तों में तेरह गुणस्थानों का भी संकेत मिलता है। जैनदर्शन के अध्यात्म पक्ष का दो- एक बातों का भी सन्तों की बानियों पर प्रभाव डूँढ़ा जा सकता है।”²

आचार्य परशुराम चतुर्वेदी भी सन्त साहित्य पर जैनधर्म एवं जैनाचार्यों का प्रभाव स्वीकार करते हैं। इस सन्दर्भ में “सांस्कृतिक रेखाएँ” में उनके लेख “सन्त साहित्य और जैन हिन्दी कवि” को देखा जा सकता है।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि सन्त साहित्य जैनधर्म, जैनदर्शन एवं जैनाचार्यों से भी प्रेरित प्रभावित है।

हिन्दी के निर्गुण सन्त काव्य में अनेक विरोधी प्रवृत्तियाँ की ओर इंगित करते हुए आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का कथन है- “निर्गुणवाद वाले और दूसरे संतों के वचनों में कहीं भारतीय अद्वैतवाद की झलक मिलती है, कहीं योगियों के नाड़ी चक्र की, कहीं सूफियों के प्रेमतत्त्व की, कहीं पैगम्बर (कट्टर खुदावाद) की और कहीं अहिंसावाद की। अतः तात्त्विक दृष्टि से न तो हम इन्हें पूरे

1. हिन्दी की निर्गुण काव्यधारा और उसकी दार्शनिक पृष्ठभूमि— डॉ. गोविन्द त्रिगुणायत पृष्ठ 96-97

2. महावीर वाणी के आलोक में हिन्दी का सन्त काव्य— डॉ. पवनकुमार जैन पृष्ठ 95

अद्वैतवादी कह सकते हैं और न एकेश्वरवादी, दोनों का मिला जुला भाव इनकी बानी में मिलता है। इनका लक्ष्य एक ऐसी सामान्य भक्ति पद्धति का प्रचार था, जिसमें हिन्दू और मुसलमान दोनों योग दे सकें और भेदभाव का कुछ परिहार हो। बहुदेवोपासना, अवतार और मूर्तिपूजा का खण्डन ये मुसलमानी जोश के साथ करते थे और मुसलमानों की कुरबानी (हिंसा), नमाज, रोजा आदि की असारता दिखाते हुये ब्रह्म, माया, जीव, अनहदनाद, सृष्टि, प्रलय आदि की चर्चा पूरे हिन्दू ब्रह्म ज्ञानी बनकर करते थे। सारांश यह है कि ईश्वर पूजा की उन भिन्न भिन्न बाह्य विधियों पर से ध्यान हटाकर, जिनके कारण धर्म में भेदभाव फैला हुआ था, ये शुद्ध ईश्वर प्रेम और सात्त्विक जीवन का प्रचार करना चाहते थे।”¹

इसी प्रकार डॉ. हरदत्तशर्मा सुधांशु ने अपने लेख “सन्त कवियों का हिन्दी साहित्य में योगदान” में लिखा है - “सन्त कवियों ने सिद्धों और नाथों की योग साधना को, जैनों और बौद्धों की अहिंसा को, वैष्णवों के सात्त्विक जीवन को प्रपत्तिवाद को अपनाया है। वेदान्त के अद्वैतवाद की झलक उनके काव्य में सर्वत्र देखने को मिलती है - साथ ही सूफीमत की प्रेम साधना का प्रभाव उन्होंने ग्रहण किया है।”²

डॉ. श्यामसुन्दरदास के अनुसार - “कबीर की निर्गुण शाखा वास्तव में योग का ही परिवर्तित रूप है; जो सूफी, इस्लामी तथा वैष्णव मतों से भी प्रभावित हुई थी।”³ इन सन्तों ने उपासना में निर्गुण की प्रतिष्ठा करके तथा परमार्थ सिद्धि में वेदों, पुराणों तथा कुरान आदि की गौणता दिखाकर एक ऐसी भूमिका तैयार की; जिस पर हिन्दू और मुसलमान दोनों समान भाव से खड़े हो सकते थे।⁴

डॉ. रामकुमार वर्मा के अनुसार - “नाथपंथ का विकसित रूप सन्त काव्य में फल्लवित हुआ; जिसका आदि ऐतिहासिक सिद्धों के साहित्य में है। गोरखनाथ ने अपने पंथ के प्रचार में जिस हठयोग का आश्रय ग्रहण किया था, वही हठयोग

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास— आचार्य रामचन्द्र शुक्ल पृष्ठ 65

2. प्रकाशित पत्राचार अध्ययन संस्थान, राजस्थान विश्वविद्यालय जयपुर पृष्ठ 5

3. हिन्दी साहित्य — डॉ. श्यामसुन्दरदास पृष्ठ 139 दशम संस्करण

4. हिन्दी साहित्य — डॉ. श्यामसुन्दरदास पृष्ठ 143

सन्त काव्य में साधना का प्रधान रूप हो गया। अतः सिद्ध साहित्य, नाथपन्थ और सन्त मत एक ही विचारधारा की तीन परिस्थितियाँ हैं।¹

डॉ. राजदेवसिंह का कथन है कि — सन्तों के धार्मिक - दार्शनिक शब्दों के अध्ययन से स्पष्ट होता है² कि उनके द्वारा प्रयुक्त पारिभाषिक शब्दों की सबसे बड़ी संख्या योग और तन्त्रों के पारिभाषिक शब्दों की है। अतः निश्चित है कि योग और तन्त्र सन्तों की दार्शनिक विचार-परम्परा घने भाव से सम्बद्ध है।³ नाथ परम्परा से विकसित होने वाले विभिन्न सन्त सम्प्रदायों का गुह्य योग-साधना से अतीव घना सम्बन्ध है।⁴ नाथ सम्प्रदाय का सम्बन्ध भारत के अतीव प्राचीन सिद्ध सम्प्रदाय से कहीं न कहीं अवश्य है क्योंकि नाथों की ही तरह सिद्धों का प्रधान लक्ष्य भी मृत्यु को अपवारित करके "अमरता" प्राप्त करना ही है।⁵

नाथमत के सम्बन्ध में आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के विचार द्रष्टव्य हैं- दसवीं शताब्दी में बौद्धों, शाक्तों और शैवों का बड़ा भारी समुदाय ऐसा था; जो ब्राह्मण और वेद के प्राधान्य को नहीं मानता था।⁶ नाथ सम्प्रदाय मूलतः शैवसम्प्रदाय से सम्बद्ध था।⁷ नाथमत को मानने वाली जातियाँ सामाजिक दृष्टि से बहुत नीची मानी जाती हैं।⁸

हिन्दी सन्त साहित्य पर नाथ सम्प्रदाय के प्रभाव का ऋण मूर्धन्य मनीषियों ने स्वीकार किया है। कतिपय विद्वानों के विचार ध्यातव्य हैं - मध्यकालीन विचारधारा पर नाथ सम्प्रदाय का अक्षुण्ण प्रभाव पड़ा है।⁹ हिन्दी का सन्तसाहित्य नाथ सम्प्रदाय का जितना ऋणी है, उतना अन्य किसी सम्प्रदाय का नहीं। कबीर दादू आदि सन्त इन्हीं योगियों की परम्परा में दिखाई पड़ते हैं और अपनी बहुत

1. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास (तृतीय संस्करण) डॉ. रामकुमार वर्मा पृष्ठ 298
2. शब्द और अर्थ : सन्त साहित्य के सन्दर्भ में डॉ. राजदेवसिंह
3. सन्तों की सहज साधना डॉ. राजदेव सिंह पृष्ठ 54
4. वही पृष्ठ 55
5. वही पृष्ठ 59
6. नाथ सम्प्रदाय — आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी पृष्ठ 145-146
7. वही पृष्ठ 3 - 9
8. वही पृष्ठ 20 -23
9. कबीर की विचारधारा — डॉ. गोविन्द त्रिगुणाचल पृष्ठ 135

सी मान्यताओं को उसी टुकसाल से निकालते हैं।¹ सन्त काव्य के पदों में जो ज्ञान, निष्ठा, शारीरिक और मानसिक पवित्रता, बाह्यचारों का विरोध और वाक्संयम दिखाई देता है, उसका मूल स्रोत नाथ पंथियों का साहित्य और उसकी परम्परा ही है।² सन्त मत नाथमत का उत्तराधिकारी है। स्वयं नाथमत महायान बौद्धधर्म से पर्याप्त मात्रा में प्रभावित है। इस प्रकार नाथमत, सन्तमत और उत्तरकालीन वैष्णव धर्म, महायान बौद्धधर्म से समानरूप से प्रभावित और सम्बद्ध है।³ आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी नाथपंथी योगमार्गियों पर बौद्धधर्म का प्रभाव स्वीकार करते हैं।⁴ उनके अनुसार - “आर्येतर जातियों में बहुत पहले से ही विद्यमान दुःखवाद, वैराग्य, मूर्तिपूजा आदि बातें हिन्दू धर्म में बौद्ध धर्म से ही होकर आई हैं।”⁵

सन्तों की भक्ति के सम्बन्ध विद्वानों के विविध विचार हैं। जहाँ एक ओर आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जैसे मनीषी विद्वान मध्यकालीन भक्ति का कारण मुसलमानों के आक्रमण मानते हुए लिखते हैं - “देश में मुसलमानों का राज्य प्रतिष्ठित हो जाने पर हिन्दू जनता के हृदय में गौरव और उत्साह के लिए अवकाश न रह गया। पूज्य पुरुषों का अपमान होता था और वे कुछ भी न कर सकते थे। ऐसी दशा में अपनी वीरता के गीत न तो वे गा ही सकते थे और न बिना लज्जित हुए सुन ही सकते थे। इतने भारी उलट-फेर के पीछे हिन्दू जनसमुदाय पर बहुत दिनों तक उदासी छाई रही। अपने पौरुष से हताश जाति के लिए भगवान की शक्ति और करुणा की ओर ध्यान ले जाने के अतिरिक्त दूसरा मार्ग ही क्या था?”⁶ वहीं दूसरी ओर हिन्दी के लब्धप्रतिष्ठ मनीषी आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी का तर्कसंगत कथन है कि अगर हम भक्ति आन्दोलन को मुसलमानों के आगमन के परिप्रेक्ष्य में देखें तो इसका आरम्भ सर्वप्रथम उत्तरभारत में होना चाहिए था; क्योंकि मुसलमानों का आगमन उत्तर

1. हिन्दी साहित्य की निर्गुण धारा में भक्ति— डॉ. श्यामसुन्दरदास पृष्ठ 92

2. सन्त काव्य में परोक्ष सत्ता का स्वरूप— डॉ. बाबूराव जोशी पृष्ठ 126

3. सन्तों की सहज साधना— डॉ. राजदेवसिंह पृष्ठ 147

4. नाथ सम्प्रदाय— आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी पृष्ठ 59 सन् 1956

5. सूर साहित्य— आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी पृष्ठ 49 सन् 1956

6. हिन्दी साहित्य का इतिहास— आचार्य रामचन्द्र शुक्ल पृष्ठ 65

से ही हुआ। लेकिन यह ऐतिहासिक रूप से सच है कि भक्त कंठ सर्वप्रथम दक्षिण के आलवार भक्तों के बीच फूटा। इतिहासकार सतीशचन्द्र लिखते हैं “तुर्कों के भारत आगमन से काफी पहले से ही यहाँ एक भक्ति आन्दोलन चल रहा था, जिसने व्यक्ति और ईश्वर के बीच रहस्यवादों सम्बन्ध को बल देने का प्रयास किया _____ परन्तु भक्ति आन्दोलन की जड़े सातवीं से बारहवीं शताब्दी के मध्य दक्षिण भारत में ही जमी। _____ शैव नयनार और वैष्णव अलवार जैनियों और बौद्धों के अपरिग्रह को अस्वीकार कर ईश्वर के प्रति व्यक्तिगत भक्ति को ही मुक्ति का मार्ग बताते थे।”¹ अतः आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी का यह कथन पूर्णतः सत्य है कि अगर मुसलमान न भी आये होते तब भी हिन्दी साहित्य का बाहर आना वही होता जो आज है।

सन्तों की भक्ति के बारे में रामचन्द्र शुक्ल लिखते हैं कि — “इनका लक्ष्य एक ऐसी सामान्य भक्ति पद्धति का प्रचार करना था; जिसमें हिन्दू और मुसलमान दोनों योग दे सकें और भेदभाव का कुछ परिहार हो।”² वे आगे लिखते हैं - कबीर ने जिस प्रकार निराकार ईश्वर के लिए भारतीय वेदान्त का पल्ला पकड़ा; उसी प्रकार निराकार ईश्वर की भक्ति के लिए सूफियों का प्रेमतत्त्व लिया और अपना “निर्गुणपन्थ” धूमधाम से निकाला।³ “सन्तों की भक्ति के सम्बन्ध में एक धारा यह भी है कि भक्ति उनकी परम्परागत वस्तु नहीं है, बल्कि वह सीखी हुई है और रामानन्द से सीखी हुई है; लेकिन सन्त साहित्य को सरसरी दृष्टि से देखने पर वह नयी सीखी हुई नहीं लगती, भक्ति उनकी अपनी ही चीज है।”⁴ रामानन्द निर्गुणभक्ति और योग के प्रति आस्थाशील थे और उत्तरीभारत में पहले से ही स्वरूप ग्रहण करने वाली निर्गुण भक्ति को राम की दिशा में मोड़ने का श्रीगणेश उन्हीं के हाथों में हुआ था। जिसे आगे चलकर कबीर तथा अन्य अनेकशः सन्तों ने बहुशः प्रचारित प्रसारित किया।⁵

1. मध्यकालीन भारत—सतीशचन्द्र (भारत में सांस्कृतिक विकास) पृष्ठ 119-201

2. हिन्दी साहित्य का इतिहास— रामचन्द्र शुक्ल पृष्ठ 56

3. वही पृष्ठ 58

4. सन्तों की सहज साधना— डॉ. राजदेवसिंह पृष्ठ 147

5. वही पृष्ठ 164

सन्त साहित्य की सर्जना का एक स्रोत भक्ति आन्दोलन भी है।¹ सन्त काव्य में जिस भक्ति के दर्शन हमें होते हैं; उसकी प्रेरणा उसे महाराष्ट्र के वारकरी सम्प्रदाय से भी मिली है।² इसी का समर्थन करते हुए डॉ. रामकुमार वर्मा का कथन है कि “उत्तरी भारत में सन्त सम्प्रदाय का जो उत्थान वैष्णव भक्ति को लेकर हुआ, उसका पूर्वाङ्ग महाराष्ट्र में निष्ठल (वारकरी सम्प्रदाय) के सन्तों द्वारा प्रस्तुत हो चुका था।” डॉ. वर्मा के अनुसार³ - विठ्ठल की आन्तरिक उपासना के तीन उपकरण थे - 1 भक्ति का प्रेम तत्त्व 2 नाथ सम्प्रदाय का चिन्तन और 3 मुसलमानी प्रभाव से मूर्ति उपासना का वर्जित वातावरण। इसमें कोई सन्देह नहीं कि सन्त साहित्य की सर्जना में इनकी प्रेरणा का प्रमुख स्थान है।⁴ साथ ही उनका यह कथन भी द्रष्टव्य है कि - “भक्ति आन्दोलन के महासमर में भी योग का दीपक सन्तों का विश्राम स्थल बना रहा। नाथ सम्प्रदाय की आचार निष्ठा, विवेकसम्पन्नता, अंधविश्वासों को तोड़ने की उग्रता एवं परम्परागत कर्मकाण्डों की निरर्थकता सन्त सम्प्रदाय में सीधी चली आई।”⁵

डॉ. ताराचन्द⁶ एवं डॉ. हमायू कबीर⁷ जैसे कुछ विद्वान सन्त काव्य के प्रादुर्भाव का कारण एक मात्र इस्लाम को मानते हैं किन्तु श्री रामधारीसिंह दिनकर का मत है कि - “जिसने सिद्धों के पद पढ़े हैं; वह त्रिकाल में भी नहीं मान सकता है कि नानक, कबीर और दादू के प्रादुर्भाव का एक मात्र कारण इस्लाम था।”⁸ सन्त साहित्य के मर्मज्ञ डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी⁹ और डॉ. रामकुमार वर्मा¹⁰ दोनों ही सन्त काव्य का सम्बन्ध बौद्धों, सिद्धों एवं नाथों की वाणियों

1. सन्त काव्य में परोक्ष सत्ता का स्वरूप— डॉ. बाबूराव जोशी पृष्ठ 44
2. सन्त काव्य में परोक्ष सत्ता का स्वरूप— डॉ. बाबूराव जोशी पृष्ठ 44
3. हिन्दी साहित्य (द्वितीय संस्करण) डॉ. रामकुमार वर्मा सम्पादक धीरेन्द्र वर्मा एवं ब्रजेश्वर वर्मा पृष्ठ 192
4. सन्त काव्य में परोक्ष सत्ता का स्वरूप— डॉ. बाबूराव जोशी पृष्ठ 44
5. हिन्दी साहित्य (द्वितीय संस्करण) डॉ. रामकुमार वर्मा सम्पादक धीरेन्द्र वर्मा एवं ब्रजेश्वर वर्मा पृष्ठ 204
6. इन्कल्यूएन्स ऑफ इस्लाम आन इण्डियन कल्चर— डॉ. ताराचन्द
7. अवर हेरीटेज— डॉ. हमायू कबीर
8. संस्कृति के चार अध्याय— रामधारीसिंह दिनकर पृष्ठ 279
9. हिन्दी साहित्य की भूमिका— हजारीप्रसाद द्विवेदी सन् 1944 पृष्ठ 31
10. हिन्दी साहित्य— डॉ. रामकुमार वर्मा पृष्ठ 189

से मानते हैं। डॉ. धर्मवीर भारती सिद्ध साहित्य के परवर्तीप्रभाव और परिणाम स्वरूप सन्त साहित्य का आविर्भाव मानते हैं।¹ डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी ने हिन्दी साहित्य की भूमिका में संतों की रचनाओं को भारतीय चिन्तन का स्वाभाविक विकास माना है। उनका कथन है कि - यदि कबीर आदि निर्गुण मतवादी सन्तों की वाणियों की बाहरी रूपरेखा पर विचार किया जाए तो मालूम होगा कि यह सम्पूर्णतः भारतीय है और बौद्ध धर्म के बाद सिद्धों और नाथ पंथी योगियों के पदादि से उनका सीधा सम्बन्ध है।² वे संतों को सौ फीसदी भारतीय परम्परा में सम्बद्ध मानते हैं। उनमें भक्ति का रस और वेदान्त का ज्ञान है।³

“सारांश यह है कि धार्मिक दृष्टि से हिन्दू धर्म की विकृतियों और सामान्य धर्म के तत्त्व, आचार, तप, ज्ञान, वैराग्य, सत्य, आस्तिकता आदि के अतिरिक्त बौद्धधर्म की कर्मकाण्ड विरोधी प्रवृत्ति, नाथ सम्प्रदाय का आत्मानुभव, विठ्ठल सम्प्रदाय की प्रेमपूर्ण भक्ति, जातीय बन्धन की शिथिलता, स्वामी रामानन्द का उदार दृष्टिकोण एवं सूफी मत की रहस्यवादी मादकता सन्त साहित्य की प्रमुख सृजन प्रेरणाएँ हैं।”⁴

(च) सन्त काव्य : साहित्य असाहित्य का निर्णय

काव्य या साहित्य के लक्षण, प्रयोजन, साधन आदि के बारे में भारतीय एवं पाश्चात्य अनेक विद्वानों ने अपने-अपने विचार व्यक्त किये हैं। डॉ. भागीरथ मिश्र ने लिखा है - “काव्य का स्वरूप बड़ा व्यापक है। जितना व्यापक है, उतना सूक्ष्म भी। अतः इसे लक्षण की परिधि में बाधना अत्यन्त कठिन कार्य है।”⁵ इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए हम सन्त काव्य के स्वरूप, विषय वस्तु तथा अभिव्यक्ति शैली के बारे में विचार करेंगे। सन्त काव्य के बारे में कतिपय विद्वानों के विचार निम्नांकित हैं -

डॉ. रामकुमार वर्मा ने सन्त काव्य की परिभाषा देते हुए लिखा है कि - “उत्तर भारत में मुसलमानी प्रभाव की प्रतिक्रिया के रूप में निराकार और अमूर्त

1. हिन्दी साहित्य— डॉ. धर्मवीर भारती पृष्ठ 322 से 335

2. हिन्दी साहित्य की भूमिका— हजारीप्रसाद द्विवेदी पृष्ठ 31

3. वही पृष्ठ 164

4. सन्त काव्य में परोक्ष सत्ता का स्वरूप— डॉ. बाबूराव जोशी पृष्ठ 44

5. काव्यशास्त्र— डॉ. भागीरथ मिश्र पृष्ठ 1

ईश्वर की भक्ति का जो रूप स्थिर हुआ वही साहित्य के क्षेत्र में “सन्त काव्य” कहलाया।”¹

जहाँ एक ओर डॉ. पीताम्बर बड़धवाल² जैसे मनीषी सन्तों की वाणियों को साहित्य की अमूल्य निधि मानते हैं; वहाँ दूसरी ओर डॉ. नगेन्द्र³ एवं आचार्य रामचन्द्र शुक्ल⁴ जैसे प्रबुद्ध विचारक सन्त काव्य के साहित्यिक मूल्य को स्वीकार ही नहीं करते हैं।

सन्त काव्य का साहित्य के निकष पर मूल्यांकन करने के लिए एक विशेष दृष्टि की आवश्यकता है। सन्त काव्य “लौकिक” काव्य शास्त्र की सुदृढ़ मर्यादा के निर्णय का मुख्यापेक्षी नहीं है। उसे इस कसौटी पर कसना उचित नहीं है; क्योंकि सन्त कवि आध्यात्मिक साधक थे। उनकी काव्य निर्माण में एक विशेष जीवन दृष्टि थी। उस आध्यात्मिक दृष्टि को ध्यान में रखकर ही हमें उनके साहित्य का निर्णय करना चाहिए। इस सन्दर्भ में डॉ. धर्मवीर भारती का यह कथन ध्यातव्य है - “निस्सन्देह इस प्रकार का निर्णय लौकिक काव्यशास्त्र की कसौटी पर कसकर दिया जाता रहा है। किन्तु हमें यह भूलना नहीं चाहिए कि इन समस्त कवियों के सम्मुख जीवन का लौकिक पक्ष उतना महत्वपूर्ण नहीं था। वे साधक थे और साधक के लिये लौकिक जीवन बन्धन था, अज्ञान था, मायाजाल था। उनकी समस्त साधना का लक्ष्य ही यह था कि वह इस मायाजाल से किसी प्रकार मुक्त होकर लौकिक जीवन से दिव्य और आध्यात्मिक अर्थों को ग्रहण कर पाये। इसीलिये उनके काव्य को लौकिक काव्यशास्त्र की कसौटी पर कसकर हम उनका सही मूल्यांकन नहीं कर सकते और न उनके दृष्टिकोण को सही समझ सकते हैं। उनके काव्य का सही मूल्यांकन करने के लिए हमें उसी दृष्टिकोण का परिचय प्राप्त करना चाहिये; जिससे प्रेरित होकर, जिसे आधार बनाकर यह काव्य प्रणीत किया गया है।”⁵

1. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास (तृतीय संस्करण) डॉ. रामकुमार वर्मा पृष्ठ 293

2. दि निर्गुण स्कूल ऑफ हिन्दी पोईट्री : पी. डी. बड़धवाल भूमिका पृष्ठ 3

3. नगेन्द्र, सभापति का वक्तव्य, निबन्ध गोष्ठी : भारती हिन्दी परिषद्

15 वाँ अधिवेशन प्रयाग 9

4. हिन्दी साहित्य का इतिहास — रामचन्द्र शुक्ल पृष्ठ 71

5. सिद्ध साहित्य— डॉ. धर्मवीर भारती पृष्ठ 337, 338

श्री राहुल सांस्कृत्यायन भी सन्त काव्य को किसी एक दृष्टि से देखने का निषेध करते हैं। वे लिखते हैं - "सन्त काव्य एक पूर्ण शरीर है, जिसके अंग को देखकर उसका पूरा परिचय नहीं प्राप्त कर सकते हैं।" ¹

सन्त काव्य का मूल स्वर आध्यात्मिक या धार्मिक है, यह सर्वमान्य है;² किन्तु केवल इसीलिए हम उसे काव्य की परिधि से बाहर नहीं मान सकते जैसा कि कुछ समीक्षकों ³ ने किया है। उसे धार्मिक और साम्प्रदायिक कहकर उपेक्षित करना ठीक नहीं है। इस सम्बन्ध में डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी की स्थापना अत्यन्त महत्वपूर्ण है—“केवल नैतिक और धार्मिक या आध्यात्मिक उपदेशों को देखकर यदि हम ग्रन्थों को साहित्य सीमा से बाहर निकालने लगेंगे तो तुलसी की रामायण से भी अलग होना पड़ेगा, कबीर की रचनाओं को भी नमस्कार कर देना पड़ेगा और जायसी को भी दूर से दण्डवत् करके विदा कर देना होगा।”⁴ इसी बात को वे सूत्र रूप में इस प्रकार स्थापित करते हैं - “धार्मिक प्रेरणा या आध्यात्मिक उपदेश होना काव्यत्व का बाधक नहीं समझा जाना चाहिए।” ⁵

सन्त काव्य को अनेक विद्वानों ने धार्मिक या आध्यात्मिक माना है। उनमें से कुछ विद्वानों के विचार निम्नलिखित हैं -

डॉ. कोमलसिंह सोलंकी लिखते हैं कि - “सिद्धों और नाथों की अनुभूतियों का सीधा सम्बन्ध सन्त काव्य से ही जोड़ा जा सकता है। भारतीय जीवन के मध्ययुगीन चिन्तन में बौद्धों के परवर्ती रूप सिद्धों तथा शैवों के परवर्ती रूप नाथों का महत्वपूर्ण योग है। उनकी रचनाएँ भी धार्मिक या आध्यात्मिक कोटि में आती हैं।”⁶ आगे वे लिखते हैं - “सम्प्रदायों के गठन होने के बाद अधिकांश सन्तों की वानियाँ आध्यात्मिक पिष्टपेषण और साधनात्मक ऊहापोह से भरी हैं।” ⁷

1. हिन्दी साहित्य, भूमिका राहुल सांस्कृत्यायन पृष्ठ 4

2. हिन्दी साहित्य का आदिकाल डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी पृष्ठ 11

3. हिन्दी साहित्य का इतिहास आचार्य रामचन्द्र शुक्ल पृष्ठ 17

4. हिन्दी साहित्य का आदिकाल पृष्ठ 11

5. वही पृष्ठ 11

6. नाथपंथ और निर्गुण सन्त काव्य— डॉ. कोमलसिंह सोलंकी पृष्ठ 26

7. वही पृष्ठ 28

सिद्ध, नाथ और सन्त मत को धार्मिक मानते हुए डॉ. धर्मवीर भारती का कथन है कि - “न केवल सिद्ध वरन् उनकी परम्परा में माने जाने वाले नाथों और सन्तों के साहित्य के विषय में भी विद्वानों की यह सम्मति रही है कि उनमें काव्य गौण रहा है, धार्मिक विवेचन प्रमुख।”¹

सन्त काव्य की लोक भूमि

सन्त काव्य की लोकभूमि का परिचय प्राप्त करना आवश्यक है; क्योंकि सन्त काव्य अपने युग एवं अपनी परम्परा का लोकप्रतिनिधि काव्य है। किसी भी देश का साहित्य उसकी सांस्कृतिक धरोहर होता है; अतएव सन्त काव्य भी हमारी सांस्कृतिक धरोहर है।² आचार्य परशुराम चतुर्वेदी सन्तकाव्य की लोक भूमि की ओर संकेत करते हुये लिखते हैं - “सन्त काव्य की लोकप्रियता उसके काव्यत्व की प्रचुरता पर निर्भर नहीं। वह जनसाधारण के अन्तर्गत कवियों व क्रान्तिदर्शी व्यक्तियों की स्वानुभूति की यथार्थ अभिव्यक्ति है और उसकी भाषा जनसाधारण की भाषा है। उसमें साधारण जनसुलभ प्रतीकों के ही प्रयोग हैं और वह जनजीवन को स्पर्श भी करता है। वह सभी प्रकार से जनकाव्य कहलाने योग्य है; जिस कारण उसकी परम्परा की छोरें अमित काल तक उपलब्ध समझी जा सकती है।”³ डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी भी सन्त काव्य को जन आन्दोलन की अभिव्यक्ति का साहित्य मानते हैं।⁴ यद्यपि सन्त काव्य परम्परा का स्पष्ट स्वरूप सन्त कबीर के समय से ही मिलता है तथापि इसी पृष्ठभूमि में हमें संतों की वानियों का पूर्वरूप नाथपंथियों की जोगेसुरी वानियों तथा सिद्धों के दोहों में भी उपलब्ध हो जाता है। इस प्रकार सन्त काव्य परम्परा को हम उस परम्परा से आबद्ध पाते हैं, जो भारतीय लोक मानस में शताब्दियों से अपना स्थान बनाये हुए है।⁵ युगों से प्रवाहित भारतीय लोक मानस की क्रिया प्रतिक्रिया ही वास्तविक रूप में सन्त-साहित्य की पृष्ठभूमि है। सन्त काव्य इसी लोक जीवन की वाणीगत अभिव्यक्ति है।⁶ यद्यपि सन्त काव्य भारतीय चिन्तनधारा का स्वाभाविक विकास है; किन्तु मुस्लिम - आक्रमणों ने भी सन्त काव्य की लोकभूमि को

1. सिद्ध साहित्य— डॉ. धर्मवीर भारती पृष्ठ 237

2. नाथपंथ और निर्गुण सन्त काव्य— डॉ. कोमलसिंह सोलंकी पृष्ठ 27

3. आलोचना इतिहास विशेषांक— “सन्त काव्य की परम्परा” लेख परशुराम चतुर्वेदी पृष्ठ 8

4. हिन्दी साहित्य भूमिका— डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी पृष्ठ 31

5. नाथपंथ और निर्गुण सन्त काव्य— डॉ. कोमलसिंह सोलंकी पृष्ठ 31 6. वही पृष्ठ 32

अपनी तरह से प्रभावित करने का कम प्रयत्न नहीं किया। यह बात अलग है कि यदि मुस्लिम आक्रान्ताओं ने इस देश पर आक्रमण न भी किये होते तो भी सन्त काव्य की पृष्ठभूमि का यही रूप होता।¹ जबकि कुछ विद्वान सन्त काव्य के प्रादुर्भाव का कारण मुस्लिम आक्रमणों को स्वीकार करते हैं।² वस्तुतः सन्तकाव्य भारतीय चिन्तन का स्वाभाविक विकास है। उसके सृजन के लिए केवल एक राजनीतिक घटना का आश्रय ही पर्याप्त नहीं है।

सारांश के रूप में डॉ. कोमलसिंह सोलंकी का कथन मननीय है - “साहिबिया सिन्धों की वाणिज्य, जैन मुनियों के सुधारक सम्प्रदाय, नाथयोगी सम्प्रदाय, वैष्णव आचार्य भक्त, सूफी फकीर आदि ही मूलरूप में सन्त काव्य की लोकभूमि के निर्णायक तत्त्व हैं; जिनमें निम्नवर्गीय समाज के अधिकारों की तीव्र ध्वनि है, वेदान्त का व्यावहारिक ज्ञान है, तन्त्रों की प्रभावपूर्ण योगधारा है और अनुभवजन्य सत्य की प्राप्ति की सहज लालसा भी।”³

सन्त काव्य जन आन्दोलन था और प्रत्येक जन आन्दोलन लोकभाषा के द्वारा ही प्रभावशील होता है, इसलिए सन्तों ने अपने काव्य में लोकभाषा को ही अपनाया। “उनका लक्ष्य उन सर्वसाधारण हृदयों पर अधिकार करना था; जो जनता के प्रधान अंग थे। वे उन तक स्थानीय बोलियों के सहारे ही पहुँच सकते थे। संस्कृत और प्राकृत जो धर्मग्रन्थों तथा काव्य के लिए भी परिष्कृत भाषाएँ समझी जाती थीं, उनके सामने उपेक्षित बन गयीं।”⁴

सन्त कवि साधक है, कविता उनका कर्म नहीं है, अनुभूति ही उनके लिए प्रधान है।⁵ कविता किसी उद्देश्य का साधन मात्र है। वे सत्य के प्रचारक थे और कविता को उन्होंने सत्य के प्रचार का एक प्रभावपूर्ण साधन मान रखा था।⁶ वे लोक प्रधानतः कवि नहीं थे। काव्य का कलात्मक सृजन उनका निश्चित उद्देश्य न था। ऐसे कवियों से उन्हें घृणा थी, जो काव्य रचना को ही अपना कर्तव्य माना करते थे। कबीर ऐसे लोगों को अवसरवादी कहते हैं।⁷

1. हिन्दी साहित्य, भूमिका— डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी पृष्ठ 8

2. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास — डॉ. रामकुमार वर्मा पृष्ठ 215

3. नाथपंथ और निर्गुण सन्त काव्य— डॉ. कोमलसिंह सोलंकी पृष्ठ 32

4. हिन्दी साहित्य में निर्गुण सम्प्रदाय— डॉ. पीताम्बरदत्त बड़धवाल पृष्ठ 340

5. नाथपंथ और निर्गुण सन्त काव्य— डॉ. कोमलसिंह सोलंकी पृष्ठ 27 6. वही पृष्ठ 29

7. हिन्दी साहित्य में निर्गुण सम्प्रदाय डॉ. पीताम्बरदत्त बड़धवाल पृष्ठ 339 पर उद्धृत

(कविजन जोगी जटाघर घले अपनी औसर सारि)

उपर्युक्त सभी विवेचन से सन्त काव्य के साहित्यिक असाहित्यिक होने सम्बन्धी निम्नलिखित तथ्य सामने आते हैं -

1. सन्त साहित्य भावात्मक एवं अनुभूति प्रवण है। उसमें किसी शास्त्र या सिद्धान्त के प्रति आग्रह नहीं है।
2. सत्य का निरूपण, विवेचन एवं प्रचार-प्रसार ही सन्त साहित्य का मूल लक्ष्य है। इसीलिए सन्त कवियों ने काव्य-सौष्ठव एवं भाषा-परिमार्जन की ओर ध्यान नहीं दिया है।
3. सन्त कवियों का लक्ष्य काव्य रचना नहीं था। उनकी रचनाओं में जन-जन के हित एवं उनके उद्बोधन की भावना सन्निहित है। इस दृष्टि से सन्त साहित्य धार्मिक या आध्यात्मिक तथा उपदेशप्रधान है।
4. सन्त काव्य जन साहित्य है, जिसमें जनभावनाओं को जागृत करने के लिए परिश्रम किया गया है। इस प्रयास में सन्त कवियों को आशातीत सफलता मिली है।
5. सन्तों की भाषा का रूप स्थिर नहीं है। सन्त पर्यटनशील थे। अतः उनकी भाषा में विविध भाषाओं एवं बोलियों का सम्मिश्रण हो गया है, परन्तु यह भाषा सरल, सहज, कृत्रिमता-विहीन एवं जनसाधारण तक भावों को पहुँचाने में विशेष सहायक है। इसे ही रामचन्द्र शुक्ल "सधुक्कड़ी भाषा" कहते हैं। विविध भाषाओं और बोलियों के शब्दों के सम्मिश्रण के कारण उसमें साहित्यिकता का समावेश नहीं हो पाया है।¹
6. सन्त काव्य पढ़े लिखे लोगों के द्वारा सम्मान की दृष्टि से नहीं देखा गया।²
7. निर्गुण काव्यधारा के सन्त कवि सामान्यतया समाज के निम्न वर्गों में आविर्भूत हुए थे।³ उनके अनुयायियों ने पंथों एवं सम्प्रदायों का गठन किया। इनमें भी सामान्यतः जनता का निम्न वर्ग ही सम्मिलित हुआ।⁴

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास सम्पादक— डॉ. नगेन्द्र पृष्ठ 140

2. हिन्दी साहित्य का इतिहास — आचार्य रामचन्द्र शुक्ल पृष्ठ 67

3. हिन्दी साहित्य का इतिहास सम्पादक— डॉ. नगेन्द्र पृष्ठ 140

4. वही पृष्ठ 140

8. सन्तों की उस परम्परा में जिसका प्रवर्तन कबीर ने किया था, शतशः कवि आविर्भूत हुए; परन्तु वे सब सच्चे अर्थों में न कवि हैं, न उनका काव्य साहित्यिक क्षेत्र में उल्लेखनीय है।¹ इस सन्दर्भ में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का कथन दर्शनीय है - “इस शास्त्र की रचनाएँ साहित्यिक नहीं हैं, फुटकर दोहों या पदों के रूप में हैं; जिनकी भाषा और शैली अधिकतर अव्यवस्थित एवं ऊँटपटांग है।”²
9. “निर्गुण काव्यधारा में विशेषतः कबीर, दादू, सुन्दरदास और हरिदास निरंजनी की साखियों एवं पदों में सशक्त अभिव्यंजना, गम्भीर रहस्यात्मक उक्तियाँ, प्रभावशाली रूपक और भाषा का स्वाभाविक प्रवाह विद्यमान है। इनके काव्य में गम्भीर अनुभूतियों की कलात्मक व्यंजना कुर्लभ नहीं है।³ इसी तथ्य का समर्थन डॉ. कोमलसिंह सोलंकी ने निम्नांकित शब्दों में किया है - “सभी निर्गुण सन्तों की सभी वाणियाँ काव्य की कोटि में नहीं आती, किन्तु आध्यात्मिक साधकों की सौन्दर्यमूलक शाश्वत अभिव्यक्ति को काव्य की संज्ञा से वंचित नहीं किया जा सकता।”⁴
10. सन्त काव्य लौकिक काव्य शास्त्र की सुदृढ़ मर्यादा का मुख्यापेक्षी नहीं है।⁵
11. सन्त काव्य का जो महत्त्व सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक एवं राजनीतिक दृष्टि से है, वह साहित्यिक दृष्टि से नहीं। सन्त साहित्य की जो लौकिक सीमाएँ व काव्यशास्त्रीय एवं भाषा वैज्ञानिक स्वीकृतियाँ हैं; उनमें इस काव्यधारा को नहीं बाँधा जा सकता; परन्तु पारमार्थिक, अलौकिक एवं दार्शनिक जगत की झाँकियों को प्रस्तुत करने वाले सन्त साहित्य का अपना महत्त्व है।

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास सम्पादक— डॉ. नगेन्द्र पृष्ठ 140

2. हिन्दी साहित्य का इतिहास— आचार्य रामचन्द्र शुक्ल पृष्ठ 140

3. हिन्दी साहित्य का इतिहास— सम्पादक डॉ. नगेन्द्र पृष्ठ 71

4. नाथपंथ और निर्गुण सन्त काव्य— डॉ. कोमलसिंह सोलंकी पृष्ठ 29

5. “ इसलिए अनेक काव्य को लौकिक काव्य शास्त्र की कसौटी पर कसकर हम उसका सही मूल्यांकन नहीं कर सकते। ” सिद्ध साहित्य, डॉ. धर्मवीर भारती पृष्ठ 237

(छ) सन्तयुगीन परिस्थितियाँ तथा सन्तों का प्रदेय

सन्तों के भाव, विचार और विश्वास जिस वातावरण में पनपे और बढ़े, वह वातावरण बड़ा विचित्र था। भारतीय मध्ययुगीन समाज एक ओर तो अपने अन्दर ही अन्दर फैले हुए जातियों-उपजातियों के वर्गीकरण तथा विघटन के भयंकर विष से मृतप्रायः हो रहा था, दूसरी ओर मुसलमान शासकों के निरन्तर आक्रमणों और विविध अत्याचारों से त्रस्त ध्वस्त हो रहा था। धार्मिक, आर्थिक, नैतिक, सामाजिक, राजनैतिक आदि सभी दृष्टियों से घोर निराशा का वातावरण व्याप्त था।

आचार्य परशुराम चतुर्वेदी ने तत्कालीन धार्मिक स्थिति के बारे में लिखा है कि —“धर्म के क्षेत्र में न केवल हिन्दू तथा मुसलमान दो वर्गों में बँटकर आपस में लड़भिड़ रहे थे; अपितु यती, जोगी, सन्यासी, साक्षत, जैन, शेख तथा काजी भी सर्वत्र अपनी होंक रहे थे। सभी अपने अपने को सत्य मार्ग का पथिक मानकर एक दूसरे के प्रति घृणा तथा द्वेष के भाव रखते थे। इस प्रकार वर्गों के भीतर भी उपवर्गों की सृष्टि हो रही थी, जो प्रत्येक दूसरे को नितान्त भिन्न तथा विधर्मी तक समझने की चेष्टा करता था।”¹

इसी प्रकार तत्कालीन भारत की राजनैतिक दुर्दशा पर विचार करते हुए डॉ. रामकुमार वर्मा लिखते हैं कि—“इस समय राजनीति कटी हुई पतंग की भाँति पतनोन्मुख हो रही थी। जो इसकी घिसटती हुई डोर पकड़ लेता, वही उसे भाग्याकाश की ऊँचाई तक ले जाता। राजनीति में कोई पवित्रता नहीं रही। कूटनीति, हिंसा, छल, त्रिशूल की भाँति फैके जाते थे और देश के वक्षस्थल में चुभकर उसे नहला देते थे। श्मशान में घूमते हुए प्रेतों की भाँति दिल्ली के शासक शवों पर बैठकर आनन्द से खिलखिला उठते थे। जब शासकों की सेवा में रहने वाले हिजड़े और गुलाम भी सिंहासन पर अधिकार कर प्रजा के भाग्य का निर्णय करते थे तो उनके प्रति जनता के हृदय में कितनी श्रद्धा और स्वामिभक्ति हो सकती थी ? इस भाँति शासक वर्ग जनता की सहानुभूति खो चुका था। जनता भी “कोई नृप होउ” की मनोवृत्ति से राजनीति के प्रति उदासीन थी।”²

1. उत्तरी भारत की सन्त परम्परा— डॉ. परशुराम चतुर्वेदी पृष्ठ 182-183

2. हिन्दी साहित्य— डॉ. रामकुमार वर्मा द्वितीय खण्ड पृष्ठ 196

समाज में छुआछूत, ऊँच-नीच, जाति-प्रथा, वर्णव्यवस्था आदि का बोल-बाला था। बाह्याडम्बर तथा अंधविश्वास व्यापक थे। मूर्तिपूजा एवं बहुदेववाद प्रचलित था। नरबलि तथा पशुबलि भी दी जाती थी। समाज में दो वर्ग थे - उच्च वर्ग और निम्न वर्ग। उच्च वर्ग ऐश-आरामयुक्त एवं विलासितामय जीवन व्यतीत करता था; जबकि निम्न वर्ग को रोटी, कपड़ा, मकान भी नसीब नहीं होता था। वह अधिश्रम लेकर अल्पतः कष्टमय जीवन बिताता था। इन पाँच सौ वर्षों की अनिश्चित राजनीतिक परिस्थितियों से जनजीवन शोषण, उत्पीड़न एवं अत्याचार की करुण गाथा बन गया था।¹

उपर्युक्त सभी परिस्थितियों के सन्दर्भ में कबीर आदि सन्तों को प्राचीन धर्मग्रन्थों, वेद-पुराणों की निन्दा कर सहजज्ञान और ब्रह्म की अनुभूति पर बल देना पड़ा। उन्होंने विलासिता के विरुद्ध इन्द्रियों को जीतने की प्रेरणा दी। बाह्याडम्बरों के विरुद्ध कर्म और वचन में सामंजस्य तथा मन की पवित्रता की ओर ध्यान दिलाया। इस लोक की भौतिक सुख-समृद्धि, पद-प्रतिष्ठा आदि के सामने जगत, जीवन, ऐश्वर्य आदि की क्षणभंगुरता की ओर ध्यान दिलाते हुए मुक्ति-प्राप्ति, सहजज्ञान या ब्रह्मानुभूति का सन्देश दिया।

सन्तों ने मानवजीवन को कष्ट देने वाले सभी नियमों और मान्यताओं का जोरदार खण्डन किया। एक ओर जहाँ उन्होंने विघटनकारी मान्यताओं को छोड़ने का अनुरोध किया; दूसरी ओर वहीं सारवान् बातों को अपनाने का आग्रह भी किया। तभी तो कबीर ने कहा था -

साधु ऐसा चाहिए जैसा सूप सुभाय।

सार सार को गहि रहे, बोधा देय उड़ाय ॥

मुस्लिम आक्रमणों एवं उनकी कट्टरताओं के कारण सन्तों ने प्रतिमोपासना (मूर्तिपूजा) का विरोध किया। तिलक-छापा, माला-जप, तीर्थ-स्नान, व्रत आदि धार्मिक बाह्याडम्बरों का विरोध किया। धर्म का आन्तरिक स्वरूप चित्तनिरोध द्वारा हृदयता की पवित्रता या आत्मशुद्धि प्राप्त करना बतलाया। सांसारिक

मोह-माया तथा इन्द्रिय-विषयों से अपने मन को हटाकर निर्गुण, सर्वव्यापक, सर्वशक्तिमान परमतत्त्व की ओर लगाकर अपना आत्महित करने तथा समाज को विश्वकल्याण के पथ पर अग्रसित करने का महत्त्व प्रतिपादित किया। अपने इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए नाम-जप, सत्संग, सद्गुरु की महिमा का उद्घोष किया। आत्मा की अमरता का प्रतिपादन करते हुए उसी में ब्रह्मज्योति के दर्शन की बात कही। मानव जीवन को समता, सहिष्णुता, विश्वबन्धुता की ओर अग्रसर करने के लिए व्यक्तिगत जीवन में सत्य, दया, क्षमा, प्रेम आदि का महत्त्व प्रतिपादित किया। आत्मशुद्धि के लिए काम, क्रोध, मद, मोह, लोभ आदि मनोविकारों का परित्याग करने का उपदेश दिया। साथ ही उन्हें जीवोन्नति में बाधक मानते हुए उनकी कटु आलोचना भी की। पारिवारिक एवं सामाजिक जीवन की सन्तुष्टि एवं सुव्यवस्था के लिए पातिव्रत धर्म एवं सन्तोष भाव की महिमा भी बतायी।

सन्त कवियों के काव्य में एक विशेष प्रकार का जीवन-दर्शन अभिव्यक्त हुआ है; जिसमें संसार की निस्सारता एवं जीवन की क्षणभंगुरता का प्रतिपादन किया गया है तथा कामक्रोधादि से परे रहकर सर्वशक्तिमान परमात्मा निर्गुण ब्रह्म के साक्षात्कार के निमित्त नित्य निरत रहने को कहा गया है। एतदर्थ योग साधना की महिमा बतलायी गयी तथा सहज समाधि का महत्त्व प्रतिपादित किया गया। व्यक्तिगत जीवन में इन आदर्शों को ग्रहण करने के साथ-साथ सामाजिक जीवन में त्याग, औदार्य, वैराग्य, सन्तोष, दया, क्षमा आदि गुणों को अपनाने का आग्रह किया गया। इन सन्त कवियों ने लौकिक जीवन को भी अत्यन्त सरल, निर्मल और स्वाभाविक बनाने के उपदेश दिये तथा सदाचार आदि पर विशेष जोर डाला। इस सबका फल यह हुआ कि सामान्य भक्ति मार्ग खड़ा हुआ, जिसका आधार परोक्ष सत्ता की एकता और लौकिक जीवन की सरलता हुआ।¹ आचार्य परशुराम चतुर्वेदी के अनुसार - “कहीं सन्तों की कविता में आत्मविचार की लहरें हैं, कहीं भावभगति का गुणानुवाद, कहीं नामस्मरण का माहात्म्य और कहीं सहजशील की साधना।”² डॉ. श्यामसुन्दरदास का मत है कि “सन्तों” की विचारधारा सत्य की खोज में बही है, उसी का प्रकाश करना उनका ध्येय

1. हिन्दी साहित्य— डॉ. श्यामसुन्दरदास पृष्ठ 143

2. हिन्दी साहित्य की परख— डॉ. परशुराम चतुर्वेदी

हैं। उनकी विचारधारा का प्रवाह जीवनधारा के प्रवाह से भिन्न नहीं।”¹ सन्तों की विचारधारा का पूर्वकालीन पृष्ठभूमियों या परिस्थितियों के सन्दर्भ में विवेचन करते हुए डॉ. राजदेवसिंह का निम्नलिखित कथन ध्यातव्य है - “स्पष्ट है कि वैदिक काल से भारतीय जातिप्रथा के अतीव रूढ़ हो जाने तक अनेक अवैदिक परम्परा वाली जातियाँ इस देश में वर्तमान रही हैं। जीवन और जगत के सम्बन्ध में उनकी अपनी तत्त्वदृष्टि थी; धर्म, आचार एवं साधना की अपनी पद्धतियाँ थी तथा आर्थिक सुविधा एवं सामाजिक सम्मानप्राप्त अभिजात वर्गों की अपेक्षा जीवन-जगत की सुखमयता के प्रति ये सदैव अनास्थाशील रहने को विवश रहें हैं। वैदिक आचार एवं कर्मकाण्ड के प्रति उपेक्षा, अवहेलना या कटुतर आक्रमण की वृत्ति इनकी विशेषता है। कर्म सिद्धान्त में उनकी आस्था है। संसार की क्षणभंगुरता और मायामयता में इनका अटूट विश्वास है, अहिंसा के प्रति ये अतीव आस्थाशील हैं। निराकार भाव की उपासना इनमें प्रचलित रही है और मूल-वैदिक परम्परा में पढ़ने वाले या वैदिक परम्परा द्वारा स्वीकृत या वैदिक परम्परा को स्वीकृत करने वाले सुविधा-सम्पन्न वर्गों द्वारा ये सदैव हीन माने गये हैं। विज्ञान-युग के प्रारम्भ के पूर्व तक इन लोगों की अपनी अटूट विचार परम्परा रही है (जो टूट जाने के बाद भी अभी वर्तमान है) और जीवन-जगत के प्रति वे इसी खास परम्परा के प्रकाश में क्रिया प्रतिक्रिया करते रहे हैं। सन्त उसी विचार परम्परा से सम्बद्ध हैं और जीवन-जगत को उन्होंने उसी तरीके से देखा-परखा और अपनाया है।”²

(ज) सन्त साहित्य की प्रासंगिकता

सन्तों की परम्पराएँ अतीव उच्च, महान एवं भव्य हैं। इनके साहित्य में आत्मकल्याण के साथ-साथ लोक कल्याण की भावना सर्वत्र दृष्टिगत होती है। इन्होंने समाज की सेवा पूर्णतः निष्पक्ष एवं निःस्वार्थ भाव से की; तभी कबीर कहते हैं -

कबिरा खड़ा बाजार में, चाहत सबकी खैर।
न काहू से दोस्ती, न काहू से बैर॥

1. हिन्दी साहित्य— डॉ. श्यामसुन्दरदास पृष्ठ 155

2. सन्तों की सहज साधना— डॉ. राजदेवसिंह पृष्ठ 66 - 67

यद्यपि सामान्यतः इन सन्तों में भावसाम्य, विचार और चिन्तन ऐक्य उपलब्ध होता है तथापि उनमें मौलिकता सर्वत्र विद्यमान है। इन सभी सन्तों ने कथनी और करनी के ऐक्य द्वारा एक नवीन जीवन दर्शन की स्थापना की तथा मानव जीवन को समुन्नत करने, उसका आध्यात्मिक आधार पर पुनर्निर्माण करने, इस लोक में रहकर भी जीवनमुक्त रहने तथा विश्व कल्याण में सहयोग देने को अपना लक्ष्य बनाया। इसी दृष्टि से उनका साहित्य सर्वथा स्पृहणीय एवं प्रसंगिक रहा है और भविष्य में भी रहेगा।

सन्त काव्य की परम्परा तत्त्वतः उस काव्यरचना पद्धति की ओर संकेत करती है, जो मानव समाज की मूल प्रवृत्तियों पर आधारित है। वह किसी समय आप से आप चल पड़ी थी और वह निरन्तर उसी रूप में विकसित भी होती गई। वह उस काल से विद्यमान है, जब भाषा के ऊपर व्याकरण, पिंगल, काव्यशास्त्र आदि के नियम उपनियमों का कोई बन्धन नहीं था। यद्यपि व्याकरण आदि के काव्यशास्त्रीय नियमों से आबद्ध काव्य उसी समय शिष्ट या सभ्य वर्ग द्वारा सम्माननीय बन रहा था, फिर भी मानव की स्वाभाविक प्रवृत्तियों को प्रतिबिम्बित करने वाला, व्याकरण, भाषा, रस, छन्द, अलंकार आदि के नियमों में न बँधने वाला जनसामान्य द्वारा आदरणीय सन्तकाव्य तथा अन्य समस्त धार्मिक साहित्य भी समाज की अमूल्य सांस्कृतिक धरोहर बन रहा था।

सन्त साहित्य अपने आकार प्रकार में विपुल एवं विविध है। परन्तु उस पर किसी एक जाति, धर्म, सम्प्रदाय, भाषा एवं भाव का एकाधिकार नहीं है। वह जाति, देश, काल आदि से परे सार्वजनिक, सार्वभौमिक एवं सार्वकालिक है। विषय वस्तु की दृष्टि से वह जितना महान है, उससे कहीं अधिक महिमा-मंडित। सन्त काव्य में मानवीय मूल प्रवृत्तियों का न केवल उदात्तीकरण हुआ, अपितु उनको सभी प्रकार से चरमोत्कर्ष पर पहुँचाने का स्तुत्य एवं सराहनीय प्रयास भी किया गया। साथ ही उन सन्तों के द्वारा जो साक्षर न होकर भी शिक्षित थे। उनके द्वारा अपने अमूल्य प्रदेय को या चिन्तन को कोरी कल्पना के धरातल पर ही नहीं छोड़ दिया गया, अपितु उसे अनुभव की भावभूमि पर भी उतारा गया। उनके सभी विचार अनुभव द्वारा पुष्ट हुए हैं। इनका भावसौन्दर्य

मात्र मनोवैज्ञानिक आभा नहीं, अपितु समाधिस्थ चित्त की एकाग्रता का प्रतीक भी है। उसमें सहज जीवन की सरलता ही नहीं, बल्कि तरल जीवन की आवेगमय गतिशीलता भी है। उसमें न केवल समसामायिक चेतना का स्फुरण है, अपितु शाश्वत मूल्यों का सतत अन्वेषण भी है। जहाँ उसमें लोककल्याण करने की भावना है, वहाँ रूढ़ियाँ को तोड़ने का साहस भी है। जहाँ इसके पीछे "आत्मवत् सर्वभूतेषु" और "वसुधैव कुटुम्बकम्" जैसी आर्ष ग्रन्थों की प्रेरणा है वहाँ साथ दिव्यदृष्टि- सम्पन्न सन्तों के अनुभव की परम्परागत विरासत भी है। इसीलिए वह परमतत्त्व है।

अनुभवाश्रित सत्य की प्रतिष्ठा सभी जातियों, धर्मों एवं सम्प्रदायों, यहाँ तक की आस्तिक-नास्तिक दोनों के यहाँ भी, समान रूप से स्वीकृत है। इसी सत्य को अपना विषय बनाना सन्तों का अभीष्ट एवं काम्य रहा है। इसलिए सन्त काव्य कोई वाद नहीं है, जिसके लिए विवाद खड़ा किया जाए। सन्तों का प्रदेय किसी सरकारी कानून जैसा नहीं है, जिसके लिए बाध्यता अनिवार्य हो अपितु वह तो सद्भावपूर्ण संकेत या सुझाव मात्र है, जिसमें आत्मकल्याण के साथ विश्वकल्याण की भावना निहित है, व्यक्ति हित के साथ समष्टि हित संलग्न है। उनके काव्य में व्यक्त क्षोभ या विद्रोह किसी विशेष जाति, धर्म या सम्प्रदाय के प्रति न होकर समाज की अव्यवस्था तथा सांसारिक जड़ता के प्रति है। यह वैचारिक विद्रोह विप्लव के लिए नहीं; अपितु सुनियोजित सत्यनिष्ठ क्रान्ति के लिए है और वह क्रान्ति भी अनुभूतिपुष्ट एवं प्रामाणिक है।

सन्तों ने मानवतावाद, समाजवाद और अध्यात्मवाद के विशिष्ट मूल्यों को स्थापित करने का प्रयास किया; जिससे वैर-विरोध, कृत्रिम भेदोपभेद तथा सम्पूर्ण विषमताएँ स्वतः विनष्ट हो गयीं। सन्तों ने परिस्थितियों का परीक्षण तथा आत्मा का निरीक्षण करते हुए नवीन व्यवस्थाएँ दी, जो आत्मीयता का बोध तथा अनुभूति की सामर्थ्य पैदा करने में सक्षम हुईं। यदि ऐसा न होता तो ऊँचे से ऊँचे आदर्श और व्यापक सिद्धान्त भी वाणी के विषय या बुद्धि के विलास बन कर रह जाते। सन्तों के समस्त प्रदेय या विषयवस्तु की विश्वसनीय कसौटी व्यवहार तथा सदाचार ही है। उन्होंने कर्मकाण्ड तथा बाह्याडम्बर से सेवाभाव तथा आत्मसंयम सहित सामाजिक नैतिकता को अधिक महत्त्व दिया। व्यवहार

में सेवाभाव तथा सदाचार के अभाव में आज कोटि-कोटि रेडियो, टेलीविजन, पुस्तकें तथा व्यक्ति वह प्रभाव उत्पन्न नहीं कर पा रहे हैं ; जो एक सदाचारनिष्ठ एवं सेवाभावयुक्त संत सहज ही पैदा कर देता है; क्योंकि मनुष्यता उसके रूप तथा आकृति में नहीं, उसकी आचारनिष्ठ प्रकृति में है ।

सन्त धार्मिक होने के साथ साथ आध्यात्मिक पुरुष भी हैं । दया, क्षमा, प्रेम, मैत्री, करुणा, जैसे मानवीयगुण धर्म के प्रमुख लक्षण हैं ; जो व्यक्ति को समाज से जोड़े रहते हैं । धर्म में हृदय की पवित्रता तथा बुद्धि का नैतिक व्यापार भी सम्मिलित है । सन्तों की धर्मसाधना मोक्षरूपी परम साध्य का साधन है । इस साधना में “चित्तवृत्ति-निरोध” सिद्धान्त का पालन अनिवार्य है । मोक्ष रूपी साध्य की सिद्धि हेतु चित्त की एकाग्रता आवश्यक है और चित्त की एकाग्रता के लिए नाना वृत्तियों का निरोध जरूरी है । चित्त की एकाग्रता योगी और भक्त दोनों के लिए समान रूप से प्राप्य है । एकनिष्ठ हुए बिना कोई भी सफलता न सुकर है न सुगम । फिर मोक्ष जैसी सिद्धि की क्या बात ? उसके लिए तो सचमुच जल से भिन्न कमल की तरह जीवन्मुक्त स्थिति लाना ही होगी । सम्पत्ति और सत्ता के प्रलोभन या आकर्षण से मुक्त होकर परावलम्बन छोड़ना होगा तथा आध्यात्मिक दृष्टि से स्वावलम्बी बनना होगा । स्वावलम्बन के साथ-साथ स्वाभिमान जागृत करते हुए स्वमहत्ता को जानकर स्व में तन्मय हो जाना ही सच्चा अध्यात्म है और यही सन्तों का परम इष्ट (प्रदेय) है । सन्त और सन्तमत यद्यपि पुराकालीन है तथापि सन्त साहित्य व सन्त आन्दोलन परवर्तीकालीन है । सम्पूर्ण सन्त साहित्य या सन्तमत की आस्था आध्यात्मिक उन्नति एवं विकास में है । जहाँ “मैं और तू” “ज्ञाता-ज्ञेय”, “गुण-गुणी” जैसे भेद भी तिरोहित हो जाते हैं । स्थायी सुख एवं सच्ची शान्ति आध्यात्मिक जीवन जीने में ही है । आध्यात्मिक अनुभूति (आत्मानुभूति) के अभाव में स्थायी शान्ति एवं सुख समृद्धि के विविध प्रयोग अनुभवशून्य तान्त्रिक जोड़-तोड़ से अधिक महत्त्व के नहीं हो पाते हैं । अतः सच्चा सुख एवं स्थायी निराकुल शान्ति पाने के लिए सन्तों और सन्तमत या सन्तवाणी की आवश्यकता एवं उपयोगिता आज भी है और आगे भी रहेगी ।

सन्त साहित्य हमारी सांस्कृतिक धरोहर का सजग प्रहरी एवं संरक्षक तो है ही; साथ ही वह आगामी पीढ़ी का प्रेरणास्रोत भी है। सन्तों ने सांस्कृतिक घात-प्रतिघात से उत्पन्न विषम परिस्थितियों में अपना अस्तित्व कायम रखकर प्रतिकूल वातावरण में सम्बुद्धि रखने एवं सन्तुलित रहने की प्रेरणा दी है। इस दृष्टि से सन्त साहित्य की प्रासंगिकता आज भी जीवित एवं ज्वलन्त है।

सन्तों ने अपने उपदेशों द्वारा हमारी संस्कृति की रक्षा की, मानवीय मूल्यों को पुष्ट किया, जाति-पाँति का भेद मिटाया तथा स्वावलम्बन का भाव जगाकर पुरुषार्थ करने की प्रेरणा दी। इसीलिए सम्पूर्ण सन्त साहित्य में समन्वय भावना, सह-अस्तित्व की स्वीकृति, धार्मिक सहिष्णुता, बन्धुत्व की कामना तथा वसुधैव कुटुम्बकम् की भावना ज्वलन्त हुई है। वर्तमान में यहाँ तक कहा जा सकता है तथा अनुभव किया जा सकता है कि भारतीय संविधान में जो धर्मनिरपेक्षता तथा जनतन्त्रीय समाजवाद दृष्टिकोण होता है, वह सन्त साहित्य की ही देन है या सन्तों की वाणियों का ही प्रतिफल है। साथ ही वर्तमान में व्यक्ति, समाज, राष्ट्र एवं विश्व की समस्त जटिल से जटिल समस्याओं के समाधान हेतु समानता, स्वतन्त्रता, सहिष्णुता, विश्वबन्धुता जैसे अनेक प्रदेय, स्रोत या माध्यम हैं; जिनके कारण आज भी सन्त साहित्य की उपयोगिता, महत्ता एवं प्रासंगिकता असंदिग्ध है।

भगवन्त भजन

भगवन्त भजन क्यों भूला रे ॥ टेक ॥

यह संसार रैन का सपना, तन-धन खारि बबूला रे ॥

॥ भगवन्त भजन . ॥

इस जीवन का कौन भरोसा, पावक में तृण पूला रे ।

काल कुठार लिए सिर ठाड़ा, क्या समझे मन फूला रे ॥

॥ भगवन्त भजन . ॥

स्वारथ साथै पाँव-पाँव तू, परमारथ को लूला रे ।

कहुँ कैसे सुख पै हैं प्राणी, काम करै दुख मूला रे ॥

॥ भगवन्त भजन . ॥

मोह पिशाच छल्यो मति मारे, निज कर कध वसूला रे ।

भज श्री राजमती-वर 'भूधर', दो दुरमति सिर धूला रे ॥

॥ भगवन्त भजन . ॥

— भूधरदास

द्वितीय अध्याय

भूधरदासयुगीन पृष्ठभूमि

- (क) राजनीतिक परिस्थितियाँ
- (ख) सामाजिक एवं आर्थिक परिस्थितियाँ
- (ग) धार्मिक परिस्थितियाँ
- (घ) साहित्यिक परिस्थितियाँ

भूधरदासयुगीन पृष्ठभूमि

प्रसिद्ध समाजशास्त्री अरस्तू के शब्दों में मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। समाज से पृथक् उसके अस्तित्व की कल्पना नहीं की जा सकती है। पशुओं का भी एक सामाजिक जीवन होता है। वे साथ-साथ उठते-बैठते, खाते पीते और क्रीड़ा करते हैं। एक दूसरे के सुख दुःख में सहानुभूति का परिचय देते हैं। फिर बुद्धि और भावनाओं का अक्षयकोष मानव असामाजिक कैसे रह सकता है ? कवि समाज से कई रूपों और अर्थों में प्रभावित होता है, साथ ही महान कवि समाज और समय को भी प्रभावित करता है। अतः साहित्यकार एवं उसके प्रामाणिक अध्ययन के लिए उस युग की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक एवं साहित्यिक स्थितियों का अवलोकन करना आवश्यक है।

देश और काल से साहित्य का अविच्छिन्न सम्बन्ध है और प्रत्येक देश के विभिन्न कालों की सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक आदि स्थितियों का प्रभाव उस साहित्य पर पड़ता है, ¹ डॉ. रामशंकर रसाल के अनुसार भी “जनता की चित्तवृत्ति पर देश की राजनीतिक, सामाजिक, साम्प्रदायिक एवं धार्मिक परिस्थितियों अथवा दशाओं का बहुत गहरा प्रभाव पड़ता है। जनता की चित्तवृत्ति की परम्परा इसी से मिश्रित होती है। अतः साहित्य की परम्परा को समझने के लिए प्रथम ही इन सबका पर्याप्त या पूर्णज्ञान प्राप्त कर लेना चाहिए; क्योंकि साहित्य की परम्परा जनता की परम्परागत चित्तवृत्तियों से ही पूर्णतया प्रभावित होती हुई बना करती है” ² अतः भूधरदास को समझने के लिए उन समकालीन राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक सन्दर्भों एवं तात्कालिक साहित्यिक प्रवृत्तियों को समझना आवश्यक है, जिनसे वे यत्किंचित् प्रभावित हुए थे।

(क) राजनीतिक परिस्थितियाँ

ऐतिहासिक दृष्टि से भूधरदास का काल औरंगजेब, जहाँदरशाह, फर्रुखशियार तथा मुहम्मदशाह का शासन काल रहा। यह समय मुगल सत्ता के अवसान का समय था। बाबर से शाहजहाँ तक का वैभवशाली मुगल साम्राज्य अब औरंगजेब के अधीन था। औरंगजेब ने अकबर की उदारनीति को पूरी तरह समाप्त कर दिया।

1. हिन्दी साहित्य— डॉ. श्यामसुन्दरदास पृष्ठ 25

2. हिन्दी साहित्य का इतिहास— डॉ. रामशंकर शुक्ल ‘रसाल’

राज्यारोहण होते ही उसने प्रचलित हिन्दू प्रथाओं और राज्यपदों के लिए हिन्दुओं की नियुक्ति बन्द कर दी।¹ सन् 1702 ई. में उसने फौज से भी हिन्दुओं को हटा दिया।² उसने हिन्दुओं पर जजिया कर लगा दिया। इसकी पुष्टि न केवल इतिहास से होती है, अपितु तत्कालीन कवियों के साहित्य से भी होती है। कवि मथुरादास ने औरंगजेब नीति का उल्लेख निम्नलिखित शब्दों में किया है -

काजी मुल्ता की करें बढ़ाई, हिन्दू को जजिया लगवाई।
हिन्दू डाँड देथ सब कोई, बरस दिनन में जैसा होई ॥³

औरंगजेब ने कितने ही हिन्दू मंदिरों को ध्वस्त करवा दिया तथा हिन्दुओं को बुरी तरह कत्ल करवा दिया -

कुंभकर्न असुर औतारी अवरंगजेब, किन्ही कत्ल मथुरा दोहाई फेरि रखकी।
खोदि डारे देवी देव देवल अनेक सोई, पेखी निथ पारान ते छुटी माल सबकी ॥
भूषन धनत भाग्यो कासीपति विश्वनाथ, और क्या गिनाऊं नाम गिनती में अबकी।
दिनमें डरन्तागे, चारों वर्ण बाहीस्मे, सिवाजी न हो तो, तो सुभीति होति सबकी ॥⁴

संक्षेप में यही कहा जा सकता है कि अकबर ने जिस मुगल साम्राज्य की नींव डाली और राष्ट्रीय राज्य का निर्माण किया। औरंगजेब ने उसका अन्त कर दिया। औरंगजेब की मृत्यु के अनन्तर उसके पुत्रों में भयंकर भ्रातृघातों गृहयुद्ध चलता रहा और अन्ततोगत्वा बहादुरशाह ने अपने पराक्रम और शौर्य से भारत का सिंहासन प्राप्त कर लिया।

बहादुरशाह का जीवन संघर्ष प्रधान और राजनीतिक आँधियों का सामना करने में व्यतीत हुआ। इसके राज्यकाल में सिक्खों के साथ प्रायः पाँच वर्षों तक युद्ध होते रहे।⁵ अपने शासन काल में उसे राजपूतों से भी संघर्ष और युद्ध करना पड़ा।⁶ सन् 1712 में बहादुरशाह की मृत्यु के पश्चात् उसके उत्तराधिकारियों में लगभग 7 वर्ष तक राज्यसिंहासन के लिये युद्ध हुआ।

1. औरंगजेब सरकार, जिल्द 3 पृष्ठ 100

2. वही पृष्ठ 277

3. परिचयी, मथुरादास पृष्ठ 16

4. भूषण ग्रन्थावली, शिवा बावनी पृष्ठ 49-50

5. विलियम इरविन दी लेटर मुगल्स, पृष्ठ 73, 115

6. वही पृष्ठ 66

29 मार्च 1712 को जहाँदरशाह सिंहासन पर बैठा। उसको बंदी बनाकर और वध करवाकर फरूखशियार गद्दी पर बैठा। जहाँदरशाह का राज्यकाल राजनीतिक दृष्टि से उपेक्षणीय है, परन्तु फरूखशियार का समय राजनीतिक उथल पुथल के कारण महत्वपूर्ण है। अमानुषिक ढंग से फरूखशियार का वध¹ उस युग की हीन और घृणित राजनीति का परिचायक है। फरूखशियार के छह वर्ष के राज्यकाल में मराठों, सिक्खों एवं सैयदों के कारण देश की राजनीति निरन्तर क्षुब्ध रही।²

फरूखशियार के अनन्तर मुहम्मदशाह का राज्यकाल विशेष महत्वपूर्ण है। कवि दानतराय के शब्दों में उसके शासन की दशा निम्न प्रकार थी -

अकबर जहाँगीर साहबहाँ भाए बहु लोक में सराहे हम एक नहि पेखा है।

अवरांगज़ाह बहादुरसाह यौजदीन, फरकसेर ने अज़िया दुख विसेखा है॥

दानत कहाँ लग बड़ाई करै साहब की, जिन पालसाहन को पालसाह लेखा है।

जाकेराज ईति थीति बिना सब लोकसुखी, बड़ा पालसाहफ़ैमदसाह देखा है॥³

उसके लगभग तीस वर्ष के शासन काल में उसे न केवल हैदराबाद, अवध और मराठों की आन्तरिक कलह सुलझानी पड़ी, अपितु नादिरशाह और अहमदशाह दुरानी के बर्बर एवं विनाशकारी आक्रमण का सामना भी करना पड़ा।⁴ सन् 1759 में आलमगीर द्वितीय के बादशाह आलम एवं उसके द्वितीय पुत्र बहादुरशाह द्वितीय के साथ शाही खानदान का अन्त हो गया।

18 वीं शती के अन्त होते होते दिल्ली साम्राज्य का नाम ही शेष रह गया था। बंगाल में सूबेदार, दक्षिण में निजाम, महाराष्ट्र में मराठे, ग्वालियर, इन्दौर, नागपुर, बड़ौदा और राजस्थान में राजपूत, बुन्देलखण्ड में बुन्देले, पंजाब में सिक्ख तथा आगरा, मथुरा एवं दिल्ली के निकटवर्ती क्षेत्रों में जाटों के छोटे-छोटे स्वतन्त्र राज्य स्थापित हो गये थे और राजे महाराजे अपनी झूठी शान के भार से दबकर लड़ते हुए अपना सन्तुलन खो बैठे थे।

मध्य युग भारतीय इतिहास में अत्यन्त अशान्ति का समय माना जाता है। शासकों की अदूरदर्शिता, अमीरों की दलबन्दी, देशी राजाओं और प्रान्तीय

1. विलियम इरविन दी लेटर मुगल्स, पृष्ठ 389, 394

2. वही क्रमशः पृष्ठ 382, 307, 327, 343

3. धर्मविलास दानतराय पृष्ठ 260

4. विलियम इरविन दी लेटर मुगल्स, अध्याय 8

सूबेदारों की विद्रोह भावना आदि से तत्कालीन राजनीतिक वातावरण विषाक्त हो गया था।

बीच-बीच में आये दुर्भिक्ष और महामारी के प्रकोप से सहस्रों व्यक्ति काल कवलित हो गये थे, किन्तु तत्कालीन शासकों को न तो देश की चिन्ता थी, न अकाल और महामारी की और न जनता के सुख दुःख की। उन्हें यदि चिन्ता थी तो यही कि उनके प्रभुत्व की रक्षा या वृद्धि कैसे हो ? उनकी ऐश्वर्य लोलुपता के पीछे कोई मंगलभावना नहीं थी। क्रूरता, धोखा, छलकपट, भोग-विलास आदि राजनीति की ऐसी लहरें थीं, जो इस युगप्रवाह में सर्वत्र दिखाई देती हैं। समग्र देश में एक उदाम लू चल रही थी, जिसका दाह भयंकर एवं व्यापक था। उसमें छोटे-बड़े, गरीब-अमीर सब पीड़ित थे। देश की इस निर्बल राजनीतिक परिस्थितियों से लाभ उठाकर भारत में व्यापार करने के नाम पर पहले से ही आई हुई विदेशी कम्पनियों में "ईस्ट इंडिया कम्पनी" देशी राजाओं की आपसी फूट का लाभ उठाकर शासन की बागडोर अपने हाथ में लेती गई और ब्रिटिश राज्य का विस्तार करती गई। इस तरह देश अंग्रेजों द्वारा गुलामी की जंजीरों से जकड़ता हुआ स्वाधीनता के सुख से सर्वथा वंचित हो गया।

उपर्युक्त मुगलशासन की राजनीतिक अयोग्यता, असमर्थता, निर्बलता, भेदभाव एवं पक्षपातपूर्ण कूटनीति एवं विलासिता से प्रभावित कवि का हृदय सांसारिक जीवन और व्यवस्था के प्रति अनासक्त होता गया और उसका मन ईश्वरोन्मुख होते हुए धार्मिक बन गया। तत्कालीन जागीरदारों और नवाबों के आचरण से क्षुब्ध कवि राजदरबारी वातावरण से सर्वथा उदासीन रहकर धार्मिक एवं नैतिक आदर्शों से ओतप्रोत साहित्य की सर्जना करने लगा और इस प्रकार धार्मिक एवं नैतिक साहित्य द्वारा वह यथेष्ट साधु वृत्तिवाला (सन्त) बन गया। कवि के नैतिक एवं धार्मिक बनने में जैनधर्म एवं जैनदर्शन के प्रभाव के साथ-साथ हिन्दी सन्त साहित्य का भी यथेष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है; क्योंकि उसके साहित्य में भी सन्तों का प्रतिपाद्य मिलता है, जो आगे के अध्याय में विवेच्य है।

भूधरदास तत्कालीन राजनीति एवं राजदरबारों के वातावरण से अप्रभावित स्वतन्त्र रहने वाले उन सभी साहित्यकारों की श्रेणी में आते हैं; जिन्होंने अपनी रचनाओं द्वारा उस रीतिकालीन परिवेश में भी समाज का उचित मार्गदर्शन किया तथा धार्मिक एवं नैतिक साहित्य की रचना करके स्व और पर को कल्याण के मार्ग पर लगाया।

(ख) सामाजिक एवं आर्थिक परिस्थितियाँ

मध्ययुग का समाज सामंतवादी पद्धति पर आधारित था; जिसमें सम्राट शीर्ष पर था। उसके बाद उच्च वर्ग के सभी व्यक्ति, जिनमें सामन्त एवं उच्च पदासीन व्यक्ति आते थे। सामन्तों का जीवन सम्राट के अनुरूप ही होता था। सम्पूर्ण देश में मनसबदार अमीर और सामन्तों का जाल फैला हुआ था। ऐश्वर्य लोलुपता की प्रक्रिया में अमीर-उमरा तथा राजा महाराजाओं का जीवन सुख एवं विलास के विविध उपकरण जुटाने में ही व्यतीत हो रहा था। बादशाह का अपना जीवन पूर्णतः अनियन्त्रित और विलासपूर्ण होता था और अमीर-उमरा लोग इस सम्बन्ध में अपने मतलब के अनुसार बादशाह का अनुकरण करना अपना जन्मसिद्ध अधिकार समझते थे।¹

तत्कालीन सामाजिक जीवन दो तबकों में बँटा हुआ था। एक तबका राजा, शासक, अमले कारिन्दे या दरबारियों का था और दूसरा तबका जनसाधारण का। शाही दरबार सुख, समृद्धि, सभ्यता और विलासिता के केन्द्र थे; परन्तु उसके बाहर का जीवन दुर्दशाग्रस्त, असन्तोषजनक, दयनीय एवं विपत्तिजनक था। उस समय साधारण जनता की दशा बड़ी शोचनीय थी। उसे पेट भरने को रोटी और तन ढकने को कपड़ा भी कठिनता से प्राप्त होता था।² ऐतिहासिक तथ्यों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि मुगलकालीन समाज का सम्पन्न वर्ग, निम्न वर्ग का शोषण करता था।³ उसे इस नीचे वाले तबके के लिए कोई दर्द नहीं था। ठीक उसी प्रकार जनता के हृदय में भी राजाओं के प्रति कोई सहानुभूति नहीं थी। नैतिकता की दृष्टि से जनसाधारण का चरित्र राजा, सामन्तों, अमले कारिन्दे तथा दरबारियों के चरित्र से अच्छा था। इसीलिए नैतिकता के अधःपतन के समय में भी उन पर भक्तियुग का प्रभाव दिखाई पड़ जाता है। यद्यपि जनसाधारण में भी विलासिता की अग्नि सुलगने लगी थी, परन्तु फिर भी वह भीषण ज्वाला का रूप नहीं ले सकी।

मध्ययुगीन समाज में वर्णव्यवस्था, ऊँच नीच का भेदभाव, जातिप्रथा आदि दिखाई देती हैं। इससे न केवल हिन्दू अपितु मुसलमान भी अछूते न रह सके।⁴

1. भारतीय संस्कृति और उसका विकास— डॉ. सत्यकेतु विद्यालंकार, पृष्ठ 498
2. भारतीय संस्कृति और उसका इतिहास— डॉ. सत्यकेतु विद्यालंकार पृष्ठ 499
3. हिन्दी लिटरेचर— डॉ. रामअवध द्विवेदी पृष्ठ 84
4. भारतीय समाज और संस्कृति— डॉ. कैलाश शर्मा पृष्ठ 451- 470

हिन्दुओं में विवाह एक पवित्र संस्कार माना गया है। जिसका उद्देश्य पुत्र प्राप्त कर मोक्ष प्राप्त करना है; परन्तु मुसलमानों की बहुविवाह प्रथा और तलाक प्रावधान ने स्त्री को उपभोग और आनन्द का साधन मात्र बना दिया। मध्ययुगीन समाज में स्त्री अपनी स्वतन्त्रता और अधिकार खोकर बन्धन और भय से पराभूत थी। वह उपभोग एवं मनोरंजन की वस्तु मानी जाती थी। उसका घर की चहारदीवारी के बाहर सार्वजनिक जीवन में कोई स्थान नहीं था। पर्दाप्रथा कठोर थी।

भूधरकालीन समाज अन्धविश्वासों से युक्त था। जादू-टोना तथा भाग्यवाद पर अत्यधिक विश्वास किया जाता था। इस समय साधारण व्यक्ति से लेकर सम्राट तक सभी का ध्यान अपने पुरुषार्थ की अपेक्षा परकीय विपन्न दैवीय शक्तियों पर अधिक गया। हिन्दू और मुसलमान-दोनों ही ज्योतिष विद्या एवं भविष्यवाणी पर विश्वास रखते थे।¹ फलित ज्योतिष में हिन्दू मुसलमान दोनों का ही समान रूप से विश्वास था। विजय यात्रा को प्रस्थान करते हुए या कोई नया कार्य करते हुए लोग शकुन का विचार करते थे। पीरों, फकीरों, साधु-सन्तों में हिन्दू मुसलमान दोनों का ही विश्वास था। प्रत्येक वर्ग के लोग अन्धविश्वास में डूबे हुए थे। संक्षेप में इस युग (मध्ययुग) को भारतीय इतिहास में अत्यन्त अन्धकार का युग निरूपित किया जा सकता था।²

तत्कालीन समाज की स्थिति बड़ी शोचनीय थी। समाज अन्धविश्वास, धार्मिक पंथवादिता, निरक्षरता, गरीबी, असुरक्षा एवं घोर अज्ञान से पीड़ित थी। समाज में मनोविनोद हेतु सुरासुन्दरी का प्रयोग अर्थात् मद्यपान एवं वेश्यासेवन की प्रवृत्ति, निरीह पशुओं का आखेट, द्यूतकर्म (जुआ) एवं चौर्यवृत्ति आदि का बोलबाला था। पारस्परिक वैमनस्य, साम्प्रदायिक कट्टरता, जातिप्रथा, ऊँच - नीच का भेद, छुआछूत, अन्धविश्वास, विलासिता आदि का भूत मुगल सम्राटों के साथ-साथ तत्पुगीन समाज के सिर पर भी नाच रहा था। इन सामाजिक परिस्थितियों में कतिपय जैनधर्मावलम्बियों ने तत्कालीन समाज को न केवल उचित मार्गदर्शन दिया; अपितु अपनी रचनाओं और सदुपदेशों के माध्यम से मानवीय आदर्शों की प्रतिष्ठा करके उन्हें अपनाने पर सर्वाधिक बल दिया। इस संबंध में आचार्य परशुराम चतुर्वेदी का निम्नलिखित कथन अति माननीय है -

1. भारतीय संस्कृति का विकास— लूनिया पृष्ठ 374

2. हिन्दी साहित्य की भूमिका— डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी पृष्ठ 126

“ऐसे ही समय जैनधर्मावलम्बियों में कुछ व्यक्ति अपने समय के पाखण्ड और दुर्नीति की आलोचना करने की ओर अग्रसर हुए और उन्होंने अपनी रचनाओं और सदुपदेशों द्वारा सच्चे आदर्शों को सच्चे हृदय के साथ अपनाने की शिक्षा देना आरम्भ किया। उनका प्रधान उद्देश्य धार्मिक समाज में क्रमशः घुस पड़ी अनेक बुराइयों की ओर सर्वसाधारण का ध्यान आकृष्ट कर उन्हें दूर करने के लिए उद्यत करना था।”¹

इस कड़ी में भूधरदास ने तत्कालीन सामाजिक जीवन में व्याप्त मद्यपान², चोरी,³ जुआ⁴, आखेट⁵, वेश्यासेवन⁶, परस्त्रीगमन,⁷ मांसभक्षण⁸ आदि सभी दुष्प्रवृत्तियों के दोष बताकर उन्हें छोड़ने की प्रेरणा दी तथा तत्कालीन समाज में दुराचार के स्थान पर सदाचार की स्थापना की। कवि ने जैनदर्शन के सिद्धांतों द्वारा संसार के बन्धन से छुटकारा दिलाकर मुक्ति का मार्ग प्रशस्त किया तथा जैनधर्म की व्यावहारिक शिक्षाओं द्वारा धर्माचरण का पाठ पढ़ाया। गृहस्थ जीवन में धर्माचरण हेतु देवपूजा, गुरु-उपासना, स्वाध्याय, संयम, तप और दान-इन षट्कर्मों⁹ का महत्त्व प्रतिपादित किया तथा अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य अपरिग्रह आदि व्रतों¹⁰ का आचरण करने का उपदेश दिया।

मुगलकाल का प्रमुख व्यवसाय कृषि था। अधिकांश कृषक खेती पर ही निर्भर रहते थे। विभिन्न क्षेत्रों में विभिन्न प्रकार की फसलें उगाई जाती थीं। कृषि के औजार पुराने ढंग के थे। कुँओं और तालाबों से खेती की जाती थी। भारत अनेक प्रकार की खाद्य वस्तुओं का निर्यात भी करता था। पशु पालन भी लोगों का व्यवसाय था। जंगल और चरागाह भी पर्याप्त मात्रा में थे। कृषकों पर करों का भारी बोझ था। कृषकों में अधिकांश हिन्दू ही थे, अतः उन्हें जजिया कर, चारागाह कर, पशु कर आदि देने पड़ते थे।¹¹ कृषक राज्य को भूमिकर भी देते थे। जो कभी-कभी कुल उपज का 50% तक होता था।¹² भूमिकर अनेक व्यक्तियों के बीच बँटता था। सरकारी खजाने और कृषकों के बीच

1. उत्तरी भारत की सन्त परम्परा, परशुराम चतुर्वेदी पृष्ठ 47

2. जैन शतक भूधरदास छन्द 53 3. वही छन्द 56 4. वही छन्द 51

5. वही छन्द 55 6. वही छन्द 54 7. वही छन्द 57 से 60

8. वही छन्द 52 9. वही छन्द 48

10. पार्श्वपुराण अधिकार 9 पृष्ठ 87 11. अभिनव इतिहास दीनानाथ शर्मा पृष्ठ 119

12. सभ्यता की कहानी : मध्यकालीन विश्व अर्जुनदेव पृष्ठ 137

अनेक व्यक्तियों का अधिक्रम (Hierarchy) था; जिसमें गाँव के कर्मचारी, स्थानीय जमींदार और जागीरदार सभी सामिल थे ।¹

शासन की ओर से कृषकों की आर्थिक दशा सुधारने के लिए कोई विशेष प्रयत्न नहीं किये जाते थे तथा खेती के लिए कोई विशेष सुविधाएँ नहीं दी जाती थीं । इसके बावजूद भी विभिन्न प्रकार की फसलें भारत में उत्पन्न की जाती थीं । गेहूँ, चावल, कपास, गन्ना, तिलहन, जौ, मक्का, नील, बाजरा, पान, अदरक, गरममसाले, फल आदि प्रचुर मात्रा में उत्पन्न किये जाते थे ।

देश में अनेक धन्धे विकसित थे । कपड़ा उद्योग उस समय का प्रमुख उद्योग था । सूती, रेशमी, ऊनी आदि सभी प्रकार के वस्त्रों के उद्योग थे । शकर, कागज, पत्थर की कटाई, बर्तन बनाना, हाथी दाँत की वस्तुएँ बनाना, कलाई करना, शस्त्रों का निर्माण करना, रंगाई-छपाई आदि अनेक छोटे बड़े उद्योग धन्धे उस समय थे ।² व्यक्तिगत कारखानों के अतिरिक्त सरकार द्वारा खोले गये ऐसे कारखाने भी थे; जो शाही परिवार और अभिजात्य वर्ग के लोगों के लिए भोग उपभोग की उत्तम किस्म की वस्तुएँ बनाते थे ।³

भारत में आन्तरिक व्यापार उन्नत था । आन्तरिक व्यापार घलमार्गों और जलमार्गों द्वारा होता था । दूरस्थ प्रदेशों को जोड़ने वाली सड़के थीं । भारत के विभिन्न नगरों में भिन्न-भिन्न वस्तुओं की मंडियाँ थीं और ये नगर आपस में विभिन्न मार्गों द्वारा जुड़े हुए थे ।

भारत का विदेशी व्यापार आन्तरिक व्यापार से अधिक उन्नत था । भारत विदेशों को सूती, रेशमी, ऊनी कपड़े, लकड़ी तथा धातुओं की वस्तुएँ, नील और कागज आदि अनेक वस्तुएँ निर्यात करता था ।⁴ ईरान, अरब, यूरोप, चीन, अफ्रीका, मध्य एशिया, अफगानिस्तान आदि देशों से व्यापार होता था । गोआ, ड्यू, चोल, कालीकट, कोचिन, क्यूलोन आदि पश्चिमी तट के तथा बंगाल, उड़ीसा आदि पूर्वी तट के प्रमुख बन्दरगाह थे । ईरान, तिब्बत, नेपाल, अफगानिस्तान, भूटान आदि देशों में थल मार्ग द्वारा व्यापार होता था ।

भारत की कृषि, उद्योग धन्धे, व्यापार आदि सभी की आर्थिक उन्नति का लाभ शासक और उच्च वर्ग के लोगों को ही मिलता था, जनसाधारण को नहीं ।

1. सभ्यता की कहानी : मध्यकालीन विश्व अर्जुनदेव पृष्ठ 137

2. अभिनव इतिहास दीनानाथ शर्मा , पृष्ठ 120

3. अभिनव इतिहास पृष्ठ 119 एवं सभ्यता की कहानी पृष्ठ 137

4. सभ्यता की कहानी पृष्ठ 137

कृषक और जनसाधारण की आर्थिक दशा अच्छी नहीं थी, जबकि शासक और उच्च वर्ग के लोग भोग विलास का जीवन व्यतीत करते थे। इस प्रकार तत्कालीन समाज की आर्थिक दशा शोचनीय थी।

(ग) धार्मिक परिस्थितियाँ

मध्य युग के मुगल शासकों में अकबर का शासनकाल ही ऐसा रहा; जिसे धार्मिक सहिष्णुता के युग की संज्ञा दी जा सकती है। अकबर के उत्तराधिकारी जहाँगीर में जहाँ अकबर की उदारता का पतन दृष्टिगोचर होता है,¹ वहाँ जहाँगीर का उत्तराधिकारी शाहजहाँ कट्टरपंथी मुसलमान के रूप में हमारे सामने आता है। उसके शासनकाल से ही धार्मिक अत्याचारों का प्रारम्भ हो गया था। उसने अपने आपको इस्लाम के विरुद्ध चलने वाले का विनाशकारी घोषित किया।² राज्य के ऊँचे ऊँचे पदों पर मुसलमानों को ही नौकरी दी तथा हिन्दू तीर्थ यात्रियों पर कर लगा दिया। यही नहीं, उसने जुझारसिंह और उसके परिवार को जबरन मुसलमान बनवा दिया।³ उसने अपने पिता और पितामह से चली आयी तुलादान रीति और हिन्दू त्यौहार, जो राजदरबार में मनाये जाते थे, बन्द करवा दिये। उसने नवीन मंदिरों का निर्माण तथा पुराने मन्दिरों का जीर्णोद्धार बन्द करवा दिया।⁴ इतना ही नहीं, उसने मन्दिरों को गिरवाने का कार्य भी आरम्भ कर दिया। सेना यात्रा के मार्ग में पड़ने वाले सभी मन्दिर गिरवा दिये जाते थे। हिन्दू मन्दिर के मलवे से मस्जिद बनवाई गयी। हिन्दुओं के तीर्थ स्थानों को नष्ट किया गया। उसने अपने सम्पूर्ण शासनकाल में धर्मपरिवर्तित हिन्दुओं को शुद्ध करने की निषेधाज्ञा जारी ही रखी। हिन्दू मुस्लिम अन्तर्जातीय विवाह, पर रोक लगा दी। युद्ध बंदियों को जबरन मुसलमान बनाने की प्रथा फिर जारी कर दी गई। कुरान और पैगम्बर का अपमान करने वाला प्राणदण्ड पाता था।⁵ उसकी धर्मान्धता और अनुदारता औरंगजेब के कट्टरशासन की अग्रदूत थी। औरंगजेब के गद्दी पर बैठने पर तो यह प्रतिक्रिया अपनी चरमसीमा पर पहुँच गई। इस्लाम फिर से राजधर्म बन गया। हिन्दुओं पर तीर्थयात्रा कर और जजिया कर फिर से लगा दिये गये -

1. दी रिलीजस पालिसी ऑफ दी मुगल एम्पर्स, श्रीराम शर्मा, पृष्ठ 90
2. वही पृष्ठ 96-97
3. वही पृष्ठ 92, तथा "हिस्ट्री ऑफ शाहजहाँ" डॉ. बेनीप्रसाद पृष्ठ 89-90
4. आक्सफोर्ड हिस्ट्री आफ इण्डिया डॉ. स्मिथ पृष्ठ 421
5. "मुगलकालीन भारत" डॉ. आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव पृष्ठ 457

काजी मुल्ता करे बड़ाई, हिन्दू को जजिया लगवाई ।
हिन्दू डाँड देय सब कोई, बरस दिनन में जैसा होई ॥¹

औरंगजेब ने राज्य में मन्दिरों को गिराने की आज्ञा जारी कर दी । सेना में एक पद दरोगा का कायम किया गया जिसका प्रमुख कार्य मूर्तियाँ तोड़ना और मंदिर गिराना ही था । सरकारी नौकरियों में हिन्दुओं की नियुक्ति बन्द करवा दी गई ।² मालविभाग और सेना में से हिन्दुओं को निकालने की आज्ञा दे दी गई ।³ राजपूतों को छोड़कर हिन्दुओं का हाथी व पालकी पर बैठना निषिद्ध कर दिया । औरंगजेब की करनीति भी पक्षपात पूर्ण थी । औरंगजेब की दमनकारी नीति की ज्यादाती सिक्खों के ऊपर विशेष रूप से दृष्टिगोचर होती है ।⁴ गुरुतेग बहादुर को बन्दी बनाकर गणदण्ड देना उसकी संकीर्णता का ज्वलन्त उदाहरण है ।⁵ मथुरादास रचित "परिचयी" में भी इसका उल्लेख निम्न प्रकार मिलता है -

नानक ने शिष्यन को पूछा, गुरु का धरम न तुमही सूझा ।
डरे सरीर छोड़यो हरिराई, तेग बहादुर प्रकटे आई ॥
बादशाह तेहि पकड़ अहकारा, कला न देखा करदन मारा ॥⁶

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि अकबर ने सोलहवीं शताब्दी में धार्मिक सहिष्णुता की जिस नीति को अपनाया था, औरंगजेब ने सत्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में उसका पूर्णतः परित्याग कर दिया । वह कट्टरपंथी मुस्लिम शासक के रूप में धार्मिक असहिष्णुता की चरम सीमा छू गया था ।

धार्मिक असहिष्णुता की यह नीति उत्तरकालीन मुगल सम्राटों में भी दिखाई देती है । बहादुरशाह (सन् 1707-11) की सरकार बड़ी कठोर थी । वह मुसलमानों के साथ पक्षपात करती थी । हिन्दुओं पर जजिया कर और तीर्थयात्रा कर यथावत् जारी रहे । जहाँदरशाह भी उसी के पदचिह्नों पर चलता रहा ।⁷ औरंगजेब के अनेक उत्तराधिकारियों ने उसकी कट्टरनीति का परित्याग करके

1. "परिचयी" मथुरादास पृष्ठ 16 2. औरंगजेब, सरकार जिल्द 3 पृष्ठ 277

3. औरंगजेब, सरकार जिल्द 3 पृष्ठ 301, 302

4. दो रिलीजस पालिसी ऑफ दी मुगल एम्पाई श्रीराम शर्मा, पृष्ठ 135

5. श्रीराम शर्मा पृष्ठ 166 एवं भक्तिमाल पृष्ठ 160

6. परिचयी मथुरादास पृष्ठ 17

7. "मुगलकालीन भारत" डॉ. आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव पृष्ठ 546

फिर से उदारता और विशालता का परिचय देना शुरू किया। दिल्ली दरबार में फिर से दशहरा व रक्षाबन्धन जोश के साथ मनाये जाने लगे। शाह आलम ने पूना के पेशवा को अपना वकील करार दिया। उसके पुत्र अकबरशाह ने राम मोहनराय को "राजा" का खिताब दिया। अन्तिम सम्राट बहादुरशाह (द्वितीय) हिन्दू मुस्लिम दोनों को एक दृष्टि से देखता था।¹ इस प्रकार मुगलशासकों की भारतीय संस्कृति और हिन्दूधर्म के प्रति उपेक्षापूर्ण दृष्टि रही तथा उनके द्वारा हिन्दू धर्म को विनष्ट करने के लिए कोई प्रयत्न अवशेष नहीं रहा।

हिन्दू धर्म में कर्मकाण्ड और आडम्बर घर कर गये थे। धार्मिक वातावरण संकीर्णता, साम्प्रदायिकता और असहिष्णुता से अनुप्राणित हो उठा था। धर्म और धार्मिक समाज में अद्भुत अभाव और शैथिल्य परिलक्षित होने लगा था।² व्रत, रोजा, नमाज, मूर्तिपूजा, मजार-पूजा, साम्प्रदायिक वेश भूषा आदि को विशेष बढ़ावा मिल रहा था। वास्तविकता एवं मौलिकता का दिवाला ही निकल गया तथा सन्त भी पुरानी लकीर के फकीर हो गये।³ व्यक्ति के भोग ने भगवान की दिनचर्या के बहाने एक आकर्षक रूप धारण कर लिया था।⁴ मंदिरों में विलास के उपकरण इतनी प्रचुर मात्रा में एकत्र किए जाने लगे कि अवध का नवाब तक उनसे ईर्ष्या करने लगा एवं कुतुबशाह जैसा सम्राट उसका अनुसरण करना अपने गर्व की बात समझने लगा।⁵ इसका परिणाम यह हुआ कि मंदिरों में माधुर्यभाव प्रधान भक्ति के बहाने देवदासियों के साथ भी खुलकर भ्रष्टाचार होने लगा।

तत्कालीन हिन्दू धर्म में अनेक मत-मतान्तर थे। वह वैष्णव, शैव और शाक्त - इन तीन मुख्य सम्प्रदायों में विभक्त होकर अनेक भेदों प्रभेदों के साथ गुजर रहा था। कबीर आदि सन्तों द्वारा प्रवर्तित धर्म भी थोड़े बहुत भेद के साथ चल रहा था। हिन्दू धर्म बहुदेववादी था और इस्लाम धर्म एकेश्वरवाद का पक्का समर्थक था, परन्तु फिर भी तत्कालीन भारत में प्रचलित इस्लाम धर्म

1. "भारत में अंग्रेजी राज" सुन्दरलाल प्रथम भाग पृष्ठ 98
2. हिन्दी साहित्य द्वितीय खण्ड सं. डॉ. धीरेन्द्र वर्मा पृष्ठ 71
3. रीतिकाव्य की भूमिका पूर्वार्द्ध डॉ. नगेन्द्र पृष्ठ 20
4. हिन्दी साहित्य कोश प्रथम भाग, सं. डॉ. धीरेन्द्र वर्मा पृष्ठ 500
5. रीतिकाव्य की भूमिका पूर्वार्द्ध डॉ. नगेन्द्र पृष्ठ 17

में अन्य भारतीय धर्मों की तरह अनेक भेद उपभेद बन गये थे।¹ भक्ति आन्दोलन के प्रभाव के कारण विभिन्न धर्मों में पारस्परिक समन्वय, प्रेम और भ्रातृत्व भावना दृष्टिगोचर होती थी। मुगलकाल में सिक्ख धर्म का उदय हुआ था। वह इस समय अपनी प्रारम्भिक स्थिति में था। बौद्धधर्म की अवनति हो रही थी। वह हीनयान और महायान सम्प्रदायों में बँटकर अपना प्रभाव खो रहा था। कुछ प्रदेशों में जैनधर्म का अच्छा प्रभाव था, परन्तु वह भी दिगम्बर और श्वेताम्बर- दो सम्प्रदायों में विभक्त था। यद्यपि इन सम्प्रदायों के विभाजन का मुख्य आधार नग्नता और स्वस्त्रता ही थी, परन्तु और भी कई कारण थे।² इनके विभाजन के सम्बन्ध में भी अनेक मान्यताएँ हैं।³ इन दोनों सम्प्रदायों के अन्तर्गत अन्य अनेक उपसम्प्रदायों ने भी जन्म लिया।⁴ दिगम्बर सम्प्रदाय में बीस पंथ अर्थात् भट्टारकवाद तथा तेरहपंथ अर्थात् अध्यात्मवाद आपस में टकरा रहे थे। उनके आचार विचारों में समानताएँ नहीं थीं।⁵ श्वेताम्बर सम्प्रदाय में भी स्थानकवासी (ढूँढिया) और मन्दिर मार्गी (मूर्तिपूजक) दो प्रमुख उपसम्प्रदाय हो गये थे। इस काल में कई विशेषताओं के कारण हिन्दूधर्म का स्वरूप प्राचीन वैदिकधर्म के स्वरूप से सर्वथा भिन्न हो गया था। इस प्रकार तत्कालीन धार्मिक परिस्थितियाँ भी सन्तोषप्रद नहीं थीं। इसी सन्दर्भ में आचार्य परशुराम चतुर्वेदी का यह कथन भी उल्लेखनीय है -

“उस समय न केवल बौद्ध तथा जैन ही, अपितु स्वयं वैष्णव, शाक्त, शैव जैसे हिन्दू सम्प्रदायों ने भी अपने अपने भीतर अनेक मतभेदों को जन्म दे रखा था। इनमें से सबने वेदों को ही अपना अंतिम प्रमाण बना रखा था और उनमें से कतिपय उद्धरण लेकर तथा उन्हें वास्तविक प्रसंगों से पृथक् करके वे अपने अपने मतानुसार उन पर मनमाने अर्थों का आरोप करने लगे थे। इसके

1. हिन्दी साहित्य का बृहद् इतिहास भाग 4 (भक्ति काल निर्गुण भक्ति) नागरी प्रचारिणी सभा काशी सं. पं. परशुराम चतुर्वेदी पृष्ठ 37 - 52
2. जैनधर्म पं. कैलाशचन्द्र शास्त्री पृष्ठ 310 - 311 चतुर्थ संस्करण ।
3. (क) कविवर बनारसीदास : व्यक्तित्व और कर्तृत्व— डॉ. रवीन्द्रकुमार जैन पृष्ठ 37-38
(ख) जैनधर्म पं. कैलाशचन्द्र शास्त्री पृष्ठ 293 - 294
(ग) जैन साहित्य में विचार— पं. बेचरदास पृष्ठ 87-105
4. कविवर बनारसीदास : व्यक्तित्व और कर्तृत्व— डॉ. रवीन्द्रकुमार जैन पृष्ठ 50
5. पंडित टोडरमल : व्यक्तित्व और कर्तृत्व पृष्ठ 17 से 20 तक

सिवाय कुछ मतों ने वेदों की भाँति ही पुराणों तथा स्मृतियों को भी प्रधानता दे रखी थी। अतएव इनके पारस्परिक मतभेदों के कारण एक को दूसरे के प्रति द्वेष, कलह या प्रतियोगिता के प्रदर्शन के लिए पर्याप्त प्रोत्साहन मिला करता था और बहुधा अनेक प्रकार के झगड़े खड़े हो जाते थे।”

ऐसी स्थिति में “परम्पराओं के उचित संचयन तथा परिस्थितियों की प्रेरणा में धर्म ऐसा रूप खोज रहा था कि वह केवल आचार्यों की वाणी में सीमित न रहकर जन-जीवन की व्यावहारिकता में उतर सके और ऐसा रूप ग्रहण करें कि वह अन्य धर्मों के प्रसार में समानान्तर बहते हुये अपना रूप सुरक्षित रख सके। वह रूप सहज तथा स्वाभाविक हो तथा अपनी विचारधारा में सत्य से इतना प्रखर हो कि विविध वर्ग और विचार वाले व्यक्ति अधिक से अधिक संख्या में उसे स्वीकार कर सकें और अपने जीवन का अंग बना लें।” - इस तथ्य को ध्यान में रखकर भूधरदास ने धर्म का ऐसा सार्वजनिक, सार्वभौमिक और सार्वकालिक रूप प्रस्तुत किया जो मात्र सैद्धान्तिक न होकर व्यावहारिक भी है। जिसकी परंपरा व्यवहार में पार्श्वपुराण के नायक “पार्श्वनाथ” में जन्म जन्मान्तरो से चलती रही है और प्रत्येक जीव में चल सकती है। साथ ही उसने अन्य सभी धर्मों विशेषकर हिन्दी के सन्तों द्वारा प्रवर्तित धर्म के समानान्तर चलते हुए अपना वैशिष्ट्य भी बनाये रखा है। भूधरदास द्वारा प्रतिपादित धर्म, धार्मिक एवं नैतिक आदर्श² इतने सरल और सहज है कि किसी भी धर्म, जाति, वर्ग या सम्प्रदाय का व्यक्ति उसे अपने जीवन में आसानी से अपना सकता है।

(घ) साहित्यिक परिस्थितियाँ

मुगलकालीन साहित्यिक गतिविधियाँ सन्तोषजनक नहीं थीं। लड़भिड़कर मुगलसेना और हिन्दू राजा अपनी शक्ति खो चुके थे। विशाल राष्ट्रीय कल्पना तथा उच्च नैतिक आदर्श की आस्था उनमें नहीं थी। मुगलकालीन शासकों की नीति का प्रभाव तत्कालीन साहित्य पर भी पड़ा। मुगलशासक भोग

1. हिन्दी साहित्य द्वितीय खण्ड सं. डॉ. धीरेन्द्र वर्मा पृष्ठ 209

2. इस संबंध में प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के अन्तर्गत लिखे गये भूधरदास के धार्मिक, दार्शनिक एवं नैतिक विचार देखें।

विलास में मग्न रहते थे तथा भौतिक सुखों की चरम सीमा पर पहुँचना ही उनका एक मात्र लक्ष्य था। इसीलिए उनके प्रभाव से भक्ति काल के राधा-कृष्ण रीतिकाल के साधारण नायक-नायिका बन गये। रीतिकालीन कवियों ने राधाकृष्ण को आलम्बन बनाकर साहित्य को श्रृंगारिकता से सराबोर कर दिया। यद्यपि उस समय भी कुछ ऐसे कवि थे, जो श्रृंगार को अपने काव्य का विषय नहीं बना सके¹ तथापि उनकी मुख्यता नहीं रही। श्रृंगारमूलक रचनाओं की अस्वीकृति की कड़ी में जैन कवि एवं साहित्यकार अग्रगण्य रहे। उन्होंने श्रृंगारिक रचनाओं की कटु आलोचना की² तथा भारतीय संस्कृति और नैतिक आदर्शों को सुरक्षित रखने हेतु साहित्यिक रचनाएँ की। रीतिकालीन कवियों ने अपने आश्रय दाताओं को प्रसन्न करने के लिए श्रृंगारिक साहित्य का सृजन किया। एक ओर रीतितत्त्वों की मुख्यता के कारण जहाँ पं. रामचन्द्र शुक्ल ने इस काल को “रीतिकाल” तथा मिश्रबन्धुओं ने “अलंकृत काल” की संज्ञा दी। वहाँ दूसरी ओर पं. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने श्रृंगारिकता की मुख्यता देखकर इसे “श्रृंगार काल” के नाम से अभिहित किया।³ तत्कालीन सामाजिक एवं राजनैतिक परिस्थितियों से प्रभावित होकर कविगण शरण्य दरबार में श्रृंगार की सांस ले रहे थे। वे श्रृंगार के अतिरिक्त और कुछ लिखना ही नहीं चाहते थे और उनके आश्रयदाता श्रृंगार के अतिरिक्त और कुछ सुनना ही नहीं चाहते थे। उस समय श्रृंगार रस की धारा अबाधित गति से बह रही थी। विलास की मदिरा पिलाकर कविपुंगव अपने को कृतकृत्य मानते थे। वे कामिनी के कटि, कुच, केशों और कटाक्षों के वर्णन में ही अपनी कल्पना शक्ति को समाप्त कर रहे थे।⁴

कतिपय उद्धरण तत्कालीन साहित्यिक प्रवृत्ति का परिचय देने के लिये पर्याप्त होंगे। निम्नलिखित पंक्ति में रीतिकालीन कवि ब्रह्मचर्य और पतिव्रत धर्म का कैसा मजाक उड़ाता है - “इहि पाखै पतिव्रत ताखै धरौ”। महाकवि देव परनारी संयोग को योग से भी कठिन बताते हुए कहते हैं -

“जोग हूँ ते कठिन संजोग पर नारी को”

-
1. “हिन्दी साहित्य का इतिहास” डॉ. नगेन्द्र पृष्ठ 291
 2. नाटक समयसार बनारसीदास अन्तिम प्रशस्ति छन्द 18 एवं जैन शतक पद 65
 3. “हिन्दी साहित्य का इतिहास” डॉ. नगेन्द्र पृष्ठ 291
 4. प्राचीन हिन्दी जैन कवि मूलचन्द वत्सल पृष्ठ 7

तत्कालीन भक्त कवियों ने भी श्रीकृष्ण और राधा के पवित्र भक्ति मार्ग का आश्रय लेकर उनकी ओर में अपनी गनना की काव्यरसमय कल्पनाओं को उद्दीप्त किया। भक्त कवि "नेवाज" व्रजवनिताओं को नीति की शिक्षा देते हुए कहते हैं -

“बावरी जो पै कलंक लग्यो तो, निसंक है काहे न अंक लगावति।”

कलंक धोने का इससे अच्छा उपाय भी उन्हें नहीं सूझा। यही नहीं, रसखान जैसा भक्त कवि भी इस प्रवाह में बह गया और कहने लगा -

“मौ पछित्तावौ यहै जु सखी, कि कलंक लग्यो पे अंक न लागी”

कतिपय इने गिने कवियों को छोड़कर प्रायः सभी कवियों ने अपने आश्रयदाताओं को प्रसन्न रखने के निम्नस्तरीय श्रृंगारिक साहित्य का सृजन किया। इसके सम्बन्ध में कविवर सुमित्रानन्दन पंत के निम्नलिखित विचार द्रष्टव्य हैं -

“इन साहित्य के मालियों में से जिनकी विलास वाटिका में भी आप प्रवेश करें, सबकी बावड़ी में कुत्सित प्रेम का फुहारा शत शत रसधारों में फूटता है। कुंजों में उद्दाम यौवन की दुर्गन्ध आ रही है। इस तीन फुट के नखशिख के संसार से बाहर ये कविपुंगव नहीं जा सके।”¹

तत्कालीन श्रृंगारिक साहित्य के उपयुक्त उद्धरणों के सन्दर्भ में भूधरदास का निम्नलिखित आलोचनात्मक कथन अति मननीय है -

राग उदै जग अंध भयो, सहजै सब लोगन लाज मर्वाई।
सीख बिना नर सीख रहे, विसनादिक सेवन की सुघराई ॥
ता पर और रचे रस काव्य, कहा कहिए तिनकी निदुराई।
अंध असुझन की अँखियान में, झोंकत है रज राम दुहाई ॥²

यद्यपि नेमिनाथ और राजुल के प्रसंग को लेकर श्रृंगारपरक रचनाएँ जैन साहित्य में भी मिलती हैं, परन्तु उनमें कहीं भी मर्यादा का उल्लंघन देखने को नहीं मिलता है। प्रायः सभी जैन कवि श्रृंगारिक रचनाओं के विरोधी रहे तथा उन्होंने श्रृंगारमूलक वर्णनों तथा प्रवृत्तियों की कड़ी आलोचना की। उनकी दृष्टि में नारी के नख-शिख आदि का वर्णन करने वाले न तो कवि हैं और न ही उन्हें सरस्वती का वरदान प्राप्त है—

“मांस की ग्रंथि कुच कंचन कलश कहे कहे मुख चन्द्र जो सलेवमा को घरूहै ।
हाड़ के दशन अहि हीरा मोती कहे ताहि मांस के आर ओंठ कहे विष्वफरूहै ॥
हाड़ वंश भुजा कहे कैल नाल काय जुधा हाड़ ही की वंशा जंघा कहे रंभातरूहै ।
यों ही झूठी जुगति बनावे और कहावै कवि एते पे कहें हमें जारदा का घरूहै” ॥¹

भूधरदास भी श्रृंगारिक कवियों के ध्वनियों की असत्यता बतलाकर वस्तुस्थिति स्पष्ट करते हैं :-

कंचन कुम्भन की उपमा कह देत उरोजन को कवि द्वारे ।
ऊपर श्याम विलोकत कै, मनि नीलम की ढकनी हैंकि छारै ॥
यो सत बैन कहैं न कुपंडित, जे जुग आमिषपिंड उघारे ।
साधन झार दई मुंह छार, भये इहि हेत किधौं कुच कारे ॥²

इसी प्रकार जब रीतिकाल के वृद्ध कवि भी अपने सफेद बालों को देखकर खेद व्यक्त कर रहे थे³ और “रसिक प्रिया” जैसे श्रृंगार काव्य का निर्माण कर रहे थे, तब जैन कवि⁴ तथा अन्य सन्त कवि⁵ उन्हें संबोधित कर रहे थे। साथ ही धार्मिक, आध्यात्मिक एवं मानवहितवर्धक साहित्य का निर्माण कर रहे थे। शासन द्वारा समाज की प्रत्येक स्थिति प्रभावित हुआ करती है। इस दृष्टि से भाषा भी महत्वपूर्ण है। राजकीय भाषा सामाजिक दृष्टि से अति महत्वपूर्ण होती है। मुगल शासन में भारत की शासकीय भाषा फारसी रही और 16 वीं शताब्दी से ही उसे विधिवत् सरकारी भाषा घोषित कर दिया गया।⁶ परिणामस्वरूप उसकी सर्वांगीण उन्नति हुई।⁷ सम्राट औरंगजेब के पश्चात्

1. नाटक समयसार बनारसीदास अन्तिम प्रशस्ति छन्द 18

2. जैनशतक भूधरदास पद्य 65

3. “केशव” केशन असकरी जस अरि हू न कराहि ।

चन्द्रवदन मृगलोचनी, बाबा कहि कहि जाहि ॥

4. बड़ी नीति लघु नीति करत है, वाय सरत बड़बोय भरी ।

फोडा आदि फुन गुनी मंडित, सकल देह मनु रोग दरी ॥

शोणित हाड़मांस मय मूरत, ता पर रीझत धरी घरी ।

ऐसी नारि निरखकर केशव, रसिकप्रिया तुम कहा करी ॥

(ब्रह्मविलास भैया भगवतीदास पृष्ठ 184)

5. सुन्दर ग्रन्थावली द्वितीय खण्ड 437-440 तथा प्रथम खण्ड भूमिका 98-106

6. हिन्दी साहित्य, द्वितीय भाग, सं. डॉ. धीरेन्द्र वर्मा पृष्ठ 59 कलकत्ता 1950

7. भारत का बृहद् इतिहास, प्रो. श्रीनेत्र पाण्डे पृष्ठ 815-816

देश की राजनीति में परिवर्तन हुआ। केन्द्रीय शासन किसी एक सबल शक्ति के अधीन नहीं रहा। शाहजहाँ के बाद केन्द्र से किसी प्रकार का प्रोत्साहन न पाकर हिन्दी ने स्वतन्त्र राजदरबारों में शरण ली और उनके राजकार्यों में व्यवहृत हुई। केन्द्रीय स्तर पर भी उर्दू मिश्रित हिन्दी का व्यवहार हुआ।¹

तत्कालीन श्रृंगारिक भावों और विचारों के अनुसार भाषा और शैली में भी यथेष्ट परिवर्तन हुए; इसीलिए उस युग के साहित्य में अलंकारों एवं अन्य बाह्य उपादानों की चमक दमक और भरमार दिखाई देती है।

जो रचनाएँ श्रृंगारिकता से ओतप्रोत होकर भाषा, शैली, छन्दों, अलंकारों आदि से चमत्कृत होती हुई अभिव्यक्त हुई हैं, वे "रीतिबद्ध कविता" के नाम से जानी गई। दूसरी ओर इन सबसे उन्मुक्त कविता "रीतिमुक्त कविता" के नाम से अभिहित हुई। इस काव्य परम्परा द्वारा करुणा, प्रेम, नीति आदि के अतिरिक्त आध्यात्मिक कल्याणकारी विचारों की अभिव्यंजना हुई। आलोच्य कवि भूधरदास एक ओर तो इस परम्परा के निकट दिखाई देते हैं तो दूसरी ओर सन्त काव्य परम्परा के। परन्तु वास्तव में वे जैन श्रमण परम्परा के कवि हैं, जिसका अभी तक हिन्दी काव्य परम्परा में कोई स्थान नहीं माना जाता है।

रीतिमुक्त काव्यपरम्परा तथा सन्त काव्यपरम्परा जनसाधारण के द्वारा अपेक्षाकृत अधिक आदृत हुई। वास्तविकता यह है कि यदि यह परम्परा जन्म न लेती तो हिन्दी का साहित्य भाव और भाषा की दृष्टि से बड़ा दरिद्र और जनकल्याण की दृष्टि से बड़ा असमर्थ सिद्ध होता। महाकवि भूधरदास ने उक्त विषम परिस्थितियों में बड़े मनोयोग से सत्साहित्य का सृजन कर लोकोपकारी कार्य किया। उनके द्वारा रचित साहित्य हिन्दी जैन साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान रखता है।

इस तरह कुल मिलाकर आलोच्यकाल में राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, एवं साहित्यिक परिस्थितियाँ सन्तोषप्रद व उत्साहवर्द्धक नहीं थीं। तत्कालीन राजनीति में अस्थिरता, समाज में रूढ़िवादिता, आर्थिक जीवन में विषमता, धर्म के क्षेत्र में विभिन्न मत मतान्तर, साहित्य के क्षेत्र में श्रृंगारिकता आदि सभी अपनी चरम सीमा पर दिखाई देते हैं। कहीं कहीं धर्म, दर्शन, अध्यात्म, भक्ति एवं मानवीय मूल्यों की ज्योति टिमटिमाती हुई दीख पड़ती है, जिसका प्रतिनिधित्व समस्त सन्त साहित्य एवं जैन साहित्य करता है। इसके प्रमाणस्वरूप सन्तकाव्य के सन्दर्भ में भूधरदास के काव्य का मूल्यांकन यथास्थान किया जायेगा।

अन्तर उज्ज्वल

अन्तर उज्ज्वल करना रे भाई ॥ टेक ॥

कपट कृपाण तजै नहिं तबलों, करनी काज न सरना रे ॥

॥ अन्तर उज्ज्वल ॥

जप तप तीरथ यज्ञं व्रतादिक, आगम अर्थ उचरना रे ।

विषय, कषाय कीच नहिं धोयो, यों ही पचि-पचि मरना रे ॥

॥ अन्तर उज्ज्वल ॥

बाहिर भेष क्रिया उर शुचि सों, कीये पार उतरना रे ।

नाहीं हैं सब लोक-रंजना, ऐसे वेदन खरना रे ॥

॥ अन्तर उज्ज्वल ॥

कामादिक मन सों मन मैला, भजन किये क्या तिरना रे ।

‘भूधर’ नील वसन कर कैसे, केशर रंग उछरना रे ॥

॥ अन्तर उज्ज्वल ॥

— भूधरदास

तृतीय अध्याय

जीवनवृत्त एवं व्यक्तित्व

(क) जीवनवृत्त

(ख) व्यक्तित्व

भूधरदास : जीवनवृत्त एवं व्यक्तित्व

जीवनवृत्त - संस्कृत एवं हिन्दी के अधिकांश कवियों ने अपनी रचनाओं में न अपना कोई परिचय दिया है और न कोई प्रामाणिक साक्ष्य ही तत्सम्बन्ध में उपलब्ध है। ऐसी परिस्थिति में कवि की रचना में उपलब्ध किसी ऐसी पंक्ति का सहारा लेना पड़ता है, जिसमें उसके परिचय की ओर संकेत हो। कवि भूधरदास के सम्बन्ध में भी यही कथन चरितार्थ होता है। “जैन शतक” में दिये गये एक पद से केवल इतना ही ज्ञात होता है कि कवि आगरा निवासी था और उसकी जाति खण्डेलवाल थी। वह पद इस प्रकार है -

“आगरे में बालबुद्धि भूधर खण्डेलवाल, बालक के ख्यालसों कवित्त कर जानेहैं।
ऐसे ही करत भयौ जैसिंह सवाई सूबा, हाकिम गुलाबचन्द आये तिहि थाने हैं॥
हरिसिंह साहके सु वंश धर्मानुरागी नर, तिनके कहै सौ जोरि कीनी एक ठानेहैं।
फिरि-फिरि प्रेरे मेरे आलस को अन्त भयो, इनकी सहाय यह मेरो मनमाने हैं।।

मैं, भूधरदास खण्डेलवाल आगरा में बालकों के खेल जैसी कविता (रचना) करता हूँ। ये उक्त छन्द मैंने सवाई जयसिंह सूबा के हाकिम श्री गुलाबचन्द्र जी और श्री हरिसिंहशाह के वंशज धर्मानुरागी पुरुषों के कहने से एकत्रित किये हैं। उन्हीं लोगों की पुनः पुनः प्रेरणा से मेरे आलस्य का अन्त हुआ है। मैं उनका हृदय से आभार मानता हूँ।

इस प्रकार भूधरदास का जन्म आगरा में खण्डेलवाल जैन परिवार में हुआ था। पं. ज्ञानचन्द जैन “स्वतन्त्र” के अनुसार उनका जातिगत गोत्र कासलीवाल था। वे आगरा में शाहगंज में रहते थे और उनका शाहगंज जैन मन्दिर में प्रतिदिन प्रवचन होता था। वे प्रकाण्ड विद्वान्, अच्छे कवि एवं प्रवचनकार थे। उनके द्वारा रचित “जैन शतक”, “पार्श्वपुराण” एवं “पद संग्रह” - ये तीन रचनाएँ अति प्रसिद्ध हैं। इससे अधिक कवि का परिचय कहीं भी प्राप्त नहीं होता है। उनके जन्म, माता-पिता, शिक्षा-दीक्षा, पत्नी, संतान, मृत्यु आदि के बारे में कोई उल्लेख नहीं मिलता है। कई समीक्षकों ने भी इसी कथन का पुनरावर्तन किया है, उनमें से मुख्य है - डॉ. कामताप्रसाद जैन,¹ डॉ. नेमीचन्द्र शास्त्री² एवं मूलचन्द वत्सल³ आदि।

1. हिन्दी जैन साहित्य का संक्षिप्त इतिहास— डॉ. कामताप्रसाद जैन पृष्ठ 172

2. जैन साहित्य परिशीलन भाग - 1 डॉ. नेमीचन्द्र शास्त्री

3. प्राचीन हिन्दी जैन कवि— श्री मूलचन्द वत्सल

नाम - भूधरदास ने प्रायः अपने सभी पदों तथा शेष अन्य रचनाओं² में “भूधर” शब्द का प्रयोग किया है। परन्तु उनकी प्रसिद्धि “भूधरदास” के नाम से ही है। प्रायः उनकी सभी प्रकाशित रचनाओं में “भूधरदास” नाम ही देखने को मिलता है। पं. दौलतरामजी ने उन्हें “भूधरमल” नाम से सम्बोधित किया है³ तथा ब्र. रायमलजी ने उनके लिए “भूधरमल्ल” शब्द का प्रयोग किया है।⁴

इस तरह आलोच्य कवि का नाम “भूधर, भूधरदास, भूधरमल और भूधरमल्ल मिलता है परन्तु सर्वाधिक प्रसिद्ध नाम “भूधरदास” ही है।

शिक्षा - भूधरदास के काल में शिक्षा प्रायः पारिवारिक संस्कार, सामाजिक आचार-विचार, आध्यात्मिक संगोष्ठी तथा धार्मिक प्रवचन आदि के द्वारा हुआ करती थी। भूधरदास की शिक्षा “आध्यात्मिक संगोष्ठी” में हुई, जिसे “सैली” कहा जाता था। आगरा में प्रचलित “वाणारसिया सैली” द्वारा कवि का ज्ञान विशेष वृद्धि को प्राप्त हुआ।⁴ इन सैलियों में अध्ययन करने वाले विद्वान प्रायः आध्यात्मिक साहित्य की ही रचना करते थे; क्योंकि इन सैलियों का उद्देश्य “आध्यात्मिकता” जागृत करना होता था। भूधरदास आगरे की उसी अध्यात्म परम्परा के थे, जो महाकवि बनारसीदास से प्रारम्भ हुई थी।⁵

भूधरदास आगरा की अध्यात्म सैली के प्रमुख विद्वान थे। इनके साथ हेमराज, सदानन्द, अमरपाल, बिहारीलाल, फतेहचन्द, चतुर्भुज आदि साधर्मी भी थे, जो प्रतिदिन परस्पर तत्त्वचर्चा किया करते थे। इन सबका उल्लेख पण्डित दौलतराम कासलीवाल ने “पुण्याख्य कथाकोश” की प्रशस्ति में इस प्रकार किया है -

1. (क) आगरे में बाल बुद्धि भूधर खण्डेलवाल, बालक के ख्यालसौ कवितकर जाने है।

जैन शतक पद 106

(ख) पूरव चरित्र विलोकिके भूधर बुद्धि समान। भाषाबंध प्रबंध यह कियो आगरे धान ॥

पार्श्वपुराण 95

(ग) भूधर विनये विनय कर सुनियो सज्जन लोग।

गुण के ग्राहक हूबिये इह विनती तुम जोग ॥ चर्चा समाधान पृष्ठ 122

2. अनेकान्त वर्ष 10, किरण १, पृष्ठ 9-10

3. जीवन पत्रिका— ब्र. रायमल, पंडित टोडरमल व्यक्तित्व और कर्तृत्व, परिशिष्ट 1 पृष्ठ 334

4. हिन्दी जैन भक्ति काव्य और कवि, भूमिका— डॉ. प्रेमसागर जैन पृष्ठ 17 सन् 1964

5. वही पृष्ठ 336

भूधरदास जिन धर्मों ठीक रहे स्याहगंज में तहकीक ।

जिन सुमिरन पूजा परवीन, दिन प्रति करे अशुभ को छीन ॥15॥

हेमराज साधर्मों भले, जिन वच मानि असुभ दल मलै ।

अध्यात्म चरचा निति करे, प्रभु के चरण सदा उर धरै ॥16॥

सदानन्द है आनन्द मई, जिनमत की आज्ञा तिह लही ।

अमरपाल भी यामे लिख्यौ, परमागम को रस तिन चख्यौ ॥17॥

लाल बिहारी हूँ नित सुने, जिन आगम को नीकै मुने ।

फतेहचन्द है रोचक जीकै, चरचा करै हरष धरि जीकै ॥18॥

चत्रभुज साधरमी जोई, धुकी भक्ति असु प्रभु की ओर ।

मिले आगरे कारन पाय, चरिचा करे परस्पर आय ॥ 19 ॥¹

इस सम्बन्ध में डॉ. कस्तूरचन्द कासलीवाल द्वारा लिखित निम्नलिखित कथन द्रष्टव्य है -

“भूधरदास महाकवि दौलतराम के समकालीन विद्वान थे। पुण्यास्त्रव कथाकोश की प्रशस्ति में सर्वप्रथम इन्हीं (भूधरदास) का स्मरण किया गया है। ये ही वे भूधरदास हैं, जिन्होंने “पार्श्वपुराण” जैसे प्रबन्धकाव्य की रचना संवत् 1789 में समाप्त की थी। आगरा की अध्यात्मसैली के ये प्रमुख विद्वान थे। कवि (दौलतराम) का सर्वप्रथम इन्हीं से परिचय हुआ और इन्हीं की प्रेरणा से वे साहित्य-निर्माण की ओर प्रवृत्त हुये।”²

एक अन्य स्थान पर डॉ. कासलीवाल लिखते हैं कि - “विवाह होने पर महाकवि दौलतराम को एक बार कार्यवश आगरा जाना पड़ा। वसन्त से आगरा 100 मील से कुछ अधिक दूर है। आगरा उस समय उत्तर भारत का प्रमुख नगर था। मुगल शासकों की राजधानी होने के कारण वह व्यापार का प्रसिद्ध केन्द्र था। लेकिन इन सबके अतिरिक्त वह सांस्कृतिक नगर भी था और आध्यात्मिक सैली का केन्द्र भी। महाकवि बनारसीदास का स्वर्गवास हुये 70

1. पुण्यास्त्रव कथा-कोश प्रशस्ति — पं. दौलतराम कासलीवाल

2. दौलतराम कासलीवाल व्यक्तित्व और कृतित्व— डॉ. कस्तूरचन्द कासलीवाल
प्रस्तावना पृष्ठ 99

वर्ष से भी अधिक हो गये थे, लेकिन उनके द्वारा स्थापित अध्यात्म सैली पूर्ववत् चल रही थी। इस सैली में कविवर भूधरदास का व्यक्तित्व उभर रहा था। दौलतराम जब आगरा पहुँचे तो वे इस सैली के सङ्ग ही नियमित सदस्य बन गये और जब तक आगरा रहे, तब तक वे अध्यात्म सैली में बराबर जाते रहे। अपनी प्रथम कृति “पुण्याखव कथाकोश” में उन्होंने अध्यात्म सैली एवं उनके सदस्यों का विस्तृत वर्णन दिया है। उन्होंने सर्वप्रथम आगरा रहते हुये ही संवत् 1777 में “पुण्याखव कथाकोश” की रचना समाप्त की।¹

दौलतराम एवं भूधरदास की भेंट सर्वप्रथम आगरे में हुई थी। दौलतराम के अनुसार भूधरदास आगरे की अध्यात्म सैली के प्रमुख विद्वान थे। वे स्याहगंज में रहते थे। ये अधिकांश समय जिनेन्द्र पूजा एवं भक्ति में लवलीन रहते थे।²

डॉ. कासलीवाल के उक्त कथनों से भूधरदास जी की शिक्षा-दीक्षा एवं ज्ञान की पर्याप्त जानकारी प्राप्त होती है।

भूधरदास को संस्कृत, प्राकृत एवं देशभाषा सम्बन्धी चारों अनुयोगों के ग्रन्थों का अच्छा अभ्यास था;³ इसीलिए ब्र. रायमल उन्हें “बहुत जैन शास्त्रों के पारगामी” मानते हैं। वे लिखते हैं - “भूधरदास साहूकार व्याकरण का पाठी, घणां जैन शास्त्रों का पारगामी तासूं मिले”⁴। कवि द्वारा लिखित “चर्चा समाधान” नामक गद्य कृति में दिये गये विविध उद्धरण, प्रमाण, ग्रन्थों का नामोल्लेख⁵ तो उनके गम्भीर अध्ययन के द्योतक हैं ही, परन्तु “पार्श्वपुराण” नामक महाकाव्य में भी गोम्मटसार, तत्त्वार्थसूत्र, सर्वार्थसिद्धि, त्रिलोकप्रज्ञप्ति आदि विभिन्न ग्रन्थों का नामोल्लेख भी उसका सूचक है।

कवि उच्च कोटि का विद्वान होने के साथ-साथ संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, गुजराती, और उर्दू आदि का भी ज्ञाता था।

भाषा और विषय के अतिरिक्त कवि को काव्यशास्त्रीय ज्ञान भी था।

1. दौलतराम कासलीवाल व्यक्तित्व और कृतित्व— डॉ. कस्तूरचन्द कासलीवाल

प्रस्तावना पृष्ठ 66

2. वही पृष्ठ 11

3. “चर्चा समाधान” ग्रन्थ में उद्धृत चारों अनुयोगों संबंधी ग्रन्थों के नाम प्रस्तुत शोध प्रबंध, चतुर्थ अध्याय पृष्ठ 152

4. पं. टोडरमल व्यक्तित्व और कर्तृत्व डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल परि. 1 जीवन पत्रिका पृष्ठ 334

5. लगभग 85 ग्रन्थों का नामोल्लेख किया है इसका विवरण- प्रस्तुत शोध प्रबंध अध्याय 4

कवि भूधरदास ने अपने साहित्य में अनेक छन्दों¹ एवं रागों² का प्रयोग किया है।

परिवार - भूधरदास ने अपने माता-पिता, पत्नी, संतान आदि के बारे में न तो कहीं उल्लेख किया है और न ही इस सम्बन्ध में कोई बहिर्साक्ष्य उपलब्ध होते हैं; इसलिए उनके परिवार की सम्पूर्ण जानकारी अज्ञात ही है। इस सम्बन्ध में कुछ कहना मात्र सम्भावना ही होगी, निश्चित तथ्य नहीं।

निवास स्थान एवं कार्यक्षेत्र - भूधरदास का निवास स्थान एवं कार्यक्षेत्र आगरा ही था। इस सम्बन्ध में उन्होंने स्वयं अपनी रचनाओं में उल्लेख किया है -

"आगरे में बालबुद्धि भूधर खण्डेलवाल।

बालक के ख्याल सौ कवित कर जाने है॥"³

"पूरब चरित विलोकि के, भूधर बुद्धि समान।

भाषा बन्ध प्रबन्ध यह कियौ आगरे दान॥"⁴

पूर्व उल्लिखित ब्र. रायमल और पं. दौलतराम कासलीवाल के उद्धरणों से भी भूधरदास का निवास स्थान एवं कार्यक्षेत्र "आगरा" निर्विवाद निश्चित होता है।

जन्म-मृत्यु एवं रचनाकाल - भूधरदास का जन्म एवं मृत्यु का निश्चित समय तो अविदित है, परन्तु उनकी रचनाओं के काल के आधार पर उनका समय निश्चित किया जा सकता है।

भूधरदास द्वारा लिखित प्रथम कृति "जैन शतक" का रचनाकाल वि. सं. 1781 है -

"सतरह से इक्यासिया, पोह पाख तमलीन।

तिथि तेरस रविवार को, शतक समाप्त कीन॥"⁵

यह शतक पौष कृष्णा त्रयोदशी रविवार सं. 1781 को समाप्त किया गया।

1. दोहा, चौपाई, सौरठा, छप्पय, अडिल्ल, पद्धड़ी, कुण्डलिया, आर्या, धत्ता, त्रिभंगी, हंसाल आदि
2. कल्याण, काफी, कन्हड़ी, काफी कन्हड़ी, गौरी, बनावरी, नट, पंचम, प्रभाती, बंगला, बिलावल, भैरवी, मलार, रामकली, विहाग, श्री गौरी, सारंग, सौरठा आदि

3. जैन शतक छन्द 106

4. पार्श्वपुराण अन्तिम प्रशस्ति पृष्ठ 95

5. जैन शतक अन्तिम पद

भूधरदास की दूसरी रचना "पार्श्वपुराण" का रचनाकाल वि. सं. 1789 है।

संवत् सतरह से समय, और नवासी लीय।

सुदि अषाढ़ तिथि पंचमी, ग्रन्थ समाप्त कीय ॥ ¹

संवत् 1789 आषाढ़ शुक्ला पंचमी को यह ग्रन्थ समाप्त किया गया।

भूधरदास की समयांकित गद्यकृति "चर्चा समाधान" का रचनाकाल वि. सं. 1806 है -

अठारह से षडहोत्तरे, माघ मास अवसान।

शुक्ल पक्ष तिथि पंचमी, ग्रन्थ समाप्ति ठान ॥ ²

वि. सं. 1806 के माघ मास के शुक्ल पक्ष की पंचमी को यह ग्रन्थ समाप्त किया गया।

इस प्रकार जैन-शतक, पार्श्वपुराण और चर्चा समाधान इन तीनों समयांकित रचनाओं का कुल रचनाकाल 25 वर्ष होता है। सर्वप्रथम जैनशतक की रचना वि. सं. 1781 में हुई है। अतः भूधरदास का जन्म इसके 25-30 वर्ष पूर्व अवश्य मानना होगा; क्योंकि सामान्यतः किसी व्यक्ति का 25-30 वर्ष का हुये बिना इस प्रकार का धार्मिक एवं नैतिक ग्रन्थ बनाना सम्भव नहीं है। इस आधार पर भूधरदास का जन्म वि. सं. 1781 के लगभग 25 वर्ष पूर्व वि. सं. 1756 सिद्ध होता है। डॉ. कस्तूरचन्द कासलीवाल द्वारा सम्पादित "जैन पद संग्रह," ³ पं. ज्ञानचन्द विदिशा द्वारा संकलित "अध्यात्म भजन गंगा" ⁴ एवं डॉ. नेमिचन्द जैन द्वारा सम्पादित "जैन पद विशेषांक" ⁵ में भी भूधरदास का जन्म समय 1757 दिया गया है। अतः मेरा भी यह निश्चित मत है कि भूधरदास का जन्म समय वि. सं. 1756-57 ही होना चाहिए।

भूधरदास का देहावसान का समय भी अनिश्चित ही है, परन्तु उपर्युक्त मनीषी विद्वानों ने भूधरदास का अंतिम समय वि. सं. 1806 माना है। जबकि यह उनकी समयांकित अन्तिम कृति "चर्चा समाधान" का रचना काल है। वि. सं. 1806 के माघ मास में "चर्चा समाधान" की रचना के तत्काल बाद भूधरदास

1. पार्श्वपुराण अन्तिम प्रशस्ति

2. चर्चा समाधान अन्तिम प्रशस्ति

3. जैन पद संग्रह— डॉ. कस्तूरचन्द कासलीवाल, महावीरजी 1964

4. अध्यात्म भजन गंगा— संकलनकर्ता श्री ज्ञानचन्द विदिशा, मुमुक्षु मण्डल, कानपुर

5. जैन पद विशेषांक— सम्पादक डॉ. नेमिचन्द जैन

की मृत्यु हो गयी — इस सम्बन्ध में कोई निश्चित तथ्य नहीं मिलते हैं। उपर्युक्त मनीषी विद्वानों ने भूधरदास की गद्यकृति “चर्चा समाधान” के रचना काल वि. सं. 1806 को ही उनका अन्तिम समय मान लिया है, जबकि इस सम्बन्ध में और भी अधिक गवेषणा की आवश्यकता है। ब्र. रायमलजी टोडरमलजी से सर्वप्रथम वि. सं. 1812 में सिंघाणा में मिले थे, जबकि वह उनसे मिलने के उत्सुक 3-4 वर्ष पहले से ही थे; क्योंकि उस समय तक वे उनकी कीर्ति एवं विद्वता सुन चुके थे।¹ वि. सं. 1812 के पहले ब्र. रायमल टोडरमलजी से मिलने जयपुर गये थे, परन्तु वहाँ टोडरमलजी के न मिलने पर वे आगरा गये थे और आगरा में भूधरदास से मिले थे। उनके आगरा जाने एवं भूधरदास से मिलने का समय निश्चित ही वि. सं. 1812 से कुछ पूर्व ही होगा। अतः वि. सं. 1812 के आस-पास भूधरदास का अस्तित्व निर्विवाद सिद्ध हो जाता है। ब्र. रायमल ने अपने द्वारा लिखित “जीवनपत्रिका” में जयपुर से आगरा जाने, सिंघाणा में टोडरमलजी से मिलने आदि का विवरण इस प्रकार दिया है -

“पीछै केताइक दिन रहि टोडरमल जैपुर के साहूकार का पुत्र ताकै विशेष ज्ञान जानि तासूं मिलने के अर्थि जैपुर नगरी आए : सो इहां ताकूं पाया अर एक बंसीधर किंचित संजम का धारक विशेष व्याकरणादि जैन मत के शाखा का पाठी, सौ पचास लड़का पुरुष बायां जा नखै व्याकरण छंद अलंकार काव्य चरचा पढ़ै, तासूं मिले।

पीछै वानै छोडि आगरै गए। उहां स्याहगंज विषै भूधरमल्ल साहूकार व्याकरण का पाठी, घणां जैन शाखा का पारगामी तासूं मिले और सहर विषै एक धर्मपाल सेठ जैनी अग्रवाल व्याकरण का पाठी मोती कटला कै चैताले शाख का व्याख्यान करे, और सौ दोय सै साधमी भाई ता सहित वासूं मिलि फेरि जैपुर पाछा आए।

पीछै सेखावाटी विषै सिंघाणा नग्र तहां टोडरमल्लजी एक दिल्ली का बड़ा साहूकार साधमी ताकै समीप कर्म कार्य कै अर्थि वहां रहे, तहां हम गए अर टोडरमल्लजी सूं मिले, नाना प्रकार के प्रश्न किए, ताका उत्तर एक गोमटसार नामा ग्रन्थ की साखि सूं देते धए। ता ग्रन्थ की महिमा हम पूर्वे सुणी थी, तासूं विशेष देखी। अर टोडरमल्लजी का ज्ञान की महिमा अद्भुत देखी।”²

1. पंडित टोडरमल : व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व, डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल पृष्ठ 46

2. पंडित टोडरमल : व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व, डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल परिशिष्ट 1, जीवन पत्रिका ब्र. रायमल द्वारा लिखित पृष्ठ 334-335

दिगम्बर जैन बड़ा मन्दिर तेरापंथियान जयपुर में प्राप्त भूधरदास द्वारा लिखित “चर्चा समाधान” की एक हस्तलिखित प्रति वि. सं. 1815 में लिखी गई, जिसमें पं. टोडरमलजी द्वारा गोमट्टसार आदि ग्रन्थों की 60 हजार श्लोक प्रमाण टीका लिखे जाने और भूधरदास के “चर्चा समाधान” ग्रंथ की प्रामाणिकता के बारे में उल्लेख किया गया है।¹ उस उल्लेख में टोडरमलजी और भूधरदासजी इन दोनों के वर्तमान होने का स्पष्ट संकेत है - “सु भूधरमल्लजी बीच टोडरमलजी विशेष ग्याता है।”² अतः भूधरदास का अन्तिम समय वि. सं. 1815 तो आसानी से माना जा सकता है। परन्तु वास्तव में उनका अवसान काल 1815 मानना भी ठीक नहीं है; क्योंकि ब्र. रायमलजी ने “जीवनपत्रिका” एवं “इन्द्रध्वज विधान महोत्सव पत्रिका” माघ कृष्ण 9 वि. सं. 1821 में लिखी थी,³ जिसमें आगरा नगर एवं भूधरदास का उल्लेख किया था। इन्द्रध्वज विधान महोत्सव जयपुर नगर में फाल्गुन कृष्ण 4 वि. सं. 1821 तक सम्पन्न हुआ था।⁴ सम्भवतः भूधरदास इस महोत्सव में सामिल हुए हो और यदि न भी हो सके हो, तो भी उनका अस्तित्व ब्र. रायमल से मिलने के समय वि. सं. 1812 से कुछ समय पूर्व से लेकर 10-11 वर्ष पश्चात् वि. सं. 1822-23 तक मानना असंगत प्रतीत नहीं होता है। अतः भूधरदास का अन्तिम समय वि. सं. 1806 न मानकर वि. सं. 1822-23 माना जाना चाहिए और यही युक्तिसंगत भी प्रतीत होता है।

इस प्रकार भूधरदास का कुल समय वि. सं. 1756-57 से लगाकर वि. सं. 1822-23 तक लगभग 65 वर्ष निश्चित होता है।

अनेक ग्रन्थों के लेखक एवं सम्पादक प्रसिद्ध इतिहासविज्ञ डॉ. कस्तूरचन्द कासलीवाल भूधरदास का साहित्यिक जीवन या रचनाकाल सिर्फ 15-20 वर्ष ही मानते हैं। इस सम्बन्ध में वे लिखते हैं - “भूधरदास का साहित्यिक जीवन

1. पंडित टोडरमल : व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व, डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल पृष्ठ 75

2. पंडित टोडरमल : व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व, डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल पृष्ठ 75

3. पंडित टोडरमल : व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व, डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल परिशिष्ट 1,

इन्द्रध्वज विधान महोत्सव पत्रिका—ब्र. रायमल पृष्ठ 346

4. “सौ फागुण बदि ताई तहां ही पूजन होयगा वा नित्य शास्त्र का व्याख्यान, तत्वां का निर्णय, पठन-पाठन, जागण आदि शुभ कार्य चौथि ताहिं उहां हो होयगा।” वही पृष्ठ 340

संभवतः अधिक लम्बा नहीं रहा। उन्होंने अपने जीवन के 15-20 वर्ष ही साहित्य सेवा व लेखन में लगाये।”¹

इसी प्रकार भूधरदास पर सर्वप्रथम शोधकार्य करने वाले शोधार्थी श्री ब्रजेन्द्रपालसिंह चौहान भूधरदास का काव्यसृजन-काल मात्र 10 वर्ष ही मानते हैं। उनका कथन है - “कवि के जन्म - दिनांक, शिक्षा-दीक्षा का विवरण आदि का स्पष्ट उल्लेख न तो स्वयं कवि द्वारा ही कहीं हुआ और ना ही बहिर्साक्ष्य ही इस विषय में किसी प्रकार की सूचना देता है। कविकृत रचनाओं का आलोड़न करने से यह अवश्य ही विदित होता है कि कवि का काव्यसृजन-काल निश्चय ही एक दशाब्दी रहा है।”² क्योंकि कवि की प्रथम रचना जैनशतक संवत् 1781 में रची गई और इसके उपरान्त पार्श्वपुराण नामक कृति को कवि ने अपने पंचवर्षीय अथक परिश्रम से रचा और पार्श्वपुराण नामक महाकाव्य संवत् 1789 में समाप्त हुआ।”³

उपर्युक्त दोनों कथनों पर विचार करने पर यह प्रतीत होता है कि विद्वत्द्वय ने भूधरदास की समस्त रचनाओं का अवलोकन नहीं किया तथा उन पर उल्लिखित रचनाकालों पर दृष्टिपात नहीं किया। यदि सभी रचनाओं एवं उनके रचनाकालों को दृष्टिपथ में लाया जाता तो उपर्युक्त मन्तव्य स्थिर नहीं हो पाते; क्योंकि भूधरदास की सर्वप्रथम कृति जैनशतक वि. सं. 1781, द्वितीय पार्श्वपुराण वि. सं. 1789 और तृतीय गद्यकृति “चर्चा समाधान” वि. सं. 1806 की रचना है। वि. सं. 1781 से 1806 तक का कुल समय 25 वर्ष स्वतः सिद्ध होता है। अतः उनका साहित्यिक जीवन या रचनाकाल 10 वर्ष या 15-20 वर्ष किसी भी प्रकार नहीं माना जा सकता है। समयांकित रचनाओं के आधार पर भूधरदास का साहित्यिक काल 25 वर्ष है। परन्तु अन्य फुटकर रचनाएँ जिन पर समय अंकित नहीं है, इस समय-सीमा का उल्लंघन भी कर सकती हैं और भूधरदास के साहित्यिक जीवन को वृद्धिगत भी कर सकती हैं।

1. दौलतराम कासलीवाल व्यक्तित्व और कृतित्व— डॉ. कस्तूरचन्द कासलीवाल प्रस्तावना पृष्ठ 11
2. कविवर भूधरदास की केवल दो ही रचनाएँ ‘जैनशतक’ और ‘पार्श्वपुराण’ समयांकित हैं। जिनमें ग्रन्थ समाप्ति के अवलोकन से निश्चित किया जा सकता है कि संवत् 1781 से संवत् 1789 तक अर्थात् एक दशाब्दि ही कविवर का साहित्य सृजनकाल रहा। शोध ग्रन्थ कविवर (महाकवि) भूधरदास : व्यक्तित्व और कर्तृत्व ब्रजेन्द्रपालसिंह चौहान द्वितीय अध्याय पृष्ठ 34-35, आगरा विश्वविद्यालय सन् 1970
3. वही पृष्ठ 34-35

व्यक्तित्व :- भूधरदास के साथ पंडित¹, कविवर,² महाकवि पंडित³ आदि विशेषणों का प्रयोग देखा जाता है। सामान्यतः जैन परम्परा में “पंडित” शब्द का प्रयोग सर्वत्र विद्वता के अर्थ में किया जाता है, विशेषतः ज्ञानी सम्यग्दृष्टि के अर्थ में परन्तु जातिगत अर्थ में इसका प्रयोग नहीं किया जाता है। भूधरदास ने अपने ग्रन्थ “चर्चा समाधान” में विविध चर्चाओं के समाधान हेतु लगभग 85 जैनग्रन्थों के नाम, उद्धरण एवं प्रमाण प्रस्तुत किये। इससे सिद्ध होता है कि वे बहुशास्त्रविद् एवं प्रकाण्ड विद्वान् थे। ब्र. रायमल भी उन्हें “व्याकरण का पाठी एवं बहुत जैन शास्त्रों के पारगामी”⁴ बतलाते हैं। भूधरदास का व्यक्तित्व अनेक गुणों से विभूषित था। संक्षेप में उनमें विद्यमान गुणों का विवेचन निम्नलिखित है-

महाकवि :- भूधरदास ने पार्श्वपुराण, जैन शतक और अनेक पदों की रचना की है; इसलिए वे कवि तो हैं ही, साथ ही कवियों में श्रेष्ठ “कविवर” एवं “पार्श्वपुराण” नामक महाकाव्य⁵ के रचयिता होने के कारण “महाकवि” भी है।

अध्यात्मरसिक :- पंडित दौलतराम कासलीवाल भूधरदास को पंडित, कवि तथा अध्यात्मरसिक मानते हुए लिखते हैं कि - “भूधरदास कवि थे और पण्डित भी। अध्यात्म चर्चा में उन्हें विशेष रस आता था।”⁶

प्रवचनकार :- भूधरदास कवि एवं पंडित होने के साथ-साथ एक अच्छे प्रवचनकार भी थे। उनका आगरा के स्याहगंज (शाहगंज) जैन मन्दिर में प्रतिदिन प्रवचन होता था। इस सम्बन्ध में ब्र. रायमल लिखते हैं - “स्याहगंज के चैतालै भूधरमल्ल शास्त्र का व्याख्यान करे और सौ दोय सै साधमी भाई ता सहित वासूं मिलि फेरि जैपुर पाछा आए”⁷

1. चर्चा समाधान एवं बृहत्जैनपद संग्रह, प्रकाशक जिनवाणी प्रचारक कार्यालय कलकत्ता, वीर नि. सं. 2452

2. पार्श्वपुराण की सभी प्रकाशित प्रतियों के नाम के पूर्व ‘कविवर’ विशेषण मिलता है।

3. “जैन शतक” प्रकाशक अखिल भारतीय जैन युवा फेडरेशन शाखा भिण्ड सन् 1990, नाम के पूर्व उपर्युक्त उपाधि दी गई है।

4. पंडित टोडरमल : व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व, डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल परिशिष्ट 1, जीवन पत्रिका ब्र. रायमल पृष्ठ 334

5. पार्श्वपुराण का महाकाव्यात्मक अनुशीलन: प्रस्तुत शोध प्रबंध, पंचम अध्याय

6. अनेकान्त वर्ष 10 किरण 1 पृष्ठ 9-10

7. पंडित टोडरमल : व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व, डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल परिशिष्ट 1, जीवन पत्रिका ब्र. रायमल पृष्ठ 334

पंडित दौलतराम द्वारा भी इस कथन की पुष्टि होती है - "वे आगरा में स्याहगंज में रहते थे। स्याहगंज मन्दिर में उनका प्रतिदिन शास्त्र प्रवचन हुआ करता था।" ¹

समाधानकर्ता :- भूधरदास एक अच्छे समाधानकर्ता भी थे। जैनधर्म एवं दर्शन से सम्बन्धित अनेक चर्चाओं का उन्होंने आगम एवं युक्तिसंगत समाधान किया है। शंकाओं के समाधान करते समय उन्होंने स्वयं ही तत्सम्बन्धी प्रतिशंकाओं को उठा कर उनका भी उचित समाधान प्रस्तुत किया है। उनके द्वारा प्रायः सभी शंकाओं के समाधान आगम ग्रन्थों एवं अन्य शास्त्रों के प्रमाणों द्वारा पुष्ट एवं सम्मत करने का प्रयास किया गया है।

निरभिमानी :- भूधरदासजी अत्यन्त निरभिमानी व्यक्ति थे, इसलिए वे महाकाव्य की रचना करने वाले महाकवि होकर भी अपने आप को अल्पबुद्धि वाला सामान्य मानव ही मानते हैं। वे लिखते हैं -

"जिनगुण कथन अगम विस्तार, बुद्धि बल कौन लहै कवि पार ॥
जिनसेनादिक सूरि महन्त। धरन कर पायो नहि अन्त ॥
तौ अब अल्पमति जन और। कौन गनति में तिनकी दौर ॥
जो बहुभार गयंदन बहै। सो क्यों दीन शशक निरवहै ॥" ²

इसी तरह उनकी दृष्टि में पार्श्वपुराण की रचना का उद्देश्य अभिमान या सम्मान की चाह नहीं है। अपितु स्व-पर का कल्याण करना है -

जों लों कवि काव्यहेत आगम के अच्छर को,
अरथ बिचारें तोलौ सिद्धि शुभध्यान की
और वह पाठ जब भूपरि प्रगट होय
पढ़ै सुनै जीव तिन्हें प्रापति है ज्ञानकी
ऐसे निज परको विचार हित हेतु हम
उद्यम कियो है नहिं बान अभिमान की
ज्ञान अंश चाखा भई ऐसी अभिलाखा अब
कसं जोरि भाखा जिन पारसपुराण की। ³

1. अनेकान्त वर्ष 10 किरण 1 पृष्ठ 9-10

2. पार्श्वपुराण, भूधरदास पृष्ठ 2 3. पार्श्वपुराण, भूधरदास पृष्ठ 2

कवि भूधरदास इस नाशवान और क्षणभंगुर संसार के वैभव को पाकर अभिमान करने वालों को धिक्कारते हुये¹ मान के त्यागने का उपदेश देते हैं -

जपकर तपकर दानकर, कर कर पर उपकार ।

जैन धर्म को पाय कर, मान कषाय निवार ॥²

विनम्र :- भूधरदास विनम्र स्वभाववाले महा मानव थे । विनम्रता उनमें कूट-कूट कर भरी थी; इसीलिए वे अपने आराध्य के प्रति तो विनम्रता प्रदर्शित करते हुये स्तुति करते ही हैं, अपितु सभी पूज्य पदों, जैनाचार्यों एवं विद्वानों आदि के प्रति अहंकार छोड़कर विनम्रता प्रदर्शित करते हैं -

*जैन तत्त्व के जाननहार । भये जथारथ कथक उदार ॥

तिनके चरनकमल कर जोरि । करो प्रणाम मानमद छोरि ॥³

कवि भूधरदास प्रकाण्ड विद्वान एवं व्याकरण के पाठी होकर के भी अपनी विनम्रता इस प्रकार प्रकट करते हैं और बुद्धिमानों से क्षमा करने, भूल सुधारने की प्रार्थना करते हैं -

अमरकोष नहिं पढ़्यो, मैं न कहि पिंगल पेख्यो ।

काव्य कंठ नहिं करी, सारसुतसो नहिं सीख्यौ ॥

अच्छर संधि समास, ज्ञानवर्जित विधि हीनी ।

धर्मभावना हेतु, किमपि भाषा यह कीनी ॥

जो अर्थ छन्द अनमिल कहो, सो बुध फेर संवारियो ।

सामान्य बुद्धि कवि की निरखि, छिप्पाभाव उर धारियो ॥⁴

इस प्रकार भूधरदासजी ने अपने साहित्य में सर्वत्र विनम्रता प्रदर्शित की है ।

मिष्टभाषी :- भूधरदास विनम्र होने के साथ-साथ मिष्टभाषी भी थे; इसीलिए वे कठोर बोलने वालों को समझाते हुये कहते हैं कि -

1. जैन शतक, भूधरदास, पृष्ठ 34 2. चर्चा समाधान, भूधरदास, पृष्ठ 2

3. पार्श्वपुराण, भूधरदास, पृष्ठ 2

4. पार्श्वपुराण, भूधरदास, अन्तिम प्रशस्ति पृष्ठ 96

कहै को बोलत बोल बुरे नर । नाहक क्यों जस धर्म गमावै ।
कोमल वैन चवै किन ऐन, लगै कछु है न सबै धन भावै ॥
तालु छिदै रसना न भिदै, न घटे कछु अंक दरिद्र न आवे ।
जीभ कहैं जिय हानि नहीं तुझ, जी सब जीवन को सुख पावै ॥¹

पक्षपात विरोधी :- भूधरदास किसी भी कथन को सर्वथा स्वीकार न कर कथंचिद् (किसी अपेक्षा) स्वीकार करते हैं तथा वचन का पक्ष करने में अनेक दोष दिखलाते हुए उसके छोड़ने की प्रेरणा देते हैं -

वचन पक्ष में गुण नहीं, नहि जिनमत को न्याय ।
ऐंच खेंच सौ प्रीति की, डोर टूट मत जाई ॥
ऐंच खेंच सों बहुत गुन, टूटत लगे न बार ।
ऐंच खेंच बिन एक गुन, नहि टूटे निरधार ॥
वचन पक्ष परखत कियो, भयो कौन कल्याण ।
बसु भूपति हू पक्षकरि, पहुचौ नरक निदान ॥
वचन पक्ष करिबो बुरो, जहां धर्म की हान ।
निज अकाज पर को बुरो, जरो जरो यह बान ॥²

खोजी एवं जिज्ञासु :- भूधरदास ज्ञान के क्षेत्र को अनंत मानते हैं । इसलिए प्राप्त ज्ञान में संतुष्ट न रहने एवं निरन्तर खोजी होने की प्रेरणा देते हुए खोज करने वाले के अनेक गुण बतलाते हैं :-

खोज किये गुण होई विशेष, वाद किये गुन को नहि लेश ।
पूछतता नर पंडित होइ, जागतड़ा नर मुसै न कोइ ॥
याही तें सब कोइ, ग्वालबाल भी कहत है ।
खोजी जीवे जोइ, वादी को जीवन विफल ॥³

इसी तरह वे जानकार होने पर भी और अधिक जानने की इच्छा रखने एवं उसके लिए प्रयत्न करते रहने का उपदेश देते हैं -

जो तुम नीकै लीनों जान, तामै भी है बहुत विजान ।
तातैं सदा उद्यमी रहो, ज्ञान गुमान भूलि जिन गहो ॥⁴

विचारशील :- भूधरदास एक विचारशील मनुष्य थे । वे योग्य और

1. जैन शतक, भूधरदास, पृष्ठ 70 2. चर्चा समाधान, भूधरदास, पृष्ठ 3

3. वही पृष्ठ 3

4. वही पृष्ठ 3

अयोग्य का विचार करके ही कोई कार्य करते थे । तत्त्व चर्चा और तत्त्व निर्णय के सम्बन्ध में भी वे विचार करने एवं तत्त्व के जानने वाले लोगों से पूछने की सलाह देते हैं -

नीति सिंहासन बैठो वीर, मति श्रुत दोऊ राख वजीर ।
जोग अजोगह करो विचार, जैसे नीति नृपति व्यवहार ॥
जो चरचा चितमें नहि चढ़ै, सो सब जैन सूत्रसों कढ़ै ।
अथवा जे श्रुतमरपी लोग, तिन्है पूछ लीजै यह जोग ॥¹

वे किसी नवीन वार्ता को सुनकर या तत्त्व की कोई विशेष चर्चा को सुनकर तत्काल उसकी उपेक्षा न करके उस पर बार-बार विचार करने की प्रेरणा भी देते हैं—

जो नवीन चरचा सुन लेहू, ताकों तुरत धका मति देहू ।
दोय चार दिन करो विचार, एक चित कर बारबार ॥²

धैर्यशील :- भूधरदास असाता कर्म के उदय में विपत्ति आने पर अधीर न होकर धैर्य धारण करने एवं उसके ज्ञाता दृष्टा बनने की कोशिश करते हैं तथा दूसरों को भी ऐसा ही उपदेश देते हैं -

आयो है अचानक भयानक असाता कर्म,
ताके दूर करिवे को बलि कौन अह रे ।
जे जे मन भावे ते कमाये पूर्व पाप आय,
तेई अब आवे निज उदै काल लह रे ॥
एरे मेरे बीर काहे होत है अधीर थापै,
कोउ कौ न सीर तू अकेलो आप सह रे ।
भये दिलगीर कछु पीर न विनसि जाय,
ताही तैं सयाने तू तमासगीर रह रे ॥³

भाग्यवादी :- भूधरदास धन सम्पत्ति आदि की प्राप्ति भाग्य (पूर्वोपार्जित कर्म का फल) के अनुसार मानते हैं । वे कहते हैं कि चाहे कितना भी परिश्रम तथा सोच विचार किया जाय परन्तु धन भाग्य से अधिक या कम नहीं मिल सकेगा -

जो धन लाभ लिलार लिख्यौ, लघु दीरघ सुकृत के अनुसारै ।
सो लहि है कछु फेर नहीं, परूदेश के डेर सुमेर सिधारै ॥

1. चर्चा समाधान, भूधरदास, पृष्ठ 3 2. चर्चा समाधान, भूधरदास, पृष्ठ 4

3 जैन शतक, भूधरदास, पद्य 71

घाट न बाढ़ कहीं वह होय, कहा कर आवत सोच विचारै ।
कूप किछौ भर सागर मैं नर, गागर मान मिलै जल सारे ॥ ¹

धार्मिक :- भूधरदास का जीवन अत्यन्त धार्मिक था । उनके अनुसार मानव जीवन की सार्थकता धर्म को आत्मसात् कर धार्मिक बनने में ही है । धर्म-साधन करने के लिए हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील, तृष्णा (परिग्रह) आदि का त्याग आवश्यक है । साथ ही मद्य-मांस से बचाव एवं दूसरों की निन्दा और अपनी प्रशंसा का त्याग भी जरूरी है । देवपूजा आदि षट्कर्मों का पालन एवं साधु पुरुषों की संगति भी धार्मिक चित्त के लिए अनिवार्य है । सच्चे देव, शास्त्र, गुरु, धर्म आदि को जान-पहिचान कर सच्चे मार्ग पर चलना प्रत्येक धार्मिक व्यक्ति का कर्तव्य है । भूधरदास के शब्दों में -

देव गुरु साँचे मान साँचौ धर्म हिये आन,
साँची ही बखान सुनि साँचे पंथ आव रे ।
जीवन की दया पाल झूठ तजि चोरी टाल,
देख ना विरानी बाल तिसना घटाधरे ॥
अपनी बढ़ाई परनिन्दा मत करै भाई,
यही चतुराई मद मांस को बचाव रे ।
साध षट्कर्म साधु संगति में बैठ खीर,
जो है धर्म साधन को तेरे चित चाख रे ॥²

भूधरदास की दृष्टि में मनुष्य जीवन की सार्थकता धर्म पालन करने में है । बिना धार्मिक कृत्यों के मानव जीवन व्यर्थ गँवाना ठीक नहीं है । ³ मानव शरीर के प्रत्येक अंग की सार्थकता धर्म सेवन एवं उसके निमित्त-भूत जिनकथा के श्रवण, पठन, कथन आदि में ही है । ⁴

1. जैनशतक, भूधरदास, पद्य 75

2. जैनशतक, भूधरदास, पद्य 44

3. (क) ऐसे श्रावक कुल तुम पाय व्यथा क्यों खोवत हो । । टेक । — भूधरविलास पद
(ख) कर कर जिन गुन पाठ, जात अकारथ रे जिया ।

आठ पहर में साठ, घरी घनेरे मोल की ॥

— जैनशतक पद्य 22

4. पै यह उत्तम नर अवतार । जिन चरचा बिन अफल असार ॥

सुधि पुरान जो घुमे न सीस । सो थोथे नारेल सरीस ॥

जिन चरित्र जे सुने न कान । देह गेह के छिद्र समान ॥

जो मुख जैन कथा नहिं कोय । जीभ भुजंगनि के बिल सोय ॥ — पार्श्वपुराण, पृष्ठ 2

नैतिक एवं सदाचारी :- भूधरदास नीतिवान एवं सदाचारी पुरुष थे । उन्होंने अपने जीवन में नीति और सदाचार को अति महत्त्व दिया । उनके साहित्य में अनेक स्थानों पर नीतियुक्त दर्शन मिलता है । यथा

आयु हीन नर को यथा, औषधि लगै न लेज ।

त्यो ही रागी पुरुष प्रति, वृथा धर्म उपदेश ॥¹

"यो सुख निवसै बांधव दोय, निज निज टेव न टारे कोय ।

वक्र चाल विषधर नहिं तजै, हंस वक्रता भूल न भजै ॥"²

"खल से मिले कहा सुख होय, विषधर भेटे लाभ न कोय ।"³

"दुर्जन और शलेशमा, ये समान जगमाहिं ।

ज्यों ज्यों मधुरे दीजिये, त्यों त्यों कोप कराहिं ॥"⁴

"जैसी करनी आचरै, तैसी ही फल होय ।

इन्द्रायन की बैलि कै, आंख न लागै कोय ॥"⁵

यथा हंस के वंश को, चाल न सिखवै कोय ।

त्यों कुलीन नर नारि के, सहज नमन गुण होय ॥"⁶

"दुर्जन दूखित संत को, सरल सुभाव न जाय ।

दर्पण की छवि छार सों, अधिकहि उज्जल शाय ॥

सज्जन टरै न टेव सों, जो दुर्जन दुख देय ।

चन्दन कटत कुठार मुख, अवशि सुवास करेय ॥"⁷

सदाचारी व्यक्ति के रूप में भूधरदास सप्तव्यसन के त्यागी,⁸ अष्टमूल गुणों के धारी,⁹ गृहस्थ के षट् आवश्यक पालने वाले¹⁰ जैन श्रावक थे । वे अन्याय, अनीति एवं अभक्ष्य के सर्वथा त्यागी थे । वे गृहस्थ होकर भी वनवासी

1. पार्श्वपुराण, भूधरदास पृष्ठ 6

2. पार्श्वपुराण, भूधरदास पृष्ठ 5

3. पार्श्वपुराण, भूधरदास पृष्ठ 7

4. पार्श्वपुराण, भूधरदास पृष्ठ 8

5. पार्श्वपुराण, भूधरदास पृष्ठ 8

6. पार्श्वपुराण, भूधरदास पृष्ठ 26

7. पार्श्वपुराण, भूधरदास पृष्ठ 7-8

8. जैनशतक, पद्य 50 से 63 तक

9. मधु, मौस, मधु एवं पाँच उदुम्बर फलों का त्याग

10. जैनशतक पद्य 48

होने की तीव्र इच्छा रखते थे; इसीलिए निर्ग्रन्थ दशा होने के क्षण पर वे बलिहारी होते हैं।¹

विरक्त :- भूधरदास नैतिक, सदाचारी, धार्मिक होने के साथ-साथ संसार, शरीर और भोगों के प्रति विरक्त भी हैं। वैराग्य प्राप्ति के लिए वे अति सचेष्ट हैं; इसीलिए बारम्बार बारह भावनाओं² का चिन्तन करते हैं तथा संसार - शरीर- भोगों के स्वरूप³ का विचार करते हैं। अन्ततः भावना भाते हैं कि —

कब गृहवास सौ उदास होय वन सेऊं, वेऊं निजस्थ गति रोऊं मन करी की।
रहि हौ अडोल एक आसन अचल अंग, सहि हो परिसा शीत-घाय-पेघ-झरीकी॥
सारंग समाज खाज कबधौ खुजे है अनि, ध्यान दलजोर जीतू सेना मोह जरीकी।
एकल बिहारी जथा जातलिंगधारी कब, होऊं इच्छाचारी बलिहारी हो वा घरीकी॥⁴

आत्मोन्मुखी :- भूधरदास का आन्तरिक व्यक्तित्व सांसारिकता से परे आत्मोन्मुखी है। वे आत्महित के प्रति पूर्णतया जागरूक एवं सावधान हैं; इसीलिए रोग और मृत्यु के आने के पहले ही आत्महित (आत्मानुभव) करना चाहते हैं। उनका कथन है —

जौलौ देह तेरी काहू रोग सो न घेरी,
जौलौ जरा नाहि नेरी जासौ पराधीन परि है।
जौलौ जमनामा बैरी देय न दमामा जौलौ,
मानै कान रामा बुद्धि जाय न बिगरि है॥
तौलों मित्र मेरे निज कारज संवार ले रे,
पौरुष थकेंगे फेर पीछे कहा करि है।
अहो आग आवै जब झोपरी जरन लागै,
कुआ के खुदाय तब कौन काज सरि है॥⁵

1. जैनशतक पद्य 17

2. पार्श्वपुराण, भूधरदास पृष्ठ 30 तथा 64

3. (क) पार्श्वपुराण, भूधरदास पृष्ठ 18 अथवा बज्रनाथि चक्रवर्ती की वैराग्य भावना
(ख) पार्श्वपुराण, भूधरदास पृष्ठ 63

4. जैनशतक, भूधरदास, पद्य 17

5. जैनशतक, भूधरदास, पद्य 26

कवि की दृष्टि में संसार की रीति बड़ी विचित्र एवं वैराग्योत्पादक है। यहाँ जन्म-मृत्यु का चक्र चला ही करता है। एक ही समय में कहीं तो जन्म की बधाइयाँ बजती हैं और कहीं पुत्र वियोग (मरण) से हाहाकार मचता है। किन्तु सब कुछ जानते हुए भी यह मूढ़ मनुष्य चेतता नहीं और करोड़ों की एक-एक घड़ी को व्यर्थ ही खोता जाता है। कवि चेतावनी देते हुए खेद व्यक्त करता है—

काहू घर पुत्र जायो काहू के वियोग आयो,
काहू राग - रंग काहू रोआ रोई करी है।
जहाँ भान ऊगत उछाह गीत गान देखे,
सांझ समै ताही थान हाय हाय परी है।
ऐसी जगरीति को न देखि भयभीत होय,
हा हा नर मूढ़ ! तेरी पति कौने हरी है।
मानुष जनम पाय सोखत विहाय जाय
खोखत करोरन की एक एक घरी है ॥ ¹

इस प्रकार कवि भूधरदास संसार से हटकर आत्मोन्मुखी वृत्ति वाले व्यक्ति थे।

भक्त एवं गुणानुरागी :- भूधरदास भक्त एवं गुणानुरागी हैं। वे अपने आराध्य के प्रति पूर्ण समर्पित हैं। उनके आराध्य अरहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु- पंचपरमेष्ठी, जिनवाणी (शास्त्र) जिनधर्म आदि हैं; इसलिए वे उन सब के प्रति भक्ति प्रदर्शित करते हुए स्तुति करते हैं। ² भक्तिवश भूधरदास जैनधर्म की विशेष महिमा बतलाते हैं। ³ भक्त कवि पंचपरमेष्ठियों को नमस्कार करता हुआ सभी पूज्य पदों को पूजकर अल्पबुद्धि एवं हीनशक्ति वाला होकर भी भक्ति के वश महाकाव्य “पार्श्वपुराण” की रचना करता है -

बन्दौ तीर्थकर चौबीस। बन्दौ सिद्ध बसैं जगसीस ॥

बन्दौ आचारज उबड़ाय। बन्दौ परम साधु के पाय ॥

1. जैनशतक पद्य 21

2. जैनशतक पद्य 1 से 15

3. जैनशतक पद्य 93 से 105 तक

ये पद पाँचों परमेष्ठ । ये ही सांच और सब हेठ ॥
 ये मंगल पूज्य अतीव । ये ही उत्तम सरन सदीव ॥ ¹
 सकल पूज्य पद पूज कै, अल्पबुद्धि अनुसार ।
 भाषा पार्श्वपुराण की, करौ स्व पर हितकार ॥ ²
 शक्ति भक्ति बल कविन पै, जिनगुन खरनै जाहि ।
 मैं अब खरनों भक्तिवश, शक्ति मूल मुझ नाहि ॥ ³

भूधरदास स्वयं गुणग्राही हैं और वे दूसरों को भी गुणग्राहक बनने का उपदेश देते हैं -

भूधरविनलै विनय करि, सुनिघौ सज्जन लोग ।
 गुण के ग्राहक हूजिये, इह विनती तुम जोग ॥
 गुणग्राही शिशु थन लगै, रुधिर छोड़ी पय लेत ।
 इह बालक सो सिखिये, जो शिर आये सेत ॥ ⁴

हिंसा एवं वैर के विरोधी :- भूधरदास हिंसा एवं वैर के विरोधी हैं । भूधरदास हिंसा को पाप एवं दुर्गति के दुःखों का कारण मानते हैं -

हिंसा करम परम अद्य हेत, हिंसा दुरगति के फल देत ।
 हिंसा सो भ्रमिये संसार, हिंसा निज पर को दुखकार ॥ ⁵

भूधरदास धर्म के नाम पर यज्ञादि में होने वाली हिंसा के भी विरोधी हैं; इसलिए पशुबलि का निषेध करने हेतु वे पशुओं की ओर से यज्ञकर्ता से प्रश्न करते हैं । ⁶

इसी तरह वे वैर भाव को दुःख का कारण तथा मैत्री भाव को सुख का कारण मानते हुए वैर छोड़ने एवं मैत्री करने का उपदेश देते हैं -

1. पार्श्वपुराण— भूधरदास पृष्ठ 2
2. पार्श्वपुराण— भूधरदास पृष्ठ 2
3. पार्श्वपुराण— भूधरदास पृष्ठ 2
4. चर्चा समाधान, भूधरदास, अन्तिम प्रशस्ति पृष्ठ 122
5. पार्श्वपुराण— भूधरदास पृष्ठ 10
6. जैनशतक, पद्य 47

द्वेष भाव सभ जगत में, दुख कारण नहि कोय ।
 मैत्री भाव समान सुख, और न दीसै लोच ॥
 मैत्री भाव पीयूष रस, बैरभाव विषपान ।
 अमृत होत विष खाइये, किस गुरु का यह ज्ञान ॥¹
 आदि अन्त में विरस हूँ बैर भाव दुःखरूप ।
 आदि मधुर आगे मधुर, मैत्री भाव अनूप ॥²
 जीव जाति जायंत, सबसों मैत्री भाव करि ।
 याको यह सिद्धांत, बैर विरोध न कीजिये ॥³

इस प्रकार भूधरदास का बाह्य व्यक्तित्व अर्थात् शारीरिक संगठन अज्ञात है, परन्तु उनकी रचनाओं द्वारा उनके आन्तरिक व्यक्तित्व अर्थात् मानसिक स्थिति आदि का ज्ञान भलीभाँति हो जाता है। उनके आन्तरिक व्यक्तित्व को समझने के लिए उनकी कृतियों में आई हुई उपर्युक्त वे सभी पंक्तियाँ सहायक हैं; जिनमें उनके मनोभावों एवं विचारों की झलक मिलती है।

कवि भूधरदास की रचनाओं के अवलोकन से ज्ञात होता है कि कवि महान विद्वान्, प्रवचनकार, समाधानकर्ता, भक्त, गुणानुरागी, अध्यात्मरसिक, निरभिमानी, विनम्र, मिष्टभाषी, पक्षपातविरोधी, खोजी, जिज्ञासु, विचारशील, धैर्यवान्, भाग्यवादी, धार्मिक, नैतिक, सदाचारी, विरक्त एवं आत्मोन्मुखी वृत्तिवाला महापुरुष है। उसके व्यक्तित्व में अनेक गुण परिलक्षित होते हैं। वे समस्त गुण उसको सामान्य व्यक्तित्व से उठाकर असामान्य महापुरुष के पद पर प्रतिष्ठित करते हैं। महान व्यक्तित्व को लिए हुए महाकवि भूधरदास जहाँ एक ओर धार्मिक और नैतिक आदर्शों की बात करते हैं; वहाँ दूसरी ओर सामाजिक बुराइयों और दुर्बलताओं पर भी करारी चोट करते हैं। वे तत्कालीन समाज में व्याप्त द्यूतक्रीड़ा (जुआ) मांस भक्षण, मद्यपान, वेश्यागमन, परस्त्रीसेवन, चौर्यवृत्ति, आखेट (शिकार) एवं पशु बलि आदि के दोष निरूपित करते हैं तथा रीतिकालीन कवियों द्वारा दी गई नारी के अंग प्रत्यंगों की उपमाओं की एवं शृंगारपरक काव्य

1. चर्चा समाधान, भूधरदास, अन्तिम प्रशस्ति पृष्ठ 122-123

2. पार्श्वपुराण, भूधरदास, अन्तिम प्रशस्ति पृष्ठ 96

3. चर्चा समाधान, भूधरदास, पृष्ठ 1

की रचना करने वाले कवियों की तीव्र आलोचना करते हैं। इसी तरह वे समाज में व्याप्त ईर्ष्या, द्वेष, छल, प्रपंच, हिंसा आदि को छोड़ने एवं प्रेम, सरलता, अहिंसा आदि को अपनाने पर बल देते हैं।

कवि भूधरदास का जीवन धार्मिक, नैतिक एवं सदाचारयुक्त था। वे आत्महित के प्रति सतत् जागरूक थे। उनमें आध्यात्मिक चेतना अति उन्नत थी। अपनी आध्यात्मिक समुन्नत चेतना को उन्होंने अपनी रचनाओं में सर्वत्र स्थान दिया है। इन्हीं रचनाओं के माध्यम से उनके मानसिक जगत और उनकी मनोवैज्ञानिक स्थिति का यत्किंचित् आभास होता है।

कवि के उपरि वर्णित व्यक्तित्व के निर्माण में परम्परागत धार्मिक संस्कार तो कारण है ही, साथ ही कवि की अन्तः प्रेरणा एवं मित्रों की बाह्यप्रेरणा भी बहुत सहायक हुई है। कवि ने अपने मित्रों की सहायता एवं सलाह को हृदय से स्वीकार करते हुए उनकी बारम्बार प्रेरणा से अपने आलस्य का अन्त माना है —

फिर - फिर प्रेरे मेरे आलस का अन्त भयौ,
उनकी सहाय यह मेरी मन मानै है।¹

प्रत्येक व्यक्ति परिवार, समाज, देश, काल, वातावरण तथा दूसरे कई व्यक्तियों से कुछ न कुछ प्रभाव ग्रहण करता है, भूधरदास ने भी किया है -

1. अमृतचन्द्र मुनिराज कृत, किमपि अर्थ अवधार।
जीव तत्त्व वर्णन लिख्यो, अब अजीव अधिकार ॥²
2. पूज्यपाद मुनिराज, श्री सरदारथ सिद्धि में।
कह्यो कश्चन इहि भाय, देख लीजियों सुबुधिजन ॥³
3. पूरब गाथा को अरथ, लिख्यौ चौपाई लाय।
घटपाहुड टीका विधै, देख लेउ इहि भाय ॥⁴
4. इहि विधि जो कोई पुरुष, पूछै संशय राशि।
ताकि समुझावन निमित्त, लिखूं जिनागम साखि ॥⁵

1. जैनशतक, पद्य 105

2. पार्श्वपुराण पृष्ठ 82

3. पार्श्वपुराण पृष्ठ 36

4. पार्श्वपुराण पृष्ठ 45

5. पार्श्वपुराण पृष्ठ 68

5. त्रिलोक प्रज्ञप्ति में, कथन कियो बुधराज ।
सो भविजन अवधारियो, संशय भेटन काज ॥¹
6. ये सब नौ अधिकार, जीव सिद्ध कारन कहे ।
इनको कछु विस्तार, लिखो जिनागम देखि के ॥²
7. यह ग्यारह प्रतिमा कथन, लिख्यो सिद्धान्त निहार ।
और प्रश्न बाकी रहे, अब तिनको अधिकार ॥³
8. अब तिनको आकार कछु, एक देश अवधार ।
लिखो एक दृष्टान्त करि, जिनशासन अनुसार ॥⁴
9. पूरब चरित विलोक कै, भूधर बुद्धि समान ।
भाषा बन्ध प्रबन्ध यह, कियो आगरे धान ॥⁵
10. जैन सूत्र की साख सों, स्व-पर हेत उर आन ।
चरचा निर्णय लिखत हैं, कीजो पुरुष प्रमान ॥⁶
11. जिन श्रुति सागर तै कढ्यो, चरचा अपृत महान ।
अति अंजुलि परमान निज, करो निरन्तर पान ॥⁷
12. राति दिवस चिंतन कियो, विविध ग्रन्थ को भेव ।
देखि दीन को श्रम अधिक, दया दक्षिणा देव ॥⁸
13. “इह चरचा समाधान ग्रन्थ विषै केतेक सन्देह साधर्मी जनों के लिखे
आए, शास्त्रानुसार तिनका समाधान हुवा है सो लिखा है ।”⁹
14. यह चरचा समाधान नाम ग्रन्थ मान बढ़ाई के आशय सूं अथवा
अपनी प्रसिद्धि बढ़ावने कूं तथा वचन के पक्ष सों नहीं लिखा,
यथावत् श्रद्धान के निमित्त शास्त्र की साख सों लिखा है ।”¹⁰

1. पार्श्वपुराण पृष्ठ 69

2. पार्श्वपुराण पृष्ठ 79

3. पार्श्वपुराण पृष्ठ 88

4. पार्श्वपुराण पृष्ठ 94

5. पार्श्वपुराण पृष्ठ 95

6. चर्चा समाधान पृष्ठ 4

7. चर्चा समाधान पृष्ठ 1

8. चर्चा समाधान पृष्ठ 123

9. चर्चा समाधान पृष्ठ 4

10. चर्चा समाधान पृष्ठ 121

उपर्युक्त सभी कथनों से स्पष्ट है कि भूधरदास, कुन्दकुन्द, अमृतचन्द, उमास्वामी, नेमीचन्द, पूज्यपाद, समन्तभद्र आदि सभी प्रमुख जैनाचार्यों से प्रभावित थे वे जगह-जगह जिनागम को प्रमाण मानने एवं जिनागम के अनुसार वर्णन करने का उल्लेख करते हैं, इसलिए उनकी दृष्टि में जिनागम सर्वोपरि है। उनके द्वारा "चर्चा समाधान" नामक ग्रन्थ में अनेक जैन ग्रन्थों के नाम, प्रमाण एवं उद्धरण दिये गये हैं। उन्हें देखकर लगता है कि भूधरदास ने तत्समय उपलब्ध लगभग सभी जैन शास्त्रों का पारायण किया था और वे इन सबसे प्रभावित भी हुए थे। इसीलिए उन्होंने उन सबका उल्लेख अपने ग्रन्थों में किया है।

निष्कर्ष के रूप में हम कह सकते हैं कि भूधरदास जिनदेव, जिनशास्त्र, जिनगुरु, एवं जिनधर्म से प्रभावित थे और इन सबसे प्रभावित होकर ही उन्होंने जिनागम की आम्नाय अनुसार समस्त रचनाएँ की हैं।

सीमंधर स्वामी

सीमंधर स्वामी मैं चरनन का चेरा ॥ टेक ॥

इस संसार असार में, कोई और न रक्षक मेरा ॥

॥ सीमंधर स्वामी ॥

लख चौरासी योनि में, फिर फिर कीना फेरा ।

तुम महिमा जानी नहीं प्रभु, देख्या दुःख घनेरा ॥

॥ सीमंधर स्वामी ॥

भाग उदय है पाइया अब, कीजे नाथ निवेरा ।

वेगि दया कर दीजिये मुझे, अविचल थान बसेरा ॥

॥ सीमंधर स्वामी ॥

नाम लियो अघ न रह ज्यों, ऊगे भानु अंधेरा ।

'भूधर' चिन्ता क्या रही ऐसा, समरथ साहब मेरा ॥

॥ सीमंधर स्वामी ॥

— भूधरदास

मन हंस

मन हंस हमारी ले शिक्षा हितकारी ॥ टेक ॥

श्री भगवान चरण पिजरे बसि, तजि विषयन की यारी ॥

॥ मन हंस हमारी. ॥

कुमति कागली सौं, मति राचौ, ना वह जाता तिहारी ।

कीजे प्रीत सुमति हंसी सौं, बुध हंसन की प्यारी ॥

॥ मन हंस हमारी. ॥

काहै को सेवत भव झीलर, दुख जल पूरित खारी ।

निज बल पंख पसारि उड़ोकिन, हो सरवर चारी ॥

॥ मन हंस हमारी. ॥

गुरु के वचन विप्रल मोती चुग, क्यों निज बान बिसारी ।

हैं हैं सुखी सीख सुधि राखै, 'भूधर' भूले ख्यारी ॥

॥ मन हंस हमारी. ॥

— भूधरदास

चतुर्थ अध्याय

रचनाओं का वर्गीकरण एवं परिचयात्मक अनुशीलन

(क) रचनाओं का वर्गीकरण

(ख) रचनाओं का परिचयात्मक अनुशीलन

1. गद्य साहित्य-चर्चा समाधान

2. पद्य साहित्य —

(अ) महाकाव्य-पार्श्वपुराण

(ब) मुक्तक काव्य — जैनशतक, पदसंग्रह या
भूधरविलास, अनेक फुटकर रचनाएँ
एवं प्रकीर्ण पद

रचनाओं का वर्गीकरण एवं परिचयात्मक अनुशीलन

(क) रचनाओं का वर्गीकरण

भूधरदास आध्यात्मिक कोटि के सुकवि थे। उन्होंने जिनदेव, जिनगुरु जिनशास्त्र और जिनधर्म से प्रभावित होकर अपने साहित्य की रचना की। उनके द्वारा रचित सम्पूर्ण साहित्य को हम दो भागों में बाँट सकते हैं — (1) गद्य (2) पद्य। “गद्य” में उनकी एक मात्र कृति “चर्चा समाधान” मिलती है; जो जैन पुस्तक भवन कलकत्ता से प्रकाशित हुई है।

पद्यात्मक रचनाओं को दो भागों में बाँटा जा सकता है - (1) महाकाव्य और (2) मुक्तक काव्य। उनकी महाकाव्यात्मक एक मात्र कृति “पार्श्वपुराण” है, जिसमें एक ओर तेईसवें जैन तीर्थंकर पार्श्वनाथ के चरित्र को उज्जगर किया गया है तथा दूसरी ओर वैराग्यपूर्वक जैन सिद्धान्तों की जानकारी दी गई है। मुक्तक काव्य के अन्तर्गत जैनशतक, पदसंग्रह या भूधरविलास नामक संग्रहीत रचनाएँ तथा कई विनितियाँ, पार्श्वनाथ स्तोत्र, एकीभाव स्तोत्र, दर्शन स्तोत्र, पंचमेरु आरती, संध्या समै की आरती, नाभिनन्द की आरती, अष्टक नेमिनाथ का, नेमिनाथ अष्टक, वीरदेव अष्टक, पार्श्वनाथ अष्टक, करुणाष्टक, निशिभोजनभुंजन कथा, रिषभदेव के दस भौं ठाने का गीत, दया दिठावन गीत, परमार्थ सिष्यागीत, तीन चौबीस के जयमाल, विवाह समै जैन की मंगल भाषा, नोकार महात्म की ढाल, सप्त व्यसन निषेध ढाल, हुक्का पच्चीसी या हुक्का निषेध चौपाई, ऋषभदेव के नौन संस्कार की बधाई, परमार्थ जकड़ी, होलियाँ, गुरुस्तुतियाँ, जिनेन्द्रस्तुतियाँ, जिनगुण मुक्तावली, भूपाल चतुर्विंशति भाषा, बारह भावना, सोलहकारण भावना, वैराग्य भावना, बाबीस परीषह आदि अनेक फुटकर रचनाएँ एवं अनेक प्रकीर्ण फुटकर पद आते हैं।

भूधर- साहित्य

गद्य

पद्य

चर्चा समाधान

महाकाव्य

मुक्तक काव्य

पार्श्वपुराण

जैनशतक, भूधरविलास या पदसंग्रह,
अनेक फुटकर रचनाएँ एवं प्रकीर्ण पद

मुक्तक काव्य के अन्तर्गत आने वाली भूधरदास की अनेक रचनाएँ विविध संग्रहों में संग्रहीत हैं। उनमें कई तो उनके “पार्श्वपुराण” एवं “पदसंग्रह” से ही ली गई हैं, परन्तु उन्हें पृथक् रूप से या पृथक् नाम से प्रकाशित कर नई रचनाएँ मान लिया गया है। उदाहरणार्थ - बारह भावनाएँ, सोलहकारण भावना, बज्रनाभि चक्रवर्ती की वैराग्य भावना, बाबीस परिषद् आदि “पार्श्वपुराण” के अन्तर्गत तथा अनेक विनतियाँ, स्तोत्र, नौकार महातम की ढाल, होलियाँ, गुरुस्तुति आदि “पदसंग्रह” के अन्तर्गत ही हैं।

यद्यपि भूधरदास की सम्पूर्ण रचनाओं को खोजने हेतु राजस्थान एवं उत्तरप्रदेश के अनेक शास्त्रभण्डारों को देखा गया है, अनेक विद्वानों से सम्पर्क किया गया है, चर्चाएँ की गई हैं; तथापि भविष्य में भूधरदास की अन्य किसी फुटकर रचना की उपलब्धता से इन्कार नहीं किया जा सकता है; क्योंकि ज्यों-ज्यों प्राचीन साहित्य की खोज होती जा रही है, त्यों-त्यों नई रचनाएँ प्रकाश में आती जा रही हैं। भूधरदास की समग्र रचनाओं के बारे में अनेक मान्य विद्वानों, समीक्षकों एवं जैन इतिहास लेखकों¹ ने अपने विचार व्यक्त किये हैं। उन सभी ने भूधरदास की तीन प्रमुख रचनाएँ ही मानी हैं - 1. पार्श्वपुराण 2. जैन शतक और 3. पदसंग्रह। परन्तु डॉ. पीताम्बरदत्त बडधवाल ने “भूधरविलास” नामक एक अन्य हस्तलिखित ग्रन्थ के प्राप्त होने का उल्लेख किया है।² डॉ. प्रेमसागर जैन ने भी “भूधरविलास” की एक प्रति जयपुर के ठोलियान मन्दिर में वेष्टन क्रमांक 132 में उपलब्ध होने का उल्लेख किया है।³ इसकी एक प्रति दिगम्बर जैन मारवाड़ी मन्दिर शक्कर बाजार इन्दौर में वेष्टन क्रमांक 390 में उपलब्ध है। “भूधरविलास” नामक एक कृति का प्रकाशन “जिनवाणी प्रचारक कार्यालय” कलकत्ता से हुआ है। वास्तव में यह भूधरदास की नवीन रचना नहीं है, अपितु पदों का संग्रह ही है; जो “पदसंग्रह” के नाम से प्रकाशित न

1. (क) तीर्थंकर महावीर और उनकी परम्परा, भाग 4 - डॉ. नेमिचन्द शास्त्री पृष्ठ 273
 (ख) हिन्दी पद संग्रह - डॉ. कस्तूरचन्द कासलीवाल पृष्ठ 143
 (ग) हिन्दी जैन साहित्य का इतिहास, जैन हितैषी 13/1 - पंडित नाथूराम प्रेमी पृष्ठ 12
 (घ) जैन साहित्य का संक्षिप्त इतिहास - बाबू कामताप्रसाद जैन पृष्ठ 172
 (ङ) कविवर भूधरदास और जैन शतक - बाबू शिखरचन्द जैन पृष्ठ 8
 (च) अध्यात्म भजन गंगा - पंडित ज्ञानचन्द जैन पृष्ठ 46
2. काशी नागरी प्रचारिणी पत्रिका, खोज में उपलब्ध, हस्तलिखित ग्रन्थों का 14 वॉ त्रैवार्षिक विवरण परिशिष्ट
3. हिन्दी जैन भक्त काव्य और कवि - डॉ. प्रेमचन्द जैन पृष्ठ 332

करके "भूधरविलास" के नाम से प्रकाशित की गई है। "भूधरविलास" में "पदसंग्रह" के 53 पद यथावत प्रकाशित हैं, जबकि "पदसंग्रह" में 27 अन्य पद सहित कुल 80 पद उपलब्ध हैं। इस तरह "भूधरविलास" पृथक् रचना सिद्ध नहीं हो पाती है। अतः विद्वत्जनों को पदसंग्रह से पृथक् "भूधरविलास" नामक रचना की उपलब्धता के भ्रम में नहीं पड़ना चाहिए।

इसी तरह पंडित परमानन्द शास्त्री ने भूधरदास की एक अन्य अनुपलब्ध कृति "कलियुग चरित" का उल्लेख किया है,¹ परन्तु इस संबंध में उनके द्वारा कोई प्रमाण नहीं दिया गया। इधर अनेक शास्त्रभण्डारों के अवलोकन एवं विद्वत्जनों के सम्पर्क से यह प्रमाणित हो गया है कि भूधरदास द्वारा रचित "कलियुग चरित" नामक कोई रचना नहीं है। डॉ. कस्तूरचन्द कासलीवाल द्वारा लिखित "राजस्थान जैन शास्त्र भण्डार की सूची भाग-3" में इस रचना का उल्लेख तो है, किन्तु रचयिता के नाम के स्थान पर रिक्त स्थान है। रचना और रचयिता का ठीक से मिलान न करने पर कोई उसे गलती से भूधरदास की रचना समझ सकता है, परन्तु वह वास्तव में भूधरदास की रचना नहीं है। अतः उसे (कलियुग चरित को) भूधर-साहित्य में स्थान नहीं दिया जा सकता है।

अन्य फुटकर रचनाओं में समाहित होने वाली कवि की "गजभावना" और "पंचमेरू पूजा" नामक दो अन्य रचनाओं का उल्लेख जयपुर के ठोलियान मन्दिर में उपलब्ध शास्त्र भण्डार की सूची में किया गया है।

स्वर्गीय पंडित पन्नालाल बाकलीवाल द्वारा प्रकाशित वृहज्जिनवाणी संग्रह में भूधरदास रचित परमार्थ जकड़ी, बारह भावना, गुरुस्तुतियाँ, जिनेन्द्रस्तुतियाँ, पार्श्वनाथ स्तुति, पार्श्वनाथ स्तोत्र, एकीभाव स्तोत्र भाषा, वैराग्य भावना एवं बाबीस परिषद् आदि अनेक रचनाओं को स्थान दिया गया है।

इस तरह भूधरदास की गद्य रचनाओं में एक मात्र "चर्चा समाधान", पद्य रचनाओं में महाकाव्य "पार्श्वपुराण", मुक्तक काव्य के अन्तर्गत जैनशतक, पदसंग्रह अन्य सभी फुटकर रचनाएँ एवं यत्र-तत्र बिखरे हुए पद समझना चाहिए।

हिन्दी साहित्य के बृहद् इतिहास भाग-7 में भूधरदास की तीन महत्वपूर्ण रचनाओं - पार्श्वपुराण, जैनशतक एवं पदसंग्रह की जानकारी दी गई है। इसके अतिरिक्त हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग द्वारा प्रकाशित हस्तलिखित हिन्दी ग्रंथों का संक्षिप्त विवरण एवं काशी नागरी प्रचारिणी सभा की शोध रिपोर्ट में भी भूधरदास की जानकारी दी गई है।

(ख) रचनाओं का परिचयात्मक अनुशीलन

: गद्य साहित्य :

चर्चा समाधान :- भूधरदास द्वारा गद्य में लिखी हुई एक मात्र कृति “चर्चा समाधान” नाम से उपलब्ध है। इस कृति का प्रकाशन “जिनवाणी प्रचारक कार्यालय” कलकत्ता द्वारा हुआ है। लेखक को इसके “चर्चा समाधान”¹ और “चर्चा निर्णय”² यह दोनों नाम अभीष्ट हैं। इस कृति में जैनदर्शन से सम्बन्धित 139 शंकाओं का समाधान किया गया है। अनेक शंकाओं के समाधान में अपने उत्तर की पुष्टि हेतु विविध जैन ग्रंथों के प्रमाण एवं उद्धरण भी दिये गये हैं। अनेक शंकाओं के समाधान में कई प्रतिशंकाएँ उत्पन्न करके उनके भी समाधान किये गये हैं। सभी समाधानों में यथासम्भव अनेक ग्रंथ के नाम प्रमाण एवं उद्धरण मिलते हैं, जिनका विवरण यथास्थान दिया जायेगा। यह कृति पूर्णतया सैद्धान्तिक एवं धार्मिक है। इसमें जैन सिद्धान्तों का प्रश्नोत्तर (शंका-समाधान) के माध्यम से विवेचन किया गया है। संक्षेप में इस ग्रंथ की विषयवस्तु निम्नलिखित है -

यद्यपि यह गद्य रचना है; परन्तु इसके प्रारम्भ में मंगलाचरण, कुछ उपदेशात्मक बातें, जैन धर्म की विशेषतायें, उसकी वर्तमान स्थिति, जिज्ञासापूर्वक अध्ययन करने की प्रेरणा आदि तथा ग्रंथ के अन्त की प्रशस्ति पद्य में दी गयी है।

सर्वप्रथम मंगलाचरण के रूप में महावीर, जिनवाणी एवं गौतम गणधर को अष्टांग प्रणाम किया है। पश्चात् अष्टांग प्रणाम का स्वरूप लिखा है। कामभोग को आदि में मधुर और अवसान में कटु तथा तप-वैराग्य को आदि में विरस और अवसान में मधु बतलाया गया है। इसीप्रकार वैरभाव को आदि अन्त में विरस व दुःख रूप तथा मैत्री भाव को आदि अन्त में अनुपम मधुर बतलाया है। काम-भोग तथा वैरभाव को अहितकारी बतलाकर त्यागने तथा तप-वैराग्य व मैत्री भाव को हितकारी बतलाकर ग्रहण करने का उपदेश दिया है।

यह चर्चारूपी ग्रन्थ जिनागमरूपी सागर से निकला है, इसलिए निरन्तर इसका पान करो। जेठ महीने के बड़े दिन और माघ माह की बड़ी रात जिनमत

की चर्चा के बिना व्यर्थ मत करो। जिनमत की चर्चारूपी मधुर परम रस जिसने नहीं चखा, उस मनुष्यरूपी वृक्ष की डाल में सुन्दर फल नहीं लगेंगे। पढ़ना, पूछना, विचारना, पाठ करना तथा उपदेश देना आदि सभी में चर्चा गर्भित है। कहा भी है - जिसप्रकार मणि और विष से रहित सर्प का "सर्प" नाम निरर्थक है; उसीप्रकार सुवचन के अनुसार न चलने वाले का सुवचन सुनना या जानना निरर्थक है। जिसप्रकार मुग से "सिंह" ही को "सिंह" कहना सार्थक है, नाम से किसी को "सिंह" कहने से कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं होता; उसीप्रकार हित करने वाले होने से सुवचन मात्र जिनेन्द्र के वचन ही हैं, अन्य के नहीं। जिस प्रकार चतुर को ही दाख अच्छी लगती है, किसी हीन कौवे को नहीं उसीप्रकार सुबुद्धि को ही सुवचन रुचिकर होते हैं, मूर्ख को नहीं। इस निकृष्ट पंचमकाल में जैन धर्म की दुर्लभता एवं वर्तमान स्थिति के बारे में भूधरदास का कथन है—

पंचम काल कराल अति, देखो सुधी विचार।
जिनमत के मरपी पुरुष, बिरले भरत पैझार ॥
जैन धर्म को मर्म है, महादुर्लभ जगमाहिं।
समकितकौ कारण सही, यामें संशय नाहिं ॥
जैन धर्म को मर्म लहु, वरतै मानकषाय।
यह अपूर्व अचरज सुनौ जल में लागी लाय ॥
जैन धर्म लह मद बढ़ै, वैद न मिलि है कोई।
अमृतपान विष परिणवै, ताहि न औषधि होई ॥
जपकर तपकर दानकर, कर कर पर उपगार।
जैन धर्म को पायकर, मान कषाय निवार ॥
कालदोषतै भ्रम पर्यो, जिनमत चरचा माहिं।
तिनको निर्णय जोग है, जिनशासन की छाँह ॥¹

चर्चाओं के सत्य निर्णय करने के सम्बन्ध में वे कहते हैं—

नीति सिंहासन बैठो वीर, मतिश्रुत दोऊ राख वजीर।
जोग अजोगह करौ विचार, जैसे नीति नृपति व्योहार ॥
जो चरचा चित में नहि चढ़ै, सो सब जैन सूत्रसों कढ़ै।
अथवा जे श्रुतमरपी लोग, तिन्हें पूछ लीजै यह जोग ॥

इतने में संशय रहि जाय, सो सब केवल मांहि समाय ।
 यों निशित्य कीजै निजभाव, चरचा में हठ को नहि दाव ॥
 शब्दों या वचनों का पक्ष त्याज्य मानते हुए वे उसके दोष बताते हैं -

वचन पक्ष में गुण नहीं, नहि जिनमत को त्याथ ।
 ऐंच खैंच सौं प्रीति की, डोर टूट मत जाई ॥
 ऐंच खैंच सौं बहुत गुन टूटत लगै न बार ।
 ऐंच खैंच बिन एक गुन, नहि टूटै निरधार ॥
 वचन पक्ष परवत कियो, भयो कौन कल्यान ।
 बसु भूपति हू पक्षकरि, पहुँचौ नरक निदान ॥
 वचन पक्ष करिबो बुरो जहाँ धर्म की आन ।
 निज अकाज पर को बुरो, जरो जरो यह बान ॥¹

देश भाषा के ग्रंथों की प्रामाणिकता के लिये वे उसे संस्कृत एवं प्राकृत भाषा के मूल ग्रंथों से मिलान करने की बात करते हैं -

प्राकृत बानीसों मिलै, सो संस्कृत दूढ़ जान ।
 मिलै संस्कृत पाठसों, सो भाषा परमान ॥
 बल्ल बोध भाषा वचन, उपगारी अभिराम ।
 शास्त्र साखि जहँ चाहिये, तहाँ न आवै काम ॥²

सत्य चर्चा भी भ्रमभाव के कारण असत्य हो गई है । इस कलिकाल में बहुत सी असत्य बातें चल रही हैं । वक्ता वचन का पक्ष ग्रहण कर लेते हैं और श्रोता भी अपनी हठ नहीं छोड़ते हैं । जिनमत की चर्चा अगम्य और अपार है; इसलिए थोड़ा बहुत जानकर संतुष्ट नहीं होना चाहिए । अधिक जानने के लिए प्रयत्न करते रहना चाहिए । जो लोग थोड़ा-सा जानकर तृप्त हो जाते हैं, वे जिनमत की रीति का पालन नहीं करते हैं । जिनमती खोजी होता है । खोज करने से विशेष गुण प्रकट होते हैं; जबकि वाद-विवाद करने में कोई गुण नहीं है ।³ तभी तो सत्य है -

याहीतैं सब कोई, ग्वालबाल भी कहत हैं ।
 खोजी जीवै जोई, वादी को जीवन विफल ॥⁴

1. चर्चा समाधान, भूधरदास पृष्ठ 3 2. चर्चा समाधान, भूधरदास पृष्ठ 3
 3. चर्चा समाधान, भूधरदास पृष्ठ 3 4. वही पृष्ठ 3

जिज्ञासु होने एवं विचार करने की प्रेरणा देते हुए भूधरदास कहते हैं कि -

जो तुम नीकें लीनों जान, तामैं भी है बहुत बिजान ।
तातैं सदा उद्यमी रहो, ज्ञानगुमान भूलि जिन गहो ॥
जो नवीन चरचा सुन लेहु, ताको तुरत धका मांत देहु ।
दोष चार दिन करो विचार, एकचित कर बार बार ॥
तामैं कहा दोष है भीत, विनय अंग जिनमत की नीत ।
आज्ञा भंग है पाप विशाल, मूरख नर के भासै ख्याल ॥
सम्यग्दृष्टि जीव सु जान, जिनवर उक्ति करै सरधान ।
अजथारथ सरथा भी करै, मंदज्ञानजुत दोष न धरै ॥
सूत्र सिद्धान्त साख जब होई, सत सरधान दिढ़ावै कोई ।
जो हठसों नाहीं सरधहै, तबसों जानि मिथ्यात्वो कहै ॥¹

भूधरदास जैन धर्म की चर्चाओं के समाधान अपने और दूसरों के कल्याण के लिए जैन शास्त्रों की साक्षीपूर्वक (प्रमाणपूर्वक) करते हैं इसलिए वे समाधान प्रमाणिक हैं ।²

इस ग्रन्थ में पहली चर्चा प्रारम्भ करने के पूर्व सज्जन गुणग्राही जनों से भूधरदास प्रार्थना करते हुए कहते हैं -

“इस चरचा समाधान ग्रंथविषैं केतेक संदेह साधर्मी जनों के लिखे आए, शास्त्रानुसार तिनका समाधान हुआ है, सो लिखा है । अब तो बहुश्रुत सज्जन गुणग्राही हैं, तिनसूं मेरी विनती है, इस ग्रंथ को पढ़वे की अपेक्षा कीजो, आद्योपांत अवलोकन करियो । जो चरचा तुम्हारे विचार को सदहै, सो प्रमाण करसो, जो विचार में न सदहैं तहां मध्यस्थ रहना और जैन की चरचा अपार है, काल दोषसों तथा मतिश्रुत की घटतीसों तिनविषैं संदेह बहुत पड़ै तिसतैं तिनका कहा ताई कोई निर्णय करेगा । चतुर्थकाल विषैं छठै - साते गुणस्थानवर्ती साधु के पद पदार्थ के चिंतवन में भांति उपजै, केवली-श्रुतकेवली बिना निर्णय न होई तो

1. चर्चा समाधान, भूधरदास पृष्ठ 4

2. जैन सूत्र की साख सौ, स्वपर हेतु उर आन ।

चरचा निर्णय लिखित है, कीजो पुरुष प्रधान ॥ चर्चा समाधान, भूधरदास पृष्ठ 4

अबकी कौन बात है ? तातैं यथायोग्य अवलोकन बिना मन के अवलम्बन निमित्त केतिक चरचा का विचार लिखिए ।¹

चर्चा 1 - मुनिराज के ऐसा कौन संदेह हुआ होई तिसका केवली श्रुतकेवली बिना निर्णय न होई, तिस संदेह की जाति जानी चाहिये ?

चर्चा 2 - सम्यग्दर्शन का क्या स्वरूप है ?

चर्चा 3 - व्यवहार सम्यक्त्व कैसे कहिए और निश्चय सम्यक्त्व कैसे कहिये ।

चर्चा 4 - सम्यक्त्व की उत्पत्ति दोय प्रकार है - एक निसर्गतैं दूजी अधिगमजतैं ।
तिनका स्वरूप क्या है ?

चर्चा 5 - पाँच लब्धि में करणलब्धि का क्या स्वरूप है ?

चर्चा 6 - गोम्मटसार में सम्यक्त्व के 6 भाग कहे हैं -इन छहु सम्यक्त्व का क्या स्वरूप है ?

चर्चा 7 - उद्धेलना तथा विसंश्रयना दिवैं क्या करै है ?

चर्चा 8 - कोई जीव उपशम श्रेणी चढ़ै तो कै बार चढ़ै ?

चर्चा 9 - अन्तर्मुहूर्त के कितने विकल्प हैं ?

चर्चा 10- आवली का क्या स्वरूप है ?

चर्चा 11- क्षपक श्रेणीवाला नवमें अनिवृत्तिकरण नामा गुणस्थानविषै नवभाग करि छत्तीस प्रकृति का क्षय करै है और जो उपशम श्रेणी चढ़ै सो नवमें गुणस्थान विषै उपशम केती प्रकृति का करै । ब्रह्म विलास के चेतन चरित्र विषै छत्तीस का ही उपशम लिख्या है, सो कैसे है ?

चर्चा 12- अविरत नाम चतुर्थ गुणस्थान की केतेक काल स्थिति है ?

चर्चा 13- छठा सातवाँ गुणस्थान डवरूँ की नाई हुआ करै है तहां औसा सुना है जब छठे सूं सातवें आई जाई तब गमन करतै पांच ज्यों का त्यों ही रहै, आहार करतै ग्रास ज्यों का त्यों ही रह जाई, सो कैसे है ?

चर्चा 14- छठवें सूं ग्यारहवें गुणस्थान ताई उत्कृष्ट तथा जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त मात्र है अर एक समय मात्र भी कही है । बनारसीदासजी ने नाटक के गुणठाणाधिकार में भी कही है सो क्यों कर है ?

चर्चा 15- सम्यक्त्व सहज साध्य है कि यत्न साध्य है ?

- चर्चा 16- विद्यमान भरतखंड विषै पंचमकाल में सम्यग्दृष्टि जीव केतेक पाइए ?
- चर्चा 17- परन्तु शास्त्र के विषै या बिना तौ कोई वस्तु न होई यातैं सम्यक्त्व के बाह्य लक्षण शास्त्र विषै क्यों न होहिगे ?
- चर्चा 18- दशाध्याय सूत्र के नवमें अध्यायविषै दशपुरुष सम्यग्दृष्टि आदि परस्पर असंख्यात गुणी अधिक निर्जरा वाले कहे हैं। तिनका स्वरूप क्या है ?
- चर्चा 19- केवलि समुद्घात के आठ समय हैं तिसविषै त्रसनाड़ी के बाहिर के जीव के प्रदेश कौन से समय पाइये ?
- चर्चा 20- समुद्घात केवली तो शास्त्रविषै प्रसिद्ध है। समुद्घात केवली की कथा बहुत प्रसिद्ध नाही।
- चर्चा 21- तेरह गुणठाणे केवली के एक सातावेदनीय का बन्ध कह्या सो समय स्थायी है। वेदनयी कर्म के बन्ध की उत्कृष्ट स्थिति तीस सागर की कही, जघन्य बारह मुहूर्त की कही, इह समय स्थायी कौन से स्थिति बन्ध का भेद है ?
- चर्चा 22- तेरहवें तथा चौदहवें गुणस्थान में पच्चासी प्रकृति की सत्ता है। तिनविषै उदय कौनसी प्रकृति का है ?
- चर्चा 23- तेरहवें गुणठाणे केती इक प्रकृति सत्ता विषै है, उदय बिना किसी ही प्रकृति का क्षय होता नाहीं, सो सत्ता तौ संभवै उदय क्यूँ कर सम्भवै ?
- चर्चा 24- केवली परमौदारिक देह का धरनहारा है ...तिस औदारिक शरीर की स्थिति कवलाहार बिना देशोन कोडि पूर्व है, सो काहे सों होई ?
- चर्चा 25- परमौदारिक देह का क्या स्वरूप है ?
- चर्चा 26- संहनन कौन-कौन जागै है, अर कौन जागै नाहीं ?
- चर्चा 27- तीर्थकर केवली के छयालीस गुण कहे और सामान्य केवली के कितने होई ?
- चर्चा 28- जन्मातिशय के अनन्तबल और केवलज्ञान के समय अनन्तवीर्य कह्या इन दोनों में भेद क्या है ?
- चर्चा 29- तीर्थकर केवली कै छयालीस अतिशय (गुण) विषै वाणी का प्रसंग तीन बार आया ...। तिनमें विशेष क्या ?
- चर्चा 30- समोसरण में केवली कहाँ तिष्ठै है ?

- चर्चा 31- पाँचों इन्द्रियाँ और मन अपने-अपने योग्य विषय को ग्रहण करें। यह ग्रहण सामर्थ्य रूप धरू गुण किसका है, जीव का कहो तो मुक्ति जीव के बताओ, पुद्गल का कहो तो मृतक के बताओ। दोनों का कहो तो केवली के बताओ ?
- चर्चा 32- केवली तीर्थंकर के अष्ट प्रातिहार्य विषै अशोकवृक्ष कह्या सो काहे का वृक्ष है ?
- चर्चा 33- समवसरण में तूप कहे तिनकी उच्चता तथा विस्तार क्या है ?
- चर्चा 34- कोई ऐसा कहे ...जब तीर्थंकर केवली की आयु मास बाकी रहे तब पुण्य पूरा हो जाय। समवसरण की रचना न रहे, बारह सभा विघट जांइ, देवता प्रमुख पास होइ सो चले जांइ प्रणाम करै नाही। यह बात क्योंकर है ?
- चर्चा 35- चौबीस तीर्थंकर किस-किस आसन सौं भोक्ष गये ?
- चर्चा 36- केवली के प्रतिसमय असाधारण पुद्गल वर्गणा शरीर सौं बन्ध करै ? यह क्षायिक लाभ हुआ। सिद्ध पर्याय विषै क्षायिक लाभ का प्रसंग कैसे सम्भवै ?
- चर्चा 37- समवसरण में तीर्थंकर केवली कौन से आसन से रहे ?
- चर्चा 38- भोक्ष विषै किंचिदून आकार चरमदेह सो कह्या...तिस किंचून का क्या स्वरूप है ?
- चर्चा 39- संसार में समुद्घात बिना जीव छोटी-बड़ी देह के प्रमाण हैं। अनादिकाल सौ कर्माधीन यूं ही चल्या आया है, सावरण दीपक की नाई। लोक प्रमाण असंख्यात प्रदेशी अपनी अवगाहना प्रमाण कभी हुआ नाही। कर्म के आवरण रहित भोक्ष में देहप्रमाण क्यूं रह्या। लोक प्रमाण क्यूं न हुआ।
- चर्चा 40- लोक के अग्र ईषत्प्राग्भारनाम अष्टम पृथ्वी सुनी है तिसके मध्य छत्राकार सिद्धशिला है। सौ वह कैसे छत्र के आकार है अर उसका स्वरूप क्योंकर है ?
- चर्चा 41- राजू का प्रमाण असंख्यात जोजन का है, तिसके प्रमाण की गाथा इस भाँति सुनी है तथाहि...इस गाथा में यह अर्थ कैसे है ?
- चर्चा 42- अढाई द्वीप विषै कछुवा की टोंटीवत् भोक्षमार्ग निरन्तर चलै है ऐसी कहावत है इसका स्वरूप क्योंकर है ?

- चर्चा 43- आचार्य, उपाध्याय, साधु इन तीन पदों में उत्कृष्ट पद कौन है ?
- चर्चा 44- मूल गुणविषै पाँच महाव्रत, पाँच सन्निति लीनि, तीस गुण क्यो लीनी ?
- चर्चा 45- 28 मूलगुण में सम्यक्त्व कोई न कहा । साधु के 28 गुण विषै दश सम्यक्त्व में कोई सम्यक्त्व होइ यह कहा तिसका हेतु क्या ?
- चर्चा 46- साधु के 84 लाख उत्तर गुण सुने हैं, ते कौन से हैं ?
- चर्चा 47- 28 मूलगुण में महाव्रतविषै वस्त्रत्याग आया कि नाही ? फेरि वस्त्र त्याग भी जुदा क्यो कहा ?
- चर्चा 48- आचार्य उपाध्याय विषै परस्पर क्या अन्तर है ?
- चर्चा 49- रात्रि के समय मुनिराज हलन चलनादि क्रिया तथा वचनालाप करें कि नाही ।
- चर्चा 50- कायोत्सर्ग का क्या स्वरूप है ?
- चर्चा 51- कायोत्सर्ग विषै आसन कौनसा होई ?
- चर्चा 52- वर्षा काल विषै मुनीश्वर बिहार करें कि नाही ?
- चर्चा 53- मुनि आहार के निमित्त चर्या किस प्रकार करें ?
- चर्चा 54- मुनीश्वर जब नगरादिविषै चर्या को जाय तब पाँच घर सौ बढ़ती न जाइ जैसे सुनी सो क्यो कर है ?
- चर्चा 55- ऋषभदेव जी ने इक्षुरस का आहार लिया, सो सचित्त है कि अचित्त है ?
- चर्चा 56- जंघाचारी साधु जंघा पै हाथ धरि कै आकाश गमन करै, ऐसी कहावत है; सो क्यूँ कर है ?
- चर्चा 57- किन ही मुनिराज ने सम्यक्त्व वम दीया होइ तब तिस काल यह पूज्य होइ कि नाही ?
- चर्चा 58- ऊपर अपात्र का दान निष्फल कहा जासू कुमानुष होय । हम अपात्र के दान का फल नरक निगोद सुन्या है, सो क्यूँ करि है ?
- चर्चा 59- मुनिराज के चौबीस परिग्रह का निषेध है सो कौन से हैं ?
- चर्चा 60- मुनिराज शास्त्रादि उपकरण राखै कि नाही ?

- चर्चा 61- तीर्थकर प्रभु को प्रथम आहार देइ सो तदभव मुक्त होई औंसे सुनी है सो कैसे है ?
- चर्चा 62- शांतिनाथ, कुंथुनाथ, अरहनाथ के तीर्थकर, कामदेव तथा चक्रवर्ती तीन पद क्यों कर हुए ?
- चर्चा 63- बाहुबलिजी भरत की पृथ्वी जानि अंगुष्ठ के बल वर्ष पर्यन्त योगारूढ़ रहे, इस ही मानकषाय सौ केवलज्ञान का अवरोध रह्या । ऐसी कहावत सुनी है; सो क्यों कहै ?
- चर्चा 64- युग के आदि विषै प्रथम बाहुबलिजी मुक्त हुए ऐसी सुनी है, सो क्यों कर है ?
- चर्चा 65- तीर्थकर प्रकृति के आश्रव कूं दर्शनविशुद्धि आदि सोलहकारण कहे हैं, तहां सूत्रजी की भाषा टीका विषै यो लिख्या है - सोलहकारण सब मिलै तब तीर्थकर प्रकृति का आश्रव होई । एक भी घटे तो न होई, सो क्यों कर है ?
- चर्चा 66- तीर्थकर की माता रजस्वला होइ कि नहीं ?
- चर्चा 67- तीर्थकर प्रभु की मुनिराज सो भेंट होई की नहीं ?
- चर्चा 68- तीर्थकर की माता कौ गर्भावतार अवसर पर छप्पन कुमारी देवांगना सेवै हैं; वे कौनसी ?
- चर्चा 69- बाहुबलि की प्रतिमा पूज्य है कि नहीं ?
- चर्चा 70- पार्श्वनाथ जी के तपकाल विषै धरणेन्द्र पद्मावती आये; मस्तक के ऊपर फण का मण्डप किया । केवलज्ञान समय रह्या नहीं । अब प्रतिमा विषै देखिये हैं; सो क्यों कर सम्भवै ?
- चर्चा 71- पार्श्वनाथ जी के सातफण हैं तिसका हेतु तो जानिए है । अर सुपार्श्वनाथ प्रतिमा पर नौ फण है, तिसका क्या हेतु है ?
- चर्चा 72- चौबीस तीर्थकर की प्रतिमा के आसनविषै वृषभादिक चिन्ह, सो क्या है ?
- चर्चा 73- ऊपर लिखा प्रतिमा के पूजन विषै न्हवन क्रिया उचित है सो इह तो जन्म समय की विधि है । प्रतिमाविषै केवलज्ञान की विधि चाहिए ।
- चर्चा 74- प्रतिमाविषै पूज्य अपूज्य का विवरण क्यों कर है ?
- चर्चा 74- प्रतिमा विषै कान का आकार कांधे सौ लगा होई, सो क्या है ?

- चर्चा 75- शाश्वती प्रतिमा है, तिनका क्या स्वरूप है ?
- चर्चा 76- गृहस्थ अपने घर में प्रतिमा पूजन करे कि नहीं ?
- चर्चा 77- देवपूजन योग्य पुरुष कैसा चाहिए ?
- चर्चा 78- पूजा के समय पूजक पुरुष कौनसी दिशा रहे ?
- चर्चा 79- भगवान का गंधोदक लेना योग्य है कि नहीं ?
- चर्चा 80- ऊपरि शेषायूत कहे, सो क्या कहावे है ?
- चर्चा 81- प्रतिमाजी के अभिषेक के समय दर्शन योग्य है कि नहीं ?
- चर्चा 82- स्त्री को पूजा करने का अधिकार है कि नहीं ?
- चर्चा 83- निर्माल्य किसे कहिये ?
- चर्चा 84- पूजा के समय द्वीप जोई कै चढ़ावन योग्य है कि नहीं ?
- चर्चा 85- कलिकुंडदण्ड की पूजा का स्वरूप क्या है ?
- चर्चा 86- अष्टन्हिका पर्व के अवसर देवता नंदीश्वर द्वीप विषैं जाय हैं, ते आठ दिन वहाँ ही रहे हैं, कै नित जाय हैं ?
- चर्चा 87- देवता नंदीश्वरादि के उत्सव विषैं पृथक् विक्रियावादी देह सू जाय हैं, मूल शरीर अपने स्थान रहे, तो क्या चेष्टा करे ?
- चर्चा 88- ऊपर लिख्या देवता पृथक् विक्रिया की देहकरि देशान्तर विषैं जाय है । सो पृथक् विक्रिया क्या कहावै ?
- चर्चा 89- देवतानि की देह धातुवर्जित है । जिन देवतानि के मनुष्य कैसा स्त्री पुरुष सम्बन्धी योग व्यवहार है, तिनके रति का अवसान क्यों करि हो है ?
- चर्चा 90- अढ़ाई द्वीप के बाहिर मनुष्यनि का बाल न जाय, ऐसा कहावत सुना है; सो क्यों कर है ?
- चर्चा 91- अढ़ाई द्वीप विषैं 29 अंक प्रमाण मनुष्य कहै हैं—पच्चीस अंक मात्र क्षेत्र विषैं उनतीस अंक प्रमाण मात्र मनुष्य क्यों करि समाए ?
- चर्चा 92- पर्याप्त-अपर्याप्त का क्या स्वरूप है ?
- चर्चा 93- पर्याप्ति विषैं और प्राणविषैं क्या भेद है ?
- चर्चा 94- अलब्ध पर्याप्त मनुष्य कहाँ-कहाँ उपजे हैं ?

- चर्चा 95- निगोद के पाँच गोलक हैं - खंघ, अंडर, आवास, पुलवी, शरीर । सात नरक के हेतु सुने हैं, ते क्या कर हैं ?
- चर्चा 96- सूक्ष्म वादर निगोद जीवनि की आयु का प्रमाण क्या है ?
- चर्चा 97- आयु के स्थिति बंधविषैं उत्कर्षण कहा है, सो किस प्रकार है ?
- चर्चा 98- नेमिचन्द्र कृत त्रिलोकसार विषैं स्वर्ग की आयु किस भाँति कही है ?
- चर्चा 99- भुज्यमान आयु के त्रिभागविषैं शेष परभव की आयु बँधे है, सो कैसे है ?
- चर्चा 100- आठ कर्म विषैं आयु कर्म की स्थिति का क्षरण सात कर्मवत् है कि और प्रकार है ?
- चर्चा 101- छठे काल के अन्त प्रलय विषैं बहत्तर जुगल कू विद्याधर ले जायेगे; यह बात क्यों कर है ?
- चर्चा 102- बज्रवृषभ नाराच संहनन का छंद-भेद होई कि नहीं ?
- चर्चा 103- मनः पर्ययवाले उत्कृष्ट ढाई द्वीपवर्ती जीवनि के मन की जाने की बाहर की भी जानै ?
- चर्चा 104- जाति स्मरण का क्या स्वरूप है । और कौन से ज्ञान का भेद है ?
- चर्चा 105- ज्योतिषी विमानों के जोजन वा कोष छोटे हैं वा बड़े हैं ?
- चर्चा 106- जम्बूद्वीप में दोय चन्द्रमा, दोय सूर्य कहे हैं । एक सूर्य का प्रकाश लाख योजन ताई सुना है, सो क्यों कर है ?
- चर्चा 107- आकाश सौ उल्कापात होय है, लोकविषैं तिसे तारा टूटा कहे है, सो क्या है ?
- चर्चा 108- परमाणु को षट्कोण कहनावत में कहै है, सो षट्कोण क्या होवे ?
- चर्चा 109- शनीचर के विमान का वर्ण श्याम कहे है । बनारसीदास जी ने भी नौ ग्रह के कवित्त में श्याम ही लिख्या है, सो कैसा है ?
- चर्चा 110- सुमेरु पर्वत की ऊंचाई स्कन्ध समेत लाख योजन की है, तिसके ऊपरि चालीस योजन ऊंची बैडूर्यमणिमयी चूलिका है । सो लाख योजन में गर्भित है कि जुदी है ?
- चर्चा 111- सुमेरु पर्वत हजार योजन स्कन्ध में है । सो स्कन्ध हजार योजन की मोटी चित्रा पृथ्वी विषैं है । वह चित्रा पृथ्वी मध्यलोक सम्बन्धी है कि अधो लोक सम्बन्धी है ?

- चर्चा 112- छठे गुणस्थानवर्ती मुनि के आहारक शरीर सन्देह निवारण निमित्त निकसै है, कै और निमित्त भी निकसै है ?
- चर्चा 113- मुनिराज के षटावश्यक की क्रिया में कहीं-कहीं फेर है। यत्याचार में क्यों कर है ?
- चर्चा 114- तीर्थकर के समवसरण में तीन बार वाणी खिरै, सोई मुनिश्वरों के सामायिक का समय है, ये दोनों कार्य एक काल क्यों करै सम्भवै ?
- चर्चा 115- अभिन्न दशपूर्वी साधु कौन से कहिये ?
- चर्चा 116- अष्टप्रकारी पूजा विषै जलादि का आरम्भ होई। इस आरम्भ का मुनिराज उपदेश करे कि नाहीं ?
- चर्चा 117- रोहिणी व्रत विधान का क्या स्वरूप है ?
- चर्चा 118- चतुदर्शी आदि तिथि घटती आन पड़ै तहां व्रत विधान कैसे होई ?
- चर्चा 119- अष्टान्हिका व्रत की विधि किस प्रकार है ?
- चर्चा 120- बाईस अभक्ष्य विषै लौनी अभक्ष्य क्यों कहीं ?
- चर्चा 121- द्विदल का क्या स्वरूप है और तिसमें क्या दोष है ?
- चर्चा 122- भरतचक्री व रामचन्द्रादि सम्यग्दृष्टि हैं, इनकै कौनसा गुणस्थान कहिये ?
- चर्चा 123- यादव वंश के राजा उत्तम जैनी हैं, तहां नेमिनाथ जी के विवाह मंगल की बिरिया श्री कृष्ण ने पशु एकत्र क्यों किये ?
- चर्चा 124- राजमति कौन से राजा की बेटी है ?
- चर्चा 125- श्वेताम्बराम्नाय विषै नौन को अति सचित्र माने हैं। दिगम्बर आम्नाय विषै क्यों कर है ?
- चर्चा 126- रेशम लीन है कि अलीन है ?
- चर्चा 127- दिवाली के दिन निर्वाण पूजा का समय कौनसा ?
- चर्चा 128- जीव का उर्ध्वगमन स्वभाव है, सो गति सो गत्यन्तर विषै कैसे गमन करे है ?
- चर्चा 129- भरतचक्रवर्ती ने बहत्तर चैत्यालय कैलासपर्वत पर कराये सुनिये है; ते क्यों कर हैं ?
- चर्चा 130- स्वयंभूरमण वाला मच्छ छठे नरक जाइ है। इसकी भौह में तंदुल मच्छ रहै; सो सातवे जाय, यों सुनी है, तो कैसे है ?

- चर्चा 131- श्रेणिक आदि भावी तीर्थकर कौन होंगे; तिनके नाम क्या हैं ?
- चर्चा 132- गृहस्थ ने जो धन नीति सूं उपजाया है, तिसके कै भाग करने जोग्य हैं ?
- चर्चा 133- गृहस्थ ने जो धन नीति सूं उपजाया है, तिसके कै भाग करने जोग्य हैं ?
- चर्चा 134- जैनमत में गृहस्थ की तिलक की विधि किस प्रकार है ?
- चर्चा 135- चौरासी लाख योनि का क्या स्वरूप है ?
- चर्चा 136- संसारी जीवनि के एक सौ साढ़े निन्याणवै लाख कोड़ि कुल कहे हैं । अर चौरासी लाख योनि कही । तहां योनि तथा कुल विषै क्या भेद है ?
- चर्चा 137- संसारी आत्मा अनादि मू. सात तत्त्वरूप समय-समय निरन्तर परिणमै सो क्यूं कर ?
- चर्चा 138- जितने जीव व्यवहार राशि में आवैं, ऐसी कहावत है, सो क्यों कर है ?
- चर्चा 139- आदि पुराण प्रमुख जैन पुराणानिविषै केतेक साधर्मोजन अरुचि करै हैं, राग-वर्धनरूप माने हैं; यह श्रद्धान योग्य है कि अयोग्य है ?

इसप्रकार “चर्चा समाधान” में लिखे हुए क्रम के अनुसार इसमें 139 चर्चाएँ एवं उनके समाधान हैं, जबकि वास्तव में कुल चर्चाएँ एवं समाधान 140 हैं; क्योंकि चर्चा 74 दो बार लिखी गई है । यदि इसको क्रमानुसार संशोधित कर क्रम संख्या दी जाय तो क्रम संख्या 139 के स्थान पर 140 होगी । कुछ चर्चाओं में अवान्तर चर्चाएँ भी पूछी गयी हैं । जिन चर्चाओं में अवान्तर चर्चाएँ पूछी गयी हैं वे चर्चाएँ हैं - 4, 5, 18, 19, 21, 22, 24, 25, 29, 37, 46, 47, 54, 59, 60, 73, 74, 83, 95, 98, 102, 105, 107, 108, 114, 118, 128, 131, 134, 135, 136, 138, 139 । किसी-किसी चर्चा में अवान्तर चर्चाएँ एक से अधिक चार-पाँच तक हैं । कुल अवान्तर शंकाएँ लगभग 62 हैं । इसप्रकार 140 मुख्य चर्चाएँ एवं उनमें पूछी अवान्तर चर्चाएँ 62, कुल मिलाकर 202 हैं ।

मोटे तौर पर चर्चाओं के विषय के अनुसार चर्चाएँ निम्नलिखित हैं -

सम्यग्दर्शन संबंधी चर्चाएँ - चर्चा न. 2, 3, 4, 5, 6, 12, 16, 17

- सात तत्त्व सम्बन्धी - 118
 करणलब्धि सम्बन्धी - 5
 मुनिराज सम्बन्धी चर्चा 1, 13, 14, 43, साधु के मूलगुण एवं चर्चा
 सम्बन्धी 44, 45, 46, 47, 48, 49, 52, 53, 54, 57, 59, 60, 113
 तीर्थंकर एवं केवली सम्बन्धी चर्चा - 23, 24, 25, 27, 28, 29, 30, 32,
 33, 34, 35, 36, 37, 38, 65, 66, 67, 114
 प्रतिमा सम्बन्धी चर्चा - 73, 74, 75, 76, 77
 पूजा एवं अभिषेक सम्बन्धी - 77, 78, 79, 80, 81, 84, 116
 स्त्री द्वारा पूजा सम्बन्धी चर्चा - 82
 निर्माल्य द्रव्य सम्बन्धी चर्चा - 83
 कलिकुंड सम्बन्धी चर्चा - 85
 अष्टान्हिका सम्बन्धी चर्चा - 86, 87, 88
 अष्टान्हिका व्रत चर्चा - 119
 रोहिणी व्रत चर्चा - 117
 उद्वेलना एवं विसंयोजना सम्बन्धी चर्चा - 7
 पर्याप्ति और प्राण सम्बन्धी चर्चा - 92, 93
 उपशम श्रेणी सम्बन्धी चर्चा - 8
 अलब्ध पर्याप्ति जीव सम्बन्धी चर्चा - 94
 निगोद सम्बन्धी चर्चा - 95
 सूक्ष्म बादर सम्बन्धी चर्चा - 96
 अन्तर्मुहूर्त सम्बन्धी चर्चा - 9
 आवली सम्बन्धी चर्चा - 10
 असंख्यात गुणी निर्जरा चर्चा - 18
 समुदघात सम्बन्धी चर्चा - 19, 20, 39
 सिद्धशिला सम्बन्धी चर्चा - 43
 अढ़ाई द्वीप सम्बन्धी चर्चा - 42, 90, 91
 राजू का प्रमाण सम्बन्धी चर्चा - 41
 कायोत्सर्ग सम्बन्धी चर्चा - 50, 51

अपात्रदान सम्बन्धी चर्चा - 58

प्रथम आहारदान देने सम्बन्धी चर्चा - 61

तीर्थकर की माता सम्बन्धी चर्चा - 66, 68

तीर्थकर आश्रम के कारण सम्बन्धी चर्चा - 65

पार्श्वनाथ एवं बाहुबली की प्रतिमा की पूज्यता-अपूज्यता सम्बन्धी चर्चा-
60, 70, 71

बन्ध का उत्कर्षण सम्बन्धी चर्चा - 97

स्वर्गों की आयु सम्बन्धी चर्चा - 98

भव का आयुबंध सम्बन्धी चर्चा - 99

आठ कर्म की स्थिति का क्षरण सम्बन्धी चर्चा - 100

छठे काल के बहत्तर जुगल सम्बन्धी चर्चा - 101

दान सम्बन्धी चर्चा - 113

चर्चाओं के समाधान में जिन ग्रंथों के नाम, उद्धरण, प्रमाण आदि प्रस्तुत किये गये हैं, उनके नाम निम्नलिखित हैं—

पूजा एवं स्तोत्र सम्बन्धी ग्रंथ - एकीभाव स्तोत्र, भक्तामरस्तोत्र, हेमचन्द्रकृत भाषा-भक्तामर, रत्नत्रयपूजा, बृहत्स्वयंभूस्तोत्र, प्रतिष्ठापाठ, शान्तिपाठ, निर्वाणकाण्ड, रघधू पण्डितकृत स्वयंभूस्तोत्र, पद्मनंदिकृत रत्नत्रयपाठ, यशोनंदिकृत पूजापाठ, सूत्र के पाठ की फल स्तुति, बृहत्प्रतिक्रमण भाषा, साधुवंदना आदि ।

प्रथमानुयोग सम्बन्धी ग्रंथ - आदिपुराण जिनसेनकृत, आदिपुराण पुष्पदंतकृत, बृहदपद्मपुराण, महापुराण, बुहदहरिवंशपुराण, हरिवंशपुराण, शान्तिनाथपुराण, आशिग पण्डितकृत यशस्तिलकनामा चम्पूकाव्य, पद्मपुराण, पंचपरमेष्ठी की टीका, स्वामी कार्तिकेय, कथा, संमतभद्र कथा, भद्रबाहु कथा, श्रेणिक चरित्र, अभव्यसेन का प्रसंग, कुंदकुंद के पंचनाम हेतु कथा, ढोलसार कथा आदि ।

करणानुयोग सम्बन्धी ग्रंथ - गोम्मटसार (पूर्वार्द्ध एवं उत्तरार्द्ध अथवा जीवकाण्ड एवं कर्मकाण्ड) त्रैलोक्यप्रज्ञप्ति, त्रिलोकसार नेमिचन्द्राचार्य कृत, चौबीसठाणा, कर्मकाण्ड की टीका, वचनकोष आदि ।

चरणानुयोग सम्बन्धी ग्रंथ - रत्नकरण्डश्रावकाचार समन्तभद्रकृत, चामुण्डरायकृत चारित्रसार, मूलाचार, आचारसार वीरनंदिकृत, इन्दनन्दिकृत

नीतिसार, आशाधरकृत यत्याचार, धर्माभूत सूक्तिसंग्रह, पुरुषार्थसिद्धयुपाय अमृतचन्द्राचार्यकृत, योगेन्द्रदेवकृत श्रावकाचार, सामायिक टीका, व्रतकथाकोष, धर्माकृत श्रावकाचार, ज्ञानार्णव, भगवती आराधना, लघुचारित्रसार, क्रियासार, सकलकीर्तिकृत धर्मप्रश्नोत्तर श्रावकाचार, आत्मानुशासन, द्वादशानुप्रेक्षा, राजमल्लकृत श्रावकाचार, समाधितंत्र टीका आदि ।

द्रव्यानुयोग सम्बन्धी ग्रंथ - तत्त्वार्थसूत्र, ब्रह्मविलास, स्वामीकार्तिकेयानुप्रेक्षा की टीका, सर्वार्थसिद्धि, ज्ञानप्राभूत या ज्ञानपाहुड, कुन्दकुन्ददेव कृत प्रवचनसार, तत्त्वदीपिका टीका, समयसार नाटक, तत्त्वार्थसार अमृतचन्द्रकृत, रयणसार कुन्दकुन्दकृत, न्यायकुमुदचन्द्रोदय, राजवार्तिकालंकार, द्रव्यसंग्रह, षट्पाहुड टीका, नियमसार, भावपाहुड, वीतराग समयसार, देवसेनकृत भावसंग्रह तथा वामदेवकृत भावसंग्रह, पद्मनन्दिपञ्चीसी, दर्शनसार, परमात्मप्रकाश, योगसार, तत्त्वार्थसूत्र की श्रुतसागरी टीका, तत्त्वार्थवृत्ति आदि ।

उपर्युक्त लगभग 85 ग्रन्थों को भूधरदास ने विभिन्न चर्चाओं के समाधान हेतु उद्धृत किया है । किसी एक चर्चा के समाधान हेतु भी अनेक ग्रन्थों को प्रमाण हेतु प्रस्तुत किया गया है । उदाहरणार्थ —

चर्चा 60 - मुनिराज शास्त्रादि उपकरण राखें कि नहीं ।

समाधान- "वसुनन्दी सिद्धान्त चक्रवर्तिकृत मूलाचार, वीरनन्दी सिद्धान्तिकृत आचारसार, चामुण्डरायकृत चारित्रसार, शिवकोटि मुनीश्वरकृत भगवती आराधना, लघुचारित्रसार, कुन्दकुन्दाचार्यकृत प्रवचनसार, रयणसार, नियमसार, भावपाहुड तथा वीतराग समयसार, देवसेनकृत भावसंग्रह तथा वामदेवकृत भावसंग्रह, पद्मनन्दिपञ्चीसी, ज्ञानार्णव, दर्शनसार, क्रियासार, तत्त्वार्थसार, परमात्मप्रकाश, योगसार, सूत्र की टीका - सर्वार्थसिद्धि, श्रुतसागरी तत्त्वार्थवृत्ति, सकलकीर्तिकृत धर्मप्रश्नोत्तर, श्रावकाचार ग्यारहसै छयासठ प्रश्न संयुक्त है, तत्त्वार्थसार टीका, आत्मानुशासन, आशाधरकृत यत्याचार, आदिपुराण पद्मपुराण, यशस्तिलकव्याख्या चम्पूनामा, कर्मकांड की टीका, पंचपरमेष्ठी की टीका, यशोनन्दिकृत पूजा पाठ, पद्मनन्दिकृत रत्नत्रयपाठ, स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षा टीका, द्वादशानुप्रेक्षा तथा स्वामीकार्तिकेय कथा, समन्तभद्रकथा, भद्रबाहुकथा, श्रेणिकचरित्र, अभव्यसेन का प्रसंग, कुन्दकुन्दाचार्य के पंचनाम हेतु कथा, सूत्र के पाठ की फलस्तुति, राजमल्लकृत श्रावकाचार, ढोलसागर कथा, बृहत् प्रतिक्रमण, समाधितंत्र टीका, वचनकोश, भाषा साधुवंदना इत्यादि प्राकृत संस्कृत भाषा रूप अनेक जैनग्रन्थनि विषै कह्या सो प्रमाण है ।"

पद्य में भूधरदास अपने इस ग्रंथ का नाम “चरचा निर्णय” लिखते हैं।¹ जबकि गद्य में वे इसे “चर्चा समाधान” लिखते हैं।² वस्तुतः इसकी प्रसिद्धि “चर्चा-समाधान” नाम से ही है।

सभी चर्चाओं के समाधान के बाद वे गुणग्राही सज्जनों से पुनः निवेदन करते हैं - इहा एक गुणग्राही सज्जन तैं मेरी अरदास है। प्रथम आरम्भविषैं भी करी है। अब फेरि करूँ हूँ। यह चरचा समाधान नाम ग्रन्थ मान बढ़ाई के आशय सूं अथवा अपनी प्रसिद्धि बढ़ावने कूं तथा वचन के पक्ष सौं नाहीं लिखा है यथावत् श्रद्धान के निमित्त शास्त्र की साख सो लिखा है। जो चर्चा मन में आवैं ते माननी, नाहीं आवैं तहां मध्यस्थ होई मुझपै क्षमाभाव करने। शास्त्र विरोधी वचन का फल मुझे होइगा, तुम्हें अपनी सज्जनता की मर्यादा न छोड़नी। आगे बढ़ों ने द्वेषी अपराधी जीवों को भी आशीर्वाद दीना है। तथाहि गाथा —

दुज्जग सुहाय होऊ अगे सुदण पथासिअ जेण।

अमिवविसंहवा सरित मही मीमरण उच्चेण ॥³

आगे जैनशास्त्रों का उपकार एवं शास्त्राभ्यास की महिमा बतलाते हुए कहते हैं - “इस पंचमकाल में जैन के शास्त्र बड़े उपकारी हैं। यावत् काल इनका अवगाहन रहै तावत् ज्ञान का प्रकाश होय। इन्द्रियों का अवरोध होय। जैस सूर्य के उदय उद्योत होय अर घू घू नाम जीव अंध हो जाय है। तिसतें शांत भावसों निरन्तर शास्त्राभ्यास करना सर्वथा जोग्य है। एक अठारह अक्षरमायें प्रबोधसार नाम ग्रन्थ है। तहां यू कहा है -

श्रुतबोध प्रदीपेन शासनं वर्तते अधुना।

बिना श्रुत प्रदीपेन सर्वं विश्वं तमोमयं ॥⁴

समस्त शास्त्रों का सार बतलाते हुए भूधरदास लिखते हैं कि - “जितने जैन के शास्त्र हैं, तिन सबका सार इतना ही है - व्यवहार करि पंचपरमेष्ठी की

1. (क) जैनसूत्र की साखसौ, स्वपर हेतु उर आन।

चरचा निर्णय लिखत है, कीजो पुरुष प्रधान ॥ — चर्चा समाधान पृष्ठ 4

(ख) जिनमत महल मनोग अति, कलियुग छदित पंथ।

ताकि मोल पिछानियो, चर्चा निर्णय ग्रन्थ ॥ — चर्चा समाधान पृष्ठ 4

(ग) चर्चा निर्णय को पढ़त, बहुत प्राति मिटि जाई।

हठग्राही हठ पर रहै, सौ इलाज कहुं नाई ॥ — चर्चा समाधान पृष्ठ 4

2. (क) इह चर्चा समाधान ग्रन्थ विषैं — चर्चा समाधान पृष्ठ 4 (ख) चर्चा समाधान पृष्ठ 4

3. चर्चा समाधान, भूधरदास कलकता पृष्ठ 121

4. वही पृष्ठ 122

भक्ति, निश्चय करि अभेद रत्नत्रयमयी निजात्मा की भावना - ए ही शरण है ।

तदुक्तं गाथा -

दसंणणाणचरितं, सरणं सेवेह परमसिद्धाणं ।

अण्णं किंपि न सरणं संसारे संसरंताणं ॥

अन्यच्च -

ऐगो मे सासदो अप्पा, णाणदंसेणलक्खणो ।

सेसा मे ळहिरा भावा, सम्मे संजोगलक्खणा ॥

“इस प्राकृत का अर्थ विचार कै विषय कषाय सौं विमुख होई शुद्ध चैतन्य स्वरूप की निरन्तर भावना करनी । यही मोक्ष का मार्ग है ।”¹

अन्तिम प्रशस्ति के रूप में भूधरदास कहते हैं -

भूधर विनवै विनय करि, सुनियो सज्जन लोग ।

गुण के ग्राहक हूजिये, इह विनती तुम जोग ॥

गुणग्राही शिशु धन लगै, रुधिर छोड़ि पय लेत ।

इह बालक सौं सीखिये, जो शिर आये सेत ॥

धिक दुरजन की बान को, गुण तजि ओगुण लेई ।

गजमस्तक मणि छांडि कै, वायस अभरु भखेइ ॥

दुरजन ओगुण ही गहै, गुण कू देइ बहाय ।

ज्यों मोरी के जाल में, घास फूस रहि जाय ॥²

द्वेष भाव को दुःख का कारण तथा मैत्रीभाव को सुख का कारण प्ररूपित करते हुए कहते हैं -

द्वेषभाव सम जगत में, दुखकारण नहिं कोय ।

मैत्री भाव समान सुख, और न दीसै लोय ॥

मैत्री भाव पीयूष रस, बैरभाव विषपान ।

अमृत होय विष खाइये, किस गुरु का यह ज्ञान ॥³

मान को छोड़ने का उपदेश देते हुए वर्तमान स्थिति के सन्दर्भ अपने ग्रन्थ की उपयोगिता तथा जैनधर्म की महत्ता बतलाते हुए ग्रन्थ का अवसान किया गया है -

1. चर्चा समाधान, भूधरदास, कलकत्ता पृष्ठ 122

2. चर्चा समाधान, भूधरदास, कलकत्ता पृष्ठ 122-123

3. चर्चा समाधान, भूधरदास, कलकत्ता पृष्ठ 123

कहा मानगिरि चढ़ि रहे, उतरो बलि जाऊँ ।
 चर्चा निर्णय ग्रन्थ यह, भेंट तुम्हारे नाऊँ ॥
 राति दिवस चिन्तन कियो, विविध ग्रन्थ को भेद ।
 देखि दीन का श्रम अधिक, दया दक्षिणा देव ॥
 जिनमत महल मनोग अति, कलियुग छादित पंथ ।
 ताकि मोल पिछानियो, चर्चा निर्णय ग्रन्थ ॥
 चर्चा निर्णय को पढ़त, बहुत भ्रांति मिटि जाइ ।
 हठग्राही हठ पर रहैं, सो इलाज कहूं नाइ ॥
 दिवस दिवाकर ऊगवै सबही को भ्रम आय ।
 अधिक अंधेरो घूघूकैं, ताको कौन उपाय ॥
 सर्वकथन को मथन इह, जिनमत मर्म पिछान ।
 जैन धरम जग कल्पतरु, सेवो संत सुजान ॥
 सेवा श्री जिनधर्म की, करै सकल शुभ श्रेय ।
 पय की दाता गाय ज्यूँ, दोहण हार कू देय ॥
 जैन धर्म दुर्लभ जग मांहि, बिन सेवै शिवदायक नाहिं ।
 समझि सोच उर देखो भले, कोठे धरे घाण नहि फलै ॥

अन्त में अवसान मंगल भी दिया गया है -

देखराज पूजित चरण, असरण शरण उदार ।

चहू संघ मंगलकरण, प्रियकारिणी कुमार ॥

इस प्रकार “चर्चा समाधान” ग्रन्थ जैन धर्म एवं दर्शन की कई महत्वपूर्ण चर्चाओं के समाधानों को अपने में समाहित किए हुए है ।

: पद्य साहित्य :

पार्श्वपुराण महाकाव्य :- पार्श्वपुराण जैसा कि इसके नाम से स्पष्ट है, इसमें तेईसवें तीर्थंकर भगवान पार्श्वनाथ के चरित्र का निरूपण किया गया है । पार्श्वनाथ के चरित्र की कथा बड़ी ही रोचक एवं उपदेशात्मक है । वैर की परम्परा प्राणियों में जन्म जन्मान्तरों तक किसप्रकार चलती है, यह इसमें अच्छी तरह से बतलाया गया है ।

पार्श्वनाथ तीर्थंकर होने के नौ भव पूर्व पौदनपुर नगर के राजा अरविन्द के मन्त्री विश्वभूति के पुत्र थे। उस समय उनका नाम मरुभूति तथा इनके बड़े भाई का नाम कमठ था। विश्वभूति के दीक्षा लेने पर जब मरुभूति राजा का मन्त्री बन गया और राजा अरविन्द के द्वारा राजा बज्रकीर्ति पर चढ़ाई किये जाने पर युद्ध क्षेत्र में साथ गया तब कमठ ने नगर में उपद्रव मचाया तथा छोटे भाई मरुभूति की पत्नी के साथ दुराचार किया। जब राजा शत्रु को परास्त कर नगर में आया तब कमठ के कुकृत्य की बातें सुनकर उसे बड़ा दुःख हुआ। उसने कमठ का मुँह काला करके गधे पर बैठाकर सारे नगर में घुमाया और नगर की सीमा के बाहर कर दिया। आत्मप्रताड़ना से पीड़ित कमठ भूताचल पर्वत पर जाकर तपस्वियों के साथ रहने लगा। कमठ के इस समाचार को प्राप्त कर मरुभूति भूताचल पर्वत पर गया और कमठ से क्षमा माँगी परन्तु कमठ ने क्रोध में आकर हाथ में ली हुई पत्थर की शिला मरुभूति के ऊपर पटक कर उसकी हत्या कर दी।

इसके बाद कवि ने मरुभूति और कमठ के आठ जन्मों की कथा अंकित की है; जिसमें प्रत्येक जन्म में कमठ का जीव वर द्वारा मरुभूति के जीव से प्रतिकार लेता रहा। मरुभूति के आठ भव क्रमशः बज्रघोष हाथी, बारहवें स्वर्ग में शशिप्रभदेव, अग्निदेव पुत्र, सोलहवें स्वर्ग में देव, बज्रनाभि चक्रवर्ती, मध्यम त्रैवेयक में अहमिन्द्र, आनन्द राजा, आनत स्वर्ग में इन्द्र बतलाये हैं। कमठ के जन्म क्रमशः काला सर्प, पाँचवें नरक का नारकी, अजगर, छठवें नरक का नारकी, कुरंग भील, पाँचवें नरक का नारकी, सिंह, पाँचवें नरक का नारकी निरूपित किये हैं। नौवें जन्म में मरुभूति का जीव काशी के राजा विश्वसेन के यहाँ पार्श्वनाथ के रूप में जन्म लेता है तथा कमठ का जीव नरक से निकलकर कुछ अन्य जन्म धारण कर बाद में पार्श्वनाथ का नाना बनता है। पार्श्वनाथ आजन्म ब्रह्मचारी रहकर आत्मसाधना करते रहे। पार्श्वनाथ का नाना कुतप करके "संवर" नाम का ज्योतिषी देव बन जाता है और पार्श्वनाथ की साधना में विघ्न करता है। पार्श्वनाथ अपनी साधना से विचलित नहीं होते हैं और पूर्ण वीतरागी एवं पूर्ण ज्ञानी बन जाते हैं। तीर्थंकर बनकर वे प्राणियों को धर्मोपदेश देते हैं और अन्त में सौ वर्ष की आयु पूर्णकर सम्प्रेदशिखर पर्वत से निर्वाण प्राप्त करते हैं।

कवि ने पार्श्वनाथ के चरित्र को चित्रित करने के साथ-साथ विविध प्रसंगों के माध्यम से जैनदर्शन के सिद्धान्तों को यत्र-तत्र इसप्रकार गूँथ दिया है कि वे पृथक् प्रतीत न होकर कथानक का अंश ही प्रतीत होते हैं। गर्भ, जन्म, दीक्षा, ज्ञान एवं निर्वाण कल्याणकों के प्रसंगों द्वारा कवि ने सच्चे देव, शास्त्र, गुरु, धर्म का स्वरूप, जिनकथा श्रवण की महत्ता, सम्यग्दर्शन का महत्त्व, बारह भावना, बारह तप, दस धर्म, बाबीस परीषह, पाँच समिति, सोलहकारण भावनाएँ, चक्रवर्ती की सम्पत्ति, श्रावक के बारह व्रत एवं ग्यारह प्रतिमाएँ, सागर का प्रमाण, आठ प्रकार के राजाओं का वर्णन, जिनबिम्ब पूजा की महत्ता, तीन लोक की रचना एवं उसका प्रमाण आदि, स्वर्ग के सुख तथा नरक के दुःख का विशेष वर्णन, माता के सोलह स्वप्न एवं उनका फल, छप्पन कुमारियों द्वारा माता से विविध प्रश्नोत्तर, जन्म के दस अतिशय, जन्माभिषेक का विशेष वर्णन, दीक्षा के प्रसंग में सम्यग्दर्शन पूर्वक चरित्र ग्रहण की महत्ता, अट्ठाईस मूलगुण, हुंटापसर्पिणी काल की कुछ विपरीत बातों का वर्णन, केवलज्ञान के दस अतिशय, समवशरण की रचना का वर्णन, चौदह देवकृत अतिशय, हेय, ज्ञेय, उपादेय-पूर्वक छह द्रव्य, सात तत्त्व, नौ पदार्थ, पाँच अस्तिकाय आदि का विशेष वर्णन किया है।

इसके अतिरिक्त अच्छे बुरे परिणामों का फल बतलाने हेतु नरक, मनुष्य, तिर्यक्, देव, बहरे, गूंगे, लंगड़े, अंधे, धनी, दरिद्री, पुरुष, स्त्री, नपुंसक, दीर्घ आयु, अल्प आयु, पंडित, मूर्ख, रोगी, निरोगी, पुत्र-प्राप्ति, पुत्र का अभाव या वियोग, ऊँच, नीच, इन्द्र, अहमिन्द्र, चक्रवर्ती, तीर्थंकर आदि किसप्रकार के भावों से होते हैं; यह बतलाकर बुरे भावों को त्यागने एवं अच्छे भावों को ग्रहण करने का उपदेश दिया है।

इसप्रकार कवि ने पार्श्वनाथ के चरित्र वर्णन के माध्यम से जैनदर्शन के सिद्धान्तों का परिचय भी करा दिया है, जो उनका एक उद्देश्य था।

अधिक प्रसिद्धि के कारण "पार्श्वपुराण" की प्रकाशित और हस्तलिखित कई प्रतियाँ मिलती हैं; जिनमें जिनवाणी प्रचारक कार्यालय कलकत्ता तथा वीरप्रेस जयपुर आदि द्वारा प्रकाशित प्रतियाँ सहज उपलब्ध हैं।

कवि ने पार्श्वपुराण की रचना विक्रम संवत् 1789 में की। ग्रन्थ समाप्ति का उल्लेख कवि ने निम्नलिखित शब्दों में किया है—

संवत् सतरह सौ समय, और नवासी लीय ।

सुदि आषाढ़ तिथि पंचमी, ग्रन्थ समाप्त कीन ॥¹

इस काव्य के सृजन में कवि को पाँच वर्ष लगे, जैसा कि कवि के निम्नांकित कथन से प्रकट होता है —

पाँच बरस कछु सरस से, लागे करत न बैर ।

बुधि थोरी थिरता अलप, याते लगी अबैर ॥²

जैन शतक (मुक्तक काव्य):—यह 100 से अधिक पद्यों का स्तुति, नीति एवं वैराग्य को प्रदर्शित करने वाला मुक्तक काव्य है। संख्यापरक कृतियों में उसमें आने वाली निश्चित संख्या से कुछ अधिक संख्या में पद्यों को रचने का प्रचलन रहा है। जैसे - बिहारी सतसई आदि। कवि भूधरदास ने भी जैन शतक में 100 से अधिक पद्य रचे हैं। जैन शतक की कई मुद्रित प्रतियाँ देखने में आई हैं, उसमें जैनग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय बम्बई, जिनवाणी प्रचारक कार्यालय कलकत्ता, वीर सेवा मन्दिर दिल्ली, दिगम्बर जैन पुस्तकालय सूरत, दिगम्बर जैन मुमुक्षु मण्डल अलवर, अखिल भारतीय जैन युवा फ़ैडरेशन भिण्ड द्वारा प्रकाशित जैन शतक में क्रमशः 107, 106, 100, 106, 100, 107 पद्य हैं। कुछ हस्तलिखित प्रतियों में भी पद्यसंख्या 107 ही है। पं. नेमिचन्द्र शास्त्री³ स्व. बाबू शिखरचन्द्र जैन⁴ एवं डॉ. कामताप्रसाद जैन⁵ ने भी इसकी पद संख्या 107 ही स्वीकार की है। अतः कविकृत “जैनशतक” की पदसंख्या 107 ही मानना चाहिए।

107 पदों वाली यह कृति स्तुति, नीति एवं वैराग्यपरक है। प्रत्येक पद पृथक्-पृथक् विषय को लिए हुए हैं। इसतरह प्रत्येक छन्द स्वयं में स्वतंत्र एवं पूर्ण है तथा उसे किसी दूसरे पूर्वापर छन्द की अपेक्षा नहीं है।

1. पार्श्वपुराण अन्तिम प्रशस्ति

2. पार्श्वपुराण अन्तिम प्रशस्ति

3. तीर्थंकर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा भाग 4 - डॉ. नेमिचन्द्र शास्त्री पृष्ठ 275

4. कविवर भूधरदास और जैन शतक - बाबू शिखरचन्द्र जैन पृष्ठ 8

प्रकाशक - श्री वीर सार्वजनिक वाचनालय, इन्दौर

5. हिन्दी साहित्य का इतिहास - बाबू कामताप्रसाद जैन पृष्ठ 174

शतक की परम्परा के अनुसार शतक काव्य में एक ही विषय पर एक ही जाति के 100 या उससे अधिक छन्द होना चाहिए।¹ परन्तु भूधरदास के जैन शतक में ऐसा नहीं है अतः उसे शतक काव्य न मानकर प्रघट्टक काव्य मानना चाहिए। फिर भी कवि के विषय एवं वर्णन के अनुसार "जैन शतक" शतक परम्परा की महत्वपूर्ण कृति है; क्योंकि उसमें जैन धर्म और उससे संबंधित स्तुति, नीति, उपदेश एवं वैराग्य आदि का सुन्दर वर्णन किया गया है। इसमें दिए गए छन्द के अनुसार विषय का परिचय निम्नानुसार है—

प्रथम छन्द में आदिनाथ स्तुति फिर क्रमशः चन्द्रप्रभु, शांतिनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ, महावीर, सिद्ध, साधु और जिनवाणी की स्तुति की गई है। इसप्रकार 15 छन्द मंगलाचरण के रूप में लिखे गये प्रतीत होते हैं।

16 वें छन्द में जिनवाणी और मिथ्यावाणी में अन्तर बतलाया गया है। 17 वें छन्द से 42 वें छन्द तक क्रमशः वैराग्यकामना, राग और वैराग्य दशा में अन्तर, भोग की चाह का निषेध, देह का स्वरूप, संसार का स्वरूप, समय की बहुमूल्यता, विषय-सुख की तुच्छता, हितोपदेश की शिक्षा, बुढ़ापा एवं रोग आने के पहले आत्महित करने की प्रेरणा, सौ वर्ष की आयु का लेखा-जोखा, बाल युवा-वृद्धावस्था व्यतीत करने का स्वरूप, मनुष्यदेह की दुर्लभता, युवावस्था में धर्म करने की सलाह, बुढ़ापे का वर्णन, संसारी जीव का धनप्राप्ति विषयक चिन्तन, अभिमान का निषेध, संयोग के वियोग होने पर भी विरक्त न होना, जिनवचन की विशेषता तथा सांसारिक कुशलता का वर्णन किया है। 43 वें छन्द में यौवन समय को विषय सेवन में न खोकर ज्ञान प्राप्त करने में लगाने की प्रेरणा दी है। 44 से 46 वें छन्द तक सच्चे देव, गुरु, धर्म और शास्त्र के लक्षण बताकर उन्हीं में प्रीति करने की प्रेरणा दी है। 47 वें छन्द में पशु बलि का निषेध, 48वें एवं 49 वें छन्द में सात वार (सप्ताह के दिन) के माध्यम से षट्कर्म (श्रावक के षटावश्यक) करने का एवं सप्त व्यसन को छोड़ने का उपदेश दिया है। 50 से 63 वें छन्द तक सप्त व्यसन का विशेष वर्णन करके उनका फल बताते हुए उन्हें त्यागने की सलाह दी है। 64 से 66 वें पद्य में शृंगार

1. हिन्दी साहित्य कोश भाग 1, पृष्ठ 651, द्वितीय संस्करण, काशी

2. एक कविकृत श्लोक समूह या मुक्तक समुच्चय (कोश) का नाम प्रघट्टक है हिन्दी साहित्य कोश, भाग 1, पृष्ठ 275

रस की रचना करने वाले कवियों की निन्दा की है। 67 वें पद्य में मनरूपी हाथी को वश में करने तथा 68 वें पद्य में श्रीगुरु के उपकार का वर्णन किया गया है।

शेष पद्यों में क्रमशः कषाय जीतने का उपाय, मिष्टवचन, विपत्ति में धैर्य-धारणोपदेश, होनहार दुर्निवार, काल की सामर्थ्य, धन के सम्बन्ध में निश्चित रहने का उपदेश, आशारूपी नदी, महामूढ़ता, दुष्ट के प्रति कथन, चन्द्रप्रभु, शान्तिनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ तथा राजा यशोधर के पूर्व भव, सुबुद्धि सखी के प्रति वचन, गुजराती भाषा में आत्महित की शिक्षा, द्रव्यलिंगी मुनि को मोक्ष प्राप्ति का निषेध, आत्मानुभव की प्रशंसा, भगवान से प्रार्थना, जिनधर्म की प्रशंसा, कवि का परिचय तथा ग्रंथ समाप्ति के समय का उल्लेख आदि अनेक विषयों का निरूपण किया है।

पं. श्री नाथूराम प्रेमी के अनुसार यह एक सुभाषित संग्रह है।¹ श्री कामताप्रसाद जैन ने इसे नीति विषयक अनूठी कृति बतलाया है।² इसकी रचना कवि ने गुलाबचन्द तथा हरिसिंह शाह के वंशज धर्मानुरागी पुरुषों के कहने से की है। कवि ने उन लोगों की प्रेरणा से अपने आलस्य का अन्त मानते हुए उनका आधार माना है।³

जैन शतक का रचनाकाल वि.सं. 1781 है। कवि ने स्वयं जैन शतक के समाप्त होने के समय का उल्लेख निम्नलिखित पंक्तियों में किया है -

सतरह सै इक्यासिया, पोह पाखतम लीन।

तिथि तेरस रविवार को, "शतक" समाप्त कीन ॥⁴

पदसंग्रह या भूधरविलास (मुक्तक काव्य) :— प्रायः भूधरदास के पद यत्र तत्र बिखरे हुये हैं। विभिन्न धार्मिक व्यक्तियों एवं संस्थाओं द्वारा विभिन्न पद विभिन्न नामों से संग्रहीत कर प्रकाशित कर दिये गये हैं। इसी कड़ी में एक "पदसंग्रह" बहुत ही पहले प्रकाशित हो चुका है। इसमें 80 पद तथा विनितियाँ आदि हैं।⁵ इनका विषय जिनदेव, जिनवाणी, जिनगुरु, जिनधर्म

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास, जैन हितैषी भाग 13 अंक 1 - पं. नाथूराम प्रेमी

2. हिन्दी साहित्य का संक्षिप्त इतिहास — बाबू कामताप्रसाद जैन — पृष्ठ 104

3. जैन शतक — भूधरदास, पद्य 106

4. जैन शतक - भूधरदास, पद्य 107

5. जैन पद संग्रह, तृतीय भाग— भूधरदास, प्रकाशक जैन ग्रन्थ रत्नाकर, बम्बई वि.सं. 1983

आदि की भक्ति से सम्बन्धित है। अनेक पद आध्यात्मिक भावों के भी द्योतक हैं। एक पद संग्रह जयपुर के पं. लूणकरणजी के मन्दिर में गुटका नं. 129 तथा वेष्टन नं. 333 में निबद्ध है।

जैन ग्रन्थ रत्नाकर बम्बई द्वारा प्रकाशित “जैन पद संग्रह” में जो 80 पद हैं, उनमें से 53 पद ज्यों के त्यों “भूधरविलास” नाम से जिनवाणी प्रचारक कार्यालय कलकत्ता द्वारा प्रकाशित किये गये हैं। अतः “पदसंग्रह” और “भूधरविलास” ये दोनों पृथक्-पृथक् रचनाएँ नहीं हैं अपितु पदों का संग्रह होने से एक ही रचना है। प्रकाशकों ने कवि के विभिन्न पद ही उन दो नामों से प्रकाशित कर दिये हैं, जिन्हें विद्वानों ने दो पृथक्-पृथक् रचनाएँ मान ली हैं। वस्तुतः ये दोनों रचनाएँ भूधरदास के स्वतन्त्र पदों का संग्रह ही हैं। फर्क यह है कि “भूधरविलास” में 53 पद संग्रहीत हैं, जबकि “जैन पद संग्रह” में उनमें ही 27 पद और जोड़कर 80 पद संग्रहीत हैं। इस तरह “भूधरविलास” और “पदसंग्रह” इन दोनों को एक ही रचना मानकर कवि के पदों का संग्रह समझना चाहिए।

विभिन्न विद्वानों ने भूधरदास के पदों की संख्या पृथक्-पृथक् मानी है। पं. ज्ञानचन्द विदिशा,¹ डॉ. ब्रजेन्द्रपालसिंह चौहान,² तथा डॉ. कस्तूरचन्द कासलीवाल³ ने कवि के क्रमशः 68, 77 और 68 पद माने हैं। जबकि कवि के 80 पदों का संग्रह विसं. 1983 में ही जैन ग्रन्थ रत्नाकर बम्बई द्वारा “जैन पद संग्रह” तृतीय भाग के नाम से प्रकाशित हो चुका है। इस पद संग्रह में प्रकाशित 80 पदों के अतिरिक्त अन्य बहुत से पद भी यत्र-तत्र संग्रहों में उपलब्ध हुए हैं, जिनका विवरण निम्नानुसार है—

1. गाफिल हुआ कहीं तू डोलै दिन जाते तेरे भरती में।⁴

2. लीजै खबरि हमारी दयानिधि।⁵

1. अध्यात्म पजन गंगा - संकलन कर्ता पं. ज्ञानचन्द जैन पृष्ठ 72

2. कविवर महाकवि भूधरदास : व्यक्तित्व और कर्तृत्व - श्री ब्रजेन्द्रपालसिंह चौहान

3. हिन्दी पद संग्रह - सं. डॉ. कस्तूरचन्द कासलीवाल, पृष्ठ 143

4. वही पृष्ठ 151

5. जैन भजन संग्रह भाग 1, ग्रन्थ सं 1864, ऋषभदेव सरस्वती सदन, उदयपुर

3. अब पूरी नीदड़ी सुन जोया रे, चिरकाल तू सोया।¹
4. तुम जिनवर का गुण गावो, यह औसर फेर न पावो।²
5. सामायिक पूजा नहिं कीनी, रैन रही सब छाये रे।³
6. डरते रहै यह जिंदगी, बरबाद न हो जाय।⁴
7. अहो दोऊ रंग भरे खेलत होरी, अलख अमूरति की जोरी।⁵
8. पानी में मीन प्यासी रे, मोहे रह-रह आवै हासी रे।⁶
9. होली खेलूंगी घर आये चिदानन्द।⁷

उपर्युक्त पहली पंक्ति वाले 9 पद विभिन्न संग्रहों में प्रकाशित हो चुके हैं। इस तरह पद संग्रह में प्रकाशित 80 पद और विभिन्न संग्रहों में प्रकाशित उपर्युक्त 9 पद मिलाकर कुल 89 प्रकाशित पद प्राप्त हुए हैं।

जो पद प्रकाशित न होकर विभिन्न शास्त्र भण्डारों में हस्तलिखित गुटकों में अप्रकाशित रूप में उपलब्ध हुए हैं, उनका विवरण निम्नलिखित है—

1. मौहयौ मोह यौरी पास जिणंद मुख भटकै।⁸
2. अब पूरी करि नीदड़ी सुनि जिय डेची सोया।⁹
3. देखने को आई लाल मैं तो देखने को आई।¹⁰
4. सखी री चलि जिनवर को मुख देखिये।¹¹
5. संभल-संभल रे जीव सतगुरु के सबद सुहावने जी।¹²
6. ज्ञान घनाघन आयौरी।¹³
7. कर्म बड़ौजी बलवान जगत में पीड़ित है।¹⁴

1 से 4 अध्यात्म पद संग्रह - सं. ब्र. परसराम इन्दौर, पृष्ठ 72 से 82

5. से 7. अध्यात्म भजन गंगा - संकलनकर्ता पं. ज्ञानचन्द जैन, पृष्ठ 72

8. राजस्थानी प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, शाखा बीकानेर के खजांची संग्रह के अन्तर्गत गुटका सं. 6794 में संग्रहीत

9. से 12. राजस्थानी प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, शाखा बीकानेर के गुटका सं. 6766 में संग्रहीत

13. आमेर शास्त्र भण्डार जयपुर, गुटका सं. 6766 में संग्रहीत

14. ऋषभदेव, सरस्वति सदन, उदयपुर के गुटका सं. 720 में संग्रहीत

उपर्युक्त पहली पंक्ति वाले अप्रकाशित 7 पद विभिन्न गुटकों में उपलब्ध हुये हैं। इस तरह 89 प्रकाशित पद और 7 अप्रकाशित पद कुल मिलाकर 96 पद कवि द्वारा प्रणीत हुए हैं। इन 96 पदों के अतिरिक्त अन्य पदों को भी देश के विभिन्न शास्त्र भण्डारों को देखकर खोजने की सम्भावना से इन्कार नहीं किया जा सकता है; क्योंकि खोज की सम्भावनाएँ अनन्त हैं और खोजने का प्रयत्न सीमित। परन्तु फिर भी अभी तक की गई खोज, प्राप्ति, आलोड़न और निर्धारण के आधार पर भूधरदास के पद 96 ही समझना चाहिए।

इन पदों को विषय-वस्तु की दृष्टि से अनेक रूपों में विभाजित किया जा सकता है जैसे - स्तुतिपरक या भक्तिपरक, नीतिपरक, अध्यात्मपरक, उपदेशपरक इत्यादि। परन्तु इस विभाजन में कोई स्पष्ट और निश्चित रेखा खींचना कठिन है, फिर भी “भूधरविलास” के पदों का विषयपरक विभाजन निम्नलिखित है—

भक्तिपरक :- देव, शास्त्र, गुरु एवं धर्म के प्रति कवि ने जो भक्ति-भाव प्रदर्शित किया है वह इन पदों में अभिव्यंजित हुआ है। कवि ने जिनेन्द्र प्रभु की भक्ति तो सामान्य रूप से की ही है, परन्तु तीर्थंकरों की भी विशेष भक्ति की है। भक्तिपरक पदों का विवरण इस प्रकार है—

1. सामान्य जिनेन्द्र प्रभु की भक्ति में लिखित कुल पद 15 - पद क्रमांक 15, 16, 17, 22, 25, 33, 35, 39, 40, 43, 48, 51, 52 53 एवं 59
2. ऋषभदेव तीर्थंकर की भक्ति में लिखित कुल पद 2 - पद क्रमांक 23, 24
3. अजितनाथ तीर्थंकर की भक्ति में लिखित कुल पद 1 - पद क्रमांक 36
4. शांतिनाथ तीर्थंकर की भक्ति में लिखित कुल पद 1 - पद क्रमांक 34
5. नेमिनाथ तीर्थंकर की भक्ति में लिखित कुल पद 4 - पद क्रमांक 5, 19, 26, 42
6. सीमन्धर तीर्थंकर की भक्ति में लिखित कुल पद 2 - पद क्रमांक 2, 3
7. कुलकर नाभिराय की भक्ति में लिखित कुल पद 1 - पद क्रमांक 1
8. अर्हन्त, सिद्ध, साधु, धर्म की भक्ति में लिखित कुल पद 1 - पद क्रमांक 38
9. गुरु की भक्ति में लिखित कुल पद 3 - पद क्रमांक 6, 7, 12

विप्रलम्भशृंगारपरक :- कवि ने नेमिनाथ और राजुल के प्रणय के पूरा होने पर भी राजुल द्वारा नेमिनाथ के प्रति जो अनुराग प्रदर्शित किया तथा उनके वियोग में जो पीड़ा भोगी - उसकी अभिव्यक्ति इन पदों द्वारा हुई है। ये पद संख्या में 4 हैं, इनका पद क्रमांक 13, 14, 20 और 45 है। नेमि-राजुल के प्रसंग को लेकर रचे गये इन पदों में मर्यादा का उल्लंघन तथा वासना की गंध रंच मात्र दृष्टिगत नहीं होती है।

अध्यात्मपरक एवं नीतिपरक :- शिव पदों में एक ओर आत्महित के लिए प्रेरित किया गया है तथा दूसरी ओर पाप, भोग, माया, संसार, आदि से हटने की प्रेरणा दी गई है; वे पद अध्यात्म एवं नीतिपरक हैं। इन पदों की भाषा एवं भाव सरल, सरस एवं बोधगम्य है। इनका विवरण निम्नानुसार है—

विषय	कुल पद	पद क्रमांक
पाप एवं भोग निषेध	4	4, 21, 32, 46
माया	2	8, 44
सांसारिक विषमता	1	9
समय का मूल्य	3	10, 27, 30
देह की अस्थिरता	1	11
इन्द्रियासक्ति में विरक्ति	1	41
अज्ञान	1	47
सम्यग्ज्ञान	1	18
अहिंसा	1	28
धर्माचरण	1	29
सत्य एवं धर्म	1	37
पाखंड से सतर्कता	1	50
पवित्रता	1	31

इस तरह भूधरदास की पद्यात्मक तीन रचनाएँ पार्श्वपुराण, जैन शतक, एवं पदसंग्रह अति प्रसिद्ध हैं। इनके अलावा अनेक फुटकर रचनाएँ निम्नलिखित हैं - जो मुक्तक काव्य के अन्तर्गत आती हैं —

विभिन्न फुटकर रचनाएँ (मुक्तक काव्य)

1. विनतियाँ - भूधरदास ने अनेक विनतियाँ लिखी हैं इनमें से कुछ विनतियाँ पद संग्रह में संग्रहीत हैं और कुछ पृथक्-पृथक् प्रकाशित हुई हैं। विनती के अनुनय, विनय, नम्रता आदि अनेक अर्थ हैं।¹ इसमें श्रद्धेय के प्रति विशिष्ट सम्मान प्रदर्शित करते हुए अपने अपराधों की क्षमा माँगी जाती है और आराध्य के प्रति नम्रता भी प्रगट की जाती है। यह मूलतः कवि की भावाभिव्यक्ति होती है। कवि भूधरदास द्वारा रचित प्रकाशित और अप्रकाशित विनतियाँ 12 हैं, जिनका परिचय इसप्रकार है—

1. अहो जगत गुरु देव इत्यादि।²
2. त्रिभुवन गुरु स्वामीजी इत्यादि।³
3. आवोजी भावो सब मिली जिन चैत्यालय चास्लाजी इत्यादि।⁴
4. अहो वनवासी पीया इत्यादि।⁵
5. ते गुरु मेरे उर वसो इत्यादि।⁶
6. वंदों दिगम्बर गुरु चरण इत्यादि।⁷
7. वा संसार सार बिच इत्यादि।⁸
8. अरे जीव आत्म ज्ञान विचार इत्यादि।⁹
9. विनती नेमीश्वर की इत्यादि।¹⁰
10. पुलकत नयन चकोर पक्षी, हंसत उर नन्दीवरो इत्यादि।¹¹
11. पारस प्रभु को नाऊं, सार सुधारस जगत में इत्यादि।¹²
12. जे जगपूज धरमगुरु नामी, पतित उधारन अंतरजामी।¹³

-
1. हिन्दी विश्वकोश भाग 21 सं. नगेन्द्रनाथ वसु, पृष्ठ 416 कलकत्ता 1930
 2. बृहद् जिनवाणी संग्रह- सं पं. पन्नालाल बाकलीवाल, 16 वाँ संस्करण किशनगढ़ पृष्ठ 530
 3. बृहद् जिनवाणी संग्रह- सं पं. पन्नालाल बाकलीवाल, 16 वाँ संस्करण किशनगढ़ पृष्ठ 530
 4. आमेर शास्त्र भण्डार जयपुर गुटका नं. 122 पृष्ठ 7
 5. वही गुटका नं. 107 पत्र 13-14
 6. शास्त्र भण्डार, नया मन्दिर, दिल्ली
 7. वही
 8. वही
 9. ऋषभदेव सरस्वती सदन, उदयपुर
 10. राजस्थानी प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, शाखा बीकानेर के गुटका सं. 6766
 11. से 13. जैन पद संग्रह, भूधरदास, तृतीय भाग, प्रकाशक जैन ग्रन्थ रत्नाकर, बम्बई

उपर्युक्त शब्दों से प्रारम्भ होने वाली विनितियों में भगवान के प्रति भक्त की सातिशय भक्तिभावना का उल्लेख हुआ है। ये विनितियाँ आज भी भक्त कण्ठों से गुंजायमान होती हैं।

2. स्तोत्र :- किसी देवता का छन्दोबद्ध स्वरूपकथन या गुणकीर्तन अथवा स्तवन स्तोत्र कहलाता है।¹ भूधरदास ने पार्श्वनाथ स्तोत्र, एकीभाव स्तोत्र और दर्शन स्तोत्र ये तीन स्तोत्र लिखे हैं।

(क) पार्श्वनाथ स्तोत्र :- पार्श्वनाथ स्तोत्र कवि की महत्वपूर्ण रचना है। इसमें 23 वें तीर्थंकर पार्श्वनाथ की स्तुति की गई है। यह स्तोत्र 3 दोहों और 19 चौपाइयों में पूर्ण हुआ है। यह सरल हिन्दी में रचा गया है। इसमें भाषा की संस्कृतनिष्ठता नहीं है। डॉ. प्रेमसागर जैन के अनुसार² इसमें स्तोत्र एवं स्तुति का मिला-जुला रूप मिलता है। कवि ने इसकी रचना करके स्तोत्र की नव्य और विकसित परम्परा में महत्वपूर्ण योग दिया है।

(ख) एकीभाव स्तोत्र :- यह वादिराज मुनिराज द्वारा रचित एकीभाव स्तोत्र का देशभाषा में अनुवाद है। यह अनुवाद वादिराज की संस्कृत भाषा और भाव के अनुसार ही हुआ है। इस रचना में 2 दोहे और 26 रोला छन्द हैं। अन्तिम रोला छन्द जिसमें भूधरदास द्वारा मुनि वादिराज की स्तुति की गई है, वह वादिराजप्रणीत मूल स्तोत्र में नहीं है। यह स्तोत्र प्रकाशित और हस्तलिखित दोनों रूपों में उपलब्ध है। इसमें तीर्थंकर की वन्दना की गई है। कवि भगवान को ज्योति स्वरूप मानकर उसे अपने अज्ञानान्धकार का दूर करने वाला मानता है -

तुम जिन ज्योति स्वरूप दुरित अंधियार निवारी।

सो गणेश गुरु कहैं तत्व विद्या धन धारी ॥

मेरे चित घर माहि बसो तेजो भय यावत।

पाप तिमिर अवकाश तहां सो क्योंकर पावत ॥³

1. हिन्दी साहित्य कोश भाग 1, धीरेन्द्र वर्मा, पृष्ठ 945, द्वितीय संस्करण, काशी

2. हिन्दी जैन भक्ति काव्य एवं कवि, डॉ. प्रेमसागर जैन, पृष्ठ 345

3. एकीभाव स्तोत्र भाषा, भूधरदास, रोला सं. 1

(ग) दर्शन स्तोत्र :- जिनेन्द्र भगवान के दर्शन की महत्ता को सूचित करने वाला यह स्तोत्र, स्तोत्र परम्परा की महत्वपूर्ण कृति है। इसे कवि ने पद्मनंदि के स्तोत्र के अनुवाद की तरह प्रस्तुत किया है। इसमें दोहा और चौपाई मिलाकर कुल 34 छन्द हैं। भक्त भगवान के दर्शन करके अपने को धन्य और कृतकृत्य अनुभव करता है और अपने प्रभु को सर्वश्रेष्ठ मानता है - यह भाव इसमें समाया हुआ है।

3. आरतियाँ :- कवि भूधरदास द्वारा रचित “पंचमेरु की आरती” “संध्या समै की आरती” एवं “नाभिनन्द की आरती” - ये तीन आरतियाँ विभिन्न शास्त्र भण्डारों में उपलब्ध हुई हैं।¹ इनमें “नाभिनन्द की आरती” पदसंग्रह के पद 68 के रूप में भी प्रकाशित हो गई है।² ये आरतियाँ एक तरह से भक्त्यात्मक गीत ही हैं। गीत पद्धति में रची हुई आरती का व्यवहार कीर्तन की तरह होता है। साकार उपासना के कारण आरती काव्य अति लोकप्रिय हुआ है।³

4. अष्टक काव्य :- आठ श्लोकों वाला स्तोत्र या काव्य अष्टक कहलाता है।⁴ यह संख्याश्रित मुक्तक काव्य की श्रेणी में आता है। साकार उपासना में अष्टकों का अति लोकप्रिय स्थान रहा है। भूधरदास के कुल 5 अष्टक प्राप्त हुए हैं; उनमें 2 अष्टक नेमिनाथ के, 1 अष्टक महावीर का, 1 अष्टक पार्श्वनाथ का तथा 1 अष्टक सामान्यतः जिनेन्द्रदेव का है। इसमें तत्सम्बन्धी भगवानों की स्तुति की गई है। ये सभी अष्टक उनकी वन्दना या उपासना सम्बन्धी हैं। इनमें पूर्ववर्ती कवियों का प्रभाव भी दृष्टिगत होता है। इनमें से कुछ अष्टक पदसंग्रह में भी प्रकाशित हैं तथा कुछ पृथक् रूप से भी उपलब्ध हैं।

5. निशिभोजनभुंजन कथा :- रात्रि भोजन के दोषों को निरूपित करने वाली यह कवि की अनुपम रचना है। इसमें 10 चौपाइयाँ, 6 दोहों, 2 सोरठों तथा 1 छप्पय - कुल 19 छन्दों द्वारा कवि ने रात्रि भोजन के कारण प्राप्त दुःखों का वर्णन किया है। इसकी प्रकाशित⁵ और अप्रकाशित⁶ दोनों ही प्रकार की

1. राजस्थानी प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, शाखा बीकानेर के गुटका सं. 6766

2. जैन पद संग्रह, तृतीय भाग - भूधरदास, पद 68 जैन ग्रन्थ रत्नाकर, बम्बई

3. हिन्दी विश्वकोष भाग 2 नगेन्द्रनाथ बसु, पृष्ठ 644 सन् 1917 कलकत्ता

4. हिन्दी विश्वकोष भाग 2 - नगेन्द्रनाथ बसु, पृष्ठ 382 सन् 1917 कलकत्ता

5. बृहद् जिनवाणी संग्रह सं पं. पन्नालाल बाकलीवाल, 16वाँ सम्राट संस्करण पृष्ठ 639-641

6. राजस्थानी प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, शाखा बीकानेर के गुटका सं. 6766

प्रतियाँ उपलब्ध हैं। अप्रकाशित कृति में तीन भवों की कथा है, जबकि प्रकाशित कृति में केवल एक भव की कथा है। प्रकाशित कृति में कथावृत्त संक्षिप्त है, जबकि अप्रकाशित कृति में पर्याप्त विस्तृत है। 19 छन्दों में प्राप्त सम्पूर्ण रचना में मूल कथा 2 से 11 छन्द तक है। 12 वें एवं 13 वें छन्द में रुद्रदत्त द्विज को निशि भोजन से होने वाले पाप के कारण बार-बार निम्नकोटी की योनियों में जन्म लेना पड़ा - यह प्रतिपादित किया गया है। 14 वें छन्द में बताया गया है कि निशि भोजन के त्याग से परभव में सुख और इस भव में निरोगता प्राप्त होती है। 15 वें छन्द में अनिष्ट जीवों के भक्षण से होने वाले रोगों का वर्णन है। छन्द 16 से 19 तक बताया गया है कि इस भव का पीड़ा उत्पादक पाप परभव में भी दुःखकारक होता है। मूर्ख सुवचनों से प्रसन्न नहीं होता है। वीतराग गुरु के वचन ही सुवचन होते हैं। सुवचनों का भली-भाँति पालन करना चाहिए। इसकी मूल कथा इस प्रकार है—

जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में कुरांजल नामक देश था। जिसके हस्तिनापुर नामक नगर में यशोभद्र नामक राजा राज्य करता था। इस राजा के रुद्रदत्त नाम का पुरोहित था। एक बार श्राद्ध पक्ष को प्रतिपदा को पुरोहित द्वारा अपने पितरों के श्राद्ध के उपलक्ष्य में ब्राह्मणों को भोजन कराया गया; परन्तु स्वयं के भोजन करते समय वह किसी कार्यवश राजा द्वारा बुलवा लिया गया। दैववश वह अर्द्धरात्रि तक भोजन न कर सका। पुरोहित की पत्नी जब शाम को भोजन बना रही थी तब बैंगन की शाक में एक मेंढक उछल कर गिर गया था और उसके वहाँ न होने पर उसे इस बात का कुछ पता नहीं चल पाया था। अर्द्धरात्रि को अन्धेरे में जब पुरोहित रुद्रदत्त ने भोजन किया तो वह मेंढक उसके दाँतों के नीचे आ गया। ठीक से न चबा पाने के कारण उसने उसे निकालकर बाहर रख दिया। प्रातः जब उसने उसे (मेंढक) को देखकर यह जान लिया कि वह मेंढक था, जो रात को मेरे मुँह में चला गया था, तब भी उसने रात्रि भोजन के प्रति कोई घृणा नहीं की और वह यथावत् रात्रि भोजन करता रहा, जिसके फलस्वरूप वह मरकर पापवश 10 बार नरक योनि में नारकी हुआ और अनन्त दुःखों का पात्र बना।

इसप्रकार यह कृति रात्रिभोजनत्याग की प्रेरणा के साथ-साथ भोजन की शुद्धता पर भी बल देती है तथा श्रावक के सदाचार को भी अभिव्यक्त करती है।

6. गीत :- भूधरदास द्वारा रचित रिषभदेव के दस भौ ठाने का गीत, दया दिठावन गीत एवं परमार्थ सिष्या गीत - ये तीन गीत प्रकीर्ण रूप में उपलब्ध हुए हैं।¹ गीत से तात्पर्य गान, गाना, ध्रुवपद, तराना आदि है। यह नियमित स्वर निष्पन्न शब्द विशेष है। संगीतशास्त्र के अनुसार धातु तथा मात्रा पद युक्त को गीत कहते हैं। भूधरदास रचित “रिषभदेव के दस भौ ठाने का गीत” में ऋषभदेव के 9 पूर्वभवों के अन्तर्गत विभिन्न जन्मों से निर्वाण प्राप्ति तक का वर्णन है। “दया दिठावन गीत” में दया की महत्ता एवं अनिवार्यता बतलाते हुए अहिंसा सिद्धान्त का पोषण किया गया है। “परमार्थ सिष्या गीत” में जीव की संसार अवस्था का वर्णन एवं उसके कर्तव्य-अकर्तव्य का बोध दिया गया है। इन गीतों में कवि द्वारा क्रमशः भक्ति, अहिंसा एवं वैराग्य भावों का सम्यक् परिचय प्राप्त होता है।

7. तीन चौबीसी की जयमाला :- भूधरदास द्वारा रचित भूत, वर्तमान एवं भविष्य - इन तीनों कालों के 24-24 तीर्थकरों का विवरण एवं उनका जयगान “तीन चौबीसी की जयमाला” नामक कृति में हुआ है। यह कृति अप्रकाशित रूप से उपलब्ध है।² पूजाओं की जयमाला लिखने की परम्परा जैन पूजा लेखकों की अपनी परम्परा है। इस परम्परा का अनुसरण करते हुए भक्त कवि अपने इष्ट के प्रति भावपूजा सम्पादित करता है। भूधरदास ने भी इस परम्परा का सम्यक् निर्वाह करते हुए तीन चौबीसी के 72 तीर्थकरों के प्रति भक्ति भाव प्रदर्शित किया है।

8. विवाह समै जैन की मंगल भाषा :- यह 30 दोहों में लिखी हुई कवि की अनुष्ठानपरक अप्रकाशित कृति है।³ इसमें विवाह संस्कार का आद्योपान्त वर्णन किया है। विवाह के लिए पिता का पुत्र से पूछना, कन्या का गोत्र, पिता, सौन्दर्य आदि की चर्चा करना, शुभ मुहूर्त में विवाह की लग्न निश्चित करना, बारात में हाथी घोड़े, रथ आदि विविध वाहनों का जाना, विविध मांगलिक वाद्यों का बजना, नर-नारियों का बारात देखना, कन्या के पिता का बारात की अगवानी

1. राजस्थानी प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, शाखा बीकानेर के गुटका सं. 6766 पृष्ठ 38

2. वही पत्र संख्या 83

3. (क) प्रकाशित - जैन पद संग्रह एवं पार्श्वपुराण के अन्तर्गत

(ख) अप्रकाशित राजस्थानी प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, शाखा बीकानेर

के गुटका सं. 6766 पत्र संख्या 50

लेने जाना, मण्डप का अनेक प्रकार से सजाया जाना, विवाह की वेदी पर बैठे वर-वधू को लक्ष्य कर स्त्रियों के द्वारा मांगलिक गीत गाना, कन्या को उसकी माँ द्वारा सम्बोधन देना तथा वर को उसके श्वसुर द्वारा आशीर्वाद देना आदि सभी विवाह सम्बन्धी प्रमुख बातों का वर्णन है। सम्पूर्ण कृति में अमिधामूलक बोध शैली का व्यवहार हुआ है। वास्तव में कवि की यह लघु कृति लोकाचार और लोक व्यवहार की अनूठी कृति बन पड़ी है।

9. ढाल :- कवि द्वारा रचित “नोकार महात्म की ढाल” तथा “सप्त व्यसन निषेध ढाल” - ये दो ढालें उपलब्ध हैं। पहली “नोकार महात्म की ढाल” जैन पद संग्रह में भी प्रकाशित हो गई है। दूसरी “सप्त व्यसन निषेध ढाल” “पार्श्वपुराण” के अन्तर्गत ही लिखी गई है, परन्तु कहीं-कहीं इसका पृथक् प्रकाशन भी देखने में आया है। ये दोनों ढालें प्रकाशित और अप्रकाशित दोनों रूपों में उपलब्ध हैं।¹ “नोकार महात्म की ढाल” नामक रचना में 35 अक्षरों से संगठित अति प्रसिद्ध णमोकार मंत्र का माहात्म्य अभिव्यंजित हुआ है। इस रचना में पद्मरुचि, सुग्रीव, सुलोचना, गंगादेवी, चारुदत्त, धरणेन्द्र-पद्मावती, सीता, चोर और सेठ, सेठ सुदर्शन, अंजन चोर तथा जीवक चोर सम्बन्धी 11 अन्तर्कथाओं का नामोल्लेख हुआ है तथा णमोकार मंत्र के माहात्म्य से इन सबने उत्तम फल प्राप्त किया है। यह कृति जन समुदाय को इस मंत्र की महत्ता से परिचित कराती हुई उसे निरन्तर बैठे, चलते, सोते, जागते आदि सर्वदा जपने की प्रेरणा देती है। इस मंत्र की प्रभावना जन जीवन के क्रिया-कलापों को अहर्निश प्रभावित करती है। यह अपराजित मंत्र सर्वविघ्नों का नाश करने वाला तथा सर्वमंगलों में पहला मंगल है। यह मंत्र जिनगम का सार है, इसलिए आज भी इसकी मान्यता सम्पूर्ण समाज में है। “सप्त व्यसन निषेध ढाल” में द्यूतक्रीड़ा, मांस-भक्षण, मद्य-पान, वेश्यासेवन, शिकार, चोरी और परस्त्रीरमण - इन सात व्यसनों का निषेध उल्लिखित है। इन सप्तव्यसनों के त्याग से ही व्यक्ति की चारित्रिक उत्कृष्टता सम्भव है। व्यक्ति के चरित्र का उत्थान हुये बिना लौकिक और धार्मिक जीवन सुन्दर नहीं हो सकता। कवि ने महाभारतकालीन पाण्डवों का उदाहरण प्रस्तुत करते हुए सप्तव्यसन के निषेध को प्रतिपादित किया है और अपने लक्ष्य में पर्याप्त सफलता प्राप्त की है।

1. (क) प्रकाशित - जैन पद संग्रह एवं पार्श्वपुराण के अन्तर्गत

(ख) अप्रकाशित राजस्थानी प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, शाखा बीकानेर
के गुटका सं. 6766 पत्र संख्या 50

10. हुक्का पच्चीसी या हुक्का निषेध चौपाई :- यह हुक्का अर्थात् धूम्रपान की बुराइयों को प्रतिपादित करने वाली कृति है। यह कृति प्रकाशित और अप्रकाशित दोनों रूपों में उपलब्ध है। प्रकाशित कृति का नाम “हुक्का पच्चीसी” है¹ तथा अप्रकाशित कृति का नाम “हुक्का निषेध चौपाई”² है। दोनों कृतियों में 23 छन्द समान हैं परन्तु हुक्का पच्चीसी में एक कवित्त छन्द गंगदत्त नामक कवि का तथा एक लावनी छन्द रूपचन्द्र नामक कवि का है। इन दोनों छन्दों में गंगदत्त और रूपचन्द्र का नामोल्लेख होने से यह स्पष्ट हो जाता है कि इन दोनों छन्दों को छोड़कर शेष 7 दोहे, 15 चौपाई और एक कवित्त कुल मिलाकर 23 छन्द ही भूधरदास द्वारा रचित हैं। हुक्का निषेध चौपाई में अन्य कवियों द्वारा रचित कुछ पदों को मिलाकर भूधरदास के मूल 23 पदों सहित 31 पद हैं जिसमें अन्तिम पद प्रशस्तिपरक है, जो निम्नलिखित है -

नन्ददास सुविनीत नर, पानीपथया जान।

तिस निमित्त यह चौपाई, लिखी आगरे धान ॥³

यह प्रशस्तिपरक पद हुक्का पच्चीसी में नहीं है। यह कृति आचार की दृष्टि से अति महत्वपूर्ण है।

11. बधाई :- कवि द्वारा रचित “ऋषभदेव” के नौन संस्कार की बधाई” नामक रचना प्रकाशित रूप में उपलब्ध है।⁴ इसमें पुत्र जन्म के अवसर पर नाभिराय को बधाई दी गई है तथा सद्यःप्रसूत बालक ऋषभदेव को सुमेरुपर्वत पर नहवन कराते हुए देवों द्वारा महामनोहर रूप का एवं दृश्य का चित्र उपस्थित किया गया है। इसकी भाषा सौष्ठवयुक्त तथा गतिमय है। यह रचना विभिन्न पद संग्रहों में भी संग्रहीत है और पृथक् रूप से भी प्रकाशित है।

12. जकड़ी :- कवि द्वारा रचित “परमार्थ जकड़ी” या “भूधर कृत जकड़ी” नामक एक रचना प्रकाशित और अप्रकाशित दोनों ही रूपों में उपलब्ध

1. हुक्का पच्चीसी भूधरदास- प्रकाशक चन्द्रसेन जैन पंसारी, इटावा उत्तरप्रदेश

2. हुक्का निषेध चौपाई-राजस्थानी प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, शाखा बीकानेर के गुटका सं. 6766

3. हुक्का निषेध चौपाई-राजस्थानी प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, शाखा बीकानेर के गुटका सं. 6766

4. (क) जैन पद संग्रह, तृतीय भाग - भूधरदास, प्रकाशक जैन ग्रंथ रत्नाकर, बम्बई पद 31

(ख) जैन पद सागर भाग 1, पृष्ठ 187-188 श्री महावीरजी

है।¹ जहाँ यह एक ओर विभिन्न संग्रहों में संग्रहीत है वहाँ दूसरी ओर पृथक् रूप से भी प्रकाशित है।

यह रचना पाँच जकड़ी छन्दों में पूर्ण हुई है। इसमें कवि द्वारा मन को सम्बोधित करते हुए वैराग्य भावना, कर्म और उनके फल, जैन धर्म की महिमा आदि का वर्णन हुआ है। यह कृति हिन्दी सन्त कवियों की तरह धार्मिक महत्व को सूचित करती है।

13. होली :- कवि द्वारा रचित “अरे दोऊ रंग भरे खेलत होरी” तथा “होरी खेलूंगी घर आये चिदानन्द” इन शब्दों से प्रारम्भ होने वाली दो होलियाँ प्रकाशित रूप से उपलब्ध हैं। ये रचनाएँ विभिन्न पद संग्रहों में भी संग्रहित हैं।² होली एक काव्य रूप है।³ इस काव्य का प्रयोग जैन एवं जैनेतर साहित्य में हुआ है। कवि द्वारा रचित होलियों में आध्यात्मिक दृष्टि को ध्यान में रखकर होली के उत्सव में प्रयुक्त उपकरणों को सांगरूपक के रूप में व्यक्त किया गया है। साथ ही चिदानन्द कन्त के साथ होली खेलने से प्रिय - वियोग के समाप्त होने का उल्लेख किया गया है।

14. जिनगुणमुक्तावली :- जिनगुणमुक्तावली कवि की एक लघु किन्तु भक्तिभावना पूर्ण अप्रकाशित कृति है।⁴ यह कृति 23 पन्द्रह मात्रा वाली चौपाइयों, 16 दोहों और 2 सोरठा छन्दों में रची गई है। इस कृति में जिनेन्द्र भगवान के गुणों की विशेष चर्चा हुई है। यह चर्चा भगवान जिनेन्द्रदेव के पूज्य परिजनों से लेकर भगवान के कुल, जन्म, शरीर, तप, केवलज्ञान और धर्मदिशना तक के अतिशयों पर आधारित है। इसमें भक्त की भक्ति भावना का पूर्ण उद्रेक दिखाई देता है।

1. (क) प्रकाशित-वृहद् जिनवाणी संग्रह- सं. पं. पन्नालाल बाकलीवाल, 16 वीं संस्करण, पृष्ठ 639-641 सन् 1952

(ख) राजस्थानी प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, शाखा बीकानेर के गुटका सं 6766 में संग्रहीत

2. हिन्दी पद संग्रह- सं. डॉ. कस्तूरचन्द कासलीवाल, प्रकाशक- महावीर भवन, जयपुर पृष्ठ 149 तथा हिन्दी 158-59 सन् 1956

3. हिन्दी साहित्य कोश, भाग 1, डॉ. धीरेन्द्र वर्मा, द्वितीय संस्करण, प्रकाशक- ज्ञान मंडल वाराणसी, पृष्ठ 979

4. ऋषभदेव सरस्वती सदन, उदयपुर गुटका नं. 2155

15. **भूपालचतुर्विंशति भाषा :-** यह संस्कृत के भूपालराय कवि द्वारा रचित “जिन चतुर्विंशतिका” का देश भाषा में अनुवाद है। अनुदित रचना में आरम्भ का मंगलाचरण का दोहा तथा अन्य का भूपालराय के प्रति आधार प्रकट करने वाला छप्पय छन्द मूल संस्कृत कृति में नहीं है। इसमें 48 चौपाई, 5 दोहा और 1 छप्पय कुल 54 छन्द हैं। इस रचना में “जिनचतुर्विंशतिका” के एक श्लोक के लिए 2 चौपाइयों या 2 दोहा छन्दों का क्रमशः प्रयोग किया गया है। यह प्रकाशित और अप्रकाशित दोनों रूपों में उपलब्ध है।¹ इसमें जैन धर्मानुसार 24 तीर्थंकरों की वन्दना की गई है। समस्त कृति में अपने आराध्य के प्रति विनय-भाव व्यक्त किया गया है। कवि ने जन भाषा में मूल कृति का अनुवाद मात्र किया है, जिसमें उसे पर्याप्त सफलता मिली है। अनुवाद की परम्परा में कवि ने ऐतिहासिक परम्परा का उपयोग किया है। छप्पय जैसे छन्द का व्यवहार भी पुरानी परम्परा को गति प्रदान करता है।

16. **बारह भावना :-** भूधरदास ने अपने महाकाव्य “पार्श्वपुराण” में प्रसंगानुसार दो स्थानों पर² व्यवहारपरक और निश्चयपरक दृष्टि से दो बारह भावनाएँ लिखी हैं। ये बारह भावनाएँ वस्तुतः “पार्श्वपुराण” का अंश हैं, परन्तु अधिक लोकप्रियता के कारण ये पृथक्-पृथक् कई संग्रहों में संग्रहीत की गई हैं।

बार-बार चिंतन करने को भावना कहते हैं। संसार, शरीर एवं भोगों से विरक्ति के लिए इनका विशेष महत्त्व है। अनित्य, अशरण, संसार, एकत्व, अन्यत्व, अशुचि, आस्रव, संवर, निर्जरा, लोक, बोधिदुर्लभ और धर्म - ये बारह भावनाएँ हैं।³ इन बारह भावनाओं को लिखने की परम्परा प्राचीन जैनाचार्यों द्वारा⁴ प्राकृत और संस्कृत से होती हुई हिन्दी जैन कवियों को प्राप्त हुई है।

1. (क) प्रकाशित - बृहद् जिनवाणी संग्रह- सं. पं. पन्नालाल नाकलीवाल, 16 वाँ सम्राट संस्करण, पृष्ठ 639-641

(ख) अप्रकाशित शास्त्र भण्डार दिगम्बर जैन मन्दिर, संघीजी, जयपुर चेष्टन क्र. 895

2. पार्श्वपुराण - भूधरदास, अधिकार 4 पृष्ठ 30 तथा अधिकार 7 पृष्ठ 64

3. वही पृष्ठ 30 तथा 64

4. आचार्य कुन्दकुन्द, वट्टकेर स्वामी, कार्तिकेय स्वामी, शुभचन्द्र आदि।

भूधरदास द्वारा रचित बारह भावनायें इसी परम्परा की एक कड़ी हैं जो सर्वाधिक प्रसिद्धि को प्राप्त हैं। इनका विशेष विवेचन धार्मिक विचारों के अन्तर्गत किया है।

17. सोलहकरण भावना :- “सोलहकरण भावनाएँ” भूधरदास ने “पार्श्वपुराण” के अन्तर्गत लिखी हैं,¹ परन्तु कई संग्रहों में यह पृथक् रूप से भी प्रकाशित हुई हैं।² ये भावनाएँ मुनिराजों द्वारा भाने योग्य हैं। दर्शन विशुद्धि, विनय सम्पन्नता, शील और व्रतों में अतीचार न लगाना, अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग, संवेग, यथाशक्ति तप, यथाशक्ति त्याग, साधु समाधि, वैयावृत्य, अर्हद्भक्ति, आचार्य भक्ति, बहुश्रुत भक्ति, प्रवचनभक्ति, आवश्यकपरिहाणि, मार्गप्रभावना और प्रवचन वत्सलता - इन सोलह कारण भावनाओं के भाने से तीर्थंकर प्रकृति का बंध होता है। व्यक्ति को धार्मिक बनाने में इन भावनाओं का अति महत्त्व होता है।

18. वैराग्य भावना :- “वैराग्य भावना” वज्रनाभि चक्रवर्ती द्वारा संसार, शरीर और भोगों से विरक्ति हेतु “पार्श्वपुराण” के अन्तर्गत भायी गई भावना है।³ संसार, शरीर और भोगों का स्वरूप जानकर वज्रनाभि वैराग्य धारण कर लेते हैं। इस रचना में 2 दोहे तथा 15 जोगीरासा छन्द हैं। यह प्रकाशित और अप्रकाशित दोनों रूपों में उपलब्ध है। पार्श्वपुराण का अंश होकर भी इसका प्रकाशन विविध संग्रहों में “वज्रनाभि चक्रवर्ती की वैराग्य भावना” अथवा “वैराग्य भावना” नाम से हुआ है। भाव एवं भाषा की दृष्टि से इसकी रचना अनुपम है।

19. बाबीस परीख :- वस्तुतः यह कवि की पृथक् रचना नहीं है, अपितु पार्श्वपुराण का ही अंश है;⁴ परन्तु मार्मिक एवं भावपूर्ण होने के कारण इसका

1. पार्श्वपुराण - भूधरदास अधिकार 4 पृष्ठ 35-36

2. वृहद् जिनवाणी संग्रह- सं. पं. पन्नालाल बाकलीवाल, पृष्ठ 569-72

सं 16 वॉ सम्राट संस्करण सन् 1952

3. पार्श्वपुराण - भूधरदास, अधिकार 3 पृष्ठ 17-18

4. पार्श्वपुराण - भूधरदास, अधिकार 4 पृष्ठ 32-34

पृथक् प्रकाशन भी उपलब्ध है। यहाँ तक कि सोनागिरि सिद्धक्षेत्र के चन्द्रप्रभु जिनालय में इसे चित्र सहित टंकितकीर्ण भी किया गया है। इसमें आत्म साधना में संलग्न साधु जिन परीषहों को जीतते हैं, उनका स्वरूप बताते हुए साधु की स्तुति भी की गई है। इन परीषहों के लक्षण क्या हैं ? अमुक परीषह के काल में साधु की क्या स्थिति होती है ? संसारी जीवों की ऐसे कष्ट आने पर क्या दशा होती है ? इन सबका इसमें विशद वर्णन मिलता है। इसका कलापक्ष की अपेक्षा भावपक्ष अति प्रभावोत्पादक एवं हृदयग्राही है। जहाँ एक ओर “छप्पय” छन्द में 22 परीषह का नाम परिगणन हुआ है, वहाँ दूसरी ओर “सोमावती” छन्द में इनका वर्णन हुआ है। इस रचना का भावनाजन्य आचरण प्रधानता की दृष्टि से अति महत्वपूर्ण स्थान है।

कवि द्वारा रचित उपर्युक्त सभी फुटकर रचनाएँ मुक्तक काव्य के अन्तर्गत ही आती हैं।

इस तरह भूधरदास की प्रमुख रचनाएँ गद्य में “चर्चा समाधान” पद्य में महाकाव्य के रूप में “पार्श्वपुराण” जैनशतक एवं पदसंग्रह या भूधरविलास तथा अनेक फुटकर रचनाएँ मुक्तक काव्य के रूप में प्रसिद्ध हैं।

पंचम अध्याय

भूधरदास की रचनाओं का भावपक्षीय अनुशीलन

(अ) महाकाव्यात्मक रचना "पार्श्वपुराण का भावपक्षीय अनुशीलन

- (क) कथानक : एक दृष्टि
- (ख) पार्श्वपुराण में चरित्र चित्रण
- (ग) पार्श्वपुराण में प्रकृति चित्रण
- (घ) पार्श्वपुराण में रस निरूपण
- (ङ) पार्श्वपुराण की रचना का उद्देश्य

(ब) महाकाव्येतर रचनाओं का भावपक्षीय अनुशीलन

- (क) जैनशतक का भावपक्षीय अनुशीलन
- (ख) पदसंग्रह या भूधरविलास का भावपक्षीय अनुशीलन

भूधरदास की रचनाओं का भावपक्षीय अनुशीलन

(अ) महाकाव्यात्मक रचना "पार्श्वपुराण" का

भावपक्षीय अनुशीलन

"पार्श्वपुराण" भूधरदास की महाकाव्यात्मक रचना है। इसके सम्बन्ध में अनेक विद्वानों ने अपने-अपने मन्तव्य दिये हैं। उनमें से कुछ प्रमुख विद्वानों के मन्तव्य निम्नानुसार हैं :—

पं. नाथूराम "प्रेमी" लिखते हैं कि - "हिन्दी के जैन साहित्य में यही एक चरित्र ग्रन्थ है, जिसकी रचना उच्च श्रेणी की है और जो वास्तव में पढ़ने योग्य है। यह ग्रन्थ स्वतन्त्र है, किसी खास ग्रन्थ का अनुवाद नहीं है।"¹

डॉ. कामताप्रसाद जैन लिखते हैं कि :— "पार्श्वपुराण" में 23 वें तीर्थंकर भगवान पार्श्वनाथ का जीवन-कथानक बहुत ही सुन्दर रीति से प्रतिपादित है। हिन्दी जैन साहित्य में यही एक सुन्दर स्वतन्त्र काव्य है।² डॉ. नेमीचन्द शास्त्री के अनुसार - "यह एक सफल महाकाव्य है, महाकाव्य के सभी लक्षण इसमें वर्तमान हैं।"³

पं. परमानन्द शास्त्री ने लिखा है कि - "पार्श्वपुराण की रचना अत्यन्त सरल एवं संक्षिप्त होते हुए भी पार्श्वनाथ के जीवन की परिचायक है। जीवन परिचय के साथ उसमें अनेक सूक्तियाँ भी मौजूद हैं, जो पाठक के हृदय को केवल स्पर्श ही नहीं करती, प्रत्युत उनमें वस्तुस्थिति के भी दर्शन होते हैं।"⁴

पं. नाथूलाल शास्त्री इन्दौर के अनुसार - "इस ग्रन्थ के किसी भी अंश को पढ़ा जाय उसमें कवि का पदलालित्य और साहजिक कल्पना शक्ति का परिचय मिलता है। कवि की वाणी में वास्तविक रस और आकर्षण है।"⁵

पार्श्वपुराण एक महाकाव्य है, जिसमें एक व्यक्ति का जीवन विविध अवस्थाओं और विभिन्न परिस्थितियों के बीच चित्रित किया गया है। वस्तु वर्णन, चरित्रचित्रण, भावव्यंजना आदि सभी कुछ इस काव्य में समन्वित रूप से उपलब्ध है।

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास, जैन हितैषी 13/1 नाथूराम प्रेमी पृष्ठ 12

2. जैन हिन्दी साहित्य का संक्षिप्त इतिहास डॉ. कामता प्रसाद जैन पृष्ठ 172

3. हिन्दी जैन साहित्य का परिशीलन भाग-१ डॉ. नेमीचन्द शास्त्री पृष्ठ 50

4. अनेकान्त वर्ष 12 किरण 10

5. जैन हितेन्द्र पुराण, वर्ष 28 अंक 2,3

घटना विधान और दृश्य योजना को भी इसमें पूर्ण विस्तार प्राप्त है। कवि ने काव्य के नायक पार्श्वनाथ के चरित्र निरूपण के साथ कुछ दार्शनिक सिद्धान्तों का भी निरूपण किया है। इस ग्रन्थ में सफल महाकाव्य के प्रायः सभी गुण विद्यमान हैं।

महाकाव्य का स्वरूप : विभिन्न विद्वानों की दृष्टि में

महाकाव्य के बारे में भारतीय और पाश्चात्य विद्वानों ने अपने-अपने मत प्रस्तुत किये हैं। सर्वप्रथम भारतीय विद्वानों के मत प्रस्तुत हैं :—

संस्कृत के लक्षण ग्रन्थों में महाकाव्य का स्वरूप :—

संस्कृत के लक्षण ग्रन्थों में महाकाव्य के अंगों का विस्तृत विवेचन किया गया है। संस्कृत आचार्यों में महाकाव्य के स्वरूप की सर्वप्रथम विस्तृत व्याख्या करने का श्रेय आचार्य भामह को है। उन्होंने अपने ग्रन्थ “काव्यालंकार” में महाकाव्य के लक्षण इस प्रकार बतलाए हैं :—

1. महाकाव्य में कई सर्ग होना चाहिये।
2. इसमें उदात्त चरित्र वाले किसी महापुरुष का नायक के रूप में वर्णन होना चाहिए।
3. किसी महत् कार्य का वर्णन होना चाहिए।
4. श्लिष्ट एवं नागरप्रयोग तथा अलंकार की योजना रहनी चाहिए।
5. जीवन के विविध रूपों की झाकियाँ प्रस्तुत की जानी चाहिए।
6. पंच संधियों की योजना होना चाहिये।
7. कथानक का उपयुक्त संगठन होना चाहिये।
8. सांस्कृतिक सम्बद्धता होना चाहिये।¹

दण्डी के अनुसार :—

1. महाकाव्य की कथा अनेक सर्गों में हो।
2. महाकाव्य का प्रारम्भ आशीर्वाद, नमस्कार या वस्तुनिर्देश द्वारा हो।
3. कथा ऐतिहासिक या अन्य कोई उत्कृष्ट होनी चाहिए।

4. चारों वर्गों की स्वीकृति मिलनी चाहिए।
5. नायक चतुर एवं उदात्त होना चाहिये।
6. नगर, समुद्र, पर्वत, ऋतु, सूर्योदय, सूर्यास्त, उपवन, जलक्रीड़ा आदि के वर्णनों से महाकाव्य शोभित होना चाहिए।¹

इसके पश्चात् रूद्रट², अग्निपुराणकार³, हेमचन्द्र और विश्वनाथ⁴ आदि अनेक संस्कृत विद्वानों ने महाकाव्य के लक्षण बतलाये हैं, जो सभी लगभग मिलते जुलते हैं। उन सभी के आधार पर महाकाव्य के सामान्य लक्षण निम्नलिखित हैं :—

1. महाकाव्य सर्गबद्ध होना चाहिये और न्यूनतम आठ सर्ग होना चाहिये।
2. महाकाव्य का नायक धीरे-धीरे अथवा देवता होना चाहिये।
3. महाकाव्य की रचना विभिन्न छन्दों में होना चाहिये।
4. महाकाव्य की कथा इतिहास या पुराण सम्मत होना चाहिये।
5. शृंगार, वीर और शान्त रस में से कोई एक रस अंगी हो तथा शेष रस गौण हो।
6. प्रकृति वर्णन के रूप में नगर, समुद्र, नदी, पर्वत, सूर्योदय, सूर्यास्त आदि का वर्णन होना चाहिये।
7. महाकाव्य की शैली गम्भीर होना चाहिये।
8. महाकाव्य का उद्देश्य महान होना चाहिये।

हिन्दी विद्वानों की दृष्टि में महाकाव्य का स्वरूप :— आधुनिक युग में हिन्दी के विद्वानों ने भी महाकाव्य के सम्बन्ध में अपने विचार व्यक्त किये हैं। इन विद्वानों ने लक्षणग्रन्थों के परम्परागत मानदण्डों से अलग हटकर महाकाव्य विषयक मान्यताएँ प्रस्तुत की हैं, जिनमें पर्याप्त विकास दृष्टिगोचर होता है। कुछ प्रमुख मान्यताएँ इस प्रकार हैं :—

-
1. काव्यादर्श 1 — 15, 19, 37 दण्डी
 2. काव्यालंकार 16—7, 7—19 रूद्रट
 3. अग्निपुराण 338, 24—34
 4. साहित्य दर्पण 6, 315—318 विश्वनाथ

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार :- “प्रबन्ध काव्य में मानव जीवन का पूर्ण दृश्य होता है। उसमें घटनाओं की सम्बद्ध श्रृंखला और स्वाभाविक क्रम से ठीक ठीक निर्वाह के साथ साथ हृदय को स्पर्श करने वाले नाना भावों का रसात्मक अनुभव कराने वाले प्रसंगों का समावेश होना चाहिए। उसके लिये घटनाचक्र के अन्तर्गत ऐसी वस्तुओं और व्यापारों का प्रतिबिम्बवत् चित्रण होना चाहिए, जो श्रोताओं के हृदय में रसात्मक तरंगे उठाने में समर्थ हो।”¹

डॉ. नगेन्द्र ने महाकाव्य में “औदात्य” को प्रधान मानते हुए उदात्त कथानक, उदात्त कार्य अथवा उद्देश्य, उदात्त चरित्र, उदात्त भाव और उदात्त शैली को अनिवार्य बतलाया है।²

डॉ. शम्भूनाथसिंह ने भारतीय और पाश्चात्य महाकाव्य विषयक मान्यताओं का समन्वय करते हुए महाकाव्य के आन्तरिक और बाह्य लक्षणों का प्रतिपादन किया है —³

आन्तरिक लक्षण :-

1. महाकाव्य में किसी महान घटना का वर्णन होना चाहिए। उसके कथानक में नाटकीय अन्विति हो तो ठीक है, न हो तो भी उसे रोमांचक कथा की तरह विश्रृंखलित नहीं होना चाहिये।
2. उसमें कोई न कोई महान उद्देश्य होना चाहिये, चाहे वह उद्देश्य राष्ट्रीय हो या नैतिक, धार्मिक हो या दार्शनिक, मानवीय हो या मनोवैज्ञानिक।
3. उसमें प्रभावान्विति होनी चाहिये, चाहे वह नाटकीय ढंग की प्रभावान्विति हो या रोमांचक कथा के ढंग की अथवा नीतिकाव्य के ढंग की।

बाह्य लक्षण :-

1. कथात्मकता और छन्दोबद्धता।
2. सर्गबद्धता या खण्डविभाजन और कथा का विस्तार।
3. जीवन के विविध और समग्र रूप का चित्रण।

1. जायसी ग्रन्थावली की भूमिका आचार्य रामचन्द्र शुक्ल

2. “कामायनी का महाकाव्यत्व” डॉ. नगेन्द्र

3. साहित्य शास्त्र, प्रो. रामकुमार शर्मा पृष्ठ 179-180

4. नाटक कथा और गीतिकाव्य के अनेक तत्वों के सम्मिश्रण से संघटित कथानक का निर्माण ।
5. शैली की गम्भीरता, उदारता और मनोहारिता ।

पाश्चात्य विद्वानों की दृष्टि में महाकाव्य का स्वरूप :-

पाश्चात्य विद्वानों ने भी महाकाव्य (EPIC) को गौरवपूर्ण स्थान देते हुए उसके स्वरूप की विभिन्न प्रकार से व्याख्या की है । प्रसिद्ध यूनानी आलोचक अरस्तू ने महाकाव्य के सम्बन्ध में अपने काव्यशास्त्र में लिखा है कि "महाकाव्य ऐसे उदात्त व्यापार का काव्यमय अनुकरण है, जो स्वतः गम्भीर एवं पूर्ण हो, वर्णनात्मक हो, सुन्दर शैली में रचा गया हो, जिसमें आद्यन्त एक छन्द हो, जिसमें एक ही कार्य हो जो पूर्ण हो, जिसमें प्रारम्भ, मध्य और अन्त हो, जिसके आदि और अन्त एक दृष्टि में समा सके, जिसके चरित्र श्रेष्ठ हो, कथा सम्भावनीय हो और जीवन के किसी एक सार्वभौम सत्य का प्रतिपादन करती हो ।"¹

एवरक्राम्बी के अनुसार :- "वृहदाकार वर्णनात्मक प्रबन्धत्व के कारण ही कोई रचना महाकाव्य नहीं बन जाती है । महाकाव्य उसी प्रबन्ध को कहेंगे जिसकी शैली महाकाव्योचित हो और जिसमें कवि की कल्पना और विचारधारा का उदात्त रूप दिखाई पड़े । उसके अनुसार महाकाव्य में ऐसी कोई बात नहीं होना चाहिये जो अगम्भीर और महत्त्वहीन हो ।"²

इसके अतिरिक्त एफ. बी. गमर, डबल्यू. एम. डिवसन, वाल्टेयर आदि अनेक पाश्चात्य विद्वानों ने महाकाव्य के स्वरूप पर प्रकाश डाला है । इन सभी के आधार पर महाकाव्य के सामान्य लक्षण निम्नानुसार हैं :-

1. महाकाव्य एक विशालकाय प्रकथन प्रधान काव्य है ।
2. नायक युद्धप्रिय हो तथा पात्रों में शौर्यगुण की प्रधानता अनिवार्य है ।
3. महाकाव्य में केवल व्यक्ति का चरित्र चित्रण ही नहीं होता अपितु उसमें सम्पूर्ण जाति के क्रिया कलापों का वर्णन होना चाहिये । जातिगत भावनाओं की प्रधानता महाकाव्य में होती है ।

1. काव्यरूपों के मूल स्रोत और उनका विकास डॉ. शकुन्तला दुबे पृष्ठ 83

2. काव्य के रूप डॉ. शकुन्तला दुबे पृष्ठ 68

4. कुछ आलोचकों की समर्पति में महाकाव्यों के पात्र देवता या देवता जैसे ही होते हैं, किन्तु लुक्न ने पात्रों में केवल मानवीय रूप की प्रतिष्ठा की है।
5. महाकाव्य का विषय परम्परा से प्रतिष्ठित और लोकप्रिय होता है।
6. कथा का सम्बन्ध नायक से होता है।
7. शैली में उदात्तता और विराटता तथा उसमें एक ही छन्द का प्रयोग होना चाहिये।

महाकाव्य के सम्बन्ध में उद्धृत उपर्युक्त विभिन्न लक्षणों का समन्वय करते हुए महाकाव्य के सामान्य लक्षण निम्नलिखित प्रकार से गिनाए जा सकते हैं :-

1. महाकाव्य सर्गबद्ध हो तथा न्यूनतम 8 सर्ग हों।
2. महाकाव्य का नायक धीरोदात्त हो।
3. महाकाव्य की रचना विभिन्न छन्दों में हो।
4. महाकाव्य की कथा इतिहास या पुराणसम्मत हो।
5. श्रृंगार, वीर और शान्त रसों में से कोई एक रस प्रधान तथा शेष रस गौण हों।
6. प्रकृति वर्णन के रूप में नगर, नदी, पर्वत, नाले, सूर्योदय, सूर्यास्त आदि का वर्णन होना चाहिये।
7. शैली उदात्त एवं गम्भीर हो।
8. उद्देश्य महान होना चाहिये।

महाकाव्य की उपर्युक्त सभी परिभाषाओं एवं लक्षणों का समावेश करते हुए हिन्दी साहित्य कोशकार महाकाव्य की परिभाषा इस प्रकार देते हैं :-

“महाकाव्य वह छन्दोबद्ध कथात्मक रूप है, जिसमें क्षिप्र कथाप्रवाह या अलंकृत वर्णन अपना मनोवैज्ञानिक चित्रण से युक्त ऐसा सुनियोजित सांगोपांग और जीवन्त लम्बा कथानक हो, जो रसात्मकता या प्रभावान्विति उत्पन्न करने

में पूर्ण समर्थ हो सके, जिसमें यथार्थ कल्पना या सम्भावना पर आधारित ऐसे चरित्र या चरित्रों के महत्त्वपूर्ण जीवनवृत्त का पूर्ण या आंशिक रूप में वर्णन हो, जो किसी युग के सामाजिक जीवन का किसी न किसी रूप में प्रतिनिधित्व कर सके, जिसमें किसी महत्प्रेरणा से अनुप्राणित होकर किसी महत् उद्देश्य की सिद्धि के लिए किसी महत्त्वपूर्ण, गंभीर अथवा रहस्यमय और आश्चर्योत्पादक घटना या घटनाओं का आश्रय लेकर संश्लिष्ट और समन्वित रूप से जाति विशेष या युग विशेष के समग्र जीवन के विविध रूपों, पक्षों, मानसिक अवस्थाओं और कार्यों का वर्णन और उद्घाटन किया गया हो और जिसकी शैली इतनी गरिमामयी और उदात्त हो कि युग-युगान्तर तक महाकाव्य के जीवित रहने की शक्ति प्रदान कर सके ।¹

पार्श्वपुराण का महाकाव्यत्व : मूल्यांकन के विशिष्ट बिन्दु

महाकाव्य के उपर्युक्त विविध मानदण्डों के आधार पर पार्श्वपुराण के महाकाव्यत्व का मूल्यांकन करने के लिए विशिष्ट बिन्दु निम्नानुसार हैं -

जिनके आधार पर पार्श्वपुराण का महाकाव्यत्व विवेच्य है -

1. सर्गबद्धता एवं छन्दबद्धता
2. महान एवं पुराणसम्मत कथानक
3. धीरोदात्त नायक
4. श्रृंगार, वीर एवं शान्त रस में से किसी एक रस की प्रधानता
5. प्रकृति वर्णन
6. महान उद्देश्य
7. शैली की उदात्तता एवं गम्भीरता

इन सब बिन्दुओं का विवेचन क्रमशः कथानक - एक दृष्टि, चरित्र-चित्रण, प्रकृति चित्रण, रस-निरूपण, उद्देश्य-कथन आदि के रूप में विस्तार से किया जा रहा है ।

(क) कथानक : एक दृष्टि

पार्श्वपुराण के कथानक को निम्नलिखित बिन्दुओं को ध्यान में रखते हुए देखा जा सकता है -

1. सर्गानुसार कथासार
2. कथानक की सर्गबद्धता एवं छन्दबद्धता
3. कथाप्रवाह या सम्बन्धनिर्वाह
4. अन्विति एवं प्रभाव
5. महानता एवं पुराणसम्मतता
6. परम्परागतता एवं नवीन उद्भावनाएँ
7. प्रबन्धकाव्य की दृष्टि से कथानक पर विचार

१. सर्गानुसार कथासार :- “पार्श्वपुराण” में पीठिका सहित नौ अधिकार (सर्ग) हैं। कवि ने सर्ग नाम न देकर अधिकार नाम दिया है। संक्षेप में अधिकारानुसार कथासार निम्नलिखित है :-

पीठिका :- सर्वप्रथम 40 छन्दों की पीठिका है, जिसमें पार्श्वनाथ, पंचपरमेष्ठी एवं जिनवाणी का स्तवन करते हुए अपनी लघुता एवं पार्श्वचरित्र की महत्ता बतलाई है। विपुलाचल पर्वत पर भगवान महावीर का समवशरण आता है। वनमाली राजगृही के राजा श्रेणिक को समवशरण के आने की सूचना देता है। राजा श्रेणिक प्रजा सहित समवशरण में जाकर गौतम गणधर से पार्श्वनाथ चरित्र सुनाने का अनुरोध करते हैं। गणधर कहते हैं :-

प्रथम अधिकार :- पोदनपुर के राजा अरविन्द के मंत्री विश्वभूति के दो पुत्र थे- बड़ा कमठ और छोटा मरुभूति। कमठ दुर्जन तथा मरुभूति सज्जन था। विश्वभूति के दीक्षा लेने के बाद राजा मरुभूति को मंत्री बना देता है। एक बार जब राजा मरुभूति मंत्री सहित शत्रु से युद्ध करने जाता है तब कमठ नगर में अपनी मनमानी करता है तथा मरुभूति की पत्नी के साथ दुराचार कर लेता है। जब राजा युद्ध से वापिस आते हैं तब उन्हें सर्व वृत्तान्त ज्ञात होता

है। वे मरुभूति के क्षमा करने के प्रस्ताव को ठुकराते हुये कमठ का सिर मुण्डाकर, काला मुँह करके, गधे पर बिठा कर देश निकाला दे देते हैं। कमठ भूताचल पर्वत पर हाथ में शिला लेकर तप करने लग जाता है। जब मरुभूति उसके समाचार लेने तथा क्षमा मांगने वहाँ जाता है तब वह शिला पटककर उसकी हत्या कर देता है। हत्या उपरान्त तापसियों द्वारा निकाल दिये जाने पर वह अनेक दुष्कर्म करता हुआ मृत्यु को प्राप्त होता है। मरुभूति के वापिस न आने पर राजा अवधिज्ञानी मुनि से मरुभूति के मरण का सर्व वृत्तान्त जानकर उनके उपदेश द्वारा खेद त्यागकर समता भाव धारण करते हैं।

द्वितीय अधिकार :- मरुभूति मरकर सल्लकी वन में “वज्रघोष” नामक हाथी होता है। राजा अरविन्द मुनि बनकर उसी वन में स्थित होते हैं। “वज्रघोष” उन्हें देखकर क्रोधित हो जाता है, परन्तु उनके सम्मुख आने पर जातिस्मरण ज्ञान द्वारा शान्त हो जाता है। मुनिराज के सम्बोधन से वह सम्यग्दर्शनपूर्वक व्रत अंगीकार कर लेता है। कमठ मरकर काला सर्प बनता है तथा हाथी को डस लेता है। हाथी मरकर बारहवें स्वर्ग में देव होता है। देवायु समाप्त कर वह राजा विद्युत्गति की रानी विद्युत्माला के गर्भ से अग्निवेग नामक पुत्र होता है। वह यौवनावस्था में एक मुनिराज के उपदेश से दीक्षा लेकर तप करने लगता है। काला सर्प भरकर पाँचवें नरक में नारकी होकर आयु पूर्ण कर अजगर होता है। अजगर मुनि को खा लेता है। मुनिराज समता पूर्वक देह त्याग सोलहवें स्वर्ग में देव बन जाते हैं।

तृतीय अधिकार :- देवायु पूर्ण कर वे वज्रवीर्य राजा तथा विजयारानी के यहाँ “वज्रनाथि” नाम के पुत्र होते हैं। चक्रवर्ती बनकर धर्मपूर्वक राज्य करते हुए क्षेमंकर मुनि के उपदेश से विरक्त होकर जिनदीक्षा ले लेते हैं अजगर मरकर पुनः छठवें नरक का नारकी होकर भील बनता है। भील पूर्व जन्म के वैर से वज्रनाथि मुनिराज को वाणों से मार देता है। मुनिराज समता पूर्वक देह त्याग मध्यम प्रैवेयक में अहमिन्द्र होते हैं। भील मुनि हत्या के पाप से पुनः नारकी होता है।

चतुर्थ अधिकार :- अहमिन्द्र आयु पूर्ण कर वज्रबाहु राजा की प्रभाकरी रानी के गर्भ से "आनन्द" नामक पुत्र होता है। महामंडलीक राजा बनकर वह श्वेतकेश की देखने मात्र से विरक्त होकर दीक्षा ले लेता है। सोलहकारण भावनाओं को भाने से "आनन्द मुनि" तीर्थंकर प्रकृति का बन्ध करते हैं। भील नरक से निकलकर सिंह बनता है। सिंह मुनि का भक्षण करता है। मुनि आत्मध्यानपूर्वक शरीरत्याग आनत स्वर्ग में इन्द्र होते हैं।

पंचम अधिकार :- इन्द्र की आयु छह माह शेष रहने पर सौधर्म इन्द्र आनतेन्द्र का जन्म बनारस में अश्वसेन राजा के यहाँ होना जानकर कुम्भेर को तभी से उनके यहाँ पंचाश्चर्य करने की तथा गर्भ में आने के समय श्री आदि देवियों को उनकी रानी वामादेवी के गर्भशोधन की आज्ञा देता है। वैशाख कृष्ण द्वितीया के दिन आनतेन्द्र अपनी आयु पूर्ण कर पार्श्वनाथ के रूप में वामादेवी के गर्भ में आता है। गर्भ में आने पर इन्द्रादि देव गर्भ कल्याणक मनाने बनारस आते हैं तथा गर्भकल्याणक मनाकर छप्पन कुमारियों को माता की सेवा में नियुक्त कर अपने अपने स्थान वापिस चले जाते हैं।

षष्ठ अधिकार :- गर्भ के नौ माह पूर्ण होने पर पौष कृष्ण एकादशी को "पार्श्वनाथ" का जन्म होता है। पार्श्वनाथ के जन्म के दस अतिशयों द्वारा उनका जन्म हुआ जान इन्द्रादि सपरिवार जन्मकल्याणक मनाने आते हैं। पार्श्वनाथ का मेरु पर्वत पर जन्माभिषेक करके वस्त्राभूषण से अलंकृत कर माता पिता को सौंपते हैं तथा जन्मकल्याणक का नियोग पूर्ण कर वापिस चले जाते हैं।

सप्तम अधिकार :- पार्श्वनाथ देवकुमारों के साथ बालक्रीडाएँ करते हुए वृद्धि को प्राप्त होते हैं। ये आठ वर्ष में अणुव्रत धारण कर लेते हैं। सिंह मरकर नारकी होता है। वह नरक से निकलकर कई जन्म धारण करने के पश्चात् पार्श्वनाथ का नाना होता है। पार्श्वनाथ देवकुमारों के साथ बालक्रीडाएँ करते हुए वृद्धि को प्राप्त होते हैं। ये आठ वर्ष में अणुव्रत धारण कर लेते हैं। एक दिन जब पार्श्वनाथ वनविहार के लिये जाते हैं, तब नाना को पंचाग्नि तप करते हुए देखकर अग्नि में लकड़ी डालने का मना करते हैं। क्रोधित होकर नाना द्वारा लकड़ी के फाड़ने पर उसमें से नाग नागिन निकलते हैं। पार्श्वनाथ के सम्बोधन द्वारा वे दोनों स्वर्ग में धरणेन्द्र, पद्मावती बन जाते हैं।

युवा होने पर पार्श्वनाथ पिता के बहुत आग्रह करने पर भी विवाह नहीं करते हैं और तीस वर्ष की यौवनावस्था में वैराग्य को प्राप्त होते हैं। पार्श्वनाथ को वैराग्य हुआ जान सभी देव दीक्षा कल्याणक मनाने हेतु बनारस आते हैं। देव पार्श्वनाथ को पालकी में बैठाकर वन में ले जाते हैं। वहाँ वे वस्त्राभूषण छोड़कर केशलोच कर दिगम्बर दीक्षा लेते हैं। देव पार्श्वनाथ के केशों को क्षीरसागर में डाल दीक्षा कल्याण का नियोग पूरा कर अपने-अपने स्थानों को चले जाते हैं।

अष्टम अधिकार :- पार्श्वनाथ संयम की विशेष साधना से मनः पर्ययज्ञान प्राप्त कर लेते हैं। गुलखेटपुर के राजा ब्रह्मदत्त के यहां उनका आहार होने पर पंचाशचर्य होते हैं। आहार लेकर वन में आकर प्रभु ध्यानस्थ हो जाते हैं। पार्श्वनाथ का नाम अपने कुतण से “संवर” नामक ज्योतिषी देव होता है। आकाश मार्ग से गमन करते समय उसका विमान ध्यानस्थ पार्श्वनाथ के ऊपर रुक जाता है। वह अपने अवधिज्ञान से पूर्व वैर का स्मरण कर पार्श्वनाथ का तप भंग करने के लिये वर्षा, आंधी, तूफान, पत्थर, डरावने रूप एवं आवाजों द्वारा घोर उपसर्ग करता है; जिससे धरणेन्द्र का आसन कम्पायमान होता है। वह पद्मावती सहित पार्श्वनाथ की रक्षा के लिये आता है तथा ऊपर फणमण्डप बना लेता है। आत्मध्यान की स्थिरता में क्षपकश्रेणी आरोहण कर चार घाति कर्मों का नाश कर पार्श्वनाथ को केवलज्ञान की प्राप्ति हो जाती है। केवलज्ञान के दस अतिशयों द्वारा पार्श्वनाथ को केवलज्ञान हुआ जान इन्द्रादि सपरिवार ज्ञानकल्याणक मनाने आते हैं। इन्द्र की आज्ञा से कुबेर समवशरण (धर्मसभा) की रचना करता है। सभी देव अनेक प्रकार से भगवान की स्तुति करते हुए समवशरण में यथास्थान बैठते हैं।

नवम अधिकार :- समवशरण के मध्य विराजमान पार्श्वनाथ जिन से “स्वयंभू” नामक गणधर अनेक प्रश्न करते हैं; जिनके उत्तरस्वरूप दिव्यध्वनि द्वारा “पार्श्वप्रभु” हेय, ज्ञेय, उपादेय, छहद्रव्य, साततत्त्व, नौ पदार्थ, पंचास्तिकाय, सम्यग्दर्शनादि का स्वरूप बतलाते हैं। उसे सुनकर अनेक जीव धर्ममार्ग में लगते हैं। “संवर” नामक ज्योतिषी देव भी अपनी भूल पर पश्चात्ताप करता हुआ धर्म में लग जाता है। कुछ कम 70 वर्ष तक पार्श्वनाथ काशी, कौशल, मगध, पांचाल, मालव, अंग, वंग आदि अनेक देशों में विहार करते तथा धर्मोपदेश देते हुए अन्त में सम्पेदशिखर पहुँचकर योगनिरोध करके सम्पूर्ण कर्मों का नाशकर निर्वाण प्राप्त कर लेते हैं। पार्श्वनाथ का निर्वाण हुआ जान इन्द्रादि

निर्वाण कल्याणक मनाने आते हैं। अग्निकुमार देव, अपने मुकुट से निकली अग्नि द्वारा जिनदेह का दहनकर निर्वाणकल्याणक का नियोग पूरा कर अपने-अपने स्थानों को चले जाते हैं।

इस अधिकार के अन्त में कवि ने अनेक प्रकार से धर्म की महिमा बताते हुए वैरभाव छोड़कर सबसे मैत्री करने का उपदेश भी दिया है तथा अपनी लघुता प्रदर्शित करते हुए ग्रन्थ समाप्त करने की तिथि का उल्लेख किया है।

2. कथानक की सर्गबद्धता एवं छन्दबद्धता :- पार्श्वपुराण पुराण न होकर महाकाव्य है। उसका कथानक अवश्य ही पौराणिक है। इसमें पार्श्वनाथ के अनेक पूर्व भवों से लेकर मोक्षप्राप्ति तक की कथा नियोजित हुई है। समग्र कथानक में पार्श्वनाथ के चरित्र का चित्रण हुआ है। नायक पार्श्वनाथ के जीवन से सम्बन्धित जितने भी अवान्तर प्रसंग और घटनाएँ हैं उन सभी से मूलकथा परिपुष्ट हुई है। पार्श्वपुराण में “सर्ग” के स्थान पर “अधिकार” नाम दिया गया। इसमें कुल नौ अधिकार हैं। प्रत्येक अधिकार एक दूसरे से जुड़ा है। ये अधिकार आपस में जुड़कर कथानक को गति प्रदान करते हैं।

प्रथम अधिकार में पूर्व पीठिका है। दण्डी के अनुसार-महाकाव्य का प्रारम्भ आशीर्वाद, नमस्कार या वस्तु निर्देश द्वारा होना चाहिये। “पार्श्वपुराण” का प्रारम्भ नमस्कार या स्तुति द्वारा हुआ है। सर्वप्रथम पार्श्वनाथ की स्तुति की गई। पश्चात् पाँचों परमेष्ठियों एवं जिनवाणी की स्तुति या स्तवन किया गया है।¹ कुछ आचार्य महाकाव्य में दुर्जन-निन्दा और सज्जन प्रशंसा का होना स्वीकार करते हैं। पार्श्वपुराण के प्रारम्भ में जिनकथा श्रवण की महत्ता के रूप में दुर्जननिन्दा और सज्जन प्रशंसा की गई है।²

काव्य का नाम नायक के नाम पर रखा गया है तथा अधिकारों के नाम मुख्य विषयवस्तु या घटनावर्णन के आधार पर रखे गये हैं। यथा - मरुभूतिभववर्णन नाम प्रथम अधिकार, गजस्वर्गगमन विधाधरभवविद्युतप्रभमेव भववर्णन नाम द्वितीयोधिकार वज्रनाभि-अहमिन्द्रसुख भिल्लनारकदुःखवर्णन नाम तृतीयोधिकार इत्यादि। इस प्रकार प्रत्येक अधिकार का नाम उसमें वर्णित विषयवस्तु को भलीभाँति स्पष्ट करता है। नौ अधिकारों में लिखा गया पार्श्वपुराण का कथानक पूर्णतः सर्गबद्ध है। विविध छन्दों में लिखा होने से कथानक छन्दबद्ध

भी है। इसमें किया गया छन्दों का प्रयोग रामचरितमानस जैसा निश्चित या विशेष योजनानुसार न होकर स्वतन्त्र एवं इच्छानुसार है। इसमें प्रयुक्त छन्द दोहा, चौपाई, छप्पय, सोरठा, घनाक्षरी, चाल, पदरी, चामर, कुसुमलता, नरेन्द्र, जोगीरास, सोमावती, बेलीचाल, अडिल्ल, हरिगीत, ढाल इत्यादि अनेक हैं। अनेक अधिकारी एवं छन्दों में लिखा गया पार्श्वपुराण का कथानक सर्गबद्ध एवं छन्दबद्ध है। आचार्य विश्वनाथ के अनुसार- "महाकाव्य आठ सर्गों से बड़ा और अनेक वृत्तों से युक्त होना चाहिए" इस कसौटी पर पार्श्वपुराण पूरी तरह खरा उतरता है।

3. कथाप्रवाह या सम्बन्धनिर्वाह :- महाकाव्य में कथाप्रवाह या सम्बन्ध-निर्वाह का बड़ा महत्त्व होता है। इसके लिए प्रथम, कथानक में एक प्रसंग दूसरे प्रसंग से सुम्बद्ध हो। दूसरा, उनकी प्रासंगिक कथाएँ आधिकारिक कथा के साथ अच्छी तरह जुड़ी हुई हों, वे मुख्य वस्तु को अप्रसर करने में, उसके विकास में सहायक हों। उसकी प्रत्येक घटना, प्रत्येक पात्र और प्रत्येक वर्णन ऐसा होना चाहिए, जो आधिकारिक कथा की गति में सहायता करें। वे ऊपर से आरोपित प्रतीत न हो, कथा के अभिन्न अंग बन कर आये। इन दोनों दृष्टियों से "पार्श्वपुराण" का कथानक सफल है। उसका सम्बन्ध निर्वाह सफल है - एक प्रसंग के बाद दूसरा प्रसंग सहज ही आता गया है। कथा का तार न तो कहीं टूटा है और न ऐसा लगता है कि विविध प्रसंगों को सायास संग्रहीत किया गया है।

कवि अनेक स्थलों पर कथात्मक प्रसंगों को अधिक विस्तार देकर और लम्बे वर्णनों में उलझकर भी सम्बन्ध निर्वाह की रक्षा करने में समर्थ रहा है।¹ कहीं कहीं पाठक सम्बन्ध सूत्र टटोलने में बैचैन हो उठता है।² कथानक में भग्नदोष तो नहीं, परन्तु उसके सन्तुलन पर प्रश्नचिह्न अवश्य लगाया जा सकता है। यद्यपि अन्तिम सर्ग में तीन चौथाई अंश की योजना अनावश्यक लगती है, फिर भी मूल कथावस्तु और नायक से उसका सम्बन्ध विच्छिन्न नहीं हो पाया है।³

1. पार्श्वपुराण — भूधरदास, कलकत्ता, अधिकार ३ पृष्ठ 14-16 (चक्रवर्ती की सम्मदा का वर्णन)

2. वही अधिकार 5 पृष्ठ 41-42 (तीन लोक का वर्णन)

3. पार्श्वपुराण — भूधरदास, कलकत्ता, अधिकार 9 पृष्ठ 80-81

पूर्वजन्मों की कथायोजना द्वारा पाठक का कोतूहलवर्धन तो होता है, परन्तु इससे प्रबन्धात्मकता को ठेस पहुँचती है। प्रबन्ध की सफलता में यह प्रक्रिया दोषपूर्ण न होकर भी निर्दोष नहीं कही जा सकती है। कवि ने कथाप्रसंगों के पारस्परिक सम्बन्धों की ओर ध्यान दिया है; परन्तु वह परम्परागत रूढ़ियों के मोह से पीछा नहीं छुड़ा सका है। फलतः काव्य के कथानक में पूर्ण सन्तुलन एवं कसावट का आविर्भाव नहीं हो सका है।

“पार्श्वपुराण” का कथाप्रवाह सामान्यतया कहीं भंग नहीं होता है; परन्तु जहाँ कवि कथानक के बहाने सिद्धान्त की चर्चा करने लगता है तथा धर्मोपदेश देने लगता है, वहाँ कथाप्रवाह शिथिल अवश्य हो जाता है। सिद्धान्त-निरूपण और उपदेश-वचन निश्चय ही कथाप्रवाह की दृष्टि से दोष हैं, परन्तु कुल मिलाकर कथाप्रवाह में नैरन्तर्य है, सतत् गति है, जिससे वह अपने लक्ष्य तक तीव्र गति से पहुँचने में पूर्णतः समर्थ है।

4. अन्धिति एवं प्रभाव (मार्मिक स्थल) :- महाकाव्य में एक ओर घटनाओं की सुसम्बद्ध श्रृंखला होती है तो दूसरी ओर ऐसे प्रसंगों का समावेश होता है, जो पाठक के हृदय को स्पर्श कर सकें, उसे नाना भावों का रसात्मक अनुभव करा सकें, उसकी रागात्मक वृत्ति को लीन करने की क्षमता रखें। “पार्श्वपुराण” का कथानक सुगठित एवं सुसम्बद्ध है। कवि द्वारा प्रस्तुत कथानक इतना सुगठित है कि किसी एक घटना के अभाव या परिवर्तन से सम्पूर्ण कथासूत्र टूट सकता है। एक घटना के बाद दूसरी घटना या एक प्रसंग के बाद दूसरा प्रसंग इस प्रकार बँधा हुआ है कि उसमें किसी प्रकार परिवर्तन नहीं हो सकता है। उदाहरणार्थ - प्रथम अधिकार के अन्त में कमठ द्वारा मरुभूति की हत्या का वर्णन है - “इहि विधि पापी कमठ ने, हत्या करी महान।”¹ तथा दूसरे अधिकार के प्रारम्भ में -

“इस भांति तजे मरुभूति प्रान। अब सुनो कथा आगे सुजान ॥”²

“तिस कथानक आरत ध्यान दोष, उपज्यो वनहस्ती “वज्रघोष”- मरुभूति से मरकर “वज्रघोष”³ नामक हाथी के रूप में जन्म लेने का वर्णन है। इस

1. पार्श्वपुराण — भूधरदास, कलकत्ता, अधिकार 1 पृष्ठ 9

2 एवं 3. पार्श्वपुराण — भूधरदास, कलकत्ता, अधिकार 2 पृष्ठ 9

प्रकार एक घटना दूसरी घटना से पूर्णतः सम्बद्ध है। कवि की घटना गुम्फनकला की यह विशेषता है कि उसने अपने कथानक में पार्श्वनाथ के दस जन्मों की कथा को व्यवस्थित रूप प्रदान किया है तथा पार्श्वनाथ के जन्म में होने वाले तीर्थकरत्व सूचक पंचकल्याणकों को सुसम्बद्ध श्रृंखला प्रदान की है।

पार्श्वपुराण के कथानक को हम दो भागों में बाँट सकते हैं - इतिवृत्तात्मक और रसात्मक। इतिवृत्त का कार्य उन परिस्थितियों एवं घटनाओं का निर्माण करना तथा सूचना देना होता है, जिनमें पात्र अपने भावों की विशद व्यंजना कर सकें। रसपूर्ण स्थलों का कार्य पाठक के हृदय में रस की गहरी अनुभूति जगाना है। कोरे इतिवृत्तात्मक स्थल रस की सृष्टि नहीं कर सकते हैं। महाकाव्य में वास्तविक महत्त्व तो उन रसात्मक स्थलों का होता है, जो कथानक के बीच-बीच में आते रहते हैं, और जिसके प्रभाव से सम्पूर्ण कथा में रसात्मकता आ जाती है। इतिवृत्त पाठक की कथानक को जानने की इच्छा की सन्तुष्टि करता है तो रसात्मक स्थल उसके हृदय की वृत्तियों को लीन कर उसे रसमग्न बनाते हैं। पार्श्वपुराण में ऐसे अनेक स्थल हैं, जो बहुत ही मर्मस्पर्शी एवं रसपूर्ण हैं। तीर्थकर के गर्भ में आने, जन्म लेने, तप के लिये जाने, केवलज्ञान के उत्पन्न होने और मोक्ष प्राप्त करने के अवसर पर जो उत्सव मनाये जाते हैं, उन्हें कल्याणक कहते हैं। कल्याण करने वाले होने से उनकी "कल्याणक" संज्ञा सार्थक है। "पार्श्वपुराण" में भूधरदास ने प्रत्येक कल्याणक का पृथक्-पृथक् सर्गों में वर्णन किया है तथा एक-एक कल्याणक में एक-एक सर्ग पूरा किया है।

इन पाँचों कल्याणकों में गर्भ और जन्म कल्याणक का सरस और मनोहारी वर्णन किया है। जो स्थल रसपूर्ण और मार्मिक बन पड़े हैं, वे हैं — रुचिकवासिनी देवियों द्वारा माता की सेवा,¹ सद्यःजात बाल तीर्थकर का पाण्डुक शिला पर जन्माभिषेक,² इन्द्र का ताण्डव नृत्य³ तथा बालक पार्श्वनाथ की बालक्रीड़ाएँ।⁴

1. पार्श्वपुराण — भूधरदास, कलकत्ता, अधिकार 5 पृष्ठ 49

2. पार्श्वपुराण — भूधरदास, कलकत्ता, अधिकार 6 पृष्ठ 54-55

3. पार्श्वपुराण — भूधरदास, कलकत्ता, अधिकार 6 पृष्ठ 57-58

4. पार्श्वपुराण — भूधरदास, कलकत्ता, अधिकार 7 पृष्ठ 59

इन स्थलों के अतिरिक्त कथानक के बीच-बीच में आयी हुई सूक्तियाँ एवं नीतियाँ¹ कथा सम्बद्ध होने के साथ-साथ अत्यन्त मर्मस्पर्शी एवं प्रभावी बन पड़ी हैं।

कथानक को सुगठित और सुगुम्फित होने के कारण उसका प्रभाव सर्वत्र विद्यमान है। यह प्रभाव पाठक को बांधे रखकर आगे पढ़ने के लिये बाध्य करता है। कवि ने शुष्क एवं नीरस सैद्धान्तिक विषयों को भी अपनी साहित्यिक प्रतिभा से सरस एवं बोधगम्य बना दिया है। कथानक का प्रभाव असत् पर सत् की विजय अथवा अवगुणों पर सदगुणों की विजय के रूप में सर्वत्र झलकता हुआ दिखाई देता है। कवि द्वारा वर्णित विविध जीवन-दशाओं और मानव सम्बन्धों के चित्रण से प्रभावित होता हुआ पाठक रसमग्न हो जाता है। इस प्रकार पार्श्वपुराण अन्विति और प्रभाव से युक्त कथानक है।

अन्विति एवं प्रभाव की दृष्टि से ही पार्श्वपुराण में कवि ने दृश्यों के स्थान और उनकी विशेषताओं को ध्यान में रखकर वर्णनों की योजना की है। काव्य में विविध वस्तुवर्णनों जैसे - द्वीप, नगर, वन, बाग, राज-दरबार, स्वर्ग, नरक, तीन लोक, वस्त्राभूषण, चैत्यालय, जिनप्रतिमा, समवशरण, पंचकल्याणक, पशुपक्षी, इन्द्र, देव, नारकी, बाल-युवा-वृद्धावस्था, पूर्वभव, चक्रवर्ती का वैभव आदि कितने ही हृदयग्राही वर्णनों का समावेश है। यह सब वर्णन देश, काल, परिस्थिति, कथायोजना आदि से पूर्ण मेल खाता है। इस वर्णन में कहीं भी अप्रासंगिकता और अस्वाभाविकता दृष्टिगत नहीं होती है। उदाहरणार्थ -

कुंकुमादि लेपन बहु लिये। प्रभु के देह विलेपन किये ॥

इहि शोभा इस ओसर मांझ। किधो नीलगिरि फूली सांझ ॥

और सिंगार सकल सह कियो। तिलक त्रिलोकनाथ के दियो ॥

मनिमय मुकुट शची सिर धरो। चूड़ामनि माथे बिस्तरो ॥

1. पार्श्वपुराण — भूधरदास, कलकत्ता, अधिकार 1 पृष्ठ 5, 6, 7, 8 तथा
अधिकार— 4 पृष्ठ 26 एवं 29

लोचन अंजन दियो अनूप । लहजस्वामि दृग अंजित रूप ॥

मनिकुण्डल कानन विस्तरे । कियो चंद सूरज अवतरे ॥¹

यह इन्द्राणी द्वारा बालक पार्श्वनाथ को अलंकृत करने का दृश्य है । पार्श्वकुमार राजपुत्र है और राजपुत्र का बहुमूल्य आभूषणों से सजाया जाना अस्वाभाविक नहीं है । यद्यपि यहाँ इन्द्राणी की उपस्थिति के कारण अलौकिकता का समावेश हुआ है, फिर भी अवतार आदि (तीर्थंकर आदि) सेवा में अलौकिक शक्तियों की उपस्थिति जनविश्वास के अनुकूल है । अतः उक्त दृश्य वर्णन, कथा योजना, प्रबन्धनिर्वाह, स्थान, काल, परिस्थिति आदि का पूर्ण सामंजस्य लिए हुए है । इसी प्रकार प्रत्यक्ष न दिखने के कारण स्वर्ग-नरक के दृश्य काल्पनिक हैं किन्तु लोकविश्वास के अनुसार स्वर्ग सुखमय उपादानों का एवं नरक वेदना, कष्ट और घृणा के उपादानों का समूह होता है । ये वर्णन विस्तृत होते हुए भी रस के स्रोत हैं ।²

गजरूप चेष्टाओं एवं क्रीड़ाओं का दृश्य चित्रोपम और स्थानीय विशेषताओं से युक्त होने के कारण बहुत ही सरस बन पड़ा है -

अति उन्नत मस्तक शिखर जासु, मदजीवन झरना झरहिं तास ॥

दीसैं तमखरन विशाल देह, मानो गिरिजंगम दुरस येह ॥

जाको तन नख शिख छोभवन्त, भसुलोपम दीरघ धवलदन्त ॥

मदभीजे झलकैं जुगल गण्ड, छिन छिनसों फेरै सुंड दण्ड ॥³

कबही बहु खंडै बिरछबेलि, कबही रजरंजित करहिं केलि ॥

कबही सरवरमें तिरहिं जाय, कबही जल छिरकैं मत्तकाय ॥

कबही मुखपंकज तोरि देय, कबहीदह कादो अंग लेय ॥⁴

इसी प्रकार वनवर्णन भी संक्षिप्त किन्तु सरस है -

अति सघन सत्त्वकी वन विशाल, जहैं तरुवर तुंग तमाल ताल ।

बहु खेलजाल छाये निकुंज, कहिं सूखि परे तिन पत्रपुंज ॥

1. पार्श्वपुराण — कलकत्ता, अधिकार 6 पृष्ठ 55

2. (क) पार्श्वपुराण — कलकत्ता, अधिकार 4 पृष्ठ 37-38

(ख) पार्श्वपुराण — कलकत्ता, अधिकार 3 पृष्ठ 22 से 24

3 एवं 4. पार्श्वपुराण — कलकत्ता, अधिकार 2 पृष्ठ 9

कहिं सिक्ताथल कहिं शुद्ध भूमि, कहिं कपि तरुछारन रहे झूमि ।
कहिं सजलथान कहिं गिरि उतंग, कहिं रीछ रोझ विछरें कुरंग ॥ ¹

यह वन का स्वाभाविक वर्णन है, जिसकी योजना परिस्थिति निर्माण के लिए की गई है। यहाँ कवि ने प्राकृतिक वैभव को भलीभाँति सजाने की चेष्टा की है।

कवि की वर्णनक्षमता अद्भुत है। वस्तु वर्णनों को दृश्यरूपों में सामने रखने में वह बड़ा सफल हुआ है। ² प्रायः दृश्य प्रसंगों और परिस्थितियों के अनुकूल एवं स्थान व कालगत विशेषताओं से युक्त हैं। उदाहरण के लिए भूताचल पर्वत पर अनेक तपस्वियों द्वारा विभिन्न तपों के रूप में की जाने वाली चेष्टाओं को लिया जा सकता है -

केई रहे अधोमुख झूल। धूवा पान करै अधमूल ॥
केई ऊर्ध्वमुखी अघोर। देखे सर्व गगन की ओर ॥
केई निबसैं ऊरधवाहिं। दुविध दयासों परचै नाहिं ॥
केई पंच अग्नि झल सहैं। केई सदा मौन मुख रहैं ॥
केई बैठे भस्म चढाय। केई मृगछाला तन लाय ॥
नख बढाय केई दुख भरैं। केई जट्य भार सिर धरैं ॥
घों अज्ञान तपलीन मलीन। करें खेद परमारथहीन ॥ ³

इस प्रकार कथानक अनेक विशेषताओं से मुक्त होकर प्रभावपूर्ण बन पड़ा है।

5. महानता एवं पुराणसम्मतता - “पार्श्वपुराण” के नायक “पार्श्वनाथ” जैनियों के तेईसवें तीर्थंकर माने जाते हैं। वे एक महान व्यक्तित्व को लिये हुए हैं। उनके महान् व्यक्तित्व को निरूपित करने वाला होने से “पार्श्वपुराण” का कथानक महान बन पड़ा है।

कवि ने एक ऐसे युगपुरुष को अपने काव्य का नायक बनाया है, जो जीवन की अनेक विषम परिस्थितियों में सुगमता से गुजरकर एक आदर्शभूमि पर खड़ा हो जाता है। यह आदर्श उस युग के लिये भी आदर्श की प्रेरणा देता

1. पार्श्वपुराण — कलकत्ता, अधिकार 2 पृष्ठ 9

2. पार्श्वपुराण — कलकत्ता, अधिकार 5 पृष्ठ 49

3. पार्श्वपुराण — कलकत्ता, अधिकार 1 पृष्ठ 7

है। कवि ने इस आदर्श का यशोगान पार्श्वपुराण के कथानक में करके कथानक को महानता के शिखर पर प्रतिष्ठित किया है।

कथानक का अर्थ है- घटनाओं का समन्वय। महान कथानक का अर्थ है महान घटनाओं का समन्वय। घटनाओं की महानता से तात्पर्य उसके प्रबल प्रभाव एवं देशकाल में उसके विस्तार से है। कोई घटना तभी महान हो सकती है, जब उसका प्रभाव गहरा हो और वह सार्वभौमिक और सार्वकालिक होने की क्षमता अपनी में रखती हो। कथानक की परिणति शुभ और मंगलमय होना भी कथानक की महानता के लिए आवश्यक है। इस दृष्टि से "पार्श्वपुराण" का कथानक उपर्युक्त सभी विशेषताओं से युक्त है। उसमें स्पष्टतः एक ऐसे कथानक को लिया गया है, जो मानव जीवन के चरमलक्ष्य मोक्ष को केन्द्र बिन्दु बनाकर गति प्राप्त करता है। इसलिए कथानक में सर्वत्र भौतिक सुख-समृद्धि को पुण्य का फल निरूपित कर परमानन्द (मोक्ष) प्राप्ति के लिए बाधक मानकर हेय प्ररूपित किया गया है तथा आध्यात्मिक पूर्णता को जीवन का चरम लक्ष्य मानने का सन्देश दिया गया है।

"पार्श्वपुराण" में जो घटनाएँ वर्णित हैं, उनका क्षेत्र बाह्य संसार नहीं; अपितु अन्तर्जगत है। मानवचेतना ही वह अन्तर्जगत है, जहाँ अच्छे बुरे सभी विकार जन्म लेते हैं। अन्तर्चेतना में उद्दीप्त रागद्वेषमयी वृत्तियाँ समग्र जीवन पर गहरा प्रभाव डालती हैं। रागद्वेषात्मक वृत्तियों के इस गहरे प्रभाव से "पार्श्वपुराण" के कथानक में भी महानता आ गयी है। इन वृत्तियों में बैर की वृत्ति को कमठ का जीव मरुभूति के जन्म से आगामी कई जन्मों में लिए रहता है, जबकि पार्श्वनाथ का जीव प्रत्येक जन्म में क्षमा धारण करते हैं। इस प्रकार वैर और क्षमा की वृत्ति को धारण किये हुए कथानक वहाँ चरमावस्था को प्राप्त होता है, जहाँ अन्तिम जन्म में पार्श्वनाथ "संवर" नामक ज्योतिषी देव के उपसर्ग किये जाने पर भी तीर्थकर बन जाते हैं और "संवर" देव अपनी करनी पर पश्चात्ताप करता हुआ पार्श्वनाथ की शरण ले लेता है। कथानक में तीर्थकर के पंचकल्याणकों को भी महान अवसर मानकर जोड़ दिया है, जिससे भी कथानक महानता से युक्त हो गया है। कथानक को महान बनाने में पार्श्वनाथ का पूर्वजन्मों में महामंडलीक राजा, चक्रवर्ती राजा, इन्द्र, अहमिन्द्र बनना तथा

पार्श्वनाथ के जन्म में समवशरण आदि बाह्य विधूति से युक्त तीर्थंकर पद पाना है। कथानक की गरिमा इन बाह्य भौतिक उपलब्धियों से उतनी नहीं है, जितनी वीतरागी होकर इन सबसे निर्लिप्त रहने में है। दूसरे को जीतने या प्राप्त करने की अपेक्षा अपने को जीतना या प्राप्त करना, कठिन किन्तु सर्वाधिक गौरवपूर्ण है। इसी गरिमा को लिए हुए “पार्श्वपुराण” का कथानक महान कथानक बन गया है।

भूधरदास द्वारा रचित महाकाव्य का नाम “पार्श्वपुराण” है “पार्श्व” शब्द का अर्थ तीर्थंकर पार्श्वनाथ तथा “पुराण” शब्द का अर्थ पुरातन पुरुषों का चरित्र है। लाक्षणिक अर्थ में प्राचीन आख्यान को भी पुराण कहा जाता है। जैन पुराणों का प्रतिपाद्य लगभग समान रहता है। जैनपुराणों का प्रतिपाद्य विषय-क्षेत्र (तीन लोक), (काल तीन काल), तीर्थ (सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यग्चारित्र्य), सत्पुरुष (त्रिषष्टिशलाका महापुरुष), सत्पुरुषों की पाप से पुण्य की ओर प्रवृत्ति आदि है।¹ “पार्श्वपुराण” का प्रतिपाद्य भी उपर्युक्त सभी हैं जिनका विवेचन यथास्थान किया गया है।

“पार्श्वपुराण” का कथानक महान होने के साथ-साथ पुराणसम्मत भी है। भूधरदास ने “पार्श्वपुराण” की रचना पूर्व के अनेक पुराणों से आधार ग्रहण करके की है। उनके पूर्व अनेक पुराणों में पार्श्वनाथ के जीवन चरित्र पर प्रकाश डाला गया है। उन्होंने अपने “पार्श्वपुराण” में उन्हीं सब पुराणों से सम्मत कथानक प्रस्तुत किया है। भूधरदास के पूर्ववर्ती कतिपय पुराण निम्नलिखित हैं, जिनसे उन्होंने अपने कथानक को ग्रहण किया है -

1. जिनसेन द्वितीय, पार्श्वभ्युदय - नवीं शती
2. गुणभद्र, उत्तरपुराण - नवीं शती
3. पद्मकीर्ति, पार्श्वपुराण - दसवीं शती
4. दामनन्दि, पुराणसंग्रह - दसवीं शती
5. मल्लिषेण, महापुराण - दसवीं शती

6. पुष्पदन्त कवि, महापुराणतिसष्टिमहापुरिस - दसवीं शती
7. वादिराज द्वितीय, पार्श्वनाथ चरित्र - ग्यारहवीं शती
8. पद्मकीर्ति, पारसणाह चरित - ग्यारहवीं शती
9. कवि श्रीधर द्वितीय, पासणाह चरित - बारहवीं शती
10. पं. आशाधर, त्रिषष्टिस्मृतिशास्त्र - तेरहवीं शती
11. शाह ठाकुर, महापुराणककिला - तेरहवीं शती
12. कवि तेजपाल, पासपुराण - पन्द्रहवीं शती
13. शुभचन्द्र भट्टारक, पार्श्वनाथ काव्य पंजिका - सोलहवीं शती
14. वादिचन्द्र, पार्श्वपुराण - सोलहवीं शती ।
15. चन्द्रकीर्ति पार्श्वनाथ पुराण - सत्तरहवीं शती ।

“पार्श्वपुराण” का कथानक उपर्युक्त पुराणों पर आधारित होने से पुराणसम्मत ही है । इसकी पुष्टि कवि के निम्नांकित कथन से भी होती है -

प्रभु चरित्र मिस किमपि यह कीनो प्रभु गुनगान
श्री पारस परमेश को पूरन भयो पुरान ॥
पूरख चरित विलौकिकै भूधरबुद्धि समान ।
भाषाबन्ध प्रबन्ध यह कियो आगरे धान ॥ ¹

तुल्लक जिनेन्द्र वर्णी तो भूधरदासकृत पार्श्वपुराण को पद्मकीर्ति (समय 942 ईस्वी) द्वारा रचित “पार्श्वपुराण” का भाषानुवाद तक मानते हैं । ² इस प्रकार भूधरदास द्वारा रचित पार्श्वपुराण का कथानक पूर्णतः पुराणसम्मत है ।

6. परम्परागतता एवं नवीन उद्भावनाएं - यद्यपि कवि ने पूर्वपुराणों में वर्णित पार्श्वनाथ के सम्पूर्ण चरित्र को मोटे तौर पर ग्रहण किया है तथापि उसे अपनी कल्पना की कूची से संवारा भी है । तीर्थंकर पार्श्वनाथ के परम्परागत आख्यान में अपनी मौलिक उद्भावनाओं को समाहित कर नये रूप में प्रस्तुत किया है अतः पार्श्वपुराण का कथानक परम्परागत होने के साथ-साथ नवीन उद्भावनाओं से युक्त बन पड़ा है ।

1. पार्श्वपुराण — कलकत्ता, अधिकार 9 पृष्ठ 95

2. तुल्लक जिनेन्द्र वर्णी— जिनेन्द्र सिद्धान्त कोश भाग 3, पृष्ठ 56

कवि द्वारा परम्परागत वर्णन के रूप में पूर्व के नौ जन्मों का विस्तृत विवेचन तथा वर्तमान जन्म में तीर्थंकर पार्श्वनाथ के गर्भ में आने के छह माह पूर्व से जन्म होने तक रत्नों की वर्षा होना, गर्भ में आने के समय माता को सोलह स्वप्न दिखना, रुचिकवासिनी देवियों द्वारा माता की सेवा करना, जन्म होने पर दस अतिशय होना, तीर्थंकर के शरीर का एक हजार आठ लक्षणों सहित होना, देवों द्वारा गर्भ, जन्म, तप, ज्ञान, निर्वाण - पंचकल्याणक मनाये जाना, केवलज्ञान होने पर दस अतिशय होना, देवकृत चौदह अतिशय होना, आठ प्रातिहार्य होना इत्यादि सभी का वर्णन किया गया है ।

मौलिक या नवीन उद्भावनाओं के रूप में कवि ने पूर्वभवावलियों (पूर्व जन्मों) के चित्रण द्वारा कथा की रोचकता, आत्मोत्थान और आत्मपतन की पराकाष्ठा, तथा आत्मविश्वास की अनेक भूमियों का कथन किया है ।

पुण्य और पाप के फलस्वरूप प्राप्त होने वाले स्वर्ग व नरक का विस्तृत विवेचन, कथानक में शान्तरस की प्रमुखता और धर्मभावना की अधिकता, जैनधर्म एवं दर्शन के प्रमुख विषयों व तत्त्वों के वर्णन की बहुलता, लोकोक्तियों एवं मुहावरों के प्रयोग द्वारा नीति और व्यवहार के कथनों का समावेश, चरित्र चित्रण में अतिमानवीय (इन्द्र, इन्द्राणी, देव, देवियाँ का कथन) तथा मानवीय पात्रों का वर्णन, मानवीय पात्रों में उत्तम (पार्श्वनाथ) मध्यम (अनेक राजपुरुष) और जघन्य (कमठ का जीव) पात्रों के चरित्रों का वर्णन, नायक पार्श्वनाथ के चरित्र के माध्यम से भक्ति भावना की अभिव्यक्ति तथा भक्तिभावना के द्वारा धार्मिक एवं आध्यात्मिक भावना की पुष्टि, संसार, शरीर एवं भोगों से विरक्ति एवं नैतिक मूल्यों आदि अनेक विषयों पर बल देते हुए सार्वकालिक, सार्वभौमिक एवं सार्वजनिक आदर्शों की प्रेरणा, रसनिरूपण द्वारा रति, वात्सल्य, निर्वेद, क्रोध, घृणा आदि सभी मानवीय भावों का वर्णन, प्रकृति चित्रण के अन्तर्गत मुनिराज द्वारा बावीस परीषहों को सहन करने अर्थात् उन पर विजय प्राप्त करने के सन्दर्भ में प्रकृति या प्राकृतिक तत्वों का विशिष्ट वर्णन एवं शान्तरस को उद्दीप्त करने वाले अनेक प्राकृतिक दृश्यों या रूपों का वर्णन, सम्पूर्ण भावों, विचारों, कथ्यों या वर्ण्य-विषयों की प्रचलित एवं साहित्य की भाषा (ब्रजभाषा) में अभिव्यक्ति,

ब्रजभाषा में सरलता, सहजता, माधुर्य, लालित्य, सौकुमार्य, कलात्मकता आदि अनेक गुणों का होना, लोक जीवन के विशिष्ट शब्दों, मुहावरों, लोकोक्तियों, उपमानों आदि के प्रयोग द्वारा भाषा की विशिष्ट समृद्धि, अनेक छन्दों, राग-रागनियों एवं शैलियों का प्रयोग, ढाल के रूप में देशी संगीत का विधान, लोक संगीत के अन्तर्गत टेक शैली की प्रमुखता आदि अनेक विशेषताओं को नवीन उद्भावनाओं के रूप में वर्णित किया जा सकता है। इस प्रकार भूधरदास द्वारा वर्णित समग्र विषयवस्तु परम्परागत होकर भी मौलिक है। अतः उसमें परम्परागतता और नवीन उद्भावनाएँ - दोनों का विशिष्ट स्थान बन गया है। दूसरों शब्दों में भूधरदास के वर्ण्य-विषय (कथानक) को परम्परानुमोदित जानकर भी मौलिक मानना चाहिए।

7. प्रबन्ध काव्य की दृष्टि से कथानक पर विचार एवं प्रबन्ध की विशेषताएँ - भारतीय एवं पाश्चात्य सभी आचार्य इस सम्बन्ध में एक मत है कि प्रबन्धकाव्य की कथावस्तु अव्याहत, सुश्रृंखलित एवं सुविन्यस्त हो, उसकी प्रबन्ध धारा अटूट हो। यही कारण है कि भारत और पश्चिम में इसके लिए सर्गबद्ध होना आवश्यक बतलाया है। प्रबन्धकाव्य के कथानक की सफलता के लिए नाट्यसन्धियों का विधान होना अथवा कथानक का आदि, मध्य और अन्त सुस्पष्ट होना आवश्यक है। "पार्श्वपुराण" में नाट्यसन्धियों का विधान भले स्पष्ट न हो; परन्तु उसका आदि, मध्य और अन्त अत्यन्त स्पष्ट है। पूर्व के नौ जन्मों की कथा आदि, वर्तमान पार्श्वनाथ के रूप में जन्म लेना मध्य तथा तीर्थकरत्व प्राप्तकर सिद्ध बन जाना अन्त है। कथा के आदि भाग के नौ जन्मों की सभी घटनाएँ, मध्य भाग की घटनाओं की ओर प्रवाहित होते हुए अन्त में काव्य के उद्देश्य की प्राप्ति (पार्श्वनाथ के सिद्ध बन जाने) में समाप्त होती हैं।

"पार्श्वपुराण" की मुख्य घटना या आधिकारिक कथा है - पार्श्वनाथ का तीर्थकरत्व प्राप्तकर सिद्ध होना। शेष सभी घटनाएँ या प्रासंगिक कथाएँ जैसे - पूर्व के नौ जन्म, पंचकल्याणकों का विशद विवेचन, समवशरण प्रवर्तन द्वारा धर्मोपदेश आदि उसके इर्द-गिर्द ही घूमती हैं। आधिकारिक कथा का आदि, मध्य और अन्त तो सुनियोजित है ही, परन्तु प्रासंगिक कथाएँ भी पार्श्वनाथ के

चरित्र को उत्कर्ष प्रदान करने के साथ-साथ मुख्य कथानक के साथ एकजीव हैं।

भूधरदास ने “पार्श्वपुराण” में यत्र तत्र उपदेश एवं जैनसिद्धांतों का वर्णन करने का प्रयास किया है। यद्यपि धार्मिक उपदेशों एवं सैद्धान्तिक विवेचनों से कथानक के प्रवाह में बाधा पड़ती है; परन्तु भूधरदास “पार्श्वपुराण” को महाकाव्य के साथ-साथ धर्मग्रन्थ भी बनाना चाहते थे कदाचित् इसीलिए यह शिथिलता परिलक्षित होती है।

भूधरदास द्वारा रचित “पार्श्वपुराण” रीतिकालीन महाकाव्य श्रृंखला की एक महत्त्वपूर्ण कड़ी है। यह रीतिकाल का श्रेष्ठ महाकाव्य है। यह महाकाव्य विषयक अन्तः और बाह्य लक्षणों की कसौटी पर लगभग पूरा उतरने वाला काव्य है। वह महत् नायक, महदुद्देश्य, श्रेष्ठ कथानक, उच्च वस्तु-व्यापार दर्शन, रसाभिव्यंजना, उदात्तशैली आदि की दृष्टि से सफल महाकाव्य प्रतीत होता है। यद्यपि उसमें स्वर्ग, नरक आदि के लम्बे वर्णनों से कथानक यत्र तत्र उलझ गया है और उसका अन्तिम सर्ग धार्मिक एवं दार्शनिक तत्त्वों की अतिशयता से प्रबन्ध की भूमि पर भारस्वरूप बन गया है फिर भी इस प्रबन्ध की अनेक विशेषताएँ दृष्टिगोचर होती हैं, जो निम्नलिखित हैं -

1. काव्य की भित्ति जैनदर्शन एवं जैनधर्म पर आधारित है।
2. काव्य सामाजिक व राजनैतिक कम तथा पौराणिक, दार्शनिक व धार्मिक अधिक है।
3. परम्परापालन के साथ नवीनता का समावेश है।
4. प्रेम, श्रृंगार के सीमित दृश्य तथा भक्ति व शान्तरस की अधिकता है।
5. नायक धीरोदात्तगुणसमन्वित तीर्थंकर महापुरुष है।
6. काव्यरचना द्वारा हिंसा पर अहिंसा, असत्य पर सत्य, वैर पर क्षमा, राग पर विराग, पाप पर पुण्य की विजय का उद्घोष किया गया है।
7. चतुर्वर्गफलप्राप्ति में अर्थ और काम को हीनता तथा धर्म और मोक्ष को प्रधानता दी गई है।

8. विवेक, धैर्य, साहस, पुरुषार्थ आदि से नायक को अभीष्टफल (मोक्ष) की प्राप्ति प्रदर्शित की गई है।
9. कथानक द्वारा तीर्थंकर के चरित्र का गान तथा उनके उदात्त चरित्र से प्रेरणा ग्रहण करने का उपदेश दिया गया है।
10. काव्यरचना द्वारा सदाचरण पर बल तथा नैतिक आदर्शों की स्थापना की गई है।
11. दार्शनिक परिपार्श्व में तात्त्विक विवेचन तथा शुद्धात्मतत्त्व पर बल दिया गया है।
12. ज्ञान और वैराग्य के प्रेरक गुरु की भक्ति की गई है।
13. मानव हृदय को विलोडित करने वाले रति, निर्वेद, क्रोध, घृणा, वात्सल्य, भक्ति आदि सभी भावों का वर्णन किया गया है।
14. कवि द्वारा जैन-आस्थाओं को व्यक्त करते हुए लोकभाषा, लोकछन्द, लोकसंगीत एवं लोकप्रिय कथानक के माध्यम से साहित्य सर्जना की गई है।
15. साहित्य सर्जना द्वारा जैनधर्म के प्रचार एवं प्रसार में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया गया है।
16. ब्रजभाषा के सहज और कलात्मक - दोनों रूपों का प्रस्तुतीकरण किया गया है।
17. कवि ने लोक जीवन के विशिष्ट शब्दों, मुहावरों, लोकोक्तियों, उपमानों आदि का चयनकर भाषा की समृद्धि में समुचित योगदान दिया है।
18. कवि द्वारा इतिवृत्त, उपदेश, संवाद या प्रश्नोत्तर, निषेध, प्रबोधन, व्यंग्य या भर्त्सना, संबोधन, मानवीकरण या मूर्तिकरण, गीत, सटेक गीत आदि अनेक शैलियों का प्रयोग किया गया है।

इस प्रकार पार्श्वपुराण अनेक विशेषताओं से युक्त "महाकाव्य" है।

(ख) पार्श्वपुराण में चरित्र-चित्रण

चरित्र-चित्रण महाकाव्य का सबसे महत्वपूर्ण तत्त्व है। पात्रों के चरित्र द्वारा ही कथानक विकसित होता है तथा महत्व प्राप्त करता है। कथानक की दृष्टि से मुख्यतः पात्रों के दो भेद किए जाते हैं -

(1) प्रधान पात्र

(2) गौण पात्र

जिन पात्रों से कथानक का मुख्य रूप से और सीधा सम्बन्ध होता है, जो कथानक को गति देते हैं या उससे विकास पाते हैं, उन्हें प्रधान पात्र कहा जाता है।

जिन पात्रों से कथानक का सीधा सम्बन्ध नहीं होता है और जो कथानक में प्रमुख पात्रों के साधन बनकर उपस्थित होते हैं, उन्हें गौण पात्र कहा जाता है।

प्रधान पात्रों में नायक, नायिका, प्रतिनायक, प्रातिनायिका आते हैं। कथानक में सर्वप्रधान पात्र, जो आरम्भ से अन्त तक कथानक को अपने लक्ष्य की ओर अग्रसर करता है, कथानक के सभी तत्त्व जिसे धुरी मानकर चलते हैं तथा जिसे फलप्राप्ति होती है, वही उसका नायक होता है। इन्हीं गुणों से युक्त प्रधान स्त्री-पात्र को नायिका कहा जाता है। सामान्यतः नायक की पत्नी या प्रेयसी नायिका होती है, परन्तु यह आवश्यक नहीं है। इसी तरह कथानक में नायक और नायिका इन दोनों का एक साथ होना भी आवश्यक नहीं है। नायक के लक्ष्य प्राप्ति के प्रयत्नों में कुछ सहायक और कुछ बाधक होते हैं, इन्हें प्रतिनायक या खलनायक तथा प्रातिनायिका या खलनायिका कहते हैं।

इनके अतिरिक्त अन्य पात्र भी होते हैं, जिनका सम्बन्ध आधिकारिक कथा से उतना घनिष्ठ नहीं होता और जिनका प्रवेश प्रधान पात्रों के साधन के रूप में होता है। इन्हें गौण पात्र कहा जाता है। इनकी आवश्यकता वातावरण की गम्भीरता कम करने, कथानक को गति देने, अन्य पात्रों के चरित्र को प्रकाश में लाने आदि के लिए होती है।

चरित्र-चित्रण के उपर्युक्त विभाजन के आधार पर "पार्श्वपुराण" में प्रधान और गौण - दोनों प्रकार के पात्र मिलते हैं। प्रधानपात्रों में पार्श्वनाथ और संवर नामक ज्योतिषी देव (कमठ) को लिया जा सकता है। गौण पात्रों में पार्श्वनाथ के अनेक जन्मों से सम्बन्धित माता-पिता, बन्धु-बान्धव, मित्रादि को लिया जा सकता है। पार्श्वनाथ के चरित्र सुनने के इच्छुक राजा श्रेणिक तथा इन्द्र आदि भी गौण पात्रों में गिने जाएंगे।

प्रधान पात्रों का चरित्र-चित्रण

नायक : पार्श्वनाथ :- कथानक के फल प्राप्त करने वाले या अधिकारी को नायक कहते हैं। यह कथानक का प्रमुख पात्र होता है। कथानक की सभी घटनाएँ उसी के अभिमुख होकर घटती हैं और वही प्रमुख कार्यों का कर्ता होता है। शेष पात्र उसके सहायक होते हैं और उसी के चरित्र को उजागर करते हैं। यही सामाजिकों को रसदशा तक ले जाता है।

भारतीय आचार्यों के अनुसार नायक चार प्रकार के माने गये हैं - धीरोदात्त, धीरप्रशान्त, धीरललित और धीरोद्धत। इन चारों में भारतीय काव्यशास्त्र के अनुसार महाकाव्य का नायक धीरोदात्त होना चाहिए। धीरोदात्त के लक्षण के सम्बन्ध में दशरूपककार का कथन है कि "धीरोदात्त नायक अपने संवेगों पर नियन्त्रण रखने वाला, अतिगम्भीर, क्षमावान्, आत्मश्लाघा न करने वाला, अहंकारशून्य एवं दृढ़व्रत होता है।"¹

धीरोदात्त नायक के उपर्युक्त गुणों के आधार पर पार्श्वनाथ धीरोदात्त नायक ही सिद्ध होते हैं। पार्श्वनाथ के जन्म में तो वे धीरोदात्त नायक के गुणों से युक्त हैं ही; परन्तु कवि द्वारा वर्णित पूर्व के नौ जन्मों में भी वे सद्गुणों से युक्त ही बतलाये गये हैं। पहले जन्म में वे पोदनपुर के राजा अरविन्द के मंत्री विश्वभूति के छोटे पुत्र मरुभूति थे। उनके बड़े भाई का नाम कमठ था। मरुभूति और कमठ दोनों सगे भाई होने पर भी उन दोनों के स्वभाव में बहुत अन्तर था। मरुभूति सरल परिणामी और सज्जन था जब कि कमठ कठोर परिणामी और दुर्जन था -

“जेठो नंदन कमठ कुपूत । दूजौ पुत्र सुधी मरूभूत ॥

जेठो मतिहेठो कटिल, लघुसुत सरल स्वभाव ।

विष अमृत उपजे जुगल, विप्र जलधि के जाव ॥¹

अपनी अति सज्जनता, नीति-निपुणता एवं सब गुणों से युक्तता के कारण मरूभूति राजा और प्रजा सबको इष्ट था । सब उसे बहुत चाहते थे ।² कमठ द्वारा मरूभूति की पत्नी के साथ दुराचार कर लेने पर भी मरूभूति राजा से कमठ को क्षमा करने की बात कहता है -

दुज कहै सरल परिनामी । अपराध छिमा कर स्वामी ॥³

राजा द्वारा कमठ को अपमानित कर देश निकाला दिये जाने पर मना करने के बावजूद भी मरूभूति कमठ से मिलने भूताचल पर्वत पर चला जाता है, बदले में चाहे उसे मृत्यु का वरण ही क्यों न करना पड़ा हो ?

“बरजत गयो दुष्ट के पास, कुमरण सहो सहो बहु त्रास ॥⁴

इस प्रकार मरूभूति के जन्म में पार्श्वनाथ क्षमा और उदारता को मरण प्राप्त होने पर भी नहीं छोड़ते हैं ।

दूसरे जन्म में आर्तध्यान के कारण यद्यपि वे हाथी बनते हैं तथापि मुनि राज के धर्मोपदेश से सम्यग्दर्शन सहित संयम का पालन करते हुए त्रसकाय के जीवों की हिंसा नहीं करते तथा समता भाव धारण करते हैं-

“अब हस्ती संजम साथे । त्रस जीव न भूल विराधै ॥

समभाव छिमा उर आने । अरि मित्र बराबर जानै ॥⁵

तीसरे जन्म में वे स्वर्ग में देव बनते हैं । देवोचित अद्भुत ऐश्वर्ययुक्त होकर भी वे पूजादि शुभकार्यों में संलग्न रहते हैं -

“सदा सासते श्री जिनधाम, पूजा करी तहाँ अभिराम ।

महामेरू नन्दीसुर आदि, पूजे तहाँ जिनबिम्ब अनादि ॥⁶

1. पार्श्वपुराण— कलकत्ता, अधिकार 1, पृष्ठ 5

2. पार्श्वपुराण— कलकत्ता, अधिकार 1, पृष्ठ 5

3. पार्श्वपुराण— कलकत्ता, अधिकार 1, पृष्ठ 6

4. पार्श्वपुराण— कलकत्ता, अधिकार 1, पृष्ठ 8

5. पार्श्वपुराण— कलकत्ता, अधिकार 2, पृष्ठ 11

6. पार्श्वपुराण— कलकत्ता, अधिकार 2, पृष्ठ 11

देव शरीर छोड़कर चौथे जन्म में वे विद्युतराजा की विद्युतमाला नाम की रानी के गर्भ से अग्निवेग नामक सुन्दर, सुलक्षणवान, सोमप्रकृति, अति प्रवीण एवं जिनपूजा में तत्पर पुत्र के रूप में जन्म लेते हैं ।¹

एक दिन गुरुपदेश सुनकर मुनि दीक्षा अंगीकार कर लेते हैं । अजगर द्वारा डसने पर समता भावों से शरीर त्याग पुनः सोलहवाँ स्वर्ग प्राप्त करते हैं-

“मिले साधु संजमधरधीर, समभावनतै तज्यों शरीर ।

लीनों स्वर्ग सोलहवें वास, जो नित निरूपय भोग निवास ॥”²

देवशरीर के पश्चात् बज्रवीर्य राजा की विजयारानी के यहाँ चौसठ लक्षणों से युक्त वज्रनाभि नाम के पुत्र होते हैं ।³

वज्रनाभि चक्रवर्ती पद प्राप्त करते हैं तथा पूजा, दान, सामायिक, उपवास आदि धार्मिक कार्य करते हुए नीति से प्रजापालन करते हैं ।⁴

गुरु का उपदेश सुनकर विरक्त होकर निर्ग्रन्थ मुनि दीक्षा ले लेते हैं -

“गुरु उपदेश्यो धर्मशिरोमनि, सुनि राजा वेरागे ।

राज रमा वनितादिक जे रस, ते रस वेरस लागे ॥”⁵

“परिग्रहपोट उतारि सब, लीनो चारित पंथ ।

निज स्वभाव में धिर भये, वज्रनाभि निरग्रन्थ ॥”⁶

कमठ का जीव अजगर से नारकी बनकर भील बनता है तथा मुनिराज को मारता है । मुनिराज समता भावों से शरीर का त्याग करते हैं तथा स्वर्गलोक में अहमिन्द्र पद प्राप्त करते हैं -

“देहत्याग तब भये मुनिन्द्र । मध्यम त्रैवेयक अहमिन्द्र ॥”⁷

1. पार्श्वपुराण— कलकत्ता, अधिकार 2, पृष्ठ 12

2. पार्श्वपुराण— कलकत्ता, अधिकार 2, पृष्ठ 13

3. पार्श्वपुराण— कलकत्ता, अधिकार 2, पृष्ठ 14

4. पार्श्वपुराण— कलकत्ता, अधिकार 3, पृष्ठ 17

5. पार्श्वपुराण— कलकत्ता, अधिकार 3, पृष्ठ 17

6. पार्श्वपुराण— कलकत्ता, अधिकार 3, पृष्ठ 19

7. पार्श्वपुराण— कलकत्ता, अधिकार 3, पृष्ठ 19

अहमिन्द्र पद से च्युत होकर वे वज्रबाहु राजा तथा प्रभाकरी रानी के आनन्दकुमार पुत्र होते हैं। वे अनेक लक्षणों से युक्त महामंडलीक राजा बन जाते हैं। श्वेत केश देखकर राजा ससार एव भोगों से विरक्तचित्त हो जाते हैं -

सो लखि सेत बाल भूपाल। भोग उदास भये तत्काल ॥

जगतरीति सब अधिर असार। चितै चित में मोह निवार ॥²

आनन्द मुनिराज सोलहकारण भावनाओं को भाकर तीर्थकर प्रकृति का बन्ध करते हैं -

“सोलहकारण ये भवतारन, सुमरत पावन होय हियो।

भावैं श्री आनन्द महामुनि, तीर्थकर पद बन्ध कियो।³

कमठ का जीव सिंह बनकर आनन्द मुनि का घात करता है -

“देखि दिगम्बर केहरि कोप्यो, पूर्वभवान्तर बैर दह्यो।

थायो दुष्ट दहाइ ततच्छन, आन अचानक कंठ गह्यो ॥⁴

मुनि अपने शुभभावों से नहीं डिगते हैं, जिसके फलस्वरूप आनन्द स्वर्ग में इन्द्रपद प्राप्त करते हैं -

“अंत समय परजंत तपोधन, शुभभावन सों नाहि चये।

आनन्द नाम स्वर्ग में स्वामी, सुरगन पूजित इन्द्र भये ॥⁵

इन्द्र पद में भी वे नन्दीश्वर द्वीप आदि जाकर दर्शन पूजन आदि करते हैं, तत्त्वचर्चा आदि शुभकार्यों में अपना समय व्यतीत करते हैं -

“इहविधि विविध करै शुभकाज। महापुन्य संचै सुरराज ॥”⁶

उपर्युक्त नौ जन्मों में पार्श्वनाथ प्रत्येक जन्म में दया, क्षमा, समता, निरहंकार, अपरिग्रह आदि गुणों से युक्त ही दृष्टिगत होते हैं। प्रत्येक जन्म में उनका चरित्र धीरोदात्त नायक के अनुरूप ही दिखलाई देता है।

इन्द्र की आयु के छह मास शेष रहने पर इक्ष्वाकुवंशीय, काश्यपगोत्रीय

1. पार्श्वपुराण— कलकत्ता, अधिकार 3 पृष्ठ 19

2. वही, अधिकार 4, पृष्ठ 26

4. वही, अधिकार 4, पृष्ठ 36

6. वही, अधिकार 4, पृष्ठ 40

3. वही, अधिकार 4, पृष्ठ 29

5. वही, अधिकार 4, पृष्ठ 37

वाराणसी नरेश अश्वसेन के यहाँ कुबेर द्वारा प्रतिदिन साढ़े तीन करोड़ रत्नों की वर्षा की जाती है -

“साढ़े तीन करोड़ परवान, यो नित बरषे रतन महान ।¹

देवों द्वारा पार्श्वनाथ के गर्भ में आने के छह महीने पहिले से पंचाश्चर्य किये जाते हैं -

“देवन किये छह मास लो, पंचाक्षरज अनूप ।

देखि देखि प्रजा भई, आनन्द अक्षरज रूप ॥”²

इसी प्रकार गर्भकाल के नौ माह में भी पूर्ववत् पंचाश्चर्य होते रहते हैं-

“पूर्ववत् नव मास लो, पंचाक्षरज अनूप ।

अश्वसेन भूपालघर, किये धनद सुखरूप ॥”³

पार्श्वनाथ के गर्भ में आने के पहले महारानी वामादेवी को चौथे प्रहर में सोलह स्वप्न दिखाई देते हैं -

“पच्छिम रैन रही जब आय, सौलह सुपनै देखे माव ।”⁴

कुलगिरिवासिनी देवियों द्वारा माता का गर्भशोधन किया जाता है ।

“तिनकी गर्भशोधना करो, निजनियोग सेवा मनघरो ।”⁵

वैशाख कृष्ण द्वितीया के दिन विशाखा नक्षत्र में पार्श्वनाथ वामादेवी के गर्भ में आते हैं -

“कृष्ण पाख वैशाख दिन, दुतिया निशि अवसान ।

विमल विशाखा नखत में, बसे गर्भ जिन आन ॥”⁶

देव परिवार सहित उनका गर्भकल्याणक मनाने बनारस नगर में आते हैं-

“चढ़ि विमान परिवार समेत । चढ़े गर्भकल्याणक हेत ॥”⁷

रूचकवासिनी देवियाँ माता की सेवा करने तथा उनका मनोरंजन करने आती हैं -

“जथाजोग सब सेवा करै, छिन छिन जिनजननी मन हरै ॥”⁸

1. पार्श्वपुराण— कलकत्ता, अधिकार 5 पृष्ठ 46

3. वही, अधिकार 5, पृष्ठ 50

5. वही, अधिकार 5, पृष्ठ 48

7. वही, अधिकार 5, पृष्ठ 49

2. वही, अधिकार 5, पृष्ठ 46

4. वही, अधिकार 5, पृष्ठ 46

6. वही, अधिकार 5, पृष्ठ 49

8. वही, अधिकार 5, पृष्ठ 49

गर्भ के नौ माह पूर्ण होने पर पौष कृष्ण एकादशी को पार्श्वनाथ का जन्म होता है। जन्म होने पर दस अतिशय होते हैं तथा देव पार्श्वनाथ का जन्मोत्सव मनाने बनारस नगर में आते हैं —

“निरन्तर बनारसि नगर धाम, पार्श्वपति जनयो ज्ञान आन ।

प्रभु जन्म कल्याणक करन काज, उद्यम आरम्भो देवराज ॥”¹

पार्श्वनाथ के जन्मकल्याणक मनाने के पश्चात् देव अपने-अपने स्थान चले जाते हैं और पार्श्वनाथ देवकुमारों के साथ क्रीड़ा करते हुए बाल्यकाल व्यतीत करके अनेक विद्याओं और अनेक कलाओं को बिना ही गुरु के सिखाये सीखकर यौवनावस्था प्राप्त कर लेते हैं। वे माता पिता द्वारा बहुत प्रयत्न किये जाने पर विवाह से इन्कार कर देते हैं; जिससे माता पिता बहुत दुःखी होते हैं—

“सुन नरेन्द्र लोचन भरे, रहे वदन धिलखाय ।

पुत्र व्याह वर्जन वचन, किसे नहीं दुखदाय ॥”²

एक दिन पार्श्वनाथ वन विहार के समय अपने नाना को पंचाग्नि तप करते देखते हैं। लकड़ी के बीच नाग नागिनी का जोड़ा देखकर वे उन्हें लकड़ी जलाने से रोकते हैं। पार्श्वनाथ के नाना उनकी बात तब तक नहीं मानते, जब तक वे लकड़ी को फाड़कर नहीं देख लेते। लकड़ी फाड़ते ही उसमें से अधजले नाग नागिनी निकलते हैं। पार्श्वनाथ उन्हें सम्बोधित करते हैं, जिसके फलस्वरूप शुभभावों से मरकर वे धरणेन्द्र-पद्मावती बन जाते हैं। पार्श्वनाथ के नाना मरकर “संवर” नामक ज्योतिषी देव बन जाते हैं। इस प्रकार पार्श्वनाथ जन्म से ही प्रतिभाशाली, चमत्कृत बुद्धिनिधान, अनेक सुलक्षणों के धनी, विरक्तहृदय, दयावान एवं परोपकारी हैं। अयोध्या के दूत के मुख से अयोध्या में तीर्थंकर के अवतार लेने आदि की विशेष बातें सुनकर पार्श्वनाथ विरक्त हो जाते हैं -

“सुनि दूत वचन वैरागे, निज मन प्रभु सोचन लागे ॥”³

विरक्त होने पर वे वैराग्य की दृढ़ता के लिए बारह भावनाओं का चितवन करते हैं -

“ये दशदोय भावना भाय । दिढ़ वैरागि भये जिनराय ॥”⁴

1. पार्श्वपुराण— कलकत्ता, अधिकार 6 पृष्ठ 51

3. वही, अधिकार 7, पृष्ठ 63

2. वही, अधिकार 6, पृष्ठ 61

4. वही, अधिकार 7, पृष्ठ 64

वैराग्य होने पर लौकान्तिक देव वैराग्य की अनुमोदना के लिए आते हैं -

“इतनै लोकान्तिक सुन आय, पुष्पांजलि दे पूजे घाय ॥”¹

अन्य सभी देव पार्श्वनाथ का दीक्षा (तप) कल्याणक मनाने के लिए परिवार सहित आते हैं -

“अब चौविधि इन्द्रादिक देव । चढ़ि निज निज बाहन बहुभेद ।

हर्षित उर परिवार समेत । आये तृतीय कल्याणक हेत ॥”²

पार्श्वनाथ पालकी में बैठकर दीक्षा के लिए वन में जाते हैं । पालकी से उतरकर सिद्धों को नमस्कार कर पंचमुष्टि केशलोच कर नग्न दिगम्बर मुनि बनकर समता भाव अंगीकार करते हैं -

“शत्रु मित्र ऊपर समभाव, तिन कंचन गिन एक सुभाव ।

सोमभाव स्वामी उर धार, पटभूषन सब दीने डार ॥”³

एक बार जब पार्श्वनाथ अहिक्षेत्र के वन में ध्यानस्थ थे तब कमठ का जीव जो उनके नाना के जन्म से मरकर संवर देव बना था, आकाश मार्ग से जा रहा था । पार्श्वनाथ को देखकर उसका पूर्व वैर जागृत हो गया और उसने पार्श्वनाथ पर घोर उपसर्ग किया । पानी बरसाया, ओले बरसाये, भयंकर तूफान चलाया और पत्थर तक बरसाये परन्तु वह उन्हें आत्मसाधना सेन डिगा सका । इसी समय धरणेन्द्र - पद्मावती जिन्हें पार्श्वनाथ ने नाग-नागिनी के रूप में सम्बोधित किया था पार्श्वनाथ की रक्षा करने के उद्देश्य से आये और पार्श्वनाथ के ऊपर सर्प का फन फैला दिया । पार्श्वनाथ ने आत्मसाधना की पूर्णता में चैत्रकृष्ण चतुर्दशी के दिन केवलज्ञान प्राप्त किया -

“चेत अंधेरी चौदह जान, उख्यो प्रभु के पंचम ज्ञान ॥”⁴

केवल ज्ञान होते ही पार्श्वनाथ के 10 अतिशय होते हैं । इन्द्रादि उनके केवलज्ञान-कल्याणक मानने आते हैं । तीर्थंकर होने से कुबेर समवशरण (धर्मसभा) की रचना करता है । उनके वर्णनातीत अनन्त चतुष्टय, 14 देवकृत अतिशय तथा 8 प्रातिहार्य (मंगल द्रव्य) होते हैं -

1. पार्श्वपुराण— कलकत्ता, अधिकार 7 पृष्ठ 64

2. पार्श्वपुराण— कलकत्ता, अधिकार 7 पृष्ठ 65

3. पार्श्वपुराण— कलकत्ता, अधिकार 7 पृष्ठ 66

4. पार्श्वपुराण— कलकत्ता, अधिकार 8 पृष्ठ 69

“भये अनन्त चतुष्टयवन्त । प्रगटी महिमा अतुल अनन्त ॥
 दिव्य परम औदारिक देह । कोटि भानु दुति जीती जेह ॥
 अलौकिक अद्भुत सम्पदा । मंडित भये जिनेश्वर तदा ।
 वचन अगोचर महिमा सार । वरनन करतत न पड़ये पार ॥”¹

इसके बाद कुछ कम 70 वर्ष तक भारतवर्ष के विभिन्न स्थानों पर उनका समवशरण सहित विहार तथा दिव्यध्वनि द्वारा धर्मोपदेश होता है । अन्त में वे श्रावण शुक्ला सप्तमी के दिन सम्मेदशिखर नामक पर्वत से निर्वाण (मोक्ष) प्राप्त करते हैं -

“विरहमान दरसावत बाट । सत्तर वरष भये कछु घाट ॥
 सम्मेदाचल शिखर जिनेश । आये श्री पारस परमेश ॥”²
 “सावन सुदि सातैं शुभबार । विमल विशाखा नखत मंझार ॥
 तजि संसार मोक्ष में गये । परमसिद्ध परमात्म भये ॥”³

पार्श्वनाथ का निर्वाण हुआ जानकर इन्द्रादि देव उनका निर्वाण कल्याणक मनाने आते हैं -

“तब इन्द्रादिक सुन समुदाय । मोक्ष गये जाने जिनराय ॥
 श्री निर्वाण कल्याणक काज । आये निज निज वाहन साज ॥”⁴

देव कल्याणक मनाकर यथा स्थान चले जाते हैं -

“निज निज धान गये सब देव”⁵

इस प्रकार “पार्श्वपुराण” के नायक पार्श्वनाथ का व्यक्तित्व तीर्थकरत्व से मण्डित है । उनके बहिरंग और अन्तरंग - दोनों व्यक्तित्व में तीर्थकर के

-
1. पार्श्वपुराण— कलकत्ता, अधिकार 8, पृष्ठ 69
 2. पार्श्वपुराण— कलकत्ता, अधिकार 9, पृष्ठ 63
 3. पार्श्वपुराण— कलकत्ता, अधिकार 9, पृष्ठ 63
 4. पार्श्वपुराण— कलकत्ता, अधिकार 9, पृष्ठ 64
 5. पार्श्वपुराण— कलकत्ता, अधिकार 9, पृष्ठ 64

विशेष लक्षण एवं अतिशय दृष्टिगत होते हैं। इसीकारण गर्भ में आने के छह माह पूर्व से लेकर जन्म तक पंचाश्चर्य, जन्म होने पर दश अतिशय, केवलज्ञान होने पर दश अतिशय, देवों द्वारा किये गये चौदह अतिशय एवं आठ प्रातिहार्य होते हैं। इन्द्रादि देवों द्वारा गर्भ, जन्म, तप, ज्ञान एवं निर्वाण-कल्याणक मनाना, स्तुति, नृत्य, गान आदि करना उनके तीर्थकरत्व के सूचक हैं।

पार्श्वनाथ में तीर्थकरत्व की स्थापना ही धीरोदात्त नायक के साथ जुड़ी हुई है क्योंकि ईश्वरत्व के गुणों से मंडित होने वाला व्यक्तित्व धीरोदात्त ही हो सकता है, अन्य नहीं। पार्श्वनाथ का तीर्थकर के रूप में विकास मानवता की अत्यन्त विकसित स्थिति में हुआ है। पार्श्वनाथ अपने पूर्वजन्मों में जिन मानवीय वृत्तियों को संस्कारित करते आ रहे थे उन्हीं का चरम विकास पार्श्वनाथ के तीर्थकर बनने पर हुआ। वह चरम विकास धीरोदात्त गुणों से युक्त नायक में ही सम्भव था, अन्य किसी में नहीं। इसीलिए कवि ने नायक को धीरोदात्त नायक के गुणों से युक्त दिखलाया है। कवि पार्श्वनाथ के चरित्र में तीर्थकर सूचक घटनायें इस प्रकार गूँथता है कि वे पृथक् दिखाई न देकर कथानक का अंग ही दृष्टिगत होती हैं। वे सभी घटनाएँ कथानक का अभिन्न अंग बनकर पार्श्वनाथ के चरित्र को सर्वाधिक गौरव से मण्डित करती हुई तीर्थकर बना देती हैं तथा उनके चरित्र को धीरोदात्त नायक के पद पर प्रतिष्ठित करवा देती हैं। इसीकारण पार्श्वनाथ सर्वत्र महासत्त्व, क्षमावान, स्थिर, अतिगम्भीर, दृढ़वत्, निरहंकारी जैसे महान गुणों से युक्त हैं।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि पार्श्वपुराण का नायक पार्श्वनाथ महाकाव्योचित नायक के सभी गुणों से युक्त है एवं महाकाव्य के नायकत्व की कसौटी पर खरा उतरता है।

प्रतिनायक : संवर (कमठ का जीव) - नायक के लक्ष्य प्राप्ति के प्रयत्नों में बाधक होने के कारण "संवर" नाम का ज्योतिषी देव प्रतिनायक है। वह नायक पार्श्वनाथ के जन्म-जन्म का वैरी है। पार्श्वनाथ के पूर्व के नौ जन्मों में भी वह सदैव पार्श्वनाथ का विरोधी एवं घातक रहा है। पार्श्वनाथ प्रथम जन्म में विश्वभूति मंत्री का छोटा पुत्र "मरुभूति" तथा वह बड़ा पुत्र "कमठ" था। कमठ मरुभूति का बड़ा भाई होकर भी कठोर हृदय, मूर्ख और दुर्जन है; जबकि मरुभूति छोटा होकर भी बुद्धिमान और सज्जन है -

“जेठो नंदन कमठ कुपूत । दूजो पुत्र सुधी मरुभूत ॥

जेठो मतिहेठो कुटिल । लघु सुत सरल स्वभाव ॥”¹

जब मरुभूति राजा के साथ शत्रु को वश में करने जाता है तब मूर्ख कमठ अनीतिपूर्ण तथा स्वच्छन्द आचरण करने लगता है -

“पीछे कमठ निरंकुश होय । लग्यो अनीति करन शठ सोय ॥

जो मन आवै सो हूँ मैं । मैं राजा सत्कारों इन कहैं ॥”²

एक दिन कमठ अपने छोटे भाई मरुभूति की स्त्री को देखकर उस पर मोहित हो जाता है तथा छल-कपट से उसके साथ दुराचार कर लेता है—

“एक दिना लघु भ्राता नारि । भूषण भूषित रूप निहारि ॥

राग अंध अति विह्वल भयो । तीच्छन काम ताप उर दहे ॥”³

“छल बल कर भीतर लई, कनिता गई अज्ञान ।

राग वचन भाषे विविध, दुराचार की खान ॥”⁴

राजा उसे नीच, अधर्मी एवं कुकर्मी जानकर दण्ड देता है तथा प्रजा उसे धिक्कारती है -

“अति निन्दो नीच कुकर्मी । जानो निरधार अधर्मी ।

राजा अति ही रिस कीनी । सिर मुण्ड दण्ड बहु दीनी ॥”⁵

“पुरवासी लोक धिकारै । बालक मिली कंकर मारै ॥”⁶

राजा द्वारा दण्डित कमठ दुखी होकर भूताचल पर्वत पर जाकर तपस्या करने लगता है -

“भूताचल पर्वत की ओर । भ्राता कमठ करे तप घोर ॥”⁷

परन्तु तपस्या करने पर भी उसके हृदय में रंजमात्र भी ज्ञान और वैराग्य नहीं होता है -

“करन लगो तब काय क्लेश । उर वैराग्य विवेक न लेश ॥”⁸

1. पार्श्वपुराण— कलकत्ता, अधिकार 1, पृष्ठ 5

3. वही, अधिकार 1, पृष्ठ 5

5. वही, अधिकार 1, पृष्ठ 7

7. वही, अधिकार 1, पृष्ठ 7

2. वही, अधिकार 1, पृष्ठ 5

4. वही, अधिकार 1, पृष्ठ 6

6. वही, अधिकार 1, पृष्ठ 7

8. वही, अधिकार 1, पृष्ठ 7

इसीलिये वह उससे मिलने आये छोटे भाई मरुभूति के ऊपर हाथ में ली हुई पत्थर की शिला पटक कर उसकी हत्या कर देता है -

“शिला सहोदर शीश पै डारी वज्र समान ।
पीर न आई पिशून को, धिक दुर्जन की बान ॥”¹

इहि विधि पापी कमठ ने, हत्या करी महान ।²

इस प्रकार पहले जन्म में मरुभूति का बड़ा भाई कमठ कठोर परिणामी, नीचा, कुकर्मी एवं हरकरी है । वह साधु होकर तपस्या करते हुए भी अपने क्रूर परिणाम नहीं छोड़ पाता है और क्रोध में मरुभूति की हत्या कर बैठता है ।

दूसरे जन्म में कमठ काला सर्प बनकर हाथी बने मरुभूति को वैर के कारण डसता है -

“सो कमठ कलंकी मूखो । ता वन कुरकट अहि हूखो ॥

तिन आय डस्यो गज ज्ञाता । यह बैर महा दुख दाता ॥”³

तीसरे जन्म में वह नारकी बनता है -

“कुर्कटनामा कमठचर, दुष्ट नाग दुखदाय ।

सो मरि पंचम नरक में, पर्यौ पाप वश जाय ॥”⁴

नरक से निकलकर वह अजगर बनता है तथा वैर के संस्कार को लिये हुये उसी स्थान पर आ जाता है, जहाँ अग्निवेग मुनिराज तपस्या करते हैं तथा उनका भक्षक बन जाता है -

“बैर भाव उरतै नहि टर्यौ । फेरि आय अजगर अवतर्यो ॥

संसकारवश आयो तहां । हिमगिरि गुफा मुनीश्वर जहां ॥”⁵

अजगर मरकर पुनः नरक में जाता है -

“कमठ जीव अजगर तन छोरि । उपज्यो छठे नरक अतिघोर ॥”⁶

नरक की आयु पूरी करके वह शिकारी भील के रूप में जन्म लेता है -

1. पार्श्वपुराण— कलकत्ता, अधिकार 1, पृष्ठ 8

2. वही, अधिकार 1, पृष्ठ 8

3. वही, अधिकार 2, पृष्ठ 11

4. वही, अधिकार 2, पृष्ठ 13

5. वही, अधिकार 2, पृष्ठ 13

6. वही, अधिकार 3, पृष्ठ 19

“पूरन आयु भोगकर मर्यो । वनहि कुरंग भील अवतर्यो ॥”¹

वज्रनाभि मुनिराज को देखकर वह शिकारी भी उन्हें बाण से मार देता है -

“देखि दिगम्बर कोप्यो नीच । कंपित अधर दशनतल मीच ॥

तन कमान काल लों लई । तीखन शर मार्यो निर्दई ॥”²

वह भील महान दुःखों को पाता हुआ मुनि हत्या के पाप से भरदार नारकी बनता है -

“अब सो भील पहादुख पाय । रूद्रध्यान सो छोड़ी काय ॥

मुनि हत्या पातक तैं मर्यो । चरम शुभ्र सागर में पर्यो ॥”³

नरक से निकलकर वह सिंह बनता है -

“सो मर नरक कमठचर पापी, नाना प्रांति विपत्ति भरी ।

तिस ही कानन में विकटवन, पंचानन की देह धरी ॥”⁴

सिंह आनन्द मुनिराज को देखकर पूर्व जन्म के वैर के संस्कार के कारण उसका घपती बन जाता है -

“देखि दिगम्बर केहरि कोप्यो, पूर्वभक्षान्तर वैर दहो ।

थायो दुष्ट दहाइ ततच्छन । आन अचानक कंठ गहो ॥”⁵

मुनि की हत्या के पाप से वह पुनः नरक में जन्म लेता है -

“मुनिहत्यावश दुर्गति गयो, पंचमनरक बास सो लयो ॥”⁶

नरक आयु पूरी कर वह अनेक जन्म धारण करता है । अनेक पशुयोनि के जन्मों में दुःख भोगकर पाप कर्मों की समाप्ति एवं शुभकर्मों की फलप्राप्ति के कारण वह “महीपाल” नामक पार्श्वनाथ के नाना के रूप में जन्म लेता है ।⁷ नाना के रूप में पंचाग्नि तप करते हुए वह अभिमानी जीव हिंसा करता है, जिसे पार्श्वनाथ अपने दिव्यज्ञान से जानकर उसकी विनय एवं प्रणाम नहीं करते हैं जिससे वह उन पर क्रोधित हो जाता है ।⁸ अपने पंचाग्नि तप के कारण वह

1. पार्श्वपुराण— कलकत्ता, अधिकार 3, पृष्ठ 19

3. वही, अधिकार 3, पृष्ठ 20

5. वही, अधिकार 4, पृष्ठ 37

7. वही, अधिकार 7, पृष्ठ 61

2. वही, अधिकार 3, पृष्ठ 19

4. वही, अधिकार 4, पृष्ठ 37

6. वही, अधिकार 7, पृष्ठ 61

8. वही, अधिकार 7, पृष्ठ 61

“संवर” नाम का ज्योतिषी देव बन जाता है। जब वह आकाशमार्ग से जा रहा था, तब जहाँ पार्श्वनाथ आत्मध्यान में लीन थे, वहाँ उसका विमान रुक जाता है, जिससे पूर्व वैर का स्मरण कर क्रोधित होकर वह पार्श्वनाथ पर विक्रिया बल द्वारा अनेक उपसर्ग करता है -

“संवर नाम ज्योतिषी देव । पूरव कथित कमठचर एव ॥

अटक्यो अंबर जात विमान । प्रभु पर रह्यो छत्रवत आन ॥

ततखिन अवधिज्ञान बल तबै । पूरव बैर संभालो सबै ॥”¹

“दुष्ट विक्रिया बल अविवेक । और उपद्रव करै अनेक ॥”²

देव के द्वारा उपसर्ग करने पर भी जब पार्श्वनाथ को आत्मध्यान की एकाग्रता के कारण केवलज्ञान हो जाता है तथा इन्द्रादि उनका ज्ञान कल्याणक मनाने आते हैं, तब उसे अपनी करनी पर बहुत पश्चाताप होता है। वह भगवान् पार्श्वनाथ की दिव्यध्वनि को सुनकर वैरभाव तथा मिथ्यात्व का त्याग कर सम्यग्दर्शन, ज्ञान-चारित्र्य की प्राप्ति कर सन्मार्ग में लग जाता है -

“कमठ जीव सुन जोतिषी, करि वचनामृत पान ।

वमौ बैर मिथ्यात्व विष, नमो चरण जुग आन ॥”³

“दर्ई तीन परदक्षिणा, प्रणमें पारसदेव ।

स्वामी चरण संयम धरो, निंदी पूरव देख ॥”⁴

कमठ जन्म से कामी, क्रोधी, दुराचारी, क्रूर स्वभाव को लिए हुए सर्प, अजगर, भील, नारकी आदि अनेक जन्मों में तथा कुयोनियों में दुःख भोगता है। मरुभूमि प्रत्येक जन्म में क्षमाधारी दृष्टिगत होता है, जबकि कमठ प्रत्येक जन्म में वैर की ज्वाला में जलता हुआ मरुभूति से बदला लेता रहता है। पार्श्वनाथ के जनम में भी वह वैर का स्मरण कर पार्श्वनाथ पर अनेक उपसर्ग करता है और उन्हें आत्मध्यान से डिगाने की पूरी चेष्टा करता है। यद्यपि वह एक-दो जन्मों में धर्म के साधनों में तत्पर होता हुआ दिखाई देता है, जैसे कमठ के जन्म में तापसी साधु होकर तप करना तथा पार्श्वनाथ के नाना के जन्म में पंचाग्नि

1. पार्श्वपुराण— कलकता, अधिकार 3, पृष्ठ 19

2. वही, अधिकार 9, पृष्ठ 91

3. वही, अधिकार 8, पृष्ठ 68

4. वही, अधिकार 9, पृष्ठ 91

तप करना तथापि उसके अन्तर्मन में क्रोध की ज्वाला धधकती ही रहती है। वह कभी शान्तचित्त होकर तप नहीं करता है। ज्ञान और वैराग्य रहित अहंकार की भावना सहित तप करके वह “संवर” नामक ज्योतिषी देव बनता है। देव बनकर भी वह वैर साथ लिये रहता है। इसी से प्रेरित होकर वह पार्श्वनाथ की तपस्या में विघ्न उपस्थित करता है। परन्तु जब पार्श्वनाथ अपने आत्मध्यान से चलायमान नहीं होते और पूर्ण वीतरागता और केवलज्ञान प्राप्त कर तीर्थंकर बन जाते हैं, तब उसे अपने किये पर पश्चात्ताप होता है। वह शर्म से उनके चरणों में झुक जाता है। अपनी भूल को स्वीकार कर पश्चात्ताप करना मानव का एक महान् गुण है। कमठ के जीव अर्थात् संवर नामक ज्योतिषी देव द्वारा किये गये पश्चात्ताप से उसका चरित्र सर्वाधिक उदात्त हो जाता है। यह पश्चात्ताप उसे पतित से पावन बना देता है। वह पश्चात्ताप की अग्नि में तप कर कंचन की भाँति शुद्ध हो जाता है। उसका यह पश्चात्ताप एक महती उपलब्धि है, जिसे प्राप्त कर वह सद्धर्म से युक्त हो जाता है और अपनी आत्मा को पवित्र बना लेता है।

इस प्रकार कमठ का जीव या “संवर” ज्योतिषी देव अहंकारी, क्रोधी, निर्दयी, ढोंगी, दुराचारी एवं बदला लेने वाला होकर भी अन्त में सदगुणों से युक्त हो जाता है।

“पार्श्वपुराण” में “संवर” का अन्तिम सदगुणसम्पन्न रूप विस्तृत न होकर पूर्व का कामी, क्रोधी एवं निर्दयी रूप ही विस्तार पा सका है। अतः वह इसी रूप में पाठक पर अधिक प्रभाव डालता है। अन्तिम देवत्वरूप तो पार्श्वनाथ के तीर्थंकरत्व से प्रभावित जान पड़ता है।

निष्कर्ष रूप में प्रतिनायक “संवर” ज्योतिषी देव का चरित्र अनेक मानवीय दुर्बलताओं एवं बुराइयों को लिए हुए अन्त में सदगुणों की ओर बढ़ता हुआ चित्रित हुआ है। “संवर” पार्श्वपुराण का द्वितीय प्रमुख पात्र है।

अन्य प्रमुख पात्र - “पार्श्वपुराण” में नायक “पार्श्वनाथ” एवं प्रतिनायक “संवर” के अतिरिक्त अन्य कोई प्रमुख पात्र नहीं है। इसमें नायिका एवं प्रतिनायिका का अभाव है। नायक “पार्श्वनाथ” तो मोक्षसाधना हेतु (स्त्री त्यागी) ब्रह्मचारी रहकर ही मोक्षसाधना में संलग्न होते हैं, परन्तु प्रतिनायक कमठ का जीव या संवर नामक ज्योतिषी देव भी अनेक कुयोनियों में दुःखी होता हुआ

किसी स्त्री से नहीं जुड़ पाता है। अतः प्रधान पात्रों में पार्श्वनाथ और संवर ही स्थान पा सके हैं।

: गौण पात्रों का चरित्र चित्रण :

जिन पात्रों का कथानक से सीधा सम्बन्ध नहीं होता है तथा जो कथानक में प्रमुख पात्रों के साधन बनकर उपस्थित होते हैं, वे गौण पात्र माने जाते हैं।

“पार्श्वपुराण” में गौण पात्रों के रूप में नायक “पार्श्वनाथ” के अनेक जन्मों के माता-पिता, बन्धु-बान्धव, मित्र आदि को स्थान दिया जा सकता है। पार्श्वनाथ का चरित्र सुनने के इच्छुक राजा श्रेणिक तथा पार्श्वनाथ के गर्भ, जन्म, तप, ज्ञान एवं निर्वाण कल्याणक मनाने वाले इन्द्रादि देव भी इसी कोटि के पात्रों में गिने जायेंगे।

राजा अरविन्द - कमठ एवं मरुभूति के पिता विश्वभूति मंत्री थे। वे जिस राजा के मंत्री थे उसका नाम था “अरविन्द”। राजा अरविन्द को स्वर्ग के इन्द्र के समान वैभवसम्पन्न, न्यायवान, सज्जन, दयावान, गुणानुरागी, रणवीर, दान करने वाले के रूप में त्यागी एवं प्रजापालक चित्रित किया गया है।¹ जब वे विरक्त होकर मुनि दीक्षा ले लेते हैं तब वे मुनि के योग्य आहार विहार आदि करते हुए बारह प्रकार के कठिन तप करते हैं तथा छह काय के जीवों की रक्षा में तत्पर रहते हैं।²

मंत्री विश्वभूति एवं उनकी पत्नी - मरुभूति के पिता विश्वभूति बुद्धिमान एवं सज्जन ब्राह्मण थे एवं उनकी पत्नी रूप, शील आदि गुणों से युक्त थीं -

तिस भूपति के विप्र सुजान। विश्वभूति मंत्री बुद्धिमान ॥

तत्की तिया अनूषर सती। रूप शील गुण लक्षणवती ॥³

राजा विद्युतगति एवं रानी विद्युतमाला - चौथे जन्म में मरुभूति “अग्निवेग” नामक पुत्र के रूप में विद्युतगति एवं विद्युतमाला के यहाँ जन्म लेता है। राजा विद्युतगति न्यायपूर्वक प्रजा का पालन करने वाले, नीतिनिपुण, धर्मज्ञ, संतों के बतलाये हुए मार्ग पर चलने वाले हैं। उनकी विद्युतमाला नाम की सुन्दर एवं चतुर स्त्री है। जिस प्रकार कामदेव को रति का योग बना, उसी प्रकार विद्युत गति को विद्युतमाला का योग बना।⁴

1. पार्श्वपुराण— कलकत्ता, अधिकार 1, पृष्ठ 4

3. वही, अधिकार 1, पृष्ठ 5

2. वही, अधिकार 2, पृष्ठ 10

4. वही, अधिकार 2, पृष्ठ 12

राजा बज्रवीर्य एवं रानी विजया - छठे जन्म में मरुभूति राजा बज्रवी तथा रानी विजया के यहाँ “बज्रनाभि” नामक पुत्र होता है। राजा बज्रवीर्य न्यायपूर्वक प्रजा का पालन करते हैं। वे गुणों के आगार होकर सूर्य के समान तेजस्वी हैं, जब कि अन्य राजा उनके सामने जुगनू की भाँति दिखाई देते हैं। उनकी “विजया” नामक रति के समान सुन्दर, गुणों की खान पटरानी है।¹

राजा अश्वसेन एवं रानी वामादेवी - दसवें जन्म में मरुभूति “पार्श्वनाथ” के रूप में जन्म लेता है। “पार्श्वपुराण” में नायक “पार्श्वनाथ” के माता-पिता के चरित्र का विस्तृत वर्णन किया गया है। पार्श्वनाथ के पिता अश्वसेन पवित्र इक्ष्वाकुवंशीय तथा जगतप्रसिद्ध काश्यपगोत्रीय बनारस के राजा हैं। वे सूर्य के समान तेजस्वी, कल्पतरू के समान दातार, कामदेव के समान सुन्दर, सागर के समान गम्भीर, पर्वत के समान धीरवीर, अमृत के समान सुखदायी, संसार में यशस्वी, मति-श्रुत और अवधि- इन तीन ज्ञानों से युक्त, महान् विवेकी, दयावान्, जिनभक्ति में तत्पर, गुरुसेवा में तल्लीन, अनेक विद्याओं एवं कलाओं से युक्त तथा समस्त गुणों के निधान हैं; जो जिनेन्द्र रूपी सूर्य को उत्पन्न करने वाले उदयाचल के समान हैं, उनकी महिमा का वर्णन कैसे किया जा सकता है?²

अश्वसेन की पवित्र नाम वाली तथा पवित्र मन वाली “वामा देवी” रानी है। वे सब गुणों से युक्त हैं। उनका लावण्य उपमारहित है। वे रूप के समुद्र से निकली बेल के समान हैं। उनके नश शिख आदि पर सुहाग के चिह्न हैं। वे तीन लोक की स्त्रियों में सिरताज हैं। वे सम्पूर्ण सुलक्ष्णों से मंडित, मधुरवाणी बोलने वाली तथा सरस्वती के समान बुद्धिमती हैं। उनकी सुन्दरता के आगे रम्भा, रति और रोहिणी की सुन्दरता भी फीकी पड़ जाती है। इन्द्र की इन्द्राणी उनके सामने सूर्य के समक्ष दीपक की तरह दृष्टिगत होती है। जिस प्रकार कार्तिक मास की चाँदनी लोगों के मन को प्रसन्न करती है; उसी प्रकार वे लोगों के मन को प्रसन्न करने वाली हैं। वे समस्त सारभूत गुणों की खान तथा शीलरूपी गुण की निधि हैं। वे सज्जनता, कला एवं बुद्धि की सीमा हैं। उनके नाम लेने मात्र से पाप भाग जाता है। जिस प्रकार सीप में से मोती निकलता है; उसी प्रकार वे महापुरुष को जन्म देने वाली हैं। वे तीन लोक के नाथ

1. पार्श्वपुराण— कलकता, अधिकार 3, पृष्ठ 14

2. पार्श्वपुराण— कलकता, अधिकार 5, पृष्ठ 45

“पार्श्वनाथ” रूपी रत्न को जन्म देने वाली पृथ्वी की तरह है। उनकी महिमा का वर्णन करने में बुद्धि समर्थ नहीं है।¹

उपर्युक्त सभी पात्र पार्श्वनाथ के माता-पिता एवं सम्बन्धी हैं। इन सबका चरित्र अधिक विस्तार नहीं पा सका है।

राजा श्रेणिक - भगवान महावीर के समवशरण में गौतम गणधर से पार्श्वनाथ का चरित्र सुनने की इच्छा व्यक्त करने वाले राजा श्रेणिक हैं। उनकी पटनारी धर्मात्मा “चेलना” है। वे मगधदेश के राजगृही नगर के राजा हैं। वे बहुत पुण्यशाली एवं नीतिवान हैं। वे सारभूत क्षायिक सम्यग्दर्शन सहित हैं तथा शील आदि सब गुणों के धारक हैं।²

तीर्थकर “पार्श्वनाथ” के पंचकल्याणकों को मनाने हेतु बड़े उत्साह, भक्तिभाव एवं श्रद्धापूर्वक स्वर्ग लोक से इन्द्र आदि सभी देव सपरिवार आते हैं तथा अनेक प्रकार से भक्ति, स्तुति एवं नृत्य आदि करते हैं। इससे उनके चरित्र की कतिपय विशेषताओं की ओर सहज ही संकेत हो जाता है। यह संकेत ही उनके चरित्र को इंगित करता है। कवि ने सभी देवों के चरित्र का पृथक्-पृथक् संकेत न करके भगवान की भक्ति, स्तुति, नृत्य आदि करने तथा पंचकल्याणकों में विशेष भाग लेने वालों के रूप में उनका सामान्य चरित्र चित्रित किया है। इस चित्रण में प्रमुखता इन्द्र के चरित्र को मिली है; क्योंकि उसके ही निर्देशन एवं आज्ञा में सभी कार्य सम्पन्न होते हैं तथा वही सबका प्रतिनिधित्व करता हुआ अग्रगण्य रहता है।

(ग) पार्श्वपुराण में प्रकृति-चित्रण

महाकाव्य के शास्त्रीय लक्षणों के अनुसार महाकाव्य में प्रकृति वर्णन का होना आवश्यक है। आदिकाल से ही मानव प्रकृति के साहचर्य की अभिव्यक्ति अपनी वाणी में किसी ने किसी रूप में करता आया है। उन समस्त रूपों और प्रकारों को शास्त्र के अन्तर्गत बाँधने की चेष्टा विद्वानों ने की है। उसी आधार पर काव्य में प्रकृतिवर्णन के निम्नलिखित रूप मिलते हैं -

1. पार्श्वपुराण— कलकत्ता, अधिकार 5, पृष्ठ 45

2. पार्श्वपुराण— कलकत्ता, अधिकार 1, पृष्ठ 3

1. आलम्बनरूप में - आलम्बनरूप में भी प्रकृति के कई प्रकार के वर्णन मिलते हैं। जैसे - वस्तु परिगणनात्मक वर्णन, सामान्य वर्णन और संश्लिष्ट वर्णन।

2. उद्दीपनरूप में - उद्दीपन रूप में प्रकृति का दो रूपों में वर्णन होता है - एक मानव भावनाओं की अनुरूपता में और दूसरा मानव भावनाओं की प्रतिकूलता में।

3. अलंकाररूप में - अलंकाररूप में भी प्रकृति का दो रूपों का वर्णन होता है - एक मानवीकरण के रूप में, दूसरा अप्रस्तुत योजना के रूप में।

4. रहस्य भावना के रूप में - रहस्य भावना के रूप में प्रकृति वर्णन तीन रूपों में किया जाता है - पहला जिज्ञासात्मक रूप में, दूसरा दार्शनिक रूप में और तीसरा विराट भावना के आरोपण के रूप में।

5. पृष्ठभूमि के रूप में - पृष्ठभूमि के रूप में प्रकृति वर्णन दो प्रकार से किया जाता है - मानवीय भावनाओं की अनुरूपता में और मानवीय भावनाओं के वैषम्य में।

6. उपदेश के रूप में - प्रकृति उपदेश का भी माध्यम रही है। इन उपदेशों की अभिव्यक्ति प्रकृति के माध्यम से तीन रूपों में की जाती है - प्रभु-सम्मित रूप में, सुहृद-सम्मित रूप में और कान्ता-सम्मित रूप में। अन्योक्ति, रूपक, प्रतीक आदि अभिव्यक्ति प्रसाधनों का आश्रय भी अधिकतर उपदेशप्रधान प्रकृति चित्रणों में ही लिया जाता है।¹

पार्श्वपुराण के प्रकृति चित्रण में मानवीय भावनाओं को उद्दीप्त करने के लिए कवि का सायास प्रयोग और परम्परागत प्रयोग दृष्टिगत होता है। परम्परागत प्रयोग के रूप में आलम्बन और उद्दीपन - दोनों रूपों का प्रयोग पार्श्वपुराण में किया गया है। आलम्बन के अन्तर्गत प्रकृति का सजीव संश्लिष्ट वर्णन स्वर्ग, नरक एवं वाबीस परीषह आदि के वर्णन में किया गया है। नगरों एवं वनों के वर्णन में वस्तु परिगणनात्मक रूप का प्रयोग दृष्टव्य है। एक स्थान पर कवि ने वन का वर्णन करते हुए 89 वृक्षों का नाम परिगणन किया है। यह सम्पूर्ण वर्णन इतिवृत्तात्मक बन पड़ा है।

उद्दीपन के अन्तर्गत प्रकृति का वर्णन कई प्रकार से किया गया है। जैसे उपसर्ग के रूप में, विरह के रूप में, शान्त रस के उद्दीपन के रूप में इत्यादि। उपसर्ग के रूप में प्रकृति का वर्णन करते समय कवि ने अनेक प्राकृतिक तत्वों - पत्थर, सर्प, शर, नख-दाढ़, गर्जन-तर्जन, फुंकार, अंधकार, मूसलाधार वर्षा, बिजली, झंझा आदि का उल्लेख किया है तथा इन सबको मानवीय भावनाओं की प्रतिकूलता को उद्दीप्त करने का साधन निरूपित किया है। इसी प्रकार नेमि-राजुल के विरहपरक पदों में विरह को उद्दीप्त करने वाले प्राकृतिक तत्वों का प्रयोग किया गया है। शान्त रस के उद्दीपन के लिए नदी, सरोवर, पर्वत आदि का वर्णन शान्तरस को उद्दीप्त करने वाले प्राकृतिक तत्वों के रूप में किया है।

नगर आदि का वर्णन करते समय कवि ने कई उपमाएँ एवं उत्प्रेक्षाएँ प्रकृति से ली हैं। इन उपमाओं और उत्प्रेक्षाओं के कारण प्रकृतिवर्णन अलंकार रूप में भी बन पड़ा है। जैन मुनियों द्वारा विशेष तपस्या करने (22 परीषहों को) सहने तथा शीत, ग्रीष्म व वर्षा - इन तीनों ऋतुओं के कष्टों को सहने के सन्दर्भ में ऋतुओं का आलम्बन, उद्दीपन के लगभग सभी रूपों का वर्णन हुआ है।

कवि ने प्रकृति से बहुत कुछ सीखा है। उसने गृहस्थ होकर भी वैरागी जीवन से प्रेरणा प्राप्त की है, इसीलिए मुनिराजों के अनेक कष्टों तथा सभी ऋतुओं के स्वाभाविक कष्टों का अत्यन्त सजीव चित्रण किया गया है। नगर, वन आदि के वर्णन में कवि प्रकृति के छोटे से छोटे तत्व को भी नहीं भूला है। इससे कवि के प्रकृति के अतिनिष्ठ होने का पता चलता है। स्वर्ग आदि के वर्णन में जहाँ एक ओर प्रकृति के रम्य और सौम्यरूप के दर्शन होते हैं, वहीं दूसरी ओर नरक आदि के वर्णन में प्रकृति के वीभत्स एवं रौद्ररूपों का अंकन भी हुआ है। नीति और धर्म का कथन करने के लिए कई स्थानों पर प्रकृति का आलम्बन रूप में प्रयोग किया है तथा कई स्थानों पर मानवीय भावनाओं को उद्दीप्त करने के लिए उद्दीपनरूप में प्रयोग किया है। आलम्बन और उद्दीपन के अन्तर्गत आने वाले प्रकृति के समस्त रूपों का प्रयोग प्रायः शान्तरस का पोषक रहा है।

शान्तरस पोषक प्रकृतिचित्रण रचनाकार का उद्देश्यगर्भित कविधर्म है। शान्तरसपूर्ण जिस धार्मिक उद्देश्य की प्राप्ति के लिए कवि काव्य रचना में प्रवृत्त

हुआ है, उसकी सिद्धि के मार्ग में काव्यशास्त्र-अनुमोदित प्रकृति चित्रण उसे या तो साधक प्रतीत नहीं हुआ या कविमत उसमें प्रवृत्त ही नहीं हुआ है। सम्भवतः इसीलिए पार्श्वपुराण में उसका प्रायः अभाव है।

जैन कवियों ने शान्त रस के उद्दीपन एवं पुष्टि के लिए प्रकृति की छटा को अपने साहित्य में बिखेरा है। उन्हें जीवन की नश्वरता, अशरणता एवं दुःखरूपता से कविता करने की प्रेरणा हुई। सुरम्य वातावरण निर्मित करने के साथ ही प्रकृति में शिक्षा देने की सामर्थ्य भी है। जैन कवियों ने प्रकृति से कई प्रकार की शिक्षा ली है। जैन कवियों ने प्रकृति चित्रण के बारे में श्री नेमीचन्द्र जैन का कथन निम्नानुसार है—

“इन्हें संध्या निबोढ़ा नायिका समान एकाएक वृद्धा कलूटी रजनी के रूप में परिवर्तित देखकर आत्मोत्थान की प्रेरणा प्राप्त हुई और वही प्रेरणा को उन्होंने अपने काव्य में अंकित किया है। प्रकृति के विभिन्न रूपों में सुन्दरी नर्तकी के दर्शन भी अनेक कवियों ने किये हैं, किन्तु वह नर्तकी दूसरे ही क्षण में कुरूपा और वीभत्सा सी प्रतीत होने लगती है। रमणी के केश कलाप, सलज कपोल की लालिमा और साज सज्जा के विभिन्न रूपों में विरक्ति की भावना का दर्शन करना जैन कवियों की अपनी विशेषता है।”¹

अपभ्रंश भाषा के जैन कवियों ने अपने महाकाव्यों में आलम्बन और उद्दीपन विभाव के रूप में प्रकृति का चित्रण किया है। इस प्रकृति चिह्नण पर संस्कृत काव्यों के प्रकृति चित्रण का प्रभाव पड़ा है। अपभ्रंश भाषा के जैन कवियों ने नीति, धर्म और आत्मभावना की अभिव्यक्ति के लिये प्रकृति का आलम्बन ग्रहण किया है। इस सम्बन्ध में श्री नेमीचन्द्र जैन का कथन है—

“जैन कवियों ने पौराणिक कथावस्तु को अपनाया, जिससे वे परम्परायुक्त वस्तु वर्णन में ही लगे रहे और प्रकृति के स्वस्थ चित्र न खींचे जा सके। शान्त रस की प्रधानता होने के कारण जैन चरित्र काव्यों में शृंगार की विभिन्न स्थितियों का मार्मिक चित्रण न हुआ, जिससे प्रकृति को उन्मुक्त रूप में चित्रित होने का कम ही अवसर मिला।”²

1. हिन्दी जैन साहित्य परिशीलन भाग १- नेमीचन्द्र जैन पृष्ठ 181

2. हिन्दी जैन साहित्य परिशीलन भाग १- नेमीचन्द्र जैन पृष्ठ 183

“पार्श्वपुराण” में अनेक स्थानों पर नगर का सुन्दर वर्णन किया गया है। प्रायः जम्बूद्वीप, भरतक्षेत्र, आर्यखण्ड तथा उसके किसी एक देश का उल्लेख करने के उपरान्त ही किसी नगर का वर्णन किया गया है। इसमें भी प्रायः उन नगरों का विशेष वर्णन किया गया है जो पार्श्वनाथ के किसी न किसी जन्म के स्थान से सम्बन्धित हैं, जैसे - मरुभूति के जन्म स्थान “पोदनपुर” नामक नगर का वर्णन निम्नलिखित पंक्तियों में हुआ है -

“तहां नगर पोदनपुर नाम । मानो भूमि तिलक अधिराम ॥
देवलोक की उपमा धरे । सब ही विधि देखत मन हरै ॥
तुंग कोट खाई सजत, सघन बाग गृहपांति ।
चौपथ चौक बजार सौं, सोहे पुर बढ भांति ।
ठाम ठाम गोपुर लसें, खापी सरस्वर कूप ।
किधं स्वर्ग ने भूमि को , भेजी भेंट अनूप ॥”¹

इसके अतिरिक्त लोकोत्तमपुर,² अयोध्यानगर³ तथा पार्श्वनाथ की जन्मस्थली बनारस नगरी⁴ का भी विस्तार से मनोहारी एवं आकर्षक वर्णन किया है। कवि ने नगरों के वर्णन में नगर में विद्यमान प्रमुख वस्तुएँ जैसे - गृह, बाग-बगीचे, चौक व चौपथ, बाजार, बावड़ी, कुआँ, तालाब, मन्दिर आदि का नामोल्लेख उनकी विशेषताओं सहित किया है।

नगर के वर्णन की भाँति “पार्श्वपुराण” में स्थान-स्थान पर आवश्यकतानुसार प्रकृति के वन-वैभव का मनोहारी वर्णन मिलता है -

“अति सघन सल्लकी वन विशाल, जहं तरुवर तुंग तमाल ताल ।
बहु बेल जाल छाये निकुंज, कहि सूरि धरे तिन पत्र पुंज ।
कहिं सिकताथल कहिं शुद्ध भूमि, कहिं कपि तरुडारन रहे ड्रमि ।
कहिं सजल धान कहिं गिरि उत्तंग, कहिं रीछ रोझ विहरें कुरंग ॥”⁵

1. पार्श्वपुराण— कलकता, अधिकार 1, पृष्ठ 4

2. वही, अधिकार— 2 पृष्ठ 12

3. वही, अधिकार— 4 पृष्ठ 26

4. वही, अधिकार— 5 पृष्ठ 44

5. वही, अधिकार— 2 पृष्ठ 9

काशी देश के खेटपुरपटन गांव के वन का वर्णन करते हुए उसमें प्राप्त होने वाले वृक्षों की विस्तृत नाम परिगणना की गई है -

“अहाँ बड़े निर्जन वन जाल ॥ जिनमें बहुविधि विरछ विशाल ॥
केला करपट कटहल कैर । कैथ करोंदा काँच केनेर ॥
किरमाला कंकोल कल्हार । कमरख कंज कदम कचनार ॥
खिरनी खारक पिंड खजूर । खेर खिरहटी खेजड भूर ॥
अर्जुन अबेली ओढ अनार । अगर अंजीर अशोक अपार ॥”¹

उपरिलिखित नगर एवं वन का चित्रण परिगणनात्मक एवं वर्णनात्मक आलम्बन रूप में किया गया है । नगर वर्णन में नगर की सुन्दरता की तुलना के लिए देवलोक या स्वर्ग को उपमा एवं उत्प्रेक्षा के रूप में भी उल्लिखित किया है ।

पार्श्वपुराण में प्रकृति शान्तरस के उद्दीपन के रूप में भी अंकित की गई है । काशीदेश के खेटपुरपटन गाँव के प्राकृतिक दृश्यों के वर्णन में शान्तभाव को उद्दीप्त करने की पर्याप्त सामर्थ्य है । शान्तभाव के उद्दीपन के रूप में किया गया सरोवर, नदी, एवं पर्वत का वर्णन मनमोहक है । सरोवरका वर्णन निम्नानुसार है-

“इहि विधि रहे सरोवर छाये । सबही कहत कथा बढ़ जाये ॥
तहाँ साधु एकांत विचार । करै पठनपाठन विधि सार ॥
विविध सरोवर शीतल ठाम । पंथी बैठि लेहि बिसराम ॥
निर्मल नीर भरे मनहार । मानो मुनिचित विगत विकार ॥”²

सरोवर में भरे जल की उत्प्रेक्षा मुनियों के विकार रहित चित्त से की है । मूर्त प्रकृति से अमूर्त भावों की उत्प्रेक्षा भूधरदास की अपनी विशेषता है ।

इसी प्रकार नदी का वर्णन भी द्रष्टव्य है -

“नीर अगाध नदी नित बहै । जलचर जीव तहाँ नित रहै ॥
मुनि भूषित जिनके तीर । काउसग धरि ठाढ़े धीर ॥”³

1. पार्श्वपुराण— कलकता, अधिकार 5, पृष्ठ 43

2. पार्श्वपुराण— कलकता, अधिकार 5, पृष्ठ 43

3. पार्श्वपुराण— कलकता, अधिकार 5, पृष्ठ 43

पर्वतों से पथिकों के मन को हरने वाले झरने बहने पर भी उनमें शान्त रस की उद्दीपकता का अभाव नहीं हुआ है। शान्त रस के उद्दीपक के रूप में पर्वतों का वर्णन निम्नलिखित है -

“ऊँचे परवत झरना झरें। मारग जात पथिक मन हरें ॥

जिनमें सदा कन्दराथान। निहचल देह धरै मुनि ध्यान ॥”¹

भूधरदास ने छठवें अधिकार में देवों द्वारा पार्श्वनाथ के जन्मोत्सव मनाने के प्रसंग में जन्माभिषेक का विस्तार से वर्णन किया है। इस वर्णन में मेरू पर्वत का भी विस्तृत वर्णन हुआ है², क्योंकि पार्श्वनाथ का जन्माभिषेक मेरू पर्वत पर ही हुआ था। कवि ने मेरू पर्वत के वर्णन के अतिरिक्त जैन भूगोल के अनुसार तीन लोक का वर्णन भी किया है।³

भूधरदास ने जिन उत्प्रेक्षाओं के द्वारा वर्ण्यविषय को सुन्दर बनाया है, वे अधिकांशतः प्रकृति से ली गई हैं। भगवान पार्श्वनाथ के शरीर पर एक हजार आठ लक्षण इस भाँति सुशोभित हो रहे हैं, जैसे कल्पतरूराज के कुसुम ही विराजे हो -

“सहज अटोत्तर लछन ये, शोभित जिनवर देह।

किथौ कल्पतरूराज के, कुसुम विराजत येह ॥”⁴

तीर्थंकर पार्श्वनाथ के समवशरण के चारों ओर वलयाकृति खाई बनी है, उसमें निर्मल जल लहरे ले रहा है, वह ऐसा प्रतीत होता है, मानों गंगा प्रदक्षिणा दे रही है -

“वलयाकृति खाई बनी, निर्मल जल लहरेय।

किथौ विमल गंगा नदी, प्रभु परदखना देय ॥”⁵

1. पार्श्वपुराण— कलकत्ता, अधिकार 5, पृष्ठ 43

2. पार्श्वपुराण— कलकत्ता, अधिकार 6, पृष्ठ 53

3. पार्श्वपुराण— कलकत्ता, अधिकार 5, पृष्ठ 41

4. पार्श्वपुराण— कलकत्ता, अधिकार 7, पृष्ठ 60

5. पार्श्वपुराण— कलकत्ता, अधिकार 8, पृष्ठ 71

भूधरदास ने “पार्श्वपुराण” में ऋतुवर्णन भी किया है; परन्तु यह वर्णन अपनी विशेषता लिये हुए है। प्रकृति जैन साधुओं के आगमन पर हर्ष प्रकट करती है। जब भगवान महावीर संघ सहित विपुलाचल पर आते हैं तब वहाँ की प्रकृति छह ऋतुओं के फल-फूल से युक्त हो जाती है। वनपाल उन सब फल-फूलों को राजा श्रेणिक के सम्मुख लाकर रखता है, जिससे उन्हें भगवान महावीर के आगमन का विश्वास हो जाये -

“रोमांचित वनपालक ताम। आय राय प्रति कियो प्रनाम।

छह ऋतु के फल फूल अनूप। आगे धरे अनुपम रूप ॥”¹

जैन मुनि प्रायः नदी एवं सरोवर के किनारे, पर्वतों के ऊपर तथा भयानक वनों में तप करते हैं। प्रकृति भिन्न-भिन्न ऋतुओं के माध्यम से अपना रोष दिखाती है; परन्तु वे धीरे धीरे भी विचलित होकर अपनी तपस्या नहीं छोड़ते हैं। भूधरदास ने इसी प्रसंग में शीत, वर्षा और ग्रीष्म ऋतु का वर्णन निम्नप्रकार से किया है -

“शीतकाल सब ही जन काँपै, खड़े जहाँ वन विरछ डहे है।

झंझा वायु बहै वरषा ऋतु, बरसत बादल झूम रहे हैं ॥

तहाँ धीर तटनी तट चौबट, ताल पाल पै कर्म दहै है।

सहैं सम्भाल शीत की बाधा, ते मुनि तारन तरन कहे हैं ॥

भूख प्यास पीड़ै उर अन्तर, प्रजलै आँत देह सब दाहै।

अग्नि सरूप धूप ग्रीष्म की, ताती बाल झालसी लागै ॥

तपै पहार ताप तन उपजै, कोपै पित्त दाहज्वर जागै।

इत्यादिक ग्रीष्म की बाधा, सहै साधु धीरज नहि त्यागै ॥”²

पार्श्वपुराण का नायक “पार्श्वनाथ” अपने शुभकर्मों से कई जन्मों में स्वर्गलोक प्राप्त करता है तथा प्रतिनायक कमठ अपने पापकर्मों से कई बार नरक में उत्पन्न होता है। अतः कवि ने स्वर्गलोक और नरक लोक का भी वर्णन किया है। इस वर्णन में भी प्रकृति चित्रण का पुट दिखलाई देता है। स्वर्ग लोक के वर्णन में प्राकृतिक छटा दृष्टव्य है -

1. पार्श्वपुराण पीठिका पृष्ठ 3

2. वही अध्याय 4 पृष्ठ 32

“चंपक पारिजात मंदार । फूलन फैल रही माहकार ॥
चेत विरछतै बढ्यौ सुहाग । ऐसे स्वर्ग खाने बाग ॥
विपुल वापिका राजै खरी । निर्मल नीर सुधामय धरी ॥
कंचन कमल छई छविधान । मानिक खंड खचित सोपान ॥”¹

नरक के वर्णन में प्रकृति का पुट निम्नलिखित पंक्तियों में दृष्टिगोचर होता है -

“ठाम ठाम असुहावने, सेमल तरुवर भूर ।
पैने दुख देने विकट, कंटक कलित करूर ॥
और जहाँ असिपत्र बन, भीम तरुवर खेत ।
जिनके दल तरवार से, लगत घाव कर देत ॥”²

इस प्रकार कवि ने प्रकृति वर्णन में नगर, वन, नदी, सरोवर, पर्वत, स्वर्ग, नरक एवं ऋतुओं का भावग्राही एवं मनमोहक वर्णन किया है, परन्तु यह सब वर्णन प्रधानतः आदि से अन्त तक इतिवृत्तात्मक या वर्णनात्मक ही रहा है। यद्यपि उसमें प्रकृति की सूक्ष्मता, व्यापकता, कल्पनाप्रधानता, भावकुत्ता आदि दिखाई नहीं देती है। फिर भी कवि द्वारा किया गया प्रकृति चित्रण निःसन्देह महाकाव्योचित प्रकृति वर्णन के अनुरूप बन पड़ा है।

(घ) पार्श्वपुराण में रस निरूपण

महाकाव्य के लक्षणों में एक लक्षण शृंगार, वीर एवं शान्त रस में से किसी एक रस का प्रमुख होना तथा शेष रसों का गौण होना बतलाया गया है। प्रमुख रहने वाले रस को काव्यशास्त्रीय भाषा में “अंगीरस” कहते हैं। “पार्श्वपुराण” के “अंगीरस” का निर्णय करने से पूर्व यह उचित होगा कि पहले अंगीरस के लक्षणों या कसौटी पर विचार कर लिया जाय।

प्राचीन काव्य शास्त्र के अनुसार अंगीरस का निर्णय निम्नलिखित कसौटियों पर हो सकता है - ³

1. पार्श्वपुराण— कलकत्ता, अधिकार 4 पृष्ठ 37

2. पार्श्वपुराण— कलकत्ता, अधिकार 3, पृष्ठ 24

3 हिन्दी काव्य के आलोक स्तम्भ, “साकेत का अंगीरस— डॉ. शान्ति स्वरूप गुप्त पृष्ठ 131

1. कथानक के कलेवर में जो रस सर्वाधिक व्याप्त हो,
2. जो रस महाकाव्य के मूल प्रभाव को व्यंजित करने में सहायक हो तथा जो पाठक की स्थायी मनःस्थिति का निर्माण करें।
3. जिस रस का सम्बन्ध प्रमुख पात्र-नायक या नायिका की मूलवृत्ति से हो अर्थात् जिस रस में उसकी मूलवृत्ति का प्रतिफलन हो।
4. महाकाव्य के मूल उद्देश्य अथवा फलागम का आस्वाद्य रूप हो, वही रस अंगीरस कहा जा सकता है।

अंगीरस : शान्त रस - अंगीरस की उपर्युक्त कसौटियों के आधार पर "पार्श्वपुराण" का अंगीरस "शान्तरस" है; क्योंकि वह कथानक में सर्वाधिक व्याप्त है। इसी रस में कथानक की सम्पूर्ण व्यंजना होती है तथा यही रस पाठक पर सर्वाधिक प्रभाव डालता है। शान्तरस से प्रभावित पाठक ऐहिक जीवन और जगत के प्रति उपेक्षित दृष्टि अपनाते हुए परमानन्द की प्राप्ति के प्रति उत्साहित होता हुआ दृष्टिगत होता है। "पार्श्वपुराण" के नायक की मूलवृत्ति भी शान्तरसमय है। "पार्श्वनाथ" के चरित्र से सर्वत्र शम या निर्वेद भाव ही झलकता है। "पार्श्वपुराण" का उद्देश्य अथवा फलागम का आस्वाद्य भी शान्तरसयुक्त है अतः सभी दृष्टिकोण से पार्श्वपुराण का अंगीरस "शान्त रस" है। जिस प्रकार पार्श्वपुराण का कथानक जीवन को अखण्ड रूप से ग्रहण करता हुआ सर्वांग आत्मानन्द की सिद्धि करता है; उसी प्रकार पार्श्वपुराण का अंगीरस अखण्ड आत्मरस अर्थात् शान्तरस ही है। यह शान्त रस ही भूधरदास की दृष्टि में महारस एवं आनन्दरस है।

साहित्य दर्पण में शान्त रस का लक्षण इस प्रकार दिया है - भावों के समत्व को अर्थात् जहाँ सुख, दुःख, चिन्ता, राग, द्वेष कुछ भी नहीं हैं, उसे मुनियों ने शान्त रस कहा है।¹

आचार्यों के अनुसार शम शान्त रस का स्थायीभाव है। "शम" नामक स्थायीभाव की अन्तिम परणति है - "परमात्म तत्त्व अथवा मोक्ष की प्राप्ति"²

1. साहित्य दर्पण— विश्वनाथ, पृष्ठ 3/180

2. "काव्यशास्त्र" शान्तरस डॉ. सत्यदेव चौधरी, पृष्ठ 263

रामचन्द्र गुणचन्द्र ने शान्त रस की उत्पत्ति का विषय बताते हुए कहा है-

“जन्म मरण से युक्त संसार से, भय तथा वैराग्य से जीव अजीव, पुण्य पाप आदि तत्त्वों तथा मोक्ष के प्रतिपादक शास्त्रों के विमर्शन से शान्त रस की उत्पत्ति होती है।”¹

इस प्रकार संसार, शरीर, भोगों से वैराग्य तथा संसारभीरुता शान्तरस के विभव, मोक्ष की चिन्ता अनुभाव और निर्वेद, भीति, धृति, स्मृति इसके संचारीभाव कहे जा सकते हैं।

शान्त रस के उपर्युक्त विवेचन के आधार पर हम यह कह सकते हैं कि “पार्श्वपुराण” में शान्त रस के उपर्युक्त स्थायीभाव, विभाव, अनुभाव, संचारीभाव आदि सभी पूर्णरूपेण दृष्टिगोचर होते हैं। इसलिए “पार्श्वपुराण” का अंगीरस “शान्त रस” ही स्पष्टतः सिद्ध होता है।

पार्श्वपुराण में शान्तरस सर्वत्र दिखाई देता है। कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं -

एक दिन मरूभूति और कम्ठ के पिता विश्वभूति मंत्री को सफेद बाल देखकर ही वैराग्य हो जाता है -

“एक दिना भूपति मंत्रीश। स्वेत बाल देख निज शीश ॥

अपज्यो विप्र हिये वैराग। जान्यो सब जग अधिर सुहाग ॥”²

राजा अरविन्द को बादल की सुन्दर रचना मिटती हुई देखकर वैराग्य हो जाता है और वे संसार को अनित्य, असार अनित्य एवं दुःखमय मानने लगते हैं -

“तब भूपति उर करै विचार, जगतरीति सब अधिर असार।

तन धन राज संपदा सबै, योंही विनशि जायगी अबै ॥

मोह भक्त प्राणी हठ गहै, अधिर वस्तु को धिर सरदहै।

जो पर रूप पदारथ जाति, ते अपने मानै दिनराति ॥

भोगभाव सब दुख के हेत, तिनही को जान सुख खेत।

ज्यों मानन कोदों परभाव, जाय जधारध दृष्टि स्वभाव ॥

1. “हिन्दी साहित्य दर्पण” 3.20 तथा वृत्ति रामचन्द्र गुणचन्द्र पृष्ठ 31

2. पार्श्वपुराण— कलकत्ता, अधिकार 1 पृष्ठ 5

समझौ पुरुष और की और, त्यों ही जगजीवन की दौर ।

पुन कलत्र भिक्षुन जेह, स्वारण लगे गगे सब येह ।

सुपन सरूप सकल संभोग, निजहितहेत बिलम्ब न जोग ॥¹

एक जन्म में पार्श्वनाथ बज्रवीर्य राजा के बज्रनाभि पुत्र होते हैं । चक्रवर्ती बनकर वे गुरूपदेश से विरक्त हो जाते हैं -

“गुरु उपदेश्यों धर्म सिरोमनि सुनि राजा वैरागे ।

राज रमा वनितादिक जे रस, ते रस बैरस लागे ॥²

संसार, शरीर एवं भोगों के स्वरूप³ का चिंतन करते हुए वे कहते हैं -

“मैं चक्री पद पाय निरन्तर, भोगे भोगे घनेरे ।

तो भी तन्त्रिक भये नहि पूरन, भोग मनोरथ मेरे ॥

राज समाज महा अवकारन, बैर बढ़ावनहारा ।

वैश्यासम लछमी अति चंचल, याको कौन पत्थारा ॥

मोह महारिपु बैर विचारो, जग जिग संकट डाले ।

घर कारागृह वनिता बेड़ी, परिजन जन रखवाले ॥

सम्यग्दर्शन ज्ञान चरन तप, ये जियके हितकारी ।

ये ही सार असार और सब, यह चक्री चित्तधारी ॥⁴

एक जन्म में पार्श्वनाथ आनन्द राजा के रूप में उत्पन्न होते हैं तथा अपने मस्तक पर श्वेत केश देखकर विरक्त हो जाते हैं -

“सो लखि सेत बाल भूपाल, भोग उदास भये तत्काल ।

जगत रीति सब अथिर असार, चितै चित में मोह निवार ॥⁵

विरक्त होकर बारह भावनाओं⁶ का चिंतन करते हुए मुनि दीक्षा ले लेते हैं । पार्श्वनाथ के जन्म में आयोध्या के राजा जयसेन के दूत का संदेश सुनकर पार्श्वनाथ विरक्त होकर सोचते हैं -

1. पार्श्वपुराण— कलकत्ता, अधिकार 2 पृष्ठ 9

2. पार्श्वपुराण— कलकत्ता, अधिकार 3 पृष्ठ 17

3. पार्श्वपुराण— कलकत्ता, अधिकार 3 पृष्ठ 18

4. पार्श्वपुराण— कलकत्ता, अधिकार 3 पृष्ठ 19

5. पार्श्वपुराण— कलकत्ता, अधिकार 4 पृष्ठ 29

6. पार्श्वपुराण— कलकत्ता, अधिकार 4 पृष्ठ 30

“सुनि दूत वचन वैरागे, निज मन प्रभु सोचन लागे ।
मैं इन्द्रासन सुख कीने, लोकोत्तम भोग नवीने ।
तब तृपति भई तहाँ नाही, क्या होय मनुष पदमाही
जो सागर के जल सेती, न बुझी तिसना तिस एती ।”¹

पश्चात् बारह भावनाएँ भाते हैं -

“भोग विमुख जिनराज इमि, सुधि कीनी शिवछान ।
भावैं बारह भावना, उदासीन हितदान ॥”²

अनित्य, अशरण, संसार, एकत्व, अन्यत्व, अशुचि, आस्रव, संवर, निर्जरा, लोक, बोधिदुर्लभ और धर्म - इन बारह भावनाओं के चिंतन से पार्श्वनाथ का वैराग्य दृढ़ता को प्राप्त होता है -

“ये दश दोष भावना भाय, दिढ वैरागि भये जिनराज ।
देह भोग संसार स्वरूप, सब असार जानो जगधूप ॥
जान्यो प्रभु संसार असार, अशिर अपावन देह निहार ।
इन्द्रिय सुख सुपने सम दीख, सो याही विधि है जगदीश ॥”³

इस प्रकार शान्तरस कथानक में सर्वत्र दिखाई देता है । नायक पार्श्वनाथ की मूलवृत्ति वर्तमान जन्म में तथा पूर्व सभी जन्मों में ज्ञानवैराग्ययुक्त शान्त रसमयी ही रही है । पाठक पर भी शान्तरस का प्रभाव सर्वाधिक पड़ता है । “पार्श्वपुराण” के उद्देश्य के अनुरूप आस्वाद्य शान्त रस ही है । अतः शान्तरस को पार्श्वपुराण का “अंगीरस” कहने में यत्किंचित् सन्देह नहीं रह जाता है । निष्कर्षतः पार्श्वपुराण का अंगीरस शान्तरस ही है ।

:: अन्य रस ::

काव्य के अंगरूप में पार्श्वपुराण में अन्य सभी रस विद्यमान हैं ।

शृंगार रस - नायक पार्श्वनाथ के नौ भव पूर्व मरुभूति के रूप में विद्यमान होने पर उसकी पत्नी विसुन्दरी के साथ उसका बड़ा भाई कमठ दुराचार कर लेता है । दुराचार करने के सम्बन्ध में शृंगार रस की उद्भावना हुई है -

1. पार्श्वपुराण— कलकता, अधिकार 7 पृष्ठ 63

2 एवं 3. पार्श्वपुराण— कलकता, अधिकार 7 पृष्ठ 64

“एक दिना निजभाता नारि । भूषण भूषित रूप निहारि ॥
 राग अंध अति विह्वल भयो । तीच्छन कामताप उर तयो ॥ ¹
 छल बल कर भीतर लई, बनिता गई अज्ञान ।
 राग वचन भाषे विविध, दुराचार की खान ॥
 गज मातो कमठ कंसकी । अधसों मनसा नहिं शंकी ॥
 धातुज बनकरनी रंजो । जिम शीतल रोवर भंजो ॥ ²

मरुभूति मरकर दूसरे जन्म में “वज्रघोष” नाम का हाथी होता है और कमठ की स्त्री “वरुना” मरकर हथिनी होती है । हाथी का हथिनी के साथ संयोग श्रृंगार का वर्णन भी हुआ है -

जो वरुना नापैं कमठ नार । पोदनपुर निवसै तिराधार ।
 सो मरि तिहि हथनी हुई आन, तिस संग रमै नित रंजमान ॥ ³
 यों सुछन्द क्रीड़ा करे, वरुना हथनी सत्य ।
 वन निवसै बारण बली, मारणशील समस्त ॥ ⁴

हास्य रस - बालक पार्श्वनाथ की बालक्रीड़ाओं में वात्सल्ययुक्त हास्य रस अभिव्यक्त हुआ है -

अब जिन बालचन्द्रमा बढै । कोमल हाँस किरन मुख कढ़ै ।
 छिन छिन तात यात मन हरै । सुख समुद्र दिन दिन विस्तारै ॥ ⁵

पार्श्वकुमार वनविहार करते समय अपने नाना को पंचाग्नि तप के लिए लकड़ी चीरते हुए देखते हैं । उन्हें देखकर वे प्रणाम नहीं करते हैं तथा लकड़ी चीरने के लिए भी मना करते हैं जिससे उनके नाना पार्श्वकुमार का भजाक उड़ाते हुए ऐसे वचन बोलते हैं, जिनसे क्रोधव्यंग्ययुक्त हास्य रस उद्भूत होता है -

सुनि कठोर बोल्यो रिस आन, भो बालक तुम ऐसो ज्ञान ।
 हरि हर ब्रह्मा तुम ही भये, सकल चराचर ज्ञाता ठये ॥ ⁶

1. पार्श्वपुराण— कलकता, अधिकार 1 पृष्ठ 5
2. पार्श्वपुराण— कलकता, अधिकार 1 पृष्ठ 6
3. पार्श्वपुराण— कलकता, अधिकार 2 पृष्ठ 9
4. पार्श्वपुराण— कलकता, अधिकार 2 पृष्ठ 9
5. पार्श्वपुराण— कलकता, अधिकार 4 पृष्ठ 28
6. पार्श्वपुराण— कलकता, अधिकार 7 पृष्ठ 61

करुण रस - राजा अरविन्द द्वारा दुराचारी कमठ को दण्ड दिये जाने पर कमठ अत्यन्त दुःखी होता है। दुःखावस्था में करुण रस का चित्रण निम्नप्रकार हुआ है -

महादण्ड जब भूपति दियो, कमठ कुशील दुखी अति भयो।

विलखत वदन गयो चल तहाँ, भूताचल पर्वत है जहाँ ॥¹

कमठ द्वारा अनेक पाप किये जाने पर वह नरक गति प्राप्त कर लेता है। नरक में वह पूर्व में किये गये पापों के प्रति पश्चाताप करता है। पश्चाताप करते हुए करुण रस इस प्रकार व्यक्त हुआ है -

पूरब पाप कलाप सब, आय जाय कर लेय।

तब विलाप की ताप तब, नरकतप डरेत ॥

मैं मनुष्य परजाय धरि, धन जोवन मदलीन।

अधम काज ऐसे किये, नरक वास जिन दीन ॥

सरसों सम सुख हेत तब, भयो लम्पटी जान।

ताही को अब फल लग्यो, यह दुख मेरु समान ॥²

पार्श्वकुमार द्वारा शादी का प्रस्ताव अस्वीकार किये जाने पर राजा अश्वसेन अत्यन्त दुःखी होते हैं। इस प्रसंग में करुण रस द्रष्टव्य है -

सुन नरेन्द्र लोचन भरे, रहे वदन विलखाय।

पुत्र क्याह खर्जन वचन, किसे नही दुखदाय ॥³

वीर रस - पार्श्वनाथ तप में निरत रहकर ध्यानरूपी तलवार से कर्मरूपी शत्रुओं को जीत लेते हैं। इस प्रसंग में वीर रस की छटा देखिये -

तपमय धनुष धर्यो निज पान। तीन रतन ये तीखन बान ॥

समता भाव चढ़े जगशीश। ध्यान कृपान लियो कर ईश ॥

चारित रंग मही में धीर। कर्मशत्रु विजयी खरवीर ॥⁴

1. पार्श्वपुराण— कलकत्ता, अधिकार 1 पृष्ठ 7

2. पार्श्वपुराण— कलकत्ता, अधिकार 3 पृष्ठ 21

3. पार्श्वपुराण— कलकत्ता, अधिकार 7 पृष्ठ 61

4. पार्श्वपुराण— कलकत्ता, अधिकार 8 पृष्ठ 67

रौद्र रस - कमठ का जीव पापकर्मों के फलस्वरूप कई बार नरक में जन्म लेता है। नरक के नारकियों के स्वरूप वर्णन में रौद्र रस दिखलाई देता है -

सब क्रोधी कलही सकल, सबके नेत्र फुलिंग।
दुख देने को अति निपुण, निहुर नपुसंक लिंग ॥¹

नारकी क्रोधित होकर आपस में एक दूसरे को मारते हैं -

“तिनही सों अति रिस भरे, करें परस्पर घात”²

कमठ के ऊपर राजा द्वारा क्रोध करने में भी रौद्र रस प्रकट हुआ है -

“राजा अति ही रिस कीनी, सिर मुण्ड दण्ड बहु दीनी”³

राजा अरविन्द द्वारा कमठ को देश निकाला दिये जाने पर मरुभूति उससे मिलने जाता है। जब मरुभूति उसके पैरों में गिरकर क्षमायाचना करता है तब कमठ क्रोध में आकर अपने हाथ में ली हुई शिला मरुभूति के ऊपर पटक कर उसकी हत्या कर देता है। इस प्रसंग में रौद्र रस देखिये -

“यो कह पाँथन लागो जाम।
क्रोध्यो अधिक कमठ दुठ ताम ॥
शिला सहोदर शीशपै, डारी वज्र समान।
पीर न आई पिशुन को, धिक दुर्जन की बान ॥”⁴

भयानक रस - मरुभूति मरकर “बज्रघोष” नाम का हाथी होता है। वह हाथी क्रोधित होकर भय का कारण बनता है -

तावत्त बज्रघोष गजराज, आयो कोपि काल सम गाज।
सकल संग में खल बल परी, भाजे लोग कूकि ध्वनि करी।
गज के धकै पर्यो जो कोय, सो प्राणी पहुँच्यो परलोय।
मारे तुरग तिसाये गैल, मारे मारगहारे खैल।
मारे भूखे करहा खरे, मारे जन भाजे भय भरे।⁵

नरक के वर्णन में भयानक रस का चित्रण भी हुआ है -

1. पार्वतपुराण— कलकत्ता, अधिकार 3 पृष्ठ 22

3. वही अधिकार 1, पृष्ठ 7

5. वही अधिकार 2, पृष्ठ 10

2. वही अधिकार 3, पृष्ठ 23

4. वही अधिकार 1, पृष्ठ 8

तहाँ भयानक नारकी, धरि विक्रिया भेष ।
बाघ सिंह अहि रूप सों, दारै देह विशेष ॥¹

“संवर” नामक ज्योतिषी देव द्वारा पार्श्वनाथ पर उपसर्ग किये जाने पर भयानक रस निम्नलिखित पंक्तियों में व्यक्त हुआ है -

आरम्भ्यो उपसर्ग महान । कायर देखि भजै भय मान ॥
अंधकार छायो चहुँ ओर, गरज गरज वर्षे घनघोर ॥
झरै नीर भुसलोपम धार । बक्र चीज झलकै भयकार ॥ २

वीभत्स रस - कमठ का जीव अपने पापकर्मों के फलस्वरूप कई बार नरक प्राप्त करता है । कवि ने बुरे कर्मों से प्राप्त नरक और नारकी जीवन का बड़ा भयंकर और वीभत्स चित्रण किया है -

जन्म धान सब नरक में, अंध अधोमुख जौन ।
घंटाकार घिनावनी, दुसह बास दुख मौन ॥³

इसी सन्दर्भ में कवि-आगे कहता है -

श्वान श्याल मंजार की, पड़ी कलेवर रास ।
मास वसा अरु रूधिर को, कादो जहाँ कुवास ॥
ठाम ठाम असुहावने, सेमल तरुवर भूर ।
पैने दुख देने विकट, कंटक कलित करूर ॥⁴

अद्भुत रस - पार्श्वपुराण में अद्भुत रस कई स्थानों पर दृष्टिगत होता है । जब पार्श्वनाथ अपने पूर्व जन्म में चक्रवर्ती से अहमिन्द्र देव हो जाते हैं, तब देवलोक की सम्पदा देखकर वे आश्चर्य में पड़ जाते हैं -

“देखि दिशि अति विस्मितरूप । महा मनोग विमान अनूप ॥”⁵

अहमिन्द्र के पश्चात् राजा आनन्द का जन्म प्राप्तकर वे सूर्यविमान में विराजमान आश्चर्यरूप जिनबिम्बों को नमस्कार करते हैं -

रवि विमान मनि कंचनमई । निमायो अद्भुत छवि छई ॥
जैनभवनकरि मंडित सोय । देखत जनमन अचरज होय ॥⁶

1. पार्श्वपुराण— कलकत्ता, अधिकार 3 पृष्ठ 22 -23

3. वही अधिकार 3, पृष्ठ 20

5. वही अधिकार 3, पृष्ठ 20

2. वही अधिकार 8, पृष्ठ 67

4. वही अधिकार 3, पृष्ठ 24

6. वही अधिकार 4, पृष्ठ 29

पुनः स्वर्गलोक की प्राप्ति होने पर राजा आनन्द का जीव विस्मित होता है-

विसमयवन्त होय मन ताम । कहैं कौन आयो किस धाम ॥¹

तीर्थकर होने से पार्श्वनाथ के जन्म के छह माह पूर्व से देवों द्वारा अनुपम पाँच आश्चर्य होते हैं, जिनमें अद्भुत रस होता है -

देखन किये छह मास लों, पंचाचरज अनूप ।

देखि देखि परजा भई, आनन्द अचरजरूप ॥²

पार्श्वनाथ का जन्म होने पर देवों द्वारा जन्म महोत्सव मनाया जाता है । इस अवसर पर इन्द्र आश्चर्यकारक ताण्डव नृत्य करता है -

अद्भुत ताण्डव रस तिहि वार । दरसावै जन अचरजकार ॥³

वात्सल्य रस - बालक पार्श्वनाथ द्वारा की गई विविध बालक्रीड़ाओं से वात्सल्य रस अभिव्यक्त होता है -

अब जिन बालचन्द्रमा बढै कोमल हांस किरन मुख कढै ।

छिन छिन तात पात मन हरै । सुख समुद्र दिन दिन विस्तरे ॥

कबहीं पुहुमीपै जिनराय । कंपित चरन ठवैं इहि भाय ॥

सहै कि ना धरती मुझ भार । शंके उर उपमा यह धार ॥

कबहीं स्वामी उझकि उठि चलैं । विकसित मुख सब दुखको दलैं ॥

बांधे मुठी अटपटे पांय । कैसे यह छवि धरनी जाय ॥

कबहीं रतन भीत में रूप । झलके ताहि गहैं जगभूप ॥

माता सों माने अति प्रीत । बाल अवस्था की यह रीति ॥

यो जिन बालक सीला करै । त्रिभुवन जनमनमानिक हरै ॥⁴

भक्ति रस - कवि द्वारा अपने इष्ट देव के प्रति रतिभाव होने से कई स्थानों पर भक्तिरस की सरिता प्रवाहित हुई है । ग्रन्थ के प्रारम्भ में ही मंगलाचरण के रूप में कवि पार्श्वनाथ की स्तुति करता है -

1. पार्श्वपुराण— कलकत्ता, अधिकार 3 पृष्ठ 22

3. वही अधिकार 5, पृष्ठ 57

2. वही अधिकार 5, पृष्ठ 46

4. वही अधिकार 7, पृष्ठ 59

पहिमा महंत मुनिजन जपत, आदि अन्त सबको सरन ।

सो परमदेव मुझ मन बसो, पार्श्वनाथ मंगल करन ॥¹

प्रत्येक अधिकार के प्रारम्भ में प्रथम छन्द में कवि ने पार्श्वनाथ की स्तुति की है। पार्श्वनाथ के साथ ही चौबीस तीर्थंकर के रूप में अरहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु - इन पाँचों परमेष्ठियों की वन्दना करने में भक्ति रस विद्यमान है -

वन्दों तीर्थंकर चौबीस । वन्दो सिद्ध बसैं जगसीस ॥

वन्दों आचारज उवझाय । वन्दों परम साधु के पाय ॥²

पंचकल्याणकों के अवसर पर देवों द्वारा पार्श्वनाथ की स्तुति की गई है। उस स्तुति में भक्ति रस की धारा फूट पड़ी है -

तुम जगपति देवन के देव । तुम जिन स्वयं बुद्ध स्वयमेव ॥

तुम जग रक्षक तुम जगतात । तुम बिनकारन बन्धु विख्यात ॥

तुम गुनसागर अगम अपार । धुतिकर कौन जाय जन पार ॥

सूक्ष्म ज्ञानी मुनि नहिं तरैं । हमसे मंद कहा बल धरे ।

नमो देव अशरन आधार । नमो सर्व अतिशय भंडार ॥

नमो सकल जग संपति करन । नमो नमो जिन तारन तरन ॥³

ग्रन्थ के अन्त में भी कवि पार्श्वनाथ के प्रति भक्ति प्रदर्शित करता है -

जे गरभ जनम तप ज्ञान काल । निर्वाण पूज्य कीरति विशाल ॥

सुर नर मुनि जाकी करें सेव । सो जयो पार्श्व देवाधिदेव ॥⁴

पुन :-

विघन हरन निरभयकरन, अरुल वरन अभिराम ।

पास चरन संकट हरन, नमो नमो गुनधाम ॥

1. पार्श्वपुराण—कलकता, अधिकार 1 पृष्ठ 1
2. वही अधिकार 1, पृष्ठ 1-2
3. वही अधिकार 6, पृष्ठ 65
4. वही अधिकार 9, पृष्ठ 95

नमो देव अरहन्त, सकल तत्त्वारथभासी ।
 नमो सिद्ध भगवान्, ज्ञानमूरति अधिनाशी ॥
 नमो साधु निग्रन्थ, दुविधि परिग्रह परित्यागी ॥
 यथाजात जिनर्लिंग धारि, वन बसे खिरागी ॥
 वन्दों जिन भाषित धरम, देय सर्व सुख सम्पदा ॥
 ये सार चार तिहुँलोक में, करो क्षेम मंगल सदा ॥¹

इस प्रकार पार्श्वपुराण में अंगीरस “शान्त” के अतिरिक्त अंगरस के रूप में श्रृंगार, हास्य, करुण, वीर, रौद्र, भयानक, वीभत्स, अद्भुत, वात्सल्य और भक्ति रस यथावश्यक रूप से विद्यमान हैं ।

(इ) पार्श्वपुराण की रचना का उद्देश्य

महाकाव्य का कोई ने कोई प्रमुख लक्ष्य या उद्देश्य होता है जो “कार्य” कहलाता है । इसे दृष्टि में रखकर ही कवि कथानक की योजना करता है । सम्पूर्ण कथानक का केन्द्र यही कार्य होता है और इसी के कारण काव्य में एकरूपता आ जाती है ।

“पार्श्वपुराण” की रचना भी सोद्देश्य की गई है । इसकी रचना के पीछे कवि के एकाधिक उद्देश्य दृष्टिगत होते हैं । “पार्श्वपुराण” की रचना का प्रमुख उद्देश्य जैन तीर्थंकर भगवान् पार्श्वनाथ का चरित्र चित्रण करना है । पार्श्वनाथ के चरित्र चित्रण के साथ-साथ जैनधर्म के सिद्धान्तों का परिचय कराना² तथा धर्मोपदेश द्वारा सन्मार्ग दिखाना - पार्श्वपुराण के गौण उद्देश्य हैं ।

प्राचीन आचार्यों के अनुसार महाकाव्य का उद्देश्य पुरुषार्थ चतुष्टय में से किसी एक की प्राप्ति में सहायक होना है । इस दृष्टि से पार्श्वपुराण का उद्देश्य धर्म एवं मोक्ष पुरुषार्थ की प्राप्ति में सहायक होना है । कवि सभी प्राणियों को संसार के विविध दुःखों से छुड़ाकर उन्हें मुक्तिमार्ग दिखाकर मुक्ति दिलाना चाहता है । इसलिए कवि ने मोक्ष को सबसे उत्तम कहा है -

“सब विधि उत्तम मोख निवास । आवागमन मिटै जिहि वास ॥”³

1. पार्श्वपुराण— कलकत्ता, अधिकार 9 अन्तिम प्रशस्ति पृष्ठ 96

2. पार्श्वपुराण— कलकत्ता, अधिकार 9 सम्पूर्ण अधिकार

3. पार्श्वपुराण— कलकत्ता, अधिकार 9 पृष्ठ 77

मोक्ष में निवास करने को सब प्रकार से उत्तम बतलाकर कवि ने मोक्ष के कारणस्वरूप भावों को ही ग्रहण करने योग्य बतलाया है -

“तार्तैं जे शिखकारन भाव । तेई गहन जोग मन लाख ॥”¹

मोक्ष एवं मोक्ष के कारणों से विपरीत संसार एवं संसार के कारणों को त्यागने योग्य बतलाना भी कवि का उद्देश्य है -

“यह जगवास महादुखरूप । तार्तैं भ्रमत्त दुखी चिद्रूप ।

जिनभावन उपजै संसार । ते सब त्याग जोग निरधार ॥”²

इस संसार में कोई भी सुखी नहीं है । निर्धन धन के बिना दुःखी है तो धनवान् तृष्णा से दुःखी है -

“दाम बिना निर्धन दुखी, तृष्णा वश धनवान् ।

कबहूँ न सुख संसार में, सब जग देखो छान ॥”³

इस प्रकार संसार को दुखरूप एवं असार बतलाकर कवि का उद्देश्य मानव को मोक्षसुख की प्राप्ति के लिए उत्साहित करते हुए मोक्ष एवं मोक्षमार्ग में लगाना है ।

दूसरे शब्दों में मोक्ष सुख को उपादेय तथा संसार, शरीर भोगजनित इन्द्रिय सुखों को हेय बतलाकर कवि ने विश्वव्यापी चिरन्तन समस्या का समाधान भारतीय महर्षियों और मनीषियों की परम्परा में प्रस्तुत किया है ।

भूधरदास ने “पार्श्वपुराण” के महान कथानक के आधारफलक पर विश्व की उस महान समस्या का चिरन्तन समाधान प्रस्तुत किया है, जो सामायिक होकर भी शाश्वत है । यह प्रत्येक युग की समस्या का पृथक्-पृथक् समाधान होकर भी त्रैकालिक समस्याओं का एक मात्र शाश्वत समाधान है, क्योंकि वास्तव में प्रत्येक युग तथा प्रत्येक प्राणी की अलग-अलग समस्याएँ नहीं, अपितु सभी युगों और सभी प्राणियों की एक मात्र समस्या है - मोह-राग-द्वेषात्मक

1. पार्श्वपुराण— कलकत्ता, अधिकार 9 पृष्ठ 77

2. पार्श्वपुराण— कलकत्ता, अधिकार 9 पृष्ठ 77

3. पार्श्वपुराण— कलकत्ता, अधिकार 4 पृष्ठ 30

इच्छाओं की उत्पत्ति । इसे दूसरे शब्दों में शास्त्रकारों ने मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान और मिथ्याचारित्र कहा है । वस्तु स्वरूप के विपरीत मानना मिथ्यादर्शन, विपरीत जानना मिथ्याज्ञान और विपरीत आचरण करना मिथ्याचारित्र है । इन्हीं के कारण यह प्राणी पर को अपना मानता है और व्यर्थ ही सुख दुख की कल्पनाएँ करता है :—

“मोहमत्त प्राणी हठ गाहै, अधिर वस्तु को धिर सरदहै ।

जो पर रूप पदारथ पाति, ते अपने माने दिन राति ॥”¹

इस समस्या का एक मात्र समाधान है - सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यग्चारित्र अर्थात् वस्तु स्वरूप को यथार्थ मानना, जानना व आचरण करना सुखी होने का सच्चा उपाय है, इसीलिए कवि सम्यग्दर्शनादि को हितकारी बतलाता है :—

“सम्यग्दर्शन ज्ञान चरन तप, ये जिय को हितकारी ।

ये ही सार असार और सब यह चक्री चितधारी ॥”²

यह व्यक्ति, परिवार, समाज, राष्ट्र और विश्व की सार्वभौमिक और सार्वकालिक अनन्त समस्याओं का सार्वभौमिक और सार्वकालिक एक मात्र समाधान है । यही भूधरदास के पार्श्वपुराण की रचना का एक महान उद्देश्य है ।

पार्श्वपुराण की रचना का एक उद्देश्य - कवि स्वयं धर्मध्यान में रहे तथा दूसरों को ग्रन्थ पढ़कर ज्ञान की प्राप्ति हो - इस प्रकार स्व और पर दोनों का उपकार करना है । इस उद्देश्य से ही कवि ने ग्रन्थ बनाने का उद्यम किया है :-

“जौ लौ कवि काव्य हेत आगम के अक्षर को,

अरथ विचारे तौ लौ सिद्धि शुभध्यान की ।

और वह पाठ जब भूपरि प्रगट होय,

पढ़े सुनें जीव तिन्हें प्राप्ति वै ज्ञान की ।

1. पार्श्वपुराण — अधिकार 2 पृष्ठ 9

2. पार्श्वपुराण — अधिकार 3 पृष्ठ 18

ऐसें निह पर लो निचर हित हेतु हम,
उद्यम कियो है नहि बान अभिमान की।
ज्ञान अंश चाखा भई ऐसी अमिलावा अब,
करू जोरि भाषा जिन पारस पुरान की॥¹

कवि का उद्देश्य पार्श्वनाथ के चरित्र के बहाने पार्श्वनाथ की भक्ति करना है—

“प्रभु चरित्र मिस किमपि यह कीनों प्रभु गुनगान।”²
भक्ति के वश होकर ही उसने यह ग्रन्थ बनाया है —

“मैं अब बरनो भक्तिवश, शक्ति मूल मुझ नाहि॥”³
प्रमाद या आलस्य को दूर करने के उद्देश्य से भी कवि पार्श्वनाथ का गुणगान करता है अर्थात् पार्श्वपुराण की रचना करता है —

“परमाद चोर टालन निमित्त, करौ पार्श्वजिन गुण कथन॥”⁴
कवि ने धर्म भावना के कारण भी इस ग्रन्थ की रचना की है—

“धर्मभावना हेतु, किमपि भाषा यह कीनी।”⁵
पार्श्वनाथ और कमठ के अनेक जन्मों की कथा कहकर कवि क्षमा का फल और वैर का फल भी दिखाना चाहता है :-

“छिमा भाव फल पास जिन, कमठ बैर फल जान।
दोनों दशा विलोक के, जो हित सौ उर जान॥”⁶
पहले तो कवि क्षमा और वैर का फल बताकर कहता है कि उन दोनों में जो हितकारी हो उसे ग्रहण करें। परन्तु बाद में स्वयं ही निष्कर्ष के रूप में हितकारी भाव क्षमा एवं मैत्री धारण करने की प्रेरणा भी देता है :-

“जीव जाति जावंत, सब सो मैत्री भाव करि।
याको यह सिद्धांत, बैर विरोध न कीजिये॥”⁷

1. पार्श्वपुराण पीठिका पृष्ठ 9

2. पार्श्वपुराण अधिकार 9 पृष्ठ 95

3. पार्श्वपुराण पृष्ठ 3

4. पार्श्वपुराण पीठिका पृष्ठ 1

5 से 7 तक पार्श्वपुराण अधिकार 9 पृष्ठ 95

पार्श्वपुराण की कथा का वर्णन करने के पीछे कवि का एक अन्य उद्देश्य शुभाशुभ कर्म अर्थात् पुण्य पाप का फल बतलाना तथा जीव को आत्म-हित की शिक्षा अर्थात् धर्म सेवन की प्रेरणा देना भी है :-

“सुन श्री पार्श्वपुराण, जान शुभाशुभ कर्म फल ।
सुहित हेत उर आन, जगत जीव उद्यम करो ॥”¹
“इस ही अद्वासिन्धु सों, पुण्य पाप पर भाव ।
संसारी जन भोगवे, स्वर्ग नरक की आव ॥”²
“धर्म पदारथ धन्य जग, जा पटतर कछु नाहिं ।
दुर्गति वास बचाय कै, धरै स्वर्ग शिव माहिं ॥”³

पार्श्वनाथ के चरित्र का वर्णन करने के साथ-साथ कवि का एक उद्देश्य जैन सिद्धान्तों का वर्णन करना भी है । इसीलिये उसने पार्श्वनाथ की दिव्यध्वनि द्वारा उपदेश दिये जाने के रूप में जैन सिद्धान्त के सात तत्त्व, छह द्रव्य, पंचास्तिकाय, नौ पदार्थ आदि का विस्तार से वर्णन किया है तथा उन सबको जानने योग्य भी कहा है । कवि के शब्दों में :-

“छहों द्रव्य पंचास्तिकाय, सात तत्त्व नौ पद समुदाय ।
जानन जोग जगत में येहु, जिनसों जाहि सकल सन्देह ॥”⁴

कवि ने अन्तिम अधिकार में पूर्णतः जैन सिद्धान्तों का विवेचन किया है । यह अधिकार एक मात्र इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिये लिखा गया है ।

पार्श्वपुराण का एक उद्देश्य धर्म प्रभावना करना भी है । कवि के इस उद्देश्य की पूर्ति पार्श्वनाथ द्वारा बताये हुए मार्ग पर अनेक लोगों के चलने से हो जाती है । पार्श्वनाथ के उपदेशों से अनेक जीव संसार से विरक्त होकर मोहान्धकार का नाश कर मुक्ति मार्ग प्राप्त करते हैं :-

“वचन किरण सौ मोह तम, मिटयो महादुख दाय ।
बैरागे जग जीव बहु, काल लब्धि बल पाय ॥”⁵

1. पार्श्वपुराण अधिकार 9 पृष्ठ 95

2 से 3 पार्श्वपुराण अधिकार 9 पृष्ठ 95

4. पार्श्वपुराण अधिकार 9 पृष्ठ 77

5. पार्श्वपुराण अधिकार 9 पृष्ठ 91

पार्श्वनाथ के उपदेश से किसी ने मुक्ति प्राप्त की, कोई नग्न होकर दिगम्बर मुनि बन गया, किसी ने श्रावकव्रत धारण किये तथा किसी ने सम्यग्दर्शन प्राप्त किया। देव, मनुष्य, तिर्यच आदि सभी यथायोग्य धर्म को प्राप्त हुए।¹

इस प्रकार पार्श्वनाथ के द्वारा महती धर्म प्रभावना हुई। यह धर्म प्रभावना करना भी कवि का उद्देश्य है :-

“प्रभु उपदेश पोत चढ़ि धीर, अब सुख सों जेहे जन तीर ॥”²

“तुम वानी कूची कर धार, अब भवि जीव लहै पयसार ॥”³

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि भूधरदास के “पार्श्वपुराण” की रचना के अनेक उद्देश्य हैं। एक ओर जैन तीर्थंकर भगवान पार्श्वनाथ का चरित्र चित्रण करना, दूसरी ओर जैन सिद्धान्तों का परिचय कराते हुए संसार, शरीर, भोगों की अनित्यता, असारता और दुःखमयता बतलाकर मोक्षसुख की प्राप्ति का मार्ग प्रशस्त करना। इसमें ही विश्वव्यापी समस्या के समाधान रूप मोह-राग-द्वेषात्मक या मिथ्यादर्शन-ज्ञान चारित्रात्मक वृत्तियों के शमन कराने व सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चरित्र प्राप्त कराने का उद्देश्य भी गर्भित है।

कवि ने क्रोध व वैर की परम्परा को जन्म जन्मान्तर तक बतलाकर उसका फल अनेक कुयोनियों तथा नरक गति में दुःख की प्राप्ति बतलाई है तथा क्षमा व समता का फल स्वर्ग तथा मोक्ष सुख बतलाया है। साथ ही पुण्य पाप का फल अथवा शुभ-अशुभ कर्मों का फल बतलाकर धर्म के मार्ग में लगाना भी कवि का एक अन्य उद्देश्य है।

कवि “पार्श्वपुराण” की रचना करके सम्मान एवं सांसारिक सुख की कामना नहीं करता अपितु उसने भक्ति के वश में होकर निज-पर के उपकार करने हेतु धर्मभावना से “पार्श्वपुराण” की रचना की है।

इसप्रकार भूधरदास द्वारा रचित महाकाव्य “पार्श्वपुराण” में कथानक की अनेक विशेषताएँ, पात्रों का चरित्र चित्रण, प्रकृति का निभिन्न रूपों में वर्णन, रस निरूपण तथा उद्देश्य कथन किया गया है और इन्हीं सबके आधार पर यहाँ महाकाव्य पार्श्वपुराण का भावपक्षीय अनुशीलन किया गया है।

1. पार्श्वपुराण अधिकार 9 पृष्ठ 95

2. पार्श्वपुराण अधिकार 7 पृष्ठ 64

3. पार्श्वपुराण अधिकार 7 पृष्ठ 64

महाकाव्येतर रचनाओं का भावपक्षीय अनुशीलन

भूधरसाहित्य गद्य और पद्य दोनों में रचित है। गद्य में मात्र “चर्चा समाधान” और पद्य में “पार्श्वपुराण”, “जैनशतक”, “पदसंग्रह” एवं अनेक प्रकीर्णक रचनाएँ हैं। “पार्श्वपुराण” महाकाव्य है। पार्श्वपुराण का महाकाव्यात्मक मूल्यांकन एवं उसकी अन्य सभी विशेषताओं का विस्तृत विवेचन किया जा चुका है।¹ जैन शतक, पदसंग्रह आदि मुक्तक काव्य के अन्तर्गत समाहित होकर महाकाव्येतर रचनाएँ मानी जा सकती हैं। अतः इन्हीं रचनाओं का भावपक्षीय अनुशीलन विवेच्य है।

मुक्तक का अर्थ (परिभाषा) एवं विशेषताएँ

मुक्त शब्द में कन् प्रत्यय के योग से उसी अर्थ में मुक्तक शब्द बनता है, जिसका अर्थ होता है-अपने आप में सम्पूर्ण अन्य निरपेक्ष मुक्त वस्तु।²

इसी मूल अर्थ से मिलती जुलती परिभाषाएँ अनेक काव्य शास्त्र के आचार्यों ने दी हैं।

मुक्तक का उल्लेख आचार्य दण्डी ने अपने काव्यादर्श में भी किया है।³ काव्यादर्श के प्राचीन टीकाकार तरुण वाचस्पति ने अपनी टीका में मुक्तक का अर्थ स्पष्ट करते हुए लिखा है-“मुक्तक एक ऐसा सुभाषित होता है, जो इतर की अपेक्षा नहीं रखता।”⁴ काव्यादर्श की अन्य टीका हृदयगंग के अनुसार-“मुक्तक वह श्लोक है, जो वाक्यान्तर की अपेक्षा न रखता हो।”⁵ बाबू गुलाबराय मुक्तक की परिभाषा देते हुए लिखते हैं-“मुक्तक काव्य तारतरम्य के बन्धन से मुक्त होने के कारण (मुक्तेन मुक्तकम्) कहलाता है और उसका प्रत्येक पद स्वतः पूर्ण होता है।”⁶

1. प्रस्तुत शोध प्रबन्ध अध्याय 5

2. “तृतीयोद्योत लोचनम्”

3. मुक्तकं कुलकं कोशः संघातः इति तादृशः - काव्यादर्श 1/13

4. “मुक्तकमितरणनिरपेक्षमेकं सुभाषितम्” - तरुण वाचस्पति

5. “मुक्तकं वाक्यान्तरनिरपेक्षो यः श्लोकः - काव्यादर्श, हृदयगंग टीका

6. काव्य के रूप - बाबू गुलाबराय, पृष्ठ 106

आगे के मुक्तकों के पाठ्य और गेय-ऐसे दो भेद बतलाकर कहते हैं कि “प्रायः गेय पदों में भावातिरेक और निजीपन अधिक रहता था; इसलिए निजी भावातिरेक का प्राधान्य इस विधा का मूल तत्त्व हो गया है। संगीत तो प्रगीत काव्य के नाम से लगा हुआ है।

संक्षेप में प्रगीत काव्य के तत्त्व इसप्रकार हैं— संगीतात्मकता और उसके अनुकूल सरस प्रवाहमयी कोमलकान्त पदावली, निजी रागात्मकता (जो प्रायः आत्मनिवेदन के रूप में प्रकट होती है) संक्षिप्तता और भाव की एकता।

यह काव्य की अन्य विधाओं की अपेक्षा अन्तः प्रेरित होता है और इसी कारण इसमें कला होते हुए भी कृत्रिमता का अभाव रहता है।”¹

मुक्तक के सम्बन्ध में सम्पूर्ण मतों का विमर्श करके यह परिभाषा बनायी जा सकती है-

“मुक्तक पूर्व और पर से निरपेक्ष, मार्मिक खण्ड, दृश्य अथवा संवेदना को उपस्थित करने वाली वह रचना है; जिसमें नैरन्तर्यपूर्व कथा-प्रवाह नहीं होता, जिसका प्रभाव सूक्ष्म अधिक, व्यापक कम होता है तथा जो स्वयं पूर्ण अर्थभूमि सम्पन्न अपेक्षाकृत लघु रचना होती है।”²

मुक्तक की विशेषताओं के रूप में कहा जा सकता है कि -

1. मुक्तक वह है, जो अन्य निरपेक्ष हो।
2. अनिबद्ध हो (कथा बन्ध रहित हो)।
3. एक छन्द हो और रस चर्वण (रसस्वाद) कराने में सहायक हो अथवा चमत्कारक्षम हो।

पूर्व निरपेक्षता आदि गुण मुक्तक के रूपात्मक पक्ष का पूर्ण निरूपण करते हैं, लेकिन मुक्तक होने के लिए एक छन्द की अनिवार्यता ठीक नहीं।

1. काव्य के रूप - बाबू गुलाबराय, पृष्ठ 108

2. हिन्दी मुक्तक का विकास - जितेन्द्रनाथ पाठक, पृष्ठ 16

मुक्तक और प्रबन्ध में भेद

मुक्तक काव्य और प्रबन्ध में काफी अन्तर है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल इस अन्तर को निम्नलिखित शब्दों में अभिव्यक्त करते हैं -

“मुक्तक में प्रबन्ध के समान रस की धारा नहीं रहती जिसमें कथा प्रसंग की परिस्थिति में भूला हुआ पाठक निमग्न हो जाता है और हृदय में एक स्थायी प्रभाव ग्रहण करता है। इसमें तो रस के ऐसे छीटे पड़ते हैं, जिससे हृदय कलिका शोड़ी डेर के लिए खिल उठती है। यदि प्रबन्ध काव्य विस्तृत वनस्थली है तो मुक्तक एक चुना हुआ गुलदस्ता है। उसमें उत्तरोत्तर अनेक दृश्यों द्वारा संघटित पूर्ण जीवन या उसके किसी अंग का प्रदर्शन नहीं होता, बल्कि कोई एक रमणीय खण्ड, दृश्य सहसा सामने ला दिया जाता है।¹

श्री जितेन्द्रनाथ पाठक के अनुसार-“प्रबन्ध कवि की किसी महती इच्छा, इतिवृत्तविधायिनी बुद्धि और शिल्प चेतना का परिणाम है, किन्तु मुक्तक कवि की सद्यःस्फुरत भावुकता समास-चेतना और भावविधायिनी प्रतिभा की अभिव्यक्ति है।

बाह्यरूप और अंतरवर्ती चेतना की इसी भिन्नता के कारण संभवतः मुक्तकों का निर्माण और उसका ग्रहण काफी वेग से हुआ और प्रबन्धों का निर्माण काफी धीरे-धीरे। संभवतः इसी कारण मुक्तकों का संख्यातीत विशाल साहित्य सामने आया और प्रबन्धों का ऐसा साहित्य जो सरलतापूर्वक गिना जा सके।”²

कवि भूधरदास ने एक ओर जहाँ पार्श्वपुराण नामक प्रबन्ध काव्य की रचना की, वहाँ दूसरी ओर जैनशतक, पदसंग्रह आदि मुक्तक काव्य की रचना भी की। वे दोनों ही प्रकार के काव्यों की विशेषताओं को एक साथ लिये हुए हैं। प्रबन्ध काव्य की विशेषताओं का विवेचन किया जा चुका है। मुक्तक काव्य की विशेषताओं का विवेचन क्रम-प्राप्त है। मुक्तक काव्य में जैनशतक की भावपक्षीय विशेषताओं का वर्णन इसप्रकार है-

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृष्ठ 265

2. हिन्दी मुक्तक काव्य का विकास, जितेन्द्रनाथ पाठक, पृष्ठ 1

जैनशतक का भावपक्षीय विश्लेषण

“शतक” का अर्थ संख्यावाची “सौ” है तथा जैनधर्म से सम्बन्धित विषयवस्तु होने के कारण “जैनशतक” नाम प्रसिद्ध है। संख्यावाची शब्दों से नाम रखने की परम्परा काफी प्राचीन रही है, जिनमें अष्टक, बीसी, चौबीसी, पच्चीसी, बत्तीसी, छत्तीसी, बावनी, बहोत्तरी, अष्टोत्तरी, शतक, सतसई, हजारा आदि नाम की सहस्रादिक कृतियाँ उपलब्ध होती हैं। सामान्यतः ये रचनाएँ मुक्तक काव्य में समाहित हैं।

संख्यापरक कृतियों में उसमें आने वाली निश्चित संख्या से कुछ अधिक संख्या में पदों के रचने का प्रचलन रहा है, जैसे बिहारी सतसई आदि। भूधरदास ने भी जैनशतक में 100 से अधिक 107 पद रचे हैं। 107 पदों का यह स्तुति, नीति एवं वैराग्य को प्रदर्शित करने वाला मुक्तक काव्य है। प्रत्येक पद पृथक्-पृथक् छन्द में पृथक्-पृथक् विषय को लिये हुए हैं। प्रत्येक छन्द स्वयं में पूर्ण स्वतन्त्र एवं पूर्ण है तथा उसे किसी दूसरे पूर्वापर छन्द की अपेक्षा नहीं है।

विषय वर्णन के अनुसार “जैनशतक” शतक परम्परा की महत्वपूर्ण कृति है। उसमें जैनधर्म से सम्बन्धित स्तुति, नीति, वैराग्य एवं उपदेश आदि का सुन्दर वर्णन है।

प्रथम 15 छन्दों में आदिनाथ, चन्द्रप्रभु, शान्तिनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ, महावीर, सिद्ध, साधु और जिनवाणी की स्तुति की गई होने से स्पष्टतः ये सभी छन्द स्तुतिपरक हैं। इसीप्रकार छन्द 93 से 105 तक 13 छन्दों में जैन धर्म की प्रशंसा, छन्द 81 से 87 तक 7 छन्दों में चौबीस तीर्थंकरों के चिह्न ऋषभदेव, चन्द्रप्रभु, शान्तिनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ, राजा यशोधर के पूर्वजों का कथन है। ये सभी छन्द स्तुतिपरक कहे जा सकते हैं।

वैराग्य प्रेरक पद्यों के रूप में वैराग्य कामना छन्द 17, राग एवं वैराग्य दशा में अन्तर छन्द 18, भोग की चाह का निषेध छन्द 19, देह का स्वरूप छन्द 20, संसार का स्वरूप छन्द 21, विषय सुख की तुच्छता एवं जिनगुण स्मरण की महत्ता छन्द 22 से 24, सौ वर्ष की आयु का लेखा-जोखा छन्द 27, संसारी जीव का चिन्तन छन्द 32, संयोग का वियोग होने पर भी विरक्त न होना छन्द 35,

जिन वचन का कथन छन्द 33, सांसारिक कुशलता का वर्णन छन्द 36, बुढ़ापे का वर्णन छन्द 28, 29 एवं 38 से 42 तक हैं । ये सभी छन्द वैराग्य की उत्पत्ति एवं वृद्धि के निमित्त हैं ।

उपदेशपरक पद्यों में हितोपदेश की शिक्षा छन्द 25, बुढ़ापा एवं रोग आने के पहले आत्महित की प्रेरणा छन्द 26, मनुष्य भव की दुर्लभता एवं युवावस्था में धर्म करने की प्रेरणा छन्द 30-31, अभिमान निषेध छन्द 34, कर्तव्यशिक्षा एवं सच्चे देव, शास्त्र, गुरु, धर्म में प्रीति करने की प्रेरणा छन्द 44 से 46, षट्कर्म का उपदेश छन्द 48-49, सप्तव्यसन का निषेध छन्द 50 से 63 एवं गुजराती भाषा में शिक्षा छन्द 89 आदि हैं ।

नीति परक पद्यों को व्यक्तिगत, पारिवारिक, प्राणीविषयक, सामाजिक, आर्थिक, मिश्रित आदि अनेक नीतियों में विभक्त किया जा सकता है । उपर्युक्त वैराग्यप्रेरक एवं उपदेशपरक पद्य व्यक्तिगत नीति में समाहित किये जा सकते हैं । पारिवारिक नीति के रूप में सांसारिक सम्बन्ध छन्द 25, प्राणी विषयक नीति के रूप में पशुबलि निषेध छन्द 47, मांस निषेध छन्द 52, मद्यनिषेध छन्द 53, आखेट निषेध छन्द 55 हैं । सामाजिक नीति के अन्तर्गत वेश्यासेवन निषेध, परस्त्री निषेध, कुशील निन्दा, शील प्रशंसा छन्द 54 से 59 तक, कुकवि और कुकाव्य निन्दा छन्द 64 से 66 तक, गुरु उपकार छन्द 68, दुर्जन कथन छन्द 79, विधाता से तर्क छन्द 80 शामिल हैं । आर्थिक नीति के रूप में जुआ एवं चोरी का निषेध छन्द 51 एवं 56, मिश्रित नीति के अन्तर्गत कषाय जीतने का उपाय छन्द 69, मिष्ट वचन छन्द 70, विपत्ति में धैर्य धारण करने का उपदेश छन्द 71, होनहार दुर्निवार छन्द 72, काल सामर्थ्य छन्द 73-74, धन के सम्बन्ध में निश्चिन्त रहने का उपदेश छन्द 75, आशारूपी नदी 76, महामूढ़वर्णन छन्द 77-78, द्रव्यलिङ्गी मुनि का कथन एवं आत्मानुभव की प्रशंसा छन्द 90-91 आदि अनेक विषयों का वर्णन है ।

इसप्रकार जैनशतक स्तुति, वैराग्य, उपदेश एवं नीतिपरक पद्यों का अभूवपूर्व ग्रन्थ है; जिसमें कवि ने इस सब भावों की सुन्दर अभिव्यंजना की है । संसार का एक विशेष दृष्टिकोण से, जो सत्य पर अवलंबित है, विश्लेषण किया है ।

कवि भूधरदास क्या भाव, क्या भाषा, क्या मुहावरों का प्रयोग, क्या भाषा का प्रवाह, क्या विषय प्रतिपादन की शैली, क्या सूक्तियों एवं कहावतों का प्रयोग- इन सब काव्योचित गुणों में अन्य जैन कवियों से तो आगे बढ़े हुए हैं ही, किंतु हिन्दी के भी कई कवियों में उचित स्थान पाने के अधिकारी हैं। जैनशतक में उनकी इस प्रतिभा का परिचय पूर्णरूप से मिलता है। यद्यपि उन्होंने तत्कालीन प्रचलित कवित्त-सवैया-छप्पय-दोहा आदि छन्दों के प्रयोग की शैली में ही अपने भावों को गुँथा है; किन्तु फिर भी वे अपने भावों को व्यक्त करने में पूर्णतया समर्थ हो सके हैं। कवित्त और सवैया तो बड़े ही सरस, प्रवाहपूर्ण, लोकोक्ति-समाविष्ट एवं महत्वपूर्ण हैं। कुछ विषय जैसे वृद्धावस्था, संसार, देह, भोग-निषेध आदि काफी अच्छे बन पड़े हैं। जिस विषय को वे उठा लेते हैं, जोरदार शब्दों में उसका अन्त तक निर्वाह करते चले जाते हैं। कहीं शिथिलता दृष्टिगोचर नहीं होती है। यद्यपि उन्होंने शृंगार, वीर, हास्य आदि रसों पर प्रमुख रूप से अपनी लेखनी नहीं उठाई और जैन परम्परा का निर्वाह करते हुए, शान्त रस को ही अपना प्रमुख विषय बनाया तथापि उसमें भी ये एक प्रकार का उत्साह एवं प्रभाव उत्पन्न कर सके हैं। वैराग्य, नैराश्य, संसार की क्षणभंगुरता, कल-प्रभाव आदि भयोत्पादक एवं नीरस विषयों को भी सरस, गम्भीर और सुन्दर बनाने में यह प्रौढ़ कवि समर्थ हो सका है। बीच-बीच में मुहावरों एवं लोकोक्तियों का उचित प्रयोग भी भाषा को प्रभावपूर्ण एवं भावों को विशद बनाने में सहायक हुआ है।

भूधरदास कवि कुछ अंशों में कबीर के समान अक्खड़ प्रतीत होता है। जो कहना चाहता है कह देता है, छिपाता नहीं, दबाता नहीं, डरता नहीं। उसके जैन शतक में हम काफी उदारता एवं असाम्प्रदायिकता पाते हैं। उसकी कथन करने की शैली भी जोरदार एवं प्रभावपूर्ण है। जो विषय उसे रुचिकर होता है, उस पर धारावाहिक रूप में लिखता जाता है, मानो उसे एक छन्द में संतोष नहीं हो रहा हो। जैनशतक जैसे 107 छंदों वाले छोटे से ग्रंथ में यह अपनी कुशलता, विषय प्रतिपादन शैली और भाषा के प्रवाह का पूर्ण परिचय दे सका है। जैन कवियों में यदि इसे लोकोक्ति और रूपक अलंकारों का कवि कहा जाय तो

अतिशयोक्ति नहीं होगी; क्योंकि लोकोक्तियों और रूपकों का इसने बेखटके प्रयोग किया है ।

यद्यपि शृंगाररस को रसरज कई आचार्यों ने माना है तथा करुण रस का प्राधान्य भी कई विद्वानों के द्वारा स्वीकार किया जा चुका है, परन्तु शांत रस का प्राधान्य भूधरदास द्वारा प्रतिपादित किया गया है । साथ ही अद्भुत, वीभत्स, भयानक, वीर आदि अन्य रस भी उनके द्वारा प्रस्तुत किये गये; क्योंकि मानव जीवन में इनका भी स्थान है ।

संसार सुखमय नहीं, अपितु दुःखमय है और उसे दुःखमय मानकर विरक्त होना पलायन नहीं है; क्योंकि मानवरूपी यात्री मानवजीवन रूपी यात्रा पर नियति के आदेश से निकला है । वह अपनी यात्रा को सुखमय मानकर चलता है और यदि उसे दुःख प्राप्त होते हैं तो उसे घोर निराशा होगी; परन्तु यदि वह उसे दुःखमय मानकर चले और मार्ग में दुःख न भी हो तो उसे निराशा नहीं होगी, अपितु प्रसन्नता होगी और वह अपने अन्तिम लक्ष्य पर पहुँचकर अनन्त सुखी हो जायेगा । मार्ग यादें कटकाकीर्ण न भी हुआ हो तो कोई हानि नहीं, परन्तु मार्ग सचमुच निरापद नहीं है, क्योंकि संसार दुःखमय है ।

संसार में हम क्या देखते हैं ? यही न कि एक आदमी को कुछ सम्पत्ति प्राप्त हो गई तो दूसरे ने खो दी है । एक को व्यापार में खूब लाभ हो रहा है तो दूसरा सिर पर हाथ रखकर रो रहा है । किसी के घर पुत्रोत्पत्ति हुई है और वह आनन्द मना रहा है तो किसी का होनहार पुत्र काल के गाल में समा गया है और वह रो रहा है । सवेरे जिसके विवाह पर प्रसन्नता थी, शाम को उसी की मृत्यु ने सबको शोक सागर में डुबा दिया, परन्तु संसार अपने पथ पर बढ़ा जा रहा है, रुकना नहीं चाहता, सद्कार्यों की ओर, धर्म की ओर प्रवृत्ति नहीं करना चाहता और "करोरन की एक एक घरी" को खोता रहता है । संसार के इस नग्न सत्य का चित्र कवि के शब्दों में इसप्रकार है-

काहू घर पुत्र जायौ काहू के वियोग आयौ,

काहू राग-रंग काहू रोआ रोई करी है ।

जहाँ भान ऊगत उछाह गीत गान देखे,

साँझ समै ताही थान हाथ हाथ परी है ॥

ऐसी जगरीति को न देखि भयभीत होय,
हा हा भर मूढ़ ! तेरी माँत कौन हरी है ।
मानुष जनम पाय सोवत विहाय जाय,
खोवत करोरन की एक एक घरी है ॥¹

संसार की अतिविचित्र स्थितियों को देखकर भी अज्ञानी धन, जीवतव्य आदि से विरक्त नहीं होता है । सब कुछ देखकर भी अनदेखा करता है, ऐसे रोग का क्या इलाज किया जाय ?

देखो भरजोबन मैं पुत्र को वियोग आयी,
तैसेँ ही निहारी निजनारी काल भग मैं ।
जे जे पुन्यवान जीव दीसत है या मही पै,
रंक भयै फिरै तेऊ पनहीं न पग मैं ॥
एते पै अभाग धन जीतब सौँ धरै राग,
होय न विराग जाने रहूँगो अलग मैं ।
आँखिन विलौकि अंध सूसे की अंधेरी करै,
ऐसे राजरोग को इलाज कहा जग मैं ॥²

यद्यपि संसार की दशा अति कष्टप्रद है । फिर भी अज्ञानी राग का उदय होने से भोगों का भोगना चाहता है । धन-ऐश्वर्य, स्त्री-पुत्र आदि सभी राग के कारण उसे सुहावने लगते हैं । वह हमेशा उन्हीं में रत रहता है । वे सब उसे सुखकर प्रतीत होते हैं किन्तु बिना राग वाले ज्ञानी के लिए ये पदार्थ-भोग "कारे नाग" के समान लगते हैं । यही राग और वैराग्य का अन्तर है-

राग उदै भोगभाव लागत सुहावने से,
बिना राग ऐसे लागै जैसे नाग कारे हैं ।
राग ही सौँ पाग रहे तन मैं सदीव जीव,
राग गये आवत गिलानि होते न्यारे हैं ॥

राग ही सौ जगरीति झूठी सब साँची जानै,
 राग मिटैं सूझत असार खेल सारे हैं ।
 रागी-विनरागी के विचार मैं बड़ीई भेद,
 जैसे भटा पच काहु काहु को बयारे हैं ॥¹

इसीलिए कवि वीतरागी होने की भावना भाते हुए कहता है-

कब गृहवास सौं उदास होय वन सेऊँ,
 वेऊँ निजरूप गति रोक्कूँ मन करी की ।
 रहि हौं अडौल एक आसन अचल अंग,
 सहि हौं परासा शोत-धाम-पेघ-झरी की ।
 सारंग समाज खाज कबधौं खुजे हैं आनि,
 ध्यान-दल-जोर-जीतूँ सेना मोह-अरी की ।
 एकल-विहारी जयाजात लिंगधारी कब,
 होऊ इच्छाचारी बलिहारी हौं वा घरी की ॥²

अज्ञानी प्राणी राग के कारण नित नवीन भोगों को भोगना चाहता है, किन्तु भोगों के साधन प्राप्त कैसे हों ? बिना पूर्व पुण्योदय के तो वे प्राप्त होते नहीं और यदि कर्मयोग से मिल जायें तो जीव रोग के कारण उन्हें भोग नहीं पाता और भोग ले तो दुर्गति में दुःख उठाने पड़ते हैं । अतः भोगों की चाह ठीक नहीं-

तू नित चाहत भोग नए नर, पूरब पुन्य बिना किम पै है ।
 कर्म संयोग मिले कहिं जोग, गहे तब रोग न भोग सकै है ॥
 जो दिन चार कौ ब्यौत बन्यौं कहूँ, तौ परि दुर्गति में पछितै है ।
 याहितैं थार सलाह यही कि, गई कर जाहु निबाह न हवै है ॥³

1. जैन शतक, छन्द 18

2. जैन शतक, छन्द 17

3. जैन शतक, छन्द 19

संसारी जीव की प्रवृत्ति ही कुछ ऐसी है कि वह शरीर की सेवा करता है, उसे नहाता, धुलाता, सजाता, श्रृंगारता। उसे जरा भी कष्ट न हो - इसका पूरा-पूरा ख्याल रखता परन्तु उसने कभी यह नहीं सोचा कि यह देह कितनी धिनौनी है ? "मल-मूत्र की थैली है" ? कवि के द्वारा प्रस्तुत इस शरीर का यथार्थरूप कितनी भयानकता के साथ बीभत्स रस की सृष्टि कर रहा है—

मात-पिता-रज-वीर असौ, उपजी सब सात कुघात भरी है।

माखिन के पर माफिक बाहर, चाम के बैठन बेढ़ धरी है ॥

नाहिं तो आय लगैं अब ही वक, वायस जीव बचै न धरी है।

देह दशा यहै दीखत भ्रात, धिनात नहीं किन बुद्धि हरी है ॥¹

शरीर सेवा के साथ ही अथवा शरीर सेवा के हितार्थ ही यह संसारी जीव धन को भी खूब चाहता है। अच्छे बुरे कैसे भी धन की प्राप्ति हो जाय। धनागम की सुखद आशा में, मधुर कल्पना में यह तरह-तरह के स्वप्न देखता है। सोचता है, धन हो जाय तो विदेश की यात्रा कर आऊँ, मोटरगाड़ी खरीद लूँ, बंगला बनवा लूँ, पुत्रादि का विवाह कर दूँ, पत्नी को गहना बनवा दूँ, कोई ऐसा कार्य करूँ जिससे यश सृष्टि के अन्त तक रहे। मानव की इसी उधेड़-बुन का वर्णन कवि बड़ी सजीवता से करता है—

चाहत है धन होय किसी विध, तौ सब काज सरैं जियरा जी।

गेह चिनाय करूँ गहना कछु, ब्याहि सुता सुत बाँटिये भाजी ॥

चिन्तन यौं दिन जाहिं चले, जम आनि अचानक देत दगा जी।

खेलत खेल खिलारि गयैं, रहि जाई रुपी शतरंज की बाजी ॥²

संसारी प्राणी धन प्राप्त करने के लिए अनेक प्रकार के विचार करता है तथा धन होने पर अनेक मसूबे बाँधता है। परन्तु धन की प्राप्ति भाग्य के पूर्वपुण्योदय के अनुसार ही होती है—

1. जैनशतक छन्द 20

2. जैनशतक 32

जो धनलाभ लिलार लिख्यौं, लघु दीरघ सुकृत के अनुसारै ।
 सौ लहि है कछू फेर नहीं, मस्तेज के नेर सुपै निहारै ॥
 घाट न बाढ़ कहीं वह होय, कहा कर आवत सोच विचारै ।
 कूप किधौं भर सागर में नर, गागर मान मिलै जल सारै ॥¹

यह तो एक दिन अवश्य ही होगा कि “खिलाड़ी” चला जायेगा और “शतरंज की बाजी” पड़ी रह जायेगी; क्योंकि खिलाड़ी को तो जाना ही होगा । वह चाहे या ना चाहे । वह चाहे कितना ही उपाय करे, किसी की सामर्थ्य नहीं कि इस संसार में उसे कोई आयु से अधिक एक क्षण के लिए भी रोक सके । इसी सत्य को कवि इन शब्दों में व्यक्त करता है—

लोहमई कोट केई कोटन की ओट करौ,
 काँगुरेन तोष रोषि राखो पट भेरिकैं ।
 इन्द्र चन्द्र चौकायत चौकस हैं चौकी देहु
 चतुरंग चमू चहुँ ओर रहो घेरिकैं ॥
 तहाँ एक भौहिरा बनाय बीच बैठों पुनि,
 बोलो मति कोऊ जो बुलावै नाम टेरिकैं ।
 ऐसे परपंच पाँति रचौ क्यों न भाँति-भाँति,
 कैसे हू न छोरे जम देख्यो हम हेरिकैं ॥²

मृत्यु के आने पर सम्पूर्ण धन, धाम, काम, ऐश्वर्य आदि ज्यों के त्यों पड़े रह जाते हैं—

तेज तुरंग सुरंग भलै रथ, मत्त मतंग उतंग खरे ही ।
 दास खवास अवास अटा, धन जोर करोरन कोश भरे ही ॥
 ऐसे षढे तो कहा भयों है नर छोरि चले उठि अन्त छरे ही ।
 धाम खरै रहे काम परे रहे, दाम गरे रहे ठाम घरे ही ॥³

1. जैनशतक छन्द 75

2. वही छन्द 73

3. वही छन्द 33

साधारण जनों की यह बात हो सो नहीं। बड़े-बड़े वीर चक्रवर्ती राजा इस संसार में हुए, जिनका आधिपत्य बड़े-बड़े भूभागों पर रहा। जिनके आतंक से वसुधा थर-थर काँपती थी। जो कभी मौत के आने पर भी हार मानना स्वीकार नहीं करते थे। उन्हें भी "होनहार" के आगे सिर झुकाना पड़ा—

कैसे कैसे बली भूप भू पर विख्यात भये,
बैरीकुल काँपि नेकु भहौं के विकार सौं।
लंघे गिरि-सायर दिवायर से दिपैं जिनों,
कायर किये हैं भट कोटिन हुँकार सौं ॥
ऐसे महामानी मौत आये हू न हार मानी,
क्यों ही उतरें न कभी मान के पहारसौं।
देवसौ ने हारे पुनि दानो सौं न हारे और,
काहु सौं न हारे एक हारे होनहार सौं ॥¹

संसार में जिनके पास धन है, वे भी निर्धन होकर दरवाजे-दरवाजे भीख माँगते हुए देखे जाते हैं। फिर भी अज्ञानी लोग धन, ऐश्वर्य आदि पाकर अभिमान करते हैं, धर्म में मन नहीं लगाते हैं—

कंचन भंडार भरे मोतिन के पुंज परे,
घने लोग द्वार खरे मारग निहास्ते।
जान चढ़ि डोलत हैं झीने सुर बोलत हैं,
काहु की हू और नेक नीके ना चितारते ॥
कौलौं धन खांगे कोउ कहे यौ न लागे,
तेई फिरै पाँच नांगे कांगे पर पग झारते।
एते पै अयाने गरबाने रहैं विभौ पाय,
थिक है समझ ऐसी धर्म ना सँभारते ॥²

1. जैनशतक छन्द 72

2. जैनशतक छन्द 34

भूधरदास का मन वृद्धावस्था के वर्णन में खूब रमा है। वृद्धावस्था को इन्होंने बड़ी ही पैनी और सूक्ष्म दृष्टि से देखा है। इसलिए इसका इन्होंने बड़ा ही विशद और उत्कृष्ट वर्णन किया है। बुढ़ापे का इतना मार्मिक वर्णन शायद ही हिन्दी के किसी अन्य कवि ने किया हो। शरीर के दिन-प्रतिदिन क्षीण एवं शिथिल होने पर इच्छाएँ (दुःखाः) बढ़ती ही जाती हैं—

दृष्टि घटि पलटी तन की छबि, बंक भई गति लंक नई है।

रूस रही परनी घरनी अति, रंक भयो परियंक लई है ॥

कौपत ह्यथ बहैं मुख लार, महामति संगति छौरि गई है।

अंग उपांग पुराने परे, तिशना उर और नवीन भई है ॥¹

रूप को न खोज रह्यौ तरु ज्यों तुषार दह्यौ,

भयौ पतझार किथौ रही डार सूनी-सी।

कूबरी भई है कटि दूबरी भई है देह,

ऊबरी इतेक आयु सेर माहि पूनी-सी ॥

जोबन में विदा लेनी जरा नै जुहार कीनी,

हीनी भई सुधि बुधि सबै बात ऊनी सी।

तेज घट्यौ ताव घट्यौ जीतव को चाव घट्यौ,

और सब घट्यौ, एक तिस्ना दिन दूनी सी ॥²

वैदिक संस्कृति में सौ वर्ष तक जीवन जीने की अभिलाषा व्यक्त की गई है। कवि इसी को आधार मानकर सौ वर्ष की आयु का लेखा जोखा प्रस्तुत करते हुए कहता है—

सौ वरष आयु ताका लेखा करि देखा सबै,

आधी तो अकारथ सोखत विहाय रे।

आधी में अनेक रोग बाल-वृद्ध-दशा-भोग,

और हूँ संयोग केते ऐसे बीत जाँय रे ॥

बाकी अब कहा रही ताहि तू विचार सही,
कारज की बात यही नीकें मन लाय रे ।
खातिर मैं आवै तो खलासी कर इतने मैं,
भावै फैसि फंदबीच दीनौ समुझाय रे ॥¹

इसलिए कवि रोग, बुढ़ापा एवं मृत्यु आने के पहले ही आत्महित करने की प्रेरणा देता है—

जौलौं देह तेरी काहू रोगसौं न घेरी जौलौं,
जरा नाहिं नेरी जासों पराधीन परिहै ।
जौलौं जमनामा बैरी देय ना दमामा जौलौं,
मानै कान रामा बुद्धि जाई ना बिगारि है ॥
तौलौं मित्र मेरे निज कारज सँवार ले रे,
पौरुष थकेंगे फेर पीछे कहा करि है ।
अहो आग आवै जब झोपरी जरन लागी,
कुआ के खुदाये तब कौन काज सरि है ॥²

साथ ही मित्रों के द्वारा अपनी कुशलता पूछे जाने पर वह इसप्रकार बतलाता है—

जोई दिन कटै सौई आयु में अवसि घटे,
बूंद बूंद बीतै जैसें अंजुली कौ जल है ।
देह नित क्षीन होत, नैन तेज हीन होत,
जोखन मलीन होत, छीन होत बल है ॥
आवै जरा नेरी, तकै अंतक अहेरी, आवै,
पर भौ नजीक, जात नरभौ निफल है ।
मिलकै मिलापी जन पूँछत कुशल मेरी,
ऐसी दशा माहीं मित्र काहे की कुशल है ॥³

बचपन तो खेलकूद में यों ही चला जाता है, उस समय हिताहित का विचार ही नहीं रहता है और युवावस्था स्त्री के मोह में, घर गृहस्थी के कार्यों में, धन कमाने आदि में निकल जाती है। अब वृद्धावस्था के सूचक सफेद बाल आने पर सचेत हो जाओ। कवि इस प्रकार सम्बोधित करता है—

बालपने बाल रह्यौ पीछे गृहभार बढ़्यौ,
 लोकलाज काज झँझ्यौ एणन कौ तेर है।
 आपनों अकाज कीनों लोकन में जस लीनों,
 परभौ विसार दीनों विषैवश जेर है॥
 ऐसे ही गई विहाय, अल्प-सी रही आय,
 नर-परजाय यह आये की बटेर है।
 आये सेत भैया अब काल है अवैया अहो,
 जानी रे सयानैं तेरे अजौं हू अंधेर है॥¹

बालपनै न सँभार सक्यौ कछु, जानत नाहिं हिताहित ही को।
 यौवन वैस वसी धनिता उर, कै नित राग रह्यौ लक्ष्मी को॥
 यौ पन दोई विगोड़ दये नर, डारत क्यों नरकै निज जी को।
 आये हैं सेत अजौं शठ ! चेत, गई सुगई अब राख रही को॥²

इसीप्रकार के प्रवाह, विदग्धता, कल्पना, अलंकार विधान एवं लोकोक्तियों का प्रयोग करते हुए कवि ने एक-दो नहीं, अपितु कई कवित्त लिखे हैं। वृद्धावस्था में मनुष्य लकड़ी लेकर क्यों चलता है ? क्यों काँपता है ? इसकी यह सुकवि बड़ी विचित्र कल्पना करता है—

अहो इन आपने अभाग उदै नाहिं जानी,
 वीतराग-वानी सार दयारस-भीनी है।
 जोवन के जोर धिर-जंगम अनेक जीव,
 जानि जे सताये कछु करुना न कीनी है॥

तेई अब जीवराज आवे परलोकपास,
लेंगे बैर देंगे दुख भई ना नखीनी है।
उनही के भय को भरोसो जान काँपत है,
याहि डर डोकरा ने लाठी हाथ लीनी है ॥¹

इसीप्रकार वृद्ध व्यक्ति अपना सिर हिलाता और नीची दृष्टि किये क्यों डोलता है ? कवि ने इसकी बड़ी सुन्दर कल्पना की है ।²

यह मनुष्य देह सर्वोत्तम है और समस्त अच्छे कार्यों के करने योग्य है परन्तु अज्ञानी मोहरूपी मदिरा के नशे में मदोन्मत्त होकर आत्मा-परमात्मा का ध्यान नहीं करता है और विषय भोगों में निरन्तर रत रहता है ।³

धर्म साधन करने की अभिलाषा रखने वाले व्यक्ति को कवि सलाह देता है—

देव-गुरु साँचे मान साँचौ धर्म हिये आन,
साँचो ही बखान सुनि साँचे पंथ आव रे।
जीवन की दया पाल झूठ तजि चोरी टाल,
देख ना विरानी बाल तिसना घटाव रे ॥
अपनी बड़ाई परनिन्दा मत करे भाई,
यही चतुराई मद मांस कौ बचाव रे।
साथ घटकर्म साथु-संगति में बैठ वीर,
जो है धर्मसाधन कौ तेरे चित चाव रे ॥⁴

साथ ही कवि सर्वज्ञ भगवान से प्रार्थना करता है कि जब तक मैं कर्मों का नाश करके मोक्ष का दरवाजा नहीं खोल लेता तब तक मुझको आपकी सेवा का अवसर प्राप्त रहे, शास्त्रों का अभ्यास रहे, साधर्मियों की संगति मिलती रहे,

1. जैनशतक छन्द 40

2. जैनशतक छन्द 41

3. जैनशतक छन्द 30-31

4. जैनशतक छन्द 44

सज्जनों के गुणों को बखान करने की आदत रहे, दूसरों के अवगुण कहने की आदत दूर रहे। सभी से उचित और सुखकारी वचन बोलूँ और हमेशा आत्मिक धन की भावना भाऊँ। हे प्रभो ! मेरे मन की यह सब आशाएँ पूरी होवें।¹

वैदिक कर्मकाण्ड की प्रधानता के कारण यज्ञ में पशुओं की बलि दी जाती थी। वे हवन कुंड में होम दिये जाते थे। एक विशिष्ट वर्ग इसको निरन्तर प्रोत्साहन देता था, तब भूधरदास ने बड़े साहस से इस कार्य का विरोध किया और पशुओं की ओर से वकालत की। यज्ञों में होमे जाने वाले प्राणियों का प्रतिनिधित्व कवि बड़े ही मार्मिक और करुणापूर्ण शब्दों में इसप्रकार करता है—

कहै पशु दीन सुन यज्ञ के करैया मोहि
होमत हुताशन मैं कौन सी बड़ाई है।
स्वर्गगुह मैं न चहाँ "देयु मुझे" यौ न कहूँ,
घास खाय रहों मेरे यही मनभाई है।
जो तू यह जानत है वेद यौ बखानत है,
जग्य जलौ जीव पावैं स्वर्ग सुखदाई है।
डारे क्यों न वीर ! यामैं अपने कुटम्ब ही कौ,
मोहि जानि जारे जगदीश की दुहाई है ॥²

इसीप्रकार पशुहिंसा की एक प्रवृत्ति आखेट के समय भी देखी जाती है। आखेटक असहाय भोले भाले प्राणियों का शिकार कर यह समझता है कि वह बड़ी बहादुरी का काम कर रहा है; परन्तु मृगादि दीन-हीन निर्बल पशुओं का वध करने में कौनसी बहादुरी ? भूधरदास निदोष प्राणियों को मारने की कठोरता पर खेद व्यक्त करते हैं।³

इसी प्रकार कवि ने जुआ खेलने, मांस खाने, मदिरा पान करने, वेश्यासेवन करने, चोरी करने, परस्त्री सेवन करने आदि का निषेध अति मार्मिक ढंग से किया है।⁴

1. जैनशतक छन्द 92

2. जैनशतक छन्द 47

3. जैनशतक छन्द 55

4. जैनशतक छन्द 51 से 57 तक

कवि ने शील की प्रशंसा¹ और कुशील की निंदा² करते हुए शृंगार रस की कविता करने वाले कवियों को आड़े हाथों लिया है, उनकी जमकर आलोचना की है—

राग उदै जग अंध भयो, सहजै सब लोगन लाज गवाँई ।
सीख बिना नर सीख रहे, विसनादिक सेवक की सधुराई ॥
ता पर और रचै रसकाव्य, कहा कहिये तिनकी नितुराई ।
अंध असूझन की अंखियन में, झोंकत हैं रज रामदुहाई ॥³
कंचन कुम्भन की उपमा, कह देत उरोजन को कवि बारे ।
ऊपर श्याम विलोकत के, मनिनीलम की ढकनी ढँकि छारे ॥
यौं मत वैन कहैं न कृपंडित, ये जुग आमिषपिण्ड उघारे ।
साधन झार दई मुँह छार, भये इहि हेतु किछौं कुच कारे ॥⁴

साथ ही कवि विधाता से इन कवियों को दण्ड देने की बात बड़ी चतुराई से कह देता है ।⁵ प्रत्येक व्यक्ति पर दुःख आता है, दुःख के समय वह अधीर, चिन्तित और भयभीत हो जाता है; परन्तु घबराने, चिन्ता करने और डरने से दुःख दूर नहीं होता है; क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति ने जो पापबन्ध पूर्व में किया था उसका फल उसी को उदय काल आने पर अकेले ही भोगना पड़ता है । दूसरा व्यक्ति उसे बाँट नहीं सकता है । अतः दुःख के समय ज्ञाता बनने का उपदेश कवि द्वारा दिया गया है—

आयौ है अचानक भयानक असाता कर्म,
ताके दूर करिबे को बलि कौन अह रे ।
जे जे मन भाये ते कमाये पूर्व पाप आप,
तेई अब आये निज उदैकाल लह रे ॥
एरे मेरे वीर ! कहे होत है अधीर यामैं,
कोउ कौ न सीर तू अकेलो आप सह रे ।

1. जैनशतक छन्द 59

2. जैनशतक छन्द 60

3. जैनशतक छन्द 64

4. जैनशतक छन्द 65

5. जैनशतक छन्द 66

भयै दिलगीर कछू पीर न खिनसि जाय,
ताही तैं सयाने !तू तमासगीर रह रे ॥¹

कवि का बात कहने का तरीका बड़ा ही अनोखा है। वह एक सवैया छंद में जिनराज या साधु की तपस्या की बड़ी सुन्दर और विलक्षण कल्पना करता है। वे नीचे हाथ लटका क्यों खड़े हैं ? मानों अब उन्हें संसार में कुछ करना शेष नहीं रहा है। स्थिर (अडिग) क्यों खड़े हैं ? कवि का कहना है कि अब उन्हें कहीं जाना नहीं रहा, वे चार गति, चौरासी लाख योनिरूप संसार भ्रमण की यात्रा समाप्त कर चुके हैं; इसलिए अचल होकर एक स्थान पर खड़े रह गये हैं। वे नासाग्र वृष्टि क्यों किये हैं ? अर्थात् संसार के लुभावने रसार्थों की ओर क्यों नहीं देखते ? कवि की कल्पना है कि वे सब पदार्थों को देख चुके हैं, अनुभव कर चुके हैं। कानन में तपस्या करने क्यों नहीं जाते हैं ? वे कानों से अब क्या सुनें अर्थात् उन्हें कुछ सुनना शेष नहीं रहा; इसलिए वे कानन में योग धारण कर ध्यान में लीन खड़े हैं। वह सवैया निम्नलिखित है—

करनौ कछु न करन ते कारख, तातैं पानि प्रलम्ब करे हैं।

रहौ न कछु पाँचन तैं पैवौ, ताही तैं पद नाहीं टरे है।

निरख चुके नैनन सब यातैं, नैन नासिका-अनी धरे है।

कानन कहा सुनै यौ कानन, जोगलीन जिनराज खरे हैं ॥²

इसीप्रकार कवि आदिनाथ की स्तुति करते हुए मार्मिक उत्प्रेक्षाएँ करता है कि देवताओं के समूह स्वर्ग से पृथ्वी पर उतर कर पुनः-पुनः अपने सिर धिस-धिस कर इस तरह प्रणाम करते हैं, मानों वे अपने ललाट पर बनी कुकर्मों की रेखा को दूर करना चाहते हैं।³ आदिनाथ ने अपनी दोनों भुजाओं को इसलिए नीचे लटका रखा है, मानों वे संसाररूपी कीचड़ में फँसे दुःखी प्राणियों को बाहर निकालना चाहते हैं।⁴

1. जैनशतक छन्द 71

2. जैनशतक छन्द 1

3. जैनशतक छन्द 3

4. जैनशतक छन्द 2

भारतीय संस्कृति के अनुरूप इस कवि के वर्ण्यविषय में असाम्प्रदायिकता दिखाई देती है; इसीलिए वह किसी व्यक्ति विशेष या इष्ट विशेष को नमस्कार नहीं करता; अपितु वीतरागी, सर्वज्ञ और हितोपदेशी-गुण वाले परमात्मा को नमस्कार करता है। चाहे उसका नाम ब्रह्मा, माधव, महेश, बुद्ध या महावीर कुछ भी क्यों न हो ? जिसमें ये गुण हैं, वह उस देव को बार-बार नमस्कार करता है—

जो जग वस्तु समस्त, हस्तमल जेम निहारै ।
जगजन को संसार-सिंधु के पार उतारै ॥
आदि-अन्त-अविरोधि, वचन सबको सुखदानी ।
गुण अनन्त जिहँ माहिँ दोष की नाहिँ निशानी ॥
माधव महेश ब्रह्मा किधौ, वर्धमान कै बुद्ध यह ।
ये चिह्न जान जाके चरन, नमो-नमो मुझ देव वह ॥¹

इसप्रकार जैनशतक अपने आप में अनूठा ग्रंथ बन पड़ा है। इसलिए अनेक विद्वानों ने इसकी भूरि-भूरि प्रशंसा की है। कई विद्वान इसके काव्य सौष्ठव पर मुग्ध हो गये हैं। जो भी व्यक्ति इसे पढ़ता है, उसका मन-मयूर नाचने लगता है। उसमें भक्ति, नीति, वैराग्य एवं अध्यात्म के भाव जागृत होने लगते हैं। डॉ. राजकुमार जैन के शब्दों में— “कवि ने इसमें (जैनशतक में) अध्यात्म, नीति एवं वैराग्य की जो त्रिवेणी प्रवाहित की है, उसमें अवगाहन करके प्रत्येक सहृदय पाठक आत्मप्रबुद्ध हो सकता है।”² पं. नाथूराम प्रेमी के अनुसार— “यह एक सुभाषित संग्रह है।”³ इसीप्रकार बाबू कामताप्रसाद जैन इसे नीति विषयक अनोखी कृति मानते हैं।⁴

1. जैनशतक छन्द 46

2. अध्यात्म पदावली - डॉ. राजकुमार जैन पृष्ठ 100

3. जैन साहित्य का इतिहास - पं. नाथूराम प्रेमी पृष्ठ 12 जैन हितैषी 13/1

4. हिन्दी जैन साहित्य का संक्षिप्त इतिहास - बाबू कामताप्रसाद जैन पृष्ठ 104

कवि ने इसकी रचना आगरा में गुलाबसिंह तथा हरोसिंह शाह के वंशज धर्मानुरागी पुरुषों के कहने से की है। कवि उनकी प्रेरणा से अपने आलस्य का अंत मानते हुए उनका आभार व्यक्त करता है।¹

अन्त में कवि जैनशतक के रचनाकाल का उल्लेख करते हुए ग्रंथ समाप्त करता है—

सतरह से इक्यासिया, पोह पाख, तमलीन।

तिथि तेरस रविवार को, शतक समाप्त कीन ॥²

पदसंग्रह या भूधरविलास का भावपक्षीय अनुशीलन

जैसा कि पूर्व में³ तर्कसंगत ढंग से स्पष्ट किया जा चुका है कि “भूधरविलास” और “पदसंग्रह” एक ही रचना है, दो पृथक्-पृथक् रचनाएँ नहीं हैं। भूधरविलास के 80 पद तो “पदसंग्रह” के नाम से तथा 80 में से 53 पद “भूधरविलास” के नाम से प्रकाशित किये गये हैं। वस्तुतः वे दोनों रचनाएँ कवि के पदों का संग्रह ही हैं।

हिन्दी साहित्य में “पद” काव्यरूप का प्रयोग आरम्भ से ही देखने को मिलता है। अपभ्रंशकालीन पद-साहित्य और सिद्धों के चर्या-पदों की स्पष्ट छाप हिन्दी पद-साहित्य पर दिखाई देती है। शृंगार और आध्यात्मिक पदों का प्रणयन हिन्दी के आरम्भ में ही दृष्टिगत होता है।

“पद” शब्द के मूल आधार दो हैं—प्रथम आधार व्याकरण और दूसरा आधार संगीत है। जब कोई “शब्द” विभक्ति के साथ में आता है तब वह “पद” की संज्ञा प्राप्त करता है। उदाहरण के लिए “राम” शब्द है परन्तु जब यही शब्द “राम ने रावण को मारा” आदि वाक्य में किसी विभक्ति के साथ प्रयुक्त होता है तो पद की संज्ञा प्राप्त करता है। यही शब्द जब राग-रागिनी के साथ उच्चरित होता है तब पद का रूप धारण कर लेता है। पद प्रणेता को राग-रागिनी का सम्यग्ज्ञान होता है।

1. जैनशतक छन्द 106

2. जैनशतक छन्द 107

3. प्रस्तुत शोध प्रबन्ध, अध्याय 4

पद का मूल स्वर संगीतमय है। “टेक” पद की अपनी प्रवृत्ति है। पूरे भाव में एक-अनेक लोक-छन्दों का मिश्रित रूप प्रयोग में आता है। पद के भाव का केन्द्र “टेक” में समाहित रहता है। मुक्तक शैली के छन्द के अन्त में भावोत्कर्ष अभिव्यक्त होता है, जबकि पद शैली में वह “टेक” में मुखरित होता है।

हिन्दी पद साहित्य की दो धाराएँ प्रवाहमान रही हैं—प्रथम सन्तों की “सबद” शैली और दूसरी कृष्ण-भक्तों की पद-शैली। सिद्धों के चर्या पदों की तथा नाथों की भावना और प्रतीकों की सम्पदा सन्त कवियों ने ग्रहण की है। कृष्ण भक्तों की पद शैली लोकगीतों पर आधारित है। विद्यापति इसी परम्परा का प्रतिनिधित्व करते हैं। पदों की परम्परा में बहुत कुछ समानता होते हुए भी अपनी निजता के कारण यह परम्परा पद-वाङ्मय को उच्च शिखर पर पहुँचा देती है। परमानन्ददास, कृष्णदास, नन्ददास पर्यन्त अष्टछापी कवियों पर सूरदास का प्रभाव परिलक्षित है। इससे एरे मीराबाई जैसी विदूषी कवयित्री ने महत्वपूर्ण पदों की रचना की है, जिन्हें हिन्दी और अहिन्दी क्षेत्रों में सर्वाधिक गाया जाता है।

रामकाव्य के अन्तर्गत तुलसी ने अनेक पदों का सृजन किया है। “गीतावली” की रचना पद शैली में ही हुई है, जिसका विकास “विनयपत्रिका” में परिलक्षित है। चूँकि पदों की इस परम्परा में सामाजिक मर्यादा का विशेष ध्यान रखा गया है, इसलिए इनका व्यवहार खुलकर नहीं हो सका है।

उपर्युक्त वैष्णवी भावधारा के समानान्तर जैन भावधारा भी प्रवाहित होती रही है, जिसका विषय आध्यात्मिक और भक्तिपरक रहा है। जैन पद रचयिताओं ने भक्तिपरक, आध्यात्मिक, दार्शनिक, विरहात्मक और समाज का चित्रण करने वाले पदों का प्रणयन करके अपने समय की आध्यात्मिक एवं साहित्यिक चेतना को चमत्कृत किया है। इन रचयिताओं में कविवर बनारसीदास, दानतराय, भूधरदास, बुधजन, दौलतराम, भागचन्द्र, रूपचन्द्र, भट्टारक रत्नकीर्ति, भट्टारक कुमुदचन्द्र, जगजीवन, जगताराम, बख्तराम शाह, नवलराम, छत्रपति, पं. महाचन्द्र आदि प्रमुख हैं। इनमें भूधरदास का अपना एक विशिष्ट स्थान है।

ये सभी कवि कबीर, सूर, तुलसी, मीरा आदि कवियों के ज्ञान नव्यकाल के कवि हैं।

मध्यकाल के कवियों में “पद शैली” प्रिय रही है। इस “पदशैली” का प्रयोग जैन और जैनेतर-दोनों कवियों ने किया है। जिसप्रकार हिन्दी साहित्य के कृष्णभक्त, रामभक्त, सन्तकवि आदि ने पदों के माध्यम से भक्ति, प्रेम, अध्यात्म, विरह आदि के चित्र उपस्थित किए हैं। उसीप्रकार बनारसीदास, दानतराय, भूधरदास आदि जैन कवियों ने भी किए हैं। पदों को राग-रागिनियों का शीर्षक देकर रखने की प्रथा अर्वाचीन नहीं है। रागबद्ध पदों की दो परम्पराएँ मिलती हैं—एक सरस और दूसरी उपदेशप्रधान। सरस परम्परा में साहित्यिक रस और मानव अनुभूति का बड़ा ही सुन्दर चित्रण हुआ है। इस पद परम्परा में विद्यापति, ब्रज की कृष्णभक्त कवि मीरा आदि प्रधान हैं। दूसरी उपदेश और नीतिप्रधान धारा का प्रारम्भिक स्वरूप साधनापरक बौद्ध सिद्धों के पदों में देखा जा सकता है। कबीर के पदों में साधनापरक स्वर प्रधान होते हुए भी काव्य की झलक मिलती है। अन्य सन्तों के पदों में काव्य की मात्रा बहुत ही कम है; किन्तु मध्ययुग के साहित्य में उपदेश और नीति के लिए दोहों का ही प्रधानरूप से प्रयोग हुआ है। जैन पदों में उपदेश, तत्त्वज्ञान, वैराग्य एवं काव्यत्व का समीकरण समाहित है। जैनधर्म, दर्शन, उपदेश और उद्बोधन के अतिरिक्त नामस्मरण का माहात्म्य भी इन पदों में मुखरित है। इन पदों में व्यंजित भावों में सरसता, प्रवणता, मन को अनुरजित करने वाली कविकल्पना, भक्ति और धार्मिक भावना है। इनके अतिरिक्त हिन्दी भक्ति युग की अन्य समस्त प्रवृत्तियाँ भी जैन हिन्दी पदों में परिलक्षित होती हैं। जीव, जगत और जीवन की सार्थकता इन पदों की मुख्य भावधारा है। इस भावधारा को अपना योग देने और आगे बढ़ाने का श्रेय भूधरदास को भी है।

हिन्दी जैन साहित्य के पद रचयिताओं में कवि भूधरदास का महत्वपूर्ण स्थान है। जैन भक्त कवियों की शैली एवं परम्परा का पोषण कवि के पद साहित्य में पूर्ण रूप से हुआ है। ज्ञान, कर्म, भक्ति, आचार-विचार एवं वैराग्य आदि की दृष्टि से कवि का स्थान हिन्दी साहित्य में महत्व का रहा है।

कवि की पदरचना का उद्देश्य भक्ति, वैराग्य, नीति एवं अध्यात्म भाव का अधिक से अधिक प्रचार करना रहा है, इसलिए उन्होंने इन पदों को सरल

स्वाभाविक भाषा में लिखा है। पदों की यह भाषा ब्रज है किन्तु उसमें प्रादेशिक बोली के साथ-साथ अन्य भाषाओं के शब्द भी मिलते हैं। कवि ने इन पदों को सोरठ, खयाल (बरवा), खयाल कान्हड़ो, घनासारी (घनाश्री) बिहाग, काफी, सारंग, बिलावल, बंगाला, मलार (मल्हार) पंचम, नट, गौरी, रामकली, भैरव, कालिंगड़ा, सलहामारु आदि राग-रागनियों में लिखा है।

भूधरदास द्वारा रचित पदों की प्राप्ति के दो स्रोत हैं—

1. विभिन्न प्रकाशित पदसंग्रह 2. अनेक शास्त्रभण्डारों में उपलब्ध हस्तलिखित गुटके। दोनों ही प्रकार के साधनों से प्राप्त भूधरदास के पदों की कुल संख्या 96 निश्चित होती है।¹

पूर्व में इन पदों को भक्तिपरक, विप्रलम्भ-शृंगारपरक अध्यात्म एवं नीतिपरक के रूप में विभाजित करते हुए इनकी विषयवार निश्चित संख्या दी जा चुकी है।²

भक्तिपरक पदों में कवि ने देव, शास्त्र, गुरु एवं धर्म के प्रति भी भक्ति भाव प्रदर्शित किया है। इन पदों में कवि ने जहाँ एक ओर अरहंत-सिद्ध के रूप में सामान्य जिनेन्द्र प्रभु की भक्ति की है वहाँ दूसरी ओर ऋषभदेव, अजितनाथ, शांतिनाथ, नेमिनाथ, सीमंधर आदि विशेष तीर्थंकरों की भी भक्ति की है।

विप्रलम्भ शृंगारपरक पदों में कवि ने नेमि और राजुल का प्रणय पूरा न होने पर भी राजुल द्वारा नेमिनाथ के प्रति अनुराग प्रदर्शित किया है तथा उनके वियोग में हुई पीड़ा को अभिव्यक्ति दी है। इन पदों में लोकमर्यादा का उल्लंघन और वासना की गंध दिखाई नहीं देती है। इनके द्वारा लोकमंगल और लोकरंजन की भावना व्यक्त हुई है। साथ ही भारतीय नारी की गरिमा सिद्ध हुई है। राजुल वह भारतीय नारी है, जिसमें भारतीय संस्कृति का सत्य, सौन्दर्य एवं शिवत्व मुखरित हुआ है।

अध्यात्मपरक पदों में आत्महित की प्रेरणा के साथ जीव, जगत आदि तत्त्वज्ञान एवं धर्म का उपदेश भी दिया है। संसार, शरीर, भोग, स्त्री, पुत्रादि से

1. प्रस्तुत शोध प्रबन्ध अध्याय 4

2. प्रस्तुत प्रबन्ध शोध अध्याय 4

हटने की सलाह देते हुए वैराग्यप्राप्ति एवं आत्मलीनता की प्रेरणा दी गई है। डॉ. नेमिचन्द्र शास्त्री ने भूधरदास के पदों को सात भागों में विभाजित किया है उनका कथन इसप्रकार है—“महाकवि भूधरदास की तीसरी रचना पदसंग्रह है। उनके पदों को-1. स्तुतिपरक 2. जीव के अज्ञानवस्था के कारण, परिणाम और विस्तार सूचक 3. आराध्य की शरण के दृढ़ विश्वास सूचक 4. अध्यात्मोपदेशी, 5. संसार और शरीर से विरक्ति उत्पादक 6. नाम स्मरण के महत्त्वद्योतक और 7. मनुष्यत्व के पूर्ण अभिव्यंजक - इन सात वर्गों में विभक्त किया जा सकता है।”¹

आगे वे इन पदों की विशेषताएँ बतलाते हुए कहते हैं कि- “इन सभी प्रकार के पदों में शाब्दिक कोमलता, भावों की मादकता और कल्पनाओं का इन्द्रजाल समन्वित रूप से विद्यमान है। इनके पदों में राग-विराग का गंगा-यमुनी संगम होने पर भी श्रृंगारिता नहीं है। कई पद सूरदास के पदों के समान दृष्टिकूट भी हैं। इसप्रकार भूधरदास के पद जीवन में आस्था, विश्वास की भावना जागृत करते हैं।”²

डॉ. राजकुमार जैन ने भूधरदास के पदों की अनेक विशेषताएँ बतलायी हैं। वे लिखते हैं- “भूधरदास की एक अन्य रचना पदसंग्रह है, जिसमें पद-पद पर अध्यात्म, वैराग्य और शांत रस उच्छलित होता है। इसमें कुल मिलाकर 80 पद हैं और कतिपय स्तुतियाँ भी।

भूधर के पदों में ज्ञान का जो भव्यरूप अंकित हुआ है, वह हिन्दी साहित्य में अदभुत है। श्रद्धा और विवेक का ऐसा सामंजस्य भी अन्यत्र दुर्लभ है। इन पदों में भावात्मक पृष्ठभूमि, विचारों की सात्त्विकता, आत्मनिष्ठ अनुभूति की गहराई, अभिव्यक्ति की सुघराई, इनकी सरलता, शालीनता तथा सरस गेयता सब भव्य है। इन सब तत्वों का समन्वय ही विचारशील पाठकों के मन में लोकोत्तर आनन्द की सृष्टि करता है।”³

विषयगत एवं भावगत समस्त विशेषताओं को ध्यान में रखते हुए भूधरदास के पदों में वर्णित भावों को निम्नलिखित बिन्दुओं के आधार पर भी विश्लेषित किया जा सकता है—

१. तीर्थकर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा, डॉ. नेमिचन्द्र शास्त्री भाग 4 पृष्ठ 276

2. तीर्थकर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा, डॉ. नेमिचन्द्र शास्त्री भाग 4 पृष्ठ 277

3. अध्यात्म पदावली - डॉ. राजकुमार जैन, पृष्ठ 101

1. **सख्य भाव** - स्वयं का मित्र बनकर स्वयं को समझाना सख्य भाव है। आत्मा में ही परमात्मा बनने की शक्ति है परन्तु वह उसे भूलकर पर पदार्थों-विषय-कषायों (पाप भावों) का साथ करता है। इसलिए भूधरदास एक मित्र के समान अपने आत्मा को अनेक प्रकार से समझते हैं। वे जिन पदों के द्वारा अपने आत्मा को समझते हैं, वे पद हैं—

(क) अज्ञानी पाप धतूरा न बोय।

फल चाखन की बार भरै दूग, मर है मूरख रोय ॥¹

(ख) मन हंस ! हमारी लै शिक्षा हितकारी।

श्री भगवान धरन पिंजरे वसि, तखि विषयवि की यारी ॥²

(ग) मेरे मन सूवा, जिनपद पींजरे वसि, यार लाव न बार रे।

संसार में विषयबृच्छ सेवत, गयो काल अपार रे ॥³

(घ) वीरा ! थारी दान बुरी परो रे, वरज्यो मानत नाहिं।

विषय विनोद महा बुरे रे, दुखदाता सरवंग।

तू हटसौं ऐसैं रमै रे, दीबे पड़त पतंग ॥ वीरा ॥⁴

(ङ) अन्तर उज्जवल करना रे भाई।

कपट कृपान तजै नहिं तबलौं, करनी काज न सरना रे ॥⁵

(च) चित ! चेतन की यह विरियाँ रे।

उत्तम जनम सुनत तरुनापौ, सुजत बेल फल फरियाँ रे ॥⁶

इन पदों में कवि ने अपने आपको क्रमशः अज्ञानी, हंस, सुआ (तोता) वीरा, भाई व चेतन कहा है। साथ ही सांसारिक मोह-माया, विषय-कषाय आदि के दुष्परिणामों की चर्चा करते हुए इन विकारों से पृथक् रहने के लिए उसे एक मित्र की तरह सँभाला है। जैनधर्मानुसार आत्मा और परमात्मा में स्वभाव से कोई अन्तर नहीं है संसारी आत्मा ही कर्ममल से रहित होने पर सिद्ध बन जाती

1. भूधरविलास पद 4

2. वही पद 33

3. वही पद 5

4. वही पद 32

5. वही पद 31

6. वही पद 27

है। सिद्ध ही प्रभु है। इसप्रकार भूधरदास के पदों में सख्य भाव की भक्तिभावना दिखाई देती है।

2. दास्य भाव - आराध्य के प्रति विनय की भावना दास्य भाव है। दास्य भाव के अन्तर्गत आराध्य की प्रभुता, शरणागत की रक्षा, वत्सलता आदि भावों के प्रति आस्था और आदर प्रदर्शित कर भक्त अपनी दीनता, लघुता तथा याचना की चर्चा करता है।

कवि भूधरदास अपने प्रभु को "दीनदयालु" मानकर अपने ऊपर कृपा करने की बात इसप्रकार करते हैं—

अहो ! जगतगुरु देव, सुनियो अरज हमारी ।
तुम हो दीनदयालु, मैं तुम्हिला संसारी ॥
इस भव वन में वादि काल अनादि गमायो ।
भ्रमत चहुँगति माहिं, सुख नहिं दुःख बहु पायो ॥

दुष्टन देहु निकार, साधुन को रख लीजै ।
विनवै भूधरदास हे प्रभु ! ढील न कीजै ॥¹

कवि अपने प्रभु की अद्भुत महिमा का बखान करते हुए उन्हें पतितपावन और अधम-उद्धारक के रूप में देखता है।² साथ ही उनसे सेवा का वरदान माँगते हुए उन्हें दानी तथा अपने को याचक भी कह देता है—

अबलो नहिं उर आनी ॥ सहे तो ॥ टेक
काहे को भववन में भ्रमते, क्यों होते दुःखदानी ॥
नाम प्रताप तिरे अंजन से, कीचक से अभिमानी ॥

ऐसी साख बहुत सुनियत है, जैन-पुराण बखानी ॥
"भूधर" को सेवा वर दीजै, मैं जाचक तुम दानी ।।³

1. जैन पद संग्रह तृतीय भाग-जिनवाणी प्रचारक कार्यालय, कलकत्ता, विनती पद - 7
तथा बृहज्जिनवाणी संग्रह पृष्ठ 530-531

2. भूधरविलास पद 49

3. वही पद 37

कवि अपने आपको अधम मानकर करुणा के सागर शान्तिनाथ प्रभु से संसार समुद्र से पार करने, भवद्वन्द को समाप्त कर तारने की बात कहता है-

एजी मोहिं तारिये, शान्ति जिनन्द ।

तारिये-तारिये अधम उधारिये, तुम करुणा के कन्द ॥

“भूधर” बिनवै दूर करो प्रभु, सेवक के भवद्वन्द ॥¹

कवि अपने को सीमन्धर स्वामी के चरणों का चेला (शिष्य) मानकर अपने प्रभु को समर्थ निरूपित करता है—

सीमन्धर स्वामी, मैं चरन का चेरा ।

इस संसार असार में कोई, और न रक्षक मेरा ।

नाम लिये अध न रहे ज्यों, ऊँगें धान अन्येरा ।

“भूधर” चिन्तः क्या रही, ऐसा सयरथ साहिब तेरा ॥²

सूर और तुलसी की तरह कवि भूधरदास ने भी अपने आराध्य के प्रति एकनिष्ठता या अनन्यता का भाव प्रदर्शित किया है; परन्तु इस अनन्यता में कवि का मोह व्यक्ति-विशेष के प्रति न होकर गुणों के प्रति रहा है।³ यह जैन आराध्य का अपना वैशिष्ट्य है।⁴

हिन्दी भक्त कवियों की तरह कवि भूधरदास ने भी अपने आराध्य के नामस्मरण या नामजप की महत्ता को अनेक प्रकार से अभिव्यंजित किया है। नामजप की महिमा को बतलाने वाले कवि के अनेक पद दर्शनीय हैं। उदाहरणार्थ-

(क) जिनराज ना विसारो, मति जन्म यदि हारो ॥⁵

(ख) सब विधि करन उतावला, सुमरन कौ सीरा ॥⁶

(ग) रटि रसना मेरी ऋषभ जिनन्द, सुर नर यक्ष चकोरन चन्द ॥⁷

(घ) मेरी जीभ आठौं जाम, जपि-जपि ऋषभ जिनेश्वर नाम ॥⁸

1. भूधरविलास पद 39

3. जैनशतक छन्द 46

5. भूधरविलास पद 15

7. वही पद 23

2. भूधरविलास पद 2

4. भूधरविलास पद 25,36,41

6. वही पद 22

8. वही पद 24

- (ह) अब नित नेमि नाम भजौ ।
सच्चा साहिब यह निज जानौ, और अदेव तजौ ॥¹
- (च) जपि माला जिनवर नाम की ।
भजन सुधारस सों नहीं धोई, सो रसना किस काम की ॥²
- (छ) और सब थोथी बातें, भज ले श्री भगवान ।
प्रभु बिन पालक कोई न तेरा, स्वारथमीत जहान ॥³

कवि द्वारा रचित बधाई⁴ और प्रभाती⁵ पदों में कवि का विनय भाव एवं दास्यभाव अत्यन्त मुखर हो उठा है। कवि ने आराध्य की अनन्यता, शरणागत-वात्सलता, अधम-उद्धारकता, पतितपावनता आदि के रूप में जाने इष्ट की महिमा तथा अपनी दीनता, हीनता, लघुता, याचना आदि के रूप में अपना विनय एवं दास्य भाव व्यक्त किया है। साथ ही नाम-जप के द्वारा लौकिक समृद्धि के अतिरिक्त अलौकिक सिद्धि (मोक्ष प्राप्ति) की बात भी कही है। भूधरदास के इन सब कथनों पर जैनधर्म भक्ति का यत्किंचित प्रभाव परिलक्षित होता है। फिर भी जैनधर्म के आराध्य की वीतरागता पर थोड़ी भी आँच नहीं आती; क्योंकि व्यवहार नय के द्वारा इसप्रकार के कथन करने में कोई दोष नहीं आता। निश्चय नय से भगवान किसी के कर्ता, धर्ता, हर्ता, हैं ही नहीं, मात्र उपचार में उनमें कर्तृत्व का आरोप किया गया है।

सख्य और दास्य भाव की भक्ति के अतिरिक्त भूधरदास के पदों में अनुरागमूलक भक्ति भी दिखाई देती है। भूधरदास अपने भगवान को देखकर ऐसे विमुग्ध हुए कि भव-भव में भक्ति की याचना करने लगे—

भरनयन निरखै नाथ तुमको, और वांछा ना रही ।
मम सब मनोरथ भये पूरण, रंक मानों निधि लही ॥
अब होऊ भव-भव भक्ति तुम्हारी, कृपा ऐसी कीजिए ।
कर जोर "भूधरदास" बिनवै, यही घर मोहि दीजिये ॥⁶

1. भूधरविलास पद 36

2. वही पद 43

3. वही पद 44

4. जैन पद संग्रह, तृतीय भाग, पद 31

5. भूधरविलास पद 51

6. जैनपद संग्रह, तृतीय भाग, पद 71

इसीप्रकार भूधरदास अपने असाध्य से भव-भव में स्वामी होने की तथा स्वयं के सेवक होने की प्रार्थना इसप्रकार करते हैं-

कब होउ भव-भव स्वामी मेरे, मैं सदा सेवक रहौं ।

कर जोरि यह वरदान माँगों, मोखपद जावत लहौं ॥¹

भक्ति से मुक्ति भी जैनधर्म में उपचार से कही जाती है। वास्तव में भक्ति रागरूप होने से मोक्ष का कारण नहीं है। वीतरागता ही मोक्ष का कारण है। इसीप्रकार भक्ति साध्य भी नहीं है, साधन मात्र है। भक्ति द्वारा जीव विषय-कषाय से बचकर सद् निमित्तों का सान्निध्य प्राप्त कर लेता है; यही भक्ति की उपयोगिता है।

3. प्रेम भाव - भूधरदास ने आत्म-परिष्कारजन्य भगवद्-प्रेम का वर्णन लौकिक उपकरणों के माध्यम से किया है। इस दृष्टि से कवि द्वारा वर्णित आध्यात्मिक होलियाँ, आध्यात्मिक विवाह, नेमि-राजुल का प्रेम एवं विरह, संयोग-श्रृंगार एवं दाम्पत्य पद्धति पर रचित पद उल्लेखनीय हैं।

भूधरदास ने आध्यात्मिक होलियों का वर्णन अनेक प्रकार से किया है। नायिका अपनी सखियों के साथ श्रद्धारूपी गगरी में आनन्द रूपी जल से रुचिरूपी केसर घोलकर और रंगे हुए नीर को, उर्मंग रूपी पिचकारी में भरकर अपने पति के ऊपर छोड़ती है। साथ ही पति के साथ होली खेलकर अपने विरह का अन्त मानती है—

होरी खेलूंगी घर आये चिदानन्द ।

शिखर मिथ्यात गई अब, आइ काल की लब्धि बसंत ॥

पीय संग खेलनि कौं, हय सङ्गये तरसी काल अनन्त ।

भाग जग्यो अब, फाग रचानौ, आयौ विरह को अंत ॥

सरधा गागरि में रुचि रूपी, केसर घोरि तुरन्त ।

आनन्द नीर उर्मंग पिचकारी छोड़ूंगी नीकी भंत ॥

आज विद्योग कुमति सौतनि कौं, मेरे हरष अनंत ।

भूधर पति एही दिन दुर्लभ-सुमति सखी बिहसंत ॥¹

एक अन्य होली पद में कवि ने आत्मारूपी पुरुष एवं सुबुद्धिरूपी किशोरी के बीच होली खेलने का चित्रण करते हुए दूसरे प्रकार का रूपक प्रस्तुत किया है । वह पद निम्नलिखित है—

अहो दोऊ रंग भरे खेलत होरी, अलख अमृति की जोरी ॥

इतमैं आतम राम रंगीले, उतमैं सुबुद्धि किसोरी ।

या के ज्ञान सखा संग सुन्दर, बाकैं संग समता गौरी ॥

सुचि मन सखिल दथारस केसरि, उदै कलस में घोरी ।

पूरव बंध अबीर उड़ावत, दान गुलाल भरं झोरी ॥²

इसीप्रकार कवि ने आध्यात्मिक विवाह के अन्तर्गत चेतन को पति तथा सुमति को पत्नी निरूपित करते हुए प्रेम या विवाह का वर्णन किया है ।

नेमिनाथ और राजुल के प्रेम को कवि ने अत्यन्त स्वच्छ, स्वस्थ, मर्यादित एवं भारतीय संस्कृति के अनुरूप प्रस्तुत किया है—

देख्यो री ! सखी नेमिकुमार

नैननि प्यारो नाथ हमारो, प्रान जीवन प्रानन आधार ॥³

इसी माधुर्य भाव की पृष्ठभूमि में राजुल द्वारा अपने विरह को व्यक्त किया गया है । इस विरह वर्णन में जायसी के विरह वर्णन की तरह “ऊहा” के दर्शन नहीं होते हैं । उदाहरणार्थ—

(क) मां विलंब न लाव पठाव तैंहारी, जैह जगपति पिय प्यारो ॥

और न मोहि सुहाय कछु अब, दीसै जगत अंधारो री ॥⁴

(ख) नेमि बिना न रहै मेरो जियरा ॥

हेर री हेली तपत उर कैसी, लावत क्यों निज हाथ न नियरा ॥⁵

1. हिन्दी पद संग्रह, साहित्य शोध विभाग, श्री महावीरजी, पृष्ठ 159

2. हिन्दी पद संग्रह, साहित्य शोध विभाग, श्री महावीरजी, पृष्ठ 149

3. भूधरविलास पद 14

4. वही पद 13

5. वही पद 20

(ग) तहाँ लै चल री ! जहाँ गान्धपति प्यागे ।

नेमि निशाकर बिन यह चन्दा, तन-मन दहत सकल री ॥¹

संयोग श्रृंगार और दाम्पत्य पद्धति पर रचित पदों में भूधरदास ने हिन्दी सन्त कवियों की भाँति भगवान को “पिय” और स्वयं को “तिय” निरूपित करते हुए अलौकिक प्रेम की अभिव्यक्ति की है। इस प्रेम में विरह का दुःख भी दिखाई देता है। उदाहरणार्थ—

हों तो कहा करों कित जाउ सखी, अब कासौ पीर कहूँ री ।
भरता भीख दई गुण मानौं, जो बालम घर आवै ॥

.....
सुमति बधू यौं दीन दुहागनि, दिन-दिन झुरत निरासा ॥
भूधर पीउ प्रसन्न भये, वैसे न तिय घरवासा ॥²

4. शान्त भाव - भूधरदास की आध्यात्मिक अभिव्यक्ति में शान्तभाव का उद्रेक हुआ है। कवि ने मोक्ष को परम शान्ति का स्थान निरूपित करते हुए भगवद्भजन को उसका कारण बताया है। कवि के अनुसार भगवत्-भजन में ही स्थायी शान्ति है। कवि ने अध्यात्म भाव के निरूपण में संसार, शरीर एवं भोगों की अनित्यता, अशरणता, निःसारता, दुःखरूपता आदि बतलाकर निर्वेद भाव को उत्पन्न करने का प्रयास किया है यथा—

भगवन्त भजन क्यों भूला रे ।
यह संसार रैन का सुपना, तन धन वारि बबूला रे ॥
इस जीवन का कौन भरोसा, पावक में तृण पूला रे ।
काल कुदर लिये सिर ठाड़ा, क्या समझे मन फूला रे ॥
स्वारथ साथे पाँव-पाँव तू, परमारथ को लूला रे ।
कहु कैसे सुख पावे प्राणी, काम करै दुःख मूला रे ॥
मोह पिशाच छुन्यो मति मोरे, निज कर कन्ध बसूला रे ।
भज श्री राजमतीवर “भूधर” दो दुर्मति सिर धूला रे ॥³

1. भूधरविलास पद 48

2. जैन पद संग्रह, तृतीय भाग 29

3. भूधरविलास पद 18

5. आत्मा का कथन - भूधरदास देहरूपी देवल में विराजमान केवलज्ञानरूपी शुद्ध, निरंजन, चैतन्यमय एवं अविनाशी आत्मा को प्राप्त करने की प्रेरणा देते हैं—

देखो धाई ! आत्म देव विराजै ।

इस ही हूठ हाथ देवल में, केवल रूपी राजै ॥

अमल उदास जोतिमय जाकी, मुद्रा मंजुल छाजै ।

मुनि जन पूजन अचल अविनाशी, गुण बरनत बुधि लाजै ॥

पर संजोग अमल प्रतिभासत, निज गुण मूल न त्याजै ।

जैन फटिक पाखान हेत सों, स्वयं अरु दुति साजै ॥

सोऽहं पद ममता सों ध्यावतैं, घट ही में प्रभु पाजै ।

“भूधर” निकट निवास जासु को, गुरु बिन भरण न भाजै ॥¹

जिसप्रकार हिरण नाभि में कस्तूरी होने पर भी उसे ढूँढने के लिए भ्रम के कारण वन-वन भटकता है । उसीप्रकार अज्ञानी प्राणी स्वयं सुखस्वरूप आत्मा होते हुए भी सुख की खोज में इधर-उधर भटकता है । भूधरदास को ऐसे अज्ञानियों पर हँसी आती है—

पानी में मीन पियासी रे, मोहे रह रह आवे हाँसी रे ॥

ज्ञान बिना भव वन में भटक्यो, कित जमुना कित काशी रे ॥

जैसे हिरण नाभि कस्तूरी, वन-वन फिरत उदासी रे ॥

“भूधर” भरण जाल को त्यागो, मिट जाये जम की फाँसी रे ॥²

6. पापों को छोड़ने का उपदेश एवं मानव जीवन की दुर्लभता

भूधरदास धर्म प्राप्ति हेतु पापों और विषयकषायों को छोड़ने का उपदेश इसप्रकार देते हैं—

अज्ञानी पाप धतूरा न बोय ।

फल चाखन को बार भरै दूग, मरि है मूरख रोय ॥

1. अध्यात्म भजन गंगा, सं. पं. ज्ञानचन्द जैन, पृष्ठ 48

2. अध्यात्म भजन गंगा, सं. पं. ज्ञानचन्द जैन, पृष्ठ 50

किंचित् विषयनि के सुख कारण, दुर्लभ देह न खोय ।

ऐसा अवसर फिर न मिलैगा, मोह नींद मत सोय ॥¹

साथ ही वे मनुष्य जन्म एवं श्रावक कुल को महा से महा दुर्लभ बताते हुए अनेक उदाहरणों द्वारा व्यर्थ न खोने की सलाह देते हैं—

ऐसे श्रावक कुल तुम पाय, वृथा क्यों खोबत हो ।

कठिन-कठिन कर नरभक्ष पायो, तुम लेखो आसान ।

धर्म विसारि विषय में राचौ, मानी न गुरु की आन ॥²

7. मन की पवित्रता - 17 वीं - 18 वीं शताब्दी में जैनधर्म में भट्टारक प्रथा के कारण अनेक क्रियाकाण्ड सिर उठा रहे थे । भूधरदास ने उनका खण्डन करते हुए मन की पवित्रता या अन्तर की उज्ज्वलता पर बल दिया है । यदि अन्तःकरण विषय-कषाय रूपी कीचड़ से लिप्त है तो जप-तप, तीर्थयात्रा, व्रतादि का पालन करना, आगम का अभ्यास करना आदि व्यर्थ है । भूधरदास ने मन की पवित्रता पर ध्यान आकर्षित करते हुए कहा है—

भाई ! अन्तर उज्ज्वल करना रे ॥

कपट कृपान तजै नहिं तबलौं, करनी काज न सरना रे ॥

जप-तप तीरथ यज्ञ व्रतादिक, आगम अर्थ उचरना रे ।

विषय-कषाय कीच नहिं धोयो, यों ही पन्नि-पचि मरना रे ॥³

8. अभिमान का निषेध - भूधरदास तन, धन, यौवन, जीवन आदि को क्षणभंगुर मानकर उनके अभिमान का निषेध करते हुए कहते हैं—

(क) हे नर निपट गैवार, गरब नहिं कीजै रे ।

झूठी काया झूठी माया, छाया ज्यों लखि लीजै रे ।

कैं छिन सांझ सुहागुरु जीवन, के दिन जग में जीजै रे ॥⁴

1. अध्यात्म भजन गंगा, सं. पं. ज्ञानचन्द जैन, पृष्ठ 49

2. अध्यात्म भजन गंगा, सं. पं. ज्ञानचन्द जैन, पृष्ठ 51

3. अध्यात्म भजन गंगा, सं. पं. ज्ञानचन्द जैन, पृष्ठ 50

4. अध्यात्म भजन गंगा, सं. पं. ज्ञानचन्द जैन, पृष्ठ 51

(ख) देख्या बीच जहान में ।

कोई अजब तमासा जोर, तमासा सुपने का सा ॥

तन धन अधिर निहायत जग में, पानी माहि पतासा ।

“भूधर” इनका गरब करै जो, धिक तिनका जनमासा ॥¹

9. गुरुका स्वरूप एवं महत्त्व - भूधरदास के अनेक पदों में गुरु का स्वरूप बतलाते हुए उनकी स्तुति की गई है, साथ ही गुरुमहिमा प्रदर्शित कर उनके द्वारा बतलाये हुए मार्ग पर चलने की प्रेरणा दी है—

(क) बन्दों दिगम्बर गुरुचरण, जग तरण तारण जान ।

जे भरम भारी रोग को, हैं राज वैद्य महान ॥

जिनके अनुग्रह बिन कभी, नहि कटै कर्म जंजीर ।

ते साधु मेरे उर बसहु, मेरी हरहु पातक पीर ॥²

(ख) ते गुरु मेरे मन बसो, जे भवजलधि जहाज ।

आप तिरैं पर तारहीं, ऐसे है ऋषिराज ॥ ते. गुरु ॥

मोह महारिपु जानि कै, छाड़्यो सब घरबार ।

होय दिगम्बर वन बसे, आतम शुद्ध विचार ॥ ते. गुरु ॥³

(ग) वे मुनिवर कब मिलि है उपकारी ।

साधु दिगम्बर नगन निरम्बर, संवर भूषणधारी ॥

कंचन कौंच बराबर जिनकै, ज्यों रिपु त्यों हितकारी ॥⁴

(घ) सुन ज्ञानी प्राणी, श्री गुरु सीख सयानी ।

नरभय पाय विषय मति सेवो, ये दुरगति अगवनी ॥⁵

1. अध्यात्म भजन गंगा, सं. पं. ज्ञानचन्द जैन, पृष्ठ 52

2. बृहत् विनती संग्रह - जिनवाणी प्रचारक कार्यालय पृष्ठ 7 एवं जैन पद संग्रह
तृतीय भाग पद 73

3. वही दोनों पृष्ठ 8 एवं 77

4. अध्यात्म भजन गंगा, सं. पं. ज्ञानचन्द जैन, पृष्ठ 51

5. भूधरविलास पद 7

(ड) श्री गुरु शिक्षा देत हैं सुनि प्रानी रे ।

सुमर मंत्र नौकार, सौख सुनि प्रानी रे ॥¹

(च) सो गुरुदेव हमारा है साधो ।

जोग अगनि में गो धिर सरजे, यह चित्त जगज्जगत्तरा है ॥²

10. माया का वर्णन - भूधरदास ने कबीर की भाँति माया के ठगनी रूप का वर्णन किया है । माया के ठगनी रूप का रूपक दोनों का समान है । अन्तर यह है कि जहाँ कबीर ने केवल उदाहरणों द्वारा माया की धूर्तता का विश्लेषण किया है, वहाँ कवि भूधरदास ने माया के मोहक कार्यों का निरूपण करते हुए उसकी ठगई का परिचय दिया है । भूधरदास के इस पद में व्यंग्य का पुट रहने से वह सर्वसाधारण को अधिक प्रभावित करता है । भूधर का माया सम्बन्धी पद इसप्रकार है—

सुन ठगनी माय, तै सब जग ठग छाया ।

दुक विश्वास किया जिन तेरा, सो मूरख पछिताया ॥

आपा तनक दिखाय बीज ज्यों, भूधरती सलचाया ।

करि मद अंध धर्म हर लीनों, अन्त नरक पहुँचाया ॥

केते कंत किये ते कुलटा, तो भी भन न अघाया ।

किस ही सौं नहिं प्रीति निखाही, वह तजि और सुभाया ॥

‘भूधर’ ठगत फिरै यह सबकों, भौंदू करि जग पाया ।

जो इस ठगिनी को ठग बैठे, मैं तिसको सिर नाया ॥

11. शरीर के रूपक - भूधर के पदों में शरीर के लिए अनेक रूपक प्रयुक्त हुए हैं । उनमें कबीर का चरखे का रूपक “चरखा चलै सुरत विहीन” तथा तँबूरे का रूपक “साथी यह तन ठाठ तँबूरे का” के समान भूधरदास के चरखे का रूपक अति साम्य रखता है । वह रूपक है—

1. जैन पद संग्रह तृतीय भाग पद 78

2. वही पद 61

- (क) चरखा चलता नाही, चरखा हुआ पुराना ।
पग खूँटे दूय हालन लागे, उर मदरा खखराना ।
छीदों हुई पाँखड़ी पसली, फिरे नहीं मनमाना ॥¹

भूधरदास शरीर को गगरी का रूपक देते हुए कहते हैं—

- (ख) काया गगरि जोजरी, तुम देखो चतुर विचार हो ॥
जैसे कुल्हिया काँच की, जाके विनसत नाहीं बार हो ।
माँस मयी माटी लई अरु, सानी रुधिर लगाय हो ।
कीन्हीं करम कुम्हार ने, जासों कहूँ की न वसाय हो ॥²

इसीप्रकार शरीर को वृक्ष का रूपक प्रदान करते हुए कवि का कथन है—

- (ग) यह तन जंगम रूखड़ा, सुनियों भवि प्राणी ।
एक बूंद इस बीच है, कछु बात न छानी ॥
गरभ खेत में मास नौ, निजरूप दुराया ।
बाल अंकुरा बढ़ गया, तब नजरों आया ॥³

12. श्रद्धानी जीव एवं समकित सावन का महत्त्व - भूधरदास ने सम्यग्दर्शन को “सावन” का रूपक देते हुए उसकी अनेक प्रकार से महिमा बतलायी है तथा सम्यग्दृष्टि श्रद्धानी जीव का महत्त्व भी प्रतिपादित किया है—

- (क) अब मेरे समकित सावन आयो ।
बीति कुरीति मिथ्यामति ग्रीष्म, पावस सहज सुहायो ॥
अनुभव दायिनि दमकन लागी, सुरति घटा घन छायो ।
बोलै विमल विवेक पपीहा, सुमति सुहागिनि भायो ॥⁴
- (ख) जग में श्रद्धानी जीव “जीवन मुक्त” हैगे ॥
देव गुरु साँचे माने, साँचो धर्म हिये आने ।
ग्रन्थ ते ही साचे जाने, जे जिन उक्त हैगे ॥⁵

1. हिन्दी पद संग्रह, साहित्य शोध विभाग, श्री महावीरजी पृष्ठ 152

2. जैन पद संग्रह, तृतीय भाग पद 55 3. जैन पद संग्रह, तृतीय भाग पद 66

4 व 5. अध्यात्म यजन गंगा, सं. पं. ज्ञानचन्द जैन, पृष्ठ 47

13. हिंसा का निषेध - भूधरदास ने धर्म के नाम पर होने वाली हिंसा का निषेध किया है—

ऐसी समझ के सिर धूल ।

धरम उपजन हेत हिंसा आचरे अधमूल ॥¹

इसीप्रकार भूधरदास ने अनहद बाजा, श्रोता, जोगी, काजी, कामिल, ब्राह्मण, अमली, जुआरी आदि का सच्चा स्वरूप बताया है।²

इसके अतिरिक्त पद संग्रह में कई दिनतियाँ, जकड़ी गीत, बधाई गीत, प्रभाती गीत, आदि का वर्णन किया गया है। इसप्रकार भूधरदास के “पदसंग्रह” में विविध पदों के माध्यम से भक्ति, प्रेम, अध्यात्म, नीति, उपदेश आदि अनेक प्रकार के भावों का चित्रण किया गया है। यह चित्रण अपने आप में अनूठा है और हिन्दी साहित्य में भूधरदास के महत्त्वपूर्ण योगदान को सूचित करता है। इस योगदान के कारण हिन्दी साहित्य में वे अपना एक विशिष्ट स्थान प्राप्त करने के अधिकारी हैं।

भूधरदास की फुटकर रचनाओं में अनेक दिनतियाँ, स्तोत्र, आरतियाँ, अष्टक काव्य, निशि भोजन भुंजन कथा, तीन चौबीसी की जयमाला, विवाह समय जैन की मंगल भाषा, ढाल, हुक्का पच्चीसी, बधाई, जकड़ी, होली, जिनगुण मुक्तावली, भूपाल चतुर्विंशति भाषा, बारह भावना, सोलह कारण भावना, वैराग्य भावना आदि सभी का नामोल्लेखपूर्वक भावपक्षीय विश्लेषण पूर्व में किया जा चुका है।³

ये सभी फुटकर रचनाएँ मुक्तक काव्य के अन्तर्गत ही आती हैं। इनमें से कुछ रचनाएँ पार्श्वपुराण एवं पदसंग्रह के अंश हैं, जो विभिन्न व्यक्तियों द्वारा पृथक्-पृथक् रूप से प्रकाशित कर दिये हैं। इसप्रकार भूधरदास के महाकाव्य “पार्श्वपुराण” एवं महाकाव्येतर रचनाओं के रूप में “जैनशतक” एवं “पदसंग्रह” का भावपक्षीय अनुशीलन विस्तृत रूप से विवेचित किया गया।

1. अध्यात्म भजन गंगा, सं. पं. ज्ञानचन्द जैन पृष्ठ 55

2. रखता नहीं तेन की खबर अनहद बाजा बाजिया वही पृष्ठ 53

3. प्रस्तुत शोध ग्रंथ, अध्याय 4

देखो भाई !.....

देखो भाई ! आत्म देव विराजै ॥ टेक ॥

इस ही हूठ हाथ देवल में, केवल रूपी राजै ॥

॥ देखो भाई ॥

अमल उदास जोतिमय जाकी, मुद्रा मंजुल छाजै ।

मुनि जन पूज अचल अविनाशी, गुण बरनत बुधि लाजै ॥

॥ देखो भाई ॥

पर संजोग अमल प्रतिभासत, निज गुण मूल न त्याजै ।

जैन फटिक पाखान हेत सों, स्याम अरु दुति साजै ॥

॥ देखो भाई ॥

सोऽहं पद ममता सों ध्यावत, घट ही में प्रभु पाजै ।

“भूधर” निकट निवास जासु को, गुरु बिन भ्रम न भाजै ।

॥ देखो भाई ॥

— भूधरदास

षष्ठ अध्याय

भूधरदास का कलापक्षीय अनुशीलन

- (क) भाषा
- (ख) छन्द विधान
- (ग) अलंकार विधान
- (घ) प्रतीक योजना
- (ङ) मुहावरे एवं कहावतें
- (च) गद्य शैली

भूधरदास का कलापक्षीय अनुशीलन

भूधरदास का भावपक्ष (अनुभूति पक्ष) के समान कलापक्ष (अभिव्यक्ति पक्ष) पर्याप्त प्रभावशाली है। उनके कलापक्ष के अनुशीलन हेतु भाषा, छन्दविधान, अलंकार-विधान, प्रतीक योजना, नीतियों एवं सूक्तियों का प्रयोग आदि का अध्ययन अपेक्षित है। इन सबका क्रमानुसार विवेचन निम्नांकित है -

(क) भाषा :- कवि भूधरदास ने अपने लेखन में प्रयुक्त भाषा को कोई विशेष नाम से सम्बोधित न करके मात्र "भाषा" शब्द से अभिहित किया है। इस सम्बन्ध में उनके कथन द्रष्टव्य हैं -

- 1 "ज्ञान अंश चाखा भई ऐसी अभिलाखा अब,
कहाँ जोरि भाखा जिन पारसपुरान की।"¹
- 2 "पूरव चरित विलोकिकै भूधर बुद्धि समान।
भाषाबन्ध प्रबन्ध यह कियो आगरे ध्यान॥"²
- 3 "अच्छरसंधि समास ज्ञानवर्जित विधि हीनी -
धर्मभावना हेतु किमपि भाषा यह कीनी॥"³

कवि ने तत्कालीन भाषा में पार्श्वपुराण की रचना इसलिए की ताकि जो लोग बुद्धि की हीनता से संस्कृत आदि भाषा में लिखे गये ग्रन्थों को नहीं पढ़ सकते वे देशभाषा में उन्हें पढ़ सकें। इसी कारण भूधरदास ने देशभाषा में पार्श्वपुराण रचा -

आगे जैनग्रन्थन के करता कवीन्द्र भये,
करी देवभाषा महाबुद्धिफल स्वीनो है।
अच्छरमिताई तथा अर्थ की गंभीरताई,
पदललिताई जहाँ आई रीति तीनों हैं॥
काल के प्रभाव तिन ग्रन्थन के पाठी अब,
दीसत अलप ऐसौ आयो दिन हीनो है।

-
1. पार्श्वपुराण कलकत्ता, पीठिका पृष्ठ 2
 2. पार्श्वपुराण कलकत्ता, पृष्ठ 95
 3. पार्श्वपुराण कलकत्ता, पृष्ठ 95

तार्ते इह समै जोग पढ़ै बालबुद्धि लोग,
पारसपुरान पाठ भाषाबद्ध कीनो है ॥¹

इन कथनों से स्पष्ट है कि कवि ने धर्मभावना के कारण देशभाषा में अपने ग्रन्थों की रचना की है। इन रचनाओं में देशभाषा उनकी है तथा विषयवस्तु परम्परागत है।

“देशभाषा” से कवि का आशय तत्कालीन लोक प्रचलित विकासशील भाषा से है। जहाँ एक ओर यह भाषा बोलचाल की भाषा थी, वहीं दूसरी ओर साहित्य की भी भाषा थी। इस भाषा को बालबुद्धि (अल्पबुद्धि) भी पढ़ सकते हैं। इस प्रकार कवि द्वारा प्रयुक्त भाषा (जिसे वह भी “भाषा” ही कहता है) वस्तुतः आगरा, ग्वालियर आदि विशाल हिन्दी भाषी प्रदेश की लोकभाषा व साहित्यभाषा “ब्रजभाषा” ही है, क्योंकि उस समय लोक एवं साहित्य की प्रचलित भाषा “ब्रजभाषा” ही थी। यद्यपि कवि द्वारा प्रयुक्त भाषा ब्रजभाषा ही है फिर उसमें अनेक विदेशी भाषाओं के शब्द दिखलाई देते हैं। साथ ही कहीं कहीं स्थानीय भाषा के शब्द (देशी शब्द) तथा खड़ी बोली की समीपता भी दृष्टिगत होती है।

यद्यपि मूलतः कविकृत रचनाओं की भाषा शुद्ध साहित्यिक ब्रजभाषा है; तथापि वह भाषा सभी रचनाओं में एक जैसी नहीं है, उसमें उत्तरोत्तर विकास के दर्शन होते हैं। कवि द्वारा रचित प्रारम्भिक रचना जैनशतक में पश्चात्कर्तवी रचना पार्श्वपुराण जैसी प्रौढ़ता नहीं है। उसकी भाषा में बहुतायत से देशी, विदेशी भाषाओं के अनेक शब्दों का प्रयोग हुआ है। शब्दों का यह प्रयोग कहीं तो अपनी प्रकृति के अनुसार ज्यों का त्यों किया गया है तो कहीं हिन्दी भाषा की प्रकृति के अनुसार यथेच्छ परिवर्तन करके किया गया है। जैनशतक में प्रयुक्त भाषा में प्रचलित मुहावरों और लोकोक्तियों का प्रयोग सर्वथा अनूठा है। इससे भाषा सौन्दर्य में अभिवृद्धि ही हुई है। कवि की भाषा का पूर्ण विकसित, परिमार्जित और प्रौढ़रूप पार्श्वपुराण नामक महाकाव्य में मिलता है। पार्श्वपुराण की भाषा सरस साहित्यिक ब्रजभाषा है।

आलोच्य युग में ब्रजभाषा एक विशाल भूभाग की भाषा बन चुकी थी। उसका साहित्य में पर्याप्त प्रयोग होने लगा था। साथ ही राजदरबारों में भी उसे उचित सम्मान दिया जाने लगा था। वह देश की समस्त भाषाओं में लोकभाषा

के रूप में शीर्षस्थान पर प्रतिष्ठित होने की अधिकारिणी बन गयी थी; इसलिए भूधरदास ने अपने साहित्य की रचना ब्रजभाषा में ही की। भूधरदास के साहित्य की भाषा सरस ब्रजभाषा है। यह ब्रजभाषा की उन सब विशेषताओं से युक्त है जो ब्रजभाषा में पाई जाती है। भूधरदास द्वारा प्रयुक्त ब्रजभाषा की कतिपय विशेषताएँ निम्नलिखित हैं :-

1. आकारान्त के स्थान पर ओकारान्त या औकारान्त का प्रयोग दिखाई देता है। यथा - आयो, बडो, भलो आदि।
2. ए के स्थान पर ऐ का प्रयोग किया गया है। जैसे - लहै, जानै, धरै आदि।
3. संयुक्त वर्णों को स्वरविभक्ति के द्वारा अलग करने की प्रवृत्ति देखी जाती है। यथा - परवीन, निरधार, सतसंगति, कल्पित, विसतार, शब्द, परसिद्ध, पारस, जनम, पदारथ आदि।
4. संयुक्त वर्णों को संयुक्त और पृथक् - दोनों रूपों में लिखा गया है - भरम और भ्रम, परमारथ और परमार्थ, परमान और प्रमाण, विकल्प, और विकल्प आदि।
5. मुखसुख या उच्चारण सुविधा के कारण संयुक्त वर्णों में से एक का लोप कर दिया है। स्तुति को थुति, चैत्य को चैत, स्थान को थान, द्युति को दुति, स्थिति को थिति, स्वरूप को सरूप, स्तम्भ को थंभ, दुष्ट को दुठ, स्थिरता को थिरता, फुल्लिंग को फुल्लिग आदि।
6. प्रायः संयुक्त वर्णों का सरलीकरण करने के लिए आधे वर्ण को पूरा करके रखा गया है; जिससे उच्चारण सम्बन्धी सुविधा हुई है। यथा - भरता, बैदूरज, मारग, सरवारथ, शुकल, मूरति, सरधान, समकित, ततकाल, ग्रीष्म, अपकीरति, विसन, सुमरन, विघन, अलप आदि।

चूँकि भूधरदास की भाषा ब्रजभाषा है; इसलिए उन्होंने दूसरी भाषा के शब्दों को ग्रहण करते समय उनकी ध्वनियों को अपनी प्रकृति के अनुसार ढाल लिया है। ध्वनियों का यह परिवर्तन द्रष्टव्य है - श को स में बदलना - विलास, सीस, ससि, सुन्न, निरास, अंस, सारद, सोक, सर, कासी इत्यादि।

ण को न में परिवर्तित करना - प्रान, तारन, गुन, तून, चरन, सरन, पुरान, पुन्य, प्रानी, वानी, दशलाछनी, इत्यादि ।

क्ष के स्थान पर छ का प्रयोग करना - पंछी छिन, छीन, लच्छमी, परनच्छ, छोभ, लच्छन इत्यादि ।

कहीं कहीं (न) वर्ण का कार्य “ओ” और “उ” की मात्रा से निकाला गया है - विभो (वैभव), भौन (भवन), गौन (गवन), पौन (पवन) परभौ (परभव), जौलों (जबलों), औगुन (अवगुण), सुर (स्वर), धुजा (ध्वजा), धुनि (ध्वनि), सुरग (स्वर्ग) आदि ।

बदले हुए वर्णों वाले शब्दों का भूधरसाहित्य में बहुलता से प्रयोग हुआ है । यथा - दिवायर (दिवाकर), जच्छ (यक्ष), जम (यम), परजाय (पर्याय), जोवन (योवन), विचच्छन (विचक्षण), लच्छन (लक्षण), लच्छमी, (लक्ष्मी) न्याव (न्याय), उपगारी (उपकारी), कारिमा (कालिमा), लोय (लोक) लोयन (लोचन) लाह (लाभ), रिषभ (ऋषभ), निहचल (निश्चल) इत्यादि ।

भूधरसाहित्य में मात्रा बढ़े हुए शब्द भी पाये जाते हैं । यथा - जिहान (जहान), दिना (दिन), लागे (लगे), नीसतारे (निसतरे), छिन (क्षण), पिछताया (पछताया), तिरना (तरना), लसकरि (लशकर) इत्यादि ।

मात्रा घटे हुए शब्द भी पाये जाते हैं । जैसे - प्रतमा (प्रतिमा), महूरत (मुहूर्त), अवास (आवास), अनाद (अनादि), दवानल (दावानल) इत्यादि । चूँकि कवि द्वारा रचित सभी रचनाओं की भाषा एक जैसी नहीं मिलती है । अतः विभिन्न रचनाओं के आधार पर भाषा का विवेचन किया जाता है; जो निम्नलिखित है:-

1. पार्श्वपुराण की भाषा :- पार्श्वपुराण की भाषा सरल एवं प्रभावात्मक है । मधुरता और सरसता उसमें सर्वत्र विद्यमान है । प्रसादगुण उसकी महत्वपूर्ण विशेषता है । वह कोमलकान्त पदावली समन्वित है । शब्दों का प्रयोग सार्थक, सुबोध एवं स्वाभाविक रूप में हुआ है । वाक्यांशों का सुदृढ़ प्रयोग, सुगठित शब्दयोजना, भाषागत ध्वन्यात्मकता एवं लाक्षणिकता सर्वत्र दर्शनीय है ।

शब्द समूह - शब्दों के स्रोत के रूप में पार्श्वपुराण में तत्सम, तद्भव, देशज, विदेशी आदि सभी प्रकार के शब्दों का प्रयोग हुआ है ।

तत्सम - कमल, अनुपम, महिमा, मंगल, विगत, पूजा, लाभ, उद्यम, ध्यान, भक्ति, शक्ति, कथा, शोक, भ्रमर, समुद्र, उपमा, उथान, नदी, पर्वत, गिरि, नगर,

भाता, लता, गृह, शिक्षा, दर्पण, शिखर, तावत्, कल्याण, अणुवत्, तृष्णा, शुभाशुभ, यद्यपि, ब्रह्मचर्य, यत्र, तत्र, तृतीय, श्रावक, निग्रन्थ आदि ।

तद्भव - परजाय, भेव, सुन्न, छुधा, फरस, चरिया, परीषह, बीछू, तीखन, न्हाँन, महोच्छव, पसेव, गाँव, सोरन, रयणावर, सबन, उछाव, सांझ, भाखा, जोग, परमेठ, गेह, परसै, विसन, बिरतंत, सदीव, दीसत, अलप, बरनत, सुरग, आचारज, पहुमी, खीर, सांथिया, पोह, रात, चौदह, सारसुत, साँच, जस, सुरग, आचारज, अच्छर, परोच्छ, थान, मंझार, कुदिष्ट, आंब, सिरीवच्छ, विरखि, सुपन, धुति, दुति, निठुर आदि ।

देशी :- नेरे, वादि, हेठ, पठायौ, माये, पैड, पोट, तिसाये, करहा, पेट, बाढ़, चौखूट, झुँ, पुतला, निवरी, मांछ, अहक, रिस, बल्लू, तुहारी, चापै, झकसर, अटपटे, लगाए, आदि ।

विदेशी :- ख्वारी, पीर, जरा, गुमान, परहा, कूची, इत्यादि । पार्श्वपुराण में कई प्रकृताभास शब्दों का भी प्रयोग हुआ है - उकाय, विनड्डी, दिड्डी, सत्थ, समत्थ, चक्कवे, कज्जल, सज्जहि, गज्जहि, लोयन, अज्जिया आदि ।

2. जैनशतक की भाषा :- भूधरदास द्वारा रचित जैनशतक की भाषा साफ सुथरी और मधुर साहित्यिक ब्रजभाषा है । उसमें संस्कृतभाषा के यथावत् रूप में तत्सम शब्द, बिगड़े हुए रूप में तद्भव शब्द, प्राकृत भाषा के शब्दों जैसे प्रतीत होने वाले प्राकृताभास शब्द, अरबी फारसी आदि विदेशी भाषाओं के शब्द तथा क्षेत्रीय प्रभावयुक्त देशज शब्द मिलते हैं । जैनशतक की भाषा के सम्बन्ध में डॉ. रामस्वरूप का कथन ध्यातव्य है - "जैनशतक की भाषा साफ सुथरी और मधुर साहित्यिक ब्रजभाषा है । उसमें कहीं कहीं पर यार, माफिक, दगा आदि प्रचलित सुबोध विदेशी शब्द भी दिखाई देते हैं । कुछ पदों में समप्पै, थप्पै, रुच्चै, मुच्चै आदि प्राकृताभास शब्दों का भी प्रयोग दिखाई देता है कुछ रूढ़ियाँ एवं लोकोक्तियाँ भी प्रयुक्त की गई हैं ।"¹

कवि द्वारा जैनशतक में प्रयुक्त शब्दावली का विवेचन पदों के क्रमांक सहित निम्नलिखित है -

तत्सम शब्द :- जैनशतक में शुद्ध संस्कृत के शब्दों का प्रयोग इस प्रकार हुआ है - नासिका छन्द 3, मराल छन्द 4, मौलि छन्द 6, मयूर छन्द 8,

हुताशन छन्द 11, तदाकृत छन्द 12, शिखा छन्द 15, सारंग छन्द 17, रामा छन्द 26, स्वाध्याय छन्द 48, सोम छन्द 44, आमिष छन्द 52, तृन छन्द 55, अदत्त छन्द 56, रत्नत्रयनिधि छन्द 68, तुंग छन्द 76, सिन्धु छन्द 78, द्वादश छन्द 94 ।

तद्भव शब्द - जैनशतक में कवि द्वारा प्रयुक्त तद्भव शब्द हैं - काउसग्ग छन्द 2, रिषभ छन्द 2, रिद्धि छन्द 2, समरथ छन्द 2, नैन छन्द 3, जादौ छन्द 7, दिठ छन्द 9, जेठ छन्द 13, कागवानी छन्द 15, उछाह छन्द 21, सेत छन्द 29, करोर छन्द 33, तीजा छन्द 41, तिसना छन्द 44, चित छन्द 44, जुआ छन्द 50, लच्छन छन्द 50, विचच्छन छन्द 74, चाम छन्द 77, मसान छन्द 77, पुगल छन्द 88 । इसी प्रकार के और भी अनेक शब्दों का प्रयोग हुआ है, जिनका मूल उत्तम संस्कृत में हैं; किन्तु वे जित-जितकर अपने वृद्ध स्वरूप से पर्याप्त भिन्न हो गये हैं ।

प्रकृताभास शब्द - जैनशतक में कतिपय प्रकृताभास शब्दों का प्रयोग हुआ है । यह प्रयोग प्रायः छप्पय छन्दों के अन्तर्गत ही दिखलाई देता है - विरज्जहिं छन्द 4, लज्जहिं छन्द 4, उत्थपई छन्द 8, करिज्जै छन्द 48, लिज्जै छन्द 48, सुपत्त छन्द 48, अच्छ छन्द 51, दज्जै छन्द 61, अरुज्जै छन्द 61, समपै छन्द 79, थपै छन्द 97, रूच्चै छन्द 79, मुच्चै छन्द 79, पुगल छन्द 88 ।

देशज शब्द - जैनशतक में प्रादेशिक या क्षेत्रीय शब्दावली के रूप में देशज शब्दों का प्रयोग अनेक स्थानों पर हुआ है । यथा - जिहाज (जहाज) छन्द 1, धापै (तृप्त) छन्द 1, औरै (पक्ष में, प्रति) छन्द 13, टेर (पुकार) छन्द 16, बिचारों (दीन, दुर्बल) छन्द 16, खाज (खुजली) छन्द 17, भटा (बैंगन) छन्द 18, बैठन (चारद) छन्द 20, मूढ़ (मूर्ख) छन्द 21, कानी (फूटी) छन्द 23, झोपरी (झोपड़ी) छन्द 26, बलाय (बाधा, व्याधि) छन्द 31, भाजी (बांटना) छन्द 32, झीना (धीमा) छन्द 34, ऊनी (कम) छन्द 39, लव (थूंक) छन्द 54, लोग (लोक) छन्द 64, पाहरू (चौकीदार) छन्द 68, सीर (साथी) छन्द 71, गागर (घट) छन्द 75, जनावर (जानवर, निम्न श्रेणी का पशु) छन्द 78, सूबा (राज्य) छन्द 105 ।

विदेशी शब्द - भूधरदास ने जैनशतक में अरबी, फारसी आदि विदेशी भाषाओं के शब्दों का भी प्रयोग किया है ।

अरबी भाषा के शब्द - सलाह (संज्ञा, पुल्लिंग) छन्द 19, माफिक (विशेषण) छन्द 20, खातिर (संज्ञा, स्त्रीलिंग) छन्द 27, खलास (संज्ञा, पुल्लिंग) छन्द 27, खवास (संज्ञा, पुल्लिंग) छन्द 33, इलाज (संज्ञा, पुल्लिंग) छन्द 35,

निशानी (संज्ञा, स्त्रीलिंग) छन्द 42, नजर (संज्ञा, स्त्रीलिंग) 56, नाहक (विशेषण) छन्द 70 ।

फारसी भाषा के शब्द - यार (संज्ञा, पुल्लिंग) छन्द 19, शिकार (संज्ञा, पुल्लिंग) छन्द 50, नाहक (विशेषण) छन्द 70 ।

मुहावरों और लोकोक्तियों का सफल प्रयोग भी जैनशतक में दर्शनीय है । जिनका विवेचन पृथक् रूप से किया गया है ।¹

3. भूधरविलास या पदसंग्रह की भाषा - जैसा कि पूर्व² में स्पष्ट किया जा चुका है कि भूधरविलास और पदसंग्रह - दो पृथक् पृथक् रचनाएँ नहीं हैं; अपितु दोनों नाम से भूधरदास के पदों को ही संगृहीत किया गया है । अतः भूधरदास के पदसंग्रह की भाषा का विवेचन किया जाता है । कवि द्वारा रचे गये पदों की भाषा मूलतः ब्रजभाषा ही है; परन्तु वह खड़ी बोली के बहुत निकट है तथा उसमें शुद्ध संस्कृत भाषा के शब्द, (तत्सम शब्द) संस्कृत शब्दों के बिगड़े हुए रूप अर्थात् तद्भव शब्द, अरबी, फारसी आदि विदेशी भाषाओं के शब्द, राजस्थानी भाषा के शब्द तथा स्थानीय भाषा के शब्द भी मिलते हैं । पदों में वाक्ययोजना एवं पदसंघटन की दृष्टि से भाषा का प्रयोग अति उत्तम बन पड़ा है । मुहावरे और लोकोक्तियों के प्रयोग से भाषासौन्दर्य वृद्धिगत हुआ है तथा भाषा सशक्त एवं प्रभावशील बन गई है ।

तत्सम शब्द - कलत्र, दुःख, शोकावलि, लोकोत्तर, काक, गुरु, उपदेशामृतरस, क्षीर, श्रावक, सम्यग्ज्ञान आदि ।

तद्भव शब्द - भूधरदास के पदों में ऐसे शब्दों का प्रयोग अधिक हुआ है, जिनका मूल संस्कृत भाषा में है; किन्तु निरन्तर प्रयोग के कारण जिनका रूप बदल गया है । यथा - गांठि, मांथे, बोबन, सूवा, वृच्छ, आपा, मौत, वैद, पिया, सावन, मोर, थानक, खांडे, हाथी, घोड़ा, दालिद आदि ।

देशज शब्द - भूधरदास के पदों में ऐसे अनेक शब्द भी प्रयुक्त हुए हैं, जिनका उत्स संस्कृत, प्राकृत में नहीं है वरन् उनका उद्भव अनजाना है;

1. प्रस्तुत शोध प्रबन्ध, षष्ठ अध्याय— मुहावरे एवं कहावतें

2. प्रस्तुत शोध प्रबन्ध, चतुर्थ अध्याय— रचनाओं का वर्गीकरण तथा परिचयात्मक अनुशीलन

किन्तु वे चल पड़े हैं। अतः उन शब्दों को देशज शब्दों के नाम से सम्बोधित कर सकते हैं। यथा - भोंदू, ढील, पतासा, पूला, खोटी, खरी, खखार, आदि।

विदेशी शब्द - भूधरदास के पदों में अरबी, फारसी आदि विदेशी भाषाओं के शब्दों का भी प्रयोग हुआ है।

अरबी भाषा के शब्द - वजीर, तमासा, मुददत, निहायत, जाहिर, दगा, महल, साहिब, खबर, मरहम, काजी, किताब, अमल, कामिल, खुशवक्त आदि।

फारसी भाषा के शब्द - मशालची, जहान, तखत, खुशवक्त, म्यान, कमान, दारू, पोशत, शतरंज, मंजफा आदि।

उर्दू भाषा का खासा तथा यूनानी भाषा का अफीम शब्द भी प्रयुक्त हुआ है।

राजस्थानी भाषा के शब्दों में नीदड़ी, थांकी, म्हानै, म्हारी, सूतो, काई, म्हारे, हेली आदि शब्दों का प्रयोग हुआ है।

4. प्रकीर्ण साहित्य या फुटकर रचनाओं की भाषा :-

कवि द्वारा रचित जकड़ी, आरती, विनती आदि से सम्बन्धित प्रकीर्ण पद या फुटकर रचनाओं में पूर्व रचनाओं की तरह भाषा का वैशिष्ट्य दिखाई देता है। इनमें भी तत्सम, तद्भव, देशज एवं विदेशी शब्द उपलब्ध होते हैं, जिनका विवरण निम्नांकित है -

तत्सम शब्द - त्रिकल, प्रणमामि, अक्षत, घोष, प्रोहित, निस्पृह, सूत्र, पल्लव, प्रेक्षणीय, किमपि आदि।

तद्भव शब्द - औसर (अवसर), निरत (नृत्य), पै (पय), पड़िवा (प्रतिपदा), बांमन (ब्राह्मण), सराध (श्राद्ध), कीरा (कीट), पोहप (पुष्प), दुल्लभ (दुर्लभ), वितर (व्यन्तर), मुकति (मुक्ति), बीजुरी (विद्युत), सीरी (शीत), तुव (तव), सलाघना (श्लाघा), अपछरा (अप्सरा), भंवरा (भ्रमर), सहाई (साहाय्य), चहुँगति (चतुर्गति), पास (पार्श्व), कोढ़ (कुष्ठ), आदि।

देशज शब्द - दुखिया (दुखी), बिगार (हानि), पेंठ (छोटा और थोड़े समय का बाजार), ढिंग (पास में), गोट (झुंड), अघोरी (घिनोने काम करने वाला), ओखर (उपकरण), बुरजी (गुम्बद), आछे (अच्छे), जिवाये (भोजन कराया), बाट

(पथ), पौढ़ना (सोना, लेटना), बेग (शीघ्र), अरदास (प्रार्थना), थाली (पात्र विशेष), सिलगै (प्रज्वलित है) इत्यादि ।

विदेशी शब्द - बदबोई (बदबू फारसी विशेषण) खुमारी (अरबी, फारसी विशेषण), आखिर (अरबी, फारसी विशेषण), दिवाना (दीवाना, फारसी संज्ञा, पुल्लिंग), अमल (अरबी संज्ञा, पुल्लिंग), अरज (अर्ज, अरबी संज्ञा, स्त्रीलिंग) गफिल (अरबी संज्ञा, पुल्लिंग), नफा (फारसी संज्ञा, पुल्लिंग), ख्याल (खयाल, अरबी संज्ञा, पुल्लिंग) इत्यादि ।

गुणव्यंजक पदावली - साहित्यकारों ने रसात्मक काव्य के तीन गुण माने हैं - माधुर्य, ओज और प्रसाद । माधुर्य गुण के अभिव्यंजक वर्ण द, ढ, ड, ढू को छोड़कर अन्त्यवर्णों ड, जू, मू, णू से संयुक्त क से म पर्यन्त 21 वर्ण हैं । ओज गुण के व्यंजक वर्ण क, च, ट, त, प, ग, ज, ड, द, ब, वर्ण अपने वर्ग के प्रथम वर्ण के अन्त्य वर्ण घ, झ, ठ, ध, भ के संयोग से निर्मित पद है अर्थात् ओज गुण में वर्ग के पहले व दूसरे वर्णों तथा तीसरे व चौथे वर्णों का योग होता है । अर्थात् प्रसाद गुण के अभिव्यंजक वे वर्ण हैं, जिनका अर्थज्ञान श्रवण मात्र से हो जाता है । प्रसाद गुण में वर्णों का कोई नियम नहीं है ।

उपर्युक्त आधार पर भूधरसाहित्य में तीनों गुण उपलब्ध होते हैं ।

1. **माधुर्य गुण** - शृंगार, शान्त, भक्ति एवं वात्सल्य रसात्मक स्थलों पर माधुर्य गुण का सौन्दर्य अभिव्यक्त हुआ है । यथा -

ललित वचन लीलावती, शुभलच्छन, सुकुमाल ।

सहज सुगंध सुहावनी, जथा मालती माल ॥

शीलरूप लावण्यनिधि, हावभाव रसलीन ।

सीमा सुभगसिंहार की, सकल कला परवीन ॥¹

2. **ओज गुण** - वीर, वीभत्स, भयानक, और रौद्र रसात्मक स्थलों पर ओजगुण प्रकट हुआ है । उदाहरणार्थ -

चीरै करवत काठ ज्यों, फारै पकरि कुठार ।

तोड़ै अन्तरमालिका, अन्तर उदर विदार ॥

पेलैं कोल्हू मेल के, पीसैं घरटी घाल ।
 तावैं ताते तेल में, तहें दहन परजाल ॥
 पकरि पांय पटकैं पुहुमि, झटकि परस पर लेहिं ।
 कंटक सेज सुखावहीं, शूली पर धरि देहिं ॥
 घसैं संकटक रुखसों, बेतरनी ले जाहिं ।
 घायल घेरि घसीटिये, किंचित करुणा नाहिं ॥¹

3. प्रसाद गुण - समास, संयुक्ताक्षर और तत्सम शब्दों से रहित सरल एवं सुबोध शब्दावली में प्रसादगुण दिखलाई देता है । यथा -

राजा रानी छत्रपति, हाथिन के असवार ।
 मरना सबको एक दिन, अपनी अपनी बार ॥
 दलबल देवी देवता, मात पिता र रिवार ।
 मरती बिरियां जीव को, कोई न राखनहार ॥²

शब्द शक्तियाँ - भूधरसाहित्य में वाचक, लक्षक और व्यंजक शब्दों द्वारा वाच्यार्थ लक्ष्यार्थ और व्यंग्यार्थ को प्रकट करने वाली क्रमशः अभिधा, लक्षणा एवं व्यंजना - तीनों शब्दशक्तियाँ दृष्टिगोचर होती हैं ।

1. अभिधा शक्ति - सिद्धान्त कथनों, शान्त और भक्तिरस के प्रसंगों में अभिधाशक्ति सर्वाधिक प्रयुक्त हुई है । यथा -

प्राणी सुख दुख आप, भुगतै पुद्गल कर्मफल ।
 यह व्यवहारी छाप, निहचै निज सुख भोगता ॥
 देह मात्र व्यवहार कर, कहलो ब्रह्म भगवान ।
 दरबित नय की दिष्टिसों, लोकप्रदेश समान ॥³

2. लक्षणा शक्ति - भूधरदास ने जहां एक ओर पृथक् रूप से लक्ष्यार्थ को प्रकट करने के लिए लक्षणाशक्ति का प्रयोग किया है; वहाँ दूसरी ओर

1. पार्श्वपुराण कलकत्ता, अधिकार 3, पृष्ठ 22

2. पार्श्वपुराण कलकत्ता, अधिकार 4, पृष्ठ 30

3. पार्श्वपुराण कलकत्ता, अधिकार 9, पृष्ठ 79

कथानक, सिद्धान्तकथन आदि के बीच-बीच में प्रयुक्त मुहावरे एवं लोकोक्तियों के माध्यम से भी लक्षणाशक्ति का व्यवहार किया है। चूंकि लोकोक्तियाँ और मुहावरे वाच्यार्थ से भिन्न लक्ष्यार्थ को ही प्रकट करते हैं, इसलिए उनका निरूपण लक्षणाशक्ति के अन्तर्गत ही आता है। यद्यपि समग्र भूधरसाहित्य में प्रयुक्त मुहावरे और लोकोक्तियों का विस्तृत विवेचन पृथक् रूप से किया गया है;¹ तथापि बानगी के रूप में उदाहरण दृष्टव्य है -

दुर्जन जन की प्रीतसों, कहो कैसे सुख होय।

विषधर पोषि पयूष की, प्रापति सुनी न लोय ॥²

3. व्यंजनाशक्ति - भूधरदास ने व्यंग्यार्थ को प्रकट करने के लिए व्यंजनाशक्ति का भी प्रयोग किया है। उदाहरणार्थ - पार्श्वनाथ के नाना द्वारा पार्श्वनाथ के प्रति किया गया व्यंग्यार्थ व्यंजनाशक्ति द्वारा ही अभिव्यक्त हो रहा है -

“हरि हर ब्रह्मा तुम ही भये। सकल चराचर ज्ञाता ठये ॥”³

शब्द योजना - शब्दों का उचित और सटीक प्रयोग भाषा को सुन्दर, सशक्त और प्रभावशाली बनाता है। भूधरसाहित्य में शब्दों की योजना भाव एवं प्रसंग के अनुसार ही की गई है। उदाहरणार्थ -

कमठ द्वारा पार्श्वनाथ पर उपसर्ग करने का चित्रण देखिये -

अंधकार छायो चहुँओर। गरज गरज बरखै घनघोर ॥

झरै नीर मुसलोपम धार। बकबीज झलकै भयकार ॥

बूड़े गिरि तरुवर वनजाल। झंझा वायु बही विकराल ॥

जल थल भयो महोदधि एम। प्रभु निवसैं कनकाक्षल जेम ॥

दुष्ट विक्रियाखल अविवेक। और उपद्रव करै अनेक ॥⁴

इसी प्रसंग में वर्णों या शब्दों की ध्वन्यात्मकता प्रशंसनीय है, जो चित्रभाषा के रूप में अपने भावों को अपनी ही ध्वनि में आँखों के सामने चित्रित करती है -

1. प्रस्तुत शोध प्रबन्ध, षष्ठ अध्याय— मुहावरे एवं कहावतें

2. पार्श्वपुराण कलकत्ता, अधिकार 1, पृष्ठ 8

3. पार्श्वपुराण कलकत्ता, अधिकार 7, पृष्ठ 61

4. पार्श्वपुराण कलकत्ता, अधिकार 8, पृष्ठ 67

किलकिलत वेताल, काल कज्जल छवि सज्जहि ।
 भौ कराल विकराल, भाल मदगज जिमि गज्जहि ॥
 मुंडमाल गल धरहि, लाल लोचन निझरहि जन ।
 मुख फुलिंग फंकरहि करहि, निर्दय धुनि हन हन ॥ ¹

संज्ञा - भूधरदास द्वारा रचित विभिन्न रचनाओं में प्रयुक्त तत्सम, तद्भव, देशज और विदेशी शब्दों का विवरण देते हुए अनेक संज्ञा शब्दों का उल्लेख किया जा चुका है । ²

सर्वनाम - भूधरसाहित्य में प्रयुक्त सर्वनामों का स्वरूप प्रायः ब्रजभाषा का है, किन्तु कतिपय सर्वनाम शब्दों का स्वरूप आधुनिक खड़ी बोली का भी व्यवहृत हुआ है । उदाहरणार्थ - कर्म व सम्प्रदान में ब्रज के “मोहि, मुहि, तोहि, तुहि” आदि रूपों के साथ खड़ी बोली के “मुझको, मोंकू तोंकू” आदि रूप प्राप्त होते हैं । कहीं कहीं विशेषकर पद्य में “ताहि” भी दिखाई पड़ जाता है । “जिन्हें, तिन्हें, किन्हें” के स्थान पर जिनको, तिनको, किनको, प्रयोग में लाये गये हैं, जो ब्रजभाषा की अपेक्षा खड़ी बोली के अधिक निकट है ।

डॉ. उदयनारायण तिवारी ³ द्वारा ब्रजभाषा में प्रयोग आने वाले सर्वनामों के विवरण के साथ भूधरदास द्वारा प्रयुक्त सर्वनामों के तुलनात्मक अध्ययन से ज्ञात होता है कि दोनों में पर्याप्त समानता है । दोनों में ही बहुवचन के रूपों का प्रयोग प्रायः एकवचन में भी हुआ है । इसी प्रकार “व” के स्थान पर “ब” तथा “य” के स्थान पर “ज” की प्रवृत्ति भी दोनों में समान रूप से पाई जाती है । भूधरदास द्वारा प्रयुक्त सर्वनाम निम्नांकित हैं—

उत्तमपुरुष एकवचन - में, हों, मोहि, मो, मेरे, मुझको, मोंको, मेरो, मोंकू, मेरा, मेरी, मेरो, मेरां, मेरयो, हमारे, हमारे, हमारा ।

उत्तमपुरुष बहुवचन - हम, निज, अपने, हमको, हमकों, हमारा, हमारे, हमारो ।

मध्यमपुरुष एक वचन - तूँ, तू, तैं, तूने, तुम, ता, तोकूँ, तोहि, तेरो, तेरा, तेरे ।

मध्यमपुरुष बहुवचन - तुम, तुमको, तुमकों, तुमकूँ, तुम्हारा, तुमारे, तुमकौ, तुमकों ।

1. पार्श्वपुराण कलकता, अधिकार 8, पृष्ठ 68 2. प्रस्तुत शोध प्रबन्ध षष्ठ अध्याय

3. हिन्दी भाषा का उद्गम और विकास— डॉ. उदयनारायण तिवारी पृष्ठ 245

अन्य पुरुष एक वचन - सो, वा, वह, ता, तिस, जा, जे, जिस, इस, या, यहि, यहु, यह, जो, जिहि, कोउ, कोऊ, ताको, ताकों, ताहि, जाको, जाको, जाका, याको, ताकूं, ताका, ताके, ताकी, ताकै, जाका, जाकै, जाकी, जाकै, याका, याके, याकी, याके, याकै, वाकै ।

अन्य पुरुष बहुवचन - तैं, तेई, तिन, तिनि, जैं, वे, इन, उन, ए, केई, सर्व, सब, तिन्हें, त्यों, तिनको, बा, बिन, उनहीं, ये, इन, इह, येही, यातें, इहु, यहैं, एते, जिनको, जिनकों, तिनको, तिनकौ, तिनिको, इनको, सबनिकूं, सबकूं, तिनका, तिनिका, तिनिकै, जिनका, जिनकै, जिनकै, इनका, इनकै, उनका, उनकी, उनकै, सबका, सबनिका ।

कारक एवं विभक्तियाँ - हिन्दी की व्याकरण की दृष्टि से मीमांसा करने वाले ग्रन्थों में कारक और विभक्ति के सम्बन्ध में बहुत भ्रम है । कारक और विभक्ति दो अलग-अलग चीजें हैं । कारकों का सम्बन्ध क्रिया से है । वाक्य में प्रयुक्त विभिन्न पदों का क्रिया से जो सम्बन्ध है, उसे कारक कहते हैं । इन प्रयुक्त पदों का आपसी सम्बन्ध भी क्रिया के माध्यम से होता है, उनका क्रिया से निरपेक्ष स्वतन्त्र सम्बन्ध नहीं होता । इस प्रकार वाक्य रचना की प्रक्रिया में कारक एक पद का दूसरे पद से सम्बन्धतत्त्व का बोधक है अर्थात् वह यह बताता है कि वाक्य में एक पद का दूसरे पद से क्या सम्बन्ध है । भाषा में इस सम्बन्ध को बताने वाली व्यवस्था विभक्ति कहलाती है । अर्थात् जिन प्रत्ययों या शब्दों से इस सम्बन्ध की पहिचान होती है, उसे विभक्ति कहते हैं । इस प्रकार विभक्ति भाषा सम्बन्धी व्यवस्था है । पाणिनी ने सात विभक्तियाँ और छह कारक माने हैं, इसमें एक-एक कारक के लिए एक-एक विभक्तियाँ सुनिश्चित कर दी गई हैं ।

कर्ता - प्रथमा, कर्म-द्वितीया, करण-तृतीया

सम्प्रदान - चतुर्थी, उपादान-पंचमी, अधिकरण-सप्तमी

षष्ठी के सम्बन्ध में उनका स्पष्ट निर्देश है "शेषे षष्ठी" ।

सम्बन्ध को बताने के अतिरिक्त दूसरे कारकों को बताने के लिए भी षष्ठी का प्रयोग किया जा सकता है । शेषे षष्ठी का अभिप्राय यही है, परन्तु हिन्दी के व्याकरण में सम्बन्ध को कारक मान लिया गया और उसके लिए षष्ठी विभक्ति सुनिश्चित कर दी गई । इसी प्रकार सम्बोधन को भी एक विभक्ति दी जाती है, जो कि वास्तव में गलत है, जहाँ तक कारकों के ऐतिहासिक विकास

का सम्बन्ध है, कारकों की स्थिति प्रत्येक भाषा में अपरिवर्तनशील है; क्योंकि उनका सम्बन्ध वाक्यों में प्रयुक्त पदों की विवक्षा से है। हाँ, इस विवक्षा को बताने वाली भाषायी व्यवस्था में विनिमय या परिवर्तन सम्भव है। उदाहरण के लिए जब हम कहते हैं कि संस्कृत के बाद प्राकृत में, अपभ्रंश में कर्ता, कर्म और सम्बन्ध की विभक्तियों का लोप हो गया, कारक तो ज्यों के त्यों है, हाँ, उनकी सूचक विभक्तियों के प्रत्ययों का लोप हो गया अर्थात् बिना भाषा सम्बन्धी प्रत्ययों के ही उनके कारक तत्त्व का प्रत्यय ज्ञान हो जाता है।

1. कर्ता कारक :- भूधर साहित्य में कर्ता कारक के आधुनिक प्रयोग की भांति “ने” चिह्न का होना तथा न होना - दोनों ही स्थितियाँ उपलब्ध होती हैं। यथा -

“किधौं स्वर्ग ने भूमि को भेजी भेंट अनूप।”¹

“कबही मुख पंकज तोरी देई”²

2. कर्म कारक :- कर्मकारक के प्रयोग में को, कौं, पै, कै, सो, प्रत्ययों का प्रयोग मिलता है तथा नहीं भी मिलता है। उदाहरणार्थ - पुरुष को³, मुखकै⁴, कलौस लगाई⁵, काहू सों⁶, तिनको यह,⁷ उस मारग मत जाय रे⁸, शक्ति भक्ति बल कविन पै⁹।

3. कारण कारक - करण कारक के प्रयोग “सौ” प्रत्यय से युक्त पाये जाते हैं तथा यत्र तत्र इस नियम के अपवाद भी द्रष्टव्य हैं यथा - सुधारस सौ¹⁰, भागां मिलग्या¹⁰।

4. सम्प्रदान कारक :- सम्प्रदान कारक में कौं, सौं, काँ आदि चिह्नों का प्रयोग पाया जाता है। यथा - “कंचन कांच बराबर जिनकै।”¹¹ “परमाद चोर टालन निमित्त”¹²।

5. अपादान कारक :- अपादान कारक में सों, तें, चिह्न पाये जाते हैं। यथा - तुम त्रिभुवनपति कर्म ते क्यो न छुडावो मोहि अंतक सों न छूटें।¹³

1. पार्श्वपुराण पृष्ठ 4

2. पार्श्वपुराण पृष्ठ 9

3. पार्श्वपुराण पृष्ठ 42

4. पार्श्वपुराण पृष्ठ 6

5. जैन शतक छन्द 6

6. जैन शतक छन्द 6

7. भूधरविलास पद 21

8. पार्श्वपुराण पृष्ठ 3

9. भूधरविलास पद 39

10. भूधरविलास पद 12

11. भूधरविलास पद 51

12. पार्श्वपुराण पृष्ठ 12

13. भूधरविलास पद 64

6. सम्बन्ध कारक :- इस कारक के चिह्न का, की, के, कै, कौ, हैं, जिनका कवि द्वारा सर्वत्र ही प्रयोग किया गया है। किसी-किसी स्थान पर अपवाद भी मिलते हैं यथा-

सूरज मंडल की उनहार,¹

सोहें सफल साल के खेत², तिस भूपति के विप्र सुजान³,

7. अधिकरण कारक :- अधिकरण कारक के चिह्न मांहि में, मैं, पै, पर-भूधर साहित्य सर्वत्र ही प्राप्त होते हैं। कभी-कभी सप्तमी विभक्ति का प्रयोग शब्द पर एऐ की मात्रा लगी हुई मिलती है। तथा विधै शब्द भी पाया जाता है। यथा -

शिला सहोदर शीश पै,⁴ जिन पद पींजरे बसि,⁵ कटि पै हाथ⁶, कानन में⁷, किकर पर कीजै दया⁸, भांगा मिलि गया वेदे मगै-जी⁹, आनन्द भरि नगर में दई¹⁰, मत खेद हिये कछुआने¹¹, दुर्जन और श्लेष्मा ये समान जगमाहि¹², धर्म धर्म के फल विधै¹³।

8. सम्बोधन कारक :- सम्बोधन कारक के लिए भूधर-साहित्य में ऐ, रे, रे, अरे, वीर, वीरा, हे, री, भो, भाई इत्यादि शब्दों का प्रयोग हुआ है। इस प्रकार के सम्बोधन में नीतिपरक एवं भक्तिपूर्ण चर्चा हुई है। किसी-किसी स्थान पर संज्ञा शब्द के अन्तिम वर्ण पर "ओ" की मात्रा बढ़ाकर सम्बोधन कारक का विधान किया गया है। यथा - ऐसे मेरे वीर। काहे होत है अधीर यामें¹⁴, अरे अंध सब धंध जानि स्वारथ के संगी,¹⁵ देख्यौं री कहि नेमि कुमार¹⁶, भो बान्धव तो उर गम्भीर¹⁷, आयो रे बुढ़ापा मानी¹⁸, अन्तर उज्जवल करना रे भाई¹⁹।

1. पार्श्वपुराण पृष्ठ 40

3. पार्श्वपुराण पृष्ठ 4

5. भूधरविलास पद 16

7. जैनशतक छन्द 55

9. भूधरविलास पद 12

11. पार्श्वपुराण पृष्ठ 6

13. पार्श्वपुराण पृष्ठ 34

15. जैन शतक छन्द 11

17. पार्श्वपुराण पृष्ठ 7

2. पार्श्वपुराण पृष्ठ 41

4. पार्श्वपुराण पृष्ठ 7

6. पार्श्वपुराण पृष्ठ 39

8. भूधरविलास पद 48

10. पार्श्वपुराण पृष्ठ 3

12. पार्श्वपुराण पृष्ठ 7

14. जैन शतक छन्द 71

16. भूधरविलास पद 4

18. भूधरविलास पद 30

19. भूधरविलास पद 31

वीर धारी वान बुरी परी रे ¹

देखौ गरब गहेली री हेली, जादों पति की नारी ²,

क्रियापद :- भूधरसाहित्य में प्रयुक्त क्रियापद निम्नलिखित हैं -

वर्तमानकालिक क्रिया - करे है, तरे है, ठांडे है, वन्दों, कहों, प्रणमामि, नमते ।

भूतकालिक क्रिया :- दीनी, कीनी, लीनी, खोयो, रोयो, दियो, गयो भई, हुआ, आई, आया, पाई, पाया, भये, देख्या, पेख्या, हस्यौ, भज्यौ, मिल्यां ।

भविष्यत् कालिक :- मिलेगा, पावेगा, अवैया, पछतेहे, हेंगे, लेंगे, होवेगी, आदि है (भरेगा) परि है ।

आज्ञार्थक क्रियायें :- तज, भज, हाल, जोर, छोर, कीजें, लीजें, विचारों, सिधारों, विसारों, दीजिए, सुनु, सुनहु ।

संस्कृत के कृत्वा प्रत्यय से बने हुए क्रिया के रूपों को कवि द्वारा इ, य लगाकर बनाया गया है । जैसे - आइ, आय, धरि, मानि, जानि ।

अपभ्रंश समर्थित क्रियायें :- उत्थपइ, विरज्जहि, लज्जहि, करिज्जै, लिज्जै, मुच्चै, खण्डै, विहण्डै, सम्पपै, थप्यै, रूच्चै, विनट्टी, दिट्टी आदि ।

इस प्रकार की क्रियाओं का प्रयोग प्रायः छप्पय नामक छन्द के अन्तर्गत ही हुआ है ।

भूधर साहित्य में व्यवहृत क्रियाओं का रूप ब्रजभाषा खड़ीबोली तथा कन्नौजी से मिलता हुआ पाया जाता है तथापि विश्लेषण की दृष्टि से देखने पर प्रायः ब्रजभाषा का प्रभाव पदों में तथा खड़ी बोली की क्रियाओं का प्रभाव नीति सम्बन्धी कवित्त, सवैया, दोहा नामक छन्दों में पाया जाता है । बीच-बीच में अपभ्रंश समर्थित क्रियाओं का रूप भी व्यवहृत हुआ है ³ संस्कृत के विभक्ति युक्त रूप भी कतिपय क्रियाओं में परिलक्षित होते हैं ⁴ इस सभी क्रिया रूपों

1. भूधरविलास पद 32 2. भूधरविलास पद 26

3. जैन शतक छन्द 8, 48, 61, 67

4. 'प्रणमामि' तीन चौबीसी की जयमाला प्रकीर्ण पद भूधरदास

के अतिरिक्त कहीं-कहीं जैहे, जात आदि क्रियाओं में कन्नौजी का प्रभाव दृष्टव्य है।¹ उदाहरण के लिए नायक के जीते जैहे, भाजि²। भूधर साहित्य में संयुक्त क्रियाओं का भी प्रयोग हुआ है। इसप्रकार कवि का भाषा व्यवहार प्राचीनता और नवीनता का समन्वय करने वाला तथा विविध रूप वाला रहा है। दूसरे शब्दों में भूधरदास ने हिन्दी भाषा के समग्र रूपों के साथ-साथ संस्कृत, अपभ्रंश, अरबी-फारसी, उर्दू आदि के शब्दों एवं तत्सम्बन्धी क्रियाओं का व्याकरण संगत प्रयोग सफलतापूर्वक किया है। मुहावरे एवं लोकोक्तियों के सफल प्रयोग से भाषा और अधिक प्रभावी हो गई है।

कुल मिलाकर महाकवि भूधरदास की भाषा विषय को अनुकूल होकर भावप्रवणता व मनोरंजकता से युक्त है। उसमें सरसता, कोमलता, मधुरता, सुबोधता, मार्मिकता आदि गुण पाये जाते हैं। साथ ही बिल्वानुकूल प्रसाद, ओज व माधुर्यगुण का समावेश है। नाद-सौन्दर्य के साधन छन्द, तुक, गति, यति, लय आदि का सुन्दर तथा मुहावरे और लोकोक्तियों का सफल प्रयोग पाठक को मंत्र-मुग्ध कर देता है। इसप्रकार भूधरदास की भाषा सर्वत्र भाव एवं विषय के अनुकूल होकर प्रभावकारी बन पड़ी है।

(ख) छन्द विधान

भाव के अनुसार छन्द का व्यवहार कुशल कवि के द्वारा हुआ करता है। छन्द के बारे में श्री जगन्नाथ प्रसाद 'भानु' का कथन है कि—

मत, वरण, यति, गति नियम, अंतहि समता छन्द।

जो पद रचना में मिलें, भानु भगत् सुइ छन्द।

'भानु' भनत प्रति छन्द में, चरण होत हैं चार।

घट बड़ विसमनि छन्द में, कविजन लेत विचार।³

मात्रा, वर्ण की रचना, विराम, गति का नियम और चरणान्त में समता जिस वाक्य रचना में पाई जाती है; उसे छन्द कहते हैं। प्रत्येक छन्द में चार पद, पाद या चरण होते हैं, परन्तु विषम छन्दों में कोई नियम नहीं है।

1. भूधरविलास पद 41

2. चल्या जात है खसकरि, भूधरविलास पद 41

3. छन्द प्रभाकर- मंगलाचरण, जगन्नाथ प्रसाद 'भानु' पृष्ठ 4

छन्द दो प्रकार के होते हैं-वर्णिक एवं मात्रिक। मध्यकालीन कवियों ने दोनों प्रकार के छन्दों का प्रयोग किया है। भूधरदास ने भी वर्णिक और मात्रिक-दोनों प्रकार के छन्दों का प्रयोग किया है। वर्णिक छन्दों में चामर, मत्तगयन्द सवैया, दुर्मिल सवैया एवं मनहर कवित्त - इन चार छन्दों का तथा मात्रिक छन्दों में दोहा चौपाई, सोरठा, अडिल्ल, छप्पय, पद्धति, कुण्डलिया, आर्या, धत्ता, त्रिभंगी, हलाल, हरिगीतिका, रोला-इन तेरह छन्दों का प्रयोग हुआ है।

काव्य में अन्तर्निहित भावों की अभिव्यक्ति के लिए स्वर के आरोह व अवरोह की आवश्यकता होती है। भाषा की सजीव अभिव्यक्ति के लिए, नाद सौन्दर्य को उच्च, नम्र, समतल, विस्तृत और सरस बनाने के लिए अनुभूतियों व चिन्तन को प्रभावी बनाने के लिए, भाषा को लाक्षणिक बनाने हेतु एवं आत्मविभोर करने या होने के लिए छन्द योजना आवश्यक है।

भूधरदास द्वारा प्रयुक्त छन्दों का विवेचन क्रमशः निम्नलिखित है-

दोहा - यह एक अर्द्धछन्द है। संस्कृत में श्लोक और प्राकृत में गार्था के समान अपभ्रंश में दोहा होता है। दोहा अपभ्रंश का अपना छन्द है। जिसे आरम्भ में "देहा" कहा गया है। उसमें प्रथम व तृतीय चरण में 13-13 तथा द्वितीय व चतुर्थ चरण में 11-11 मात्राएँ होती हैं। हिन्दी तक आते-आते यह छन्द "दोहरा" "दोहा" आदि रूपों में व्यवहृत हुआ है। हिन्दी साहित्य में प्रबन्ध एवं मुक्तक दोनों ही प्रकार की रचनाओं में दोहा छन्द का उपयोग हुआ है। भूधरदास ने भी इस छन्द का प्रयोग प्रबन्ध एवं मुक्तक - दोनों ही रूपों में किया है। प्रबन्ध के रूप में "पार्श्वपुराण" में दोहा छन्द का प्रयोग चौपाइयों के बीच-बीच में परिलक्षित होता है। महाकाव्य पार्श्वपुराण में 411 छोहा छन्दों का प्रयोग हुआ है। जैनशतक में 22 दोहा छन्दों का तथा अविशिष्ट प्रकीर्ण साहित्य में 43 दोहा छन्दों का प्रयोग हुआ है। भूधर साहित्य में दोहा छन्द का प्रयोग हिन्दी की परम्परा के अनुसार ही हुआ है। भूधरदास ने दोहे का प्रयोग भक्ति, उपदेश, अध्यात्म, दर्शन आदि के वर्णन में किया है।

चौपाई - दोहा की भाँति चौपाई भी मात्रिक छन्द है।¹ इसमें 16 मात्राएँ होती हैं। इसका विकास प्राकृत एवं अपभ्रंश के 16 मात्रा वाले वर्णनात्मक छन्द से हुआ है।² चौपाई में 15 मात्राएँ तथा अन्य में गुरु लघु होता है।

हिन्दी साहित्य में प्राचीन समय से ही चौपाई छन्द का प्रयोग उपलब्ध है। भूधरदास ने चौपाई छन्द का प्रयोग प्रबन्ध एवं मुक्तक दोनों ही काव्य रूपों में किया है। कवि द्वारा पार्श्वपुराण में 934 तथा अवशिष्ट प्रकीर्ण साहित्य में 184 चौपाई छन्दों का प्रयोग हुआ है।

सोरठा - दोहा की भाँति सोरठा भी मात्रिक अर्द्धसम छन्द है। रचना की दृष्टि से सोरठा छन्द का उल्टा होता है। इसके प्रथम व तृतीय चरण में 11-11 तथा द्वितीय व चतुर्थ चरण में 13-13 मात्राएँ होती हैं। "प्राकृत पेंगलम्" में सोरठा को "अपभ्रंश सोरठा" कहा गया है।³

हिन्दी साहित्य में सोरठा छन्द का व्यवहार प्रबन्ध एवं मुक्तक दोनों काव्यरूपों में उपलब्ध है। सोरठा छन्द पार्श्वपुराण में 28 बार, जैन शतक में 2 बार तथा प्रकीर्ण साहित्य में 4 बार प्रयुक्त हुआ है। भूधरदास के साहित्य में सोरठा छन्द परम्परानुसार ही प्रयुक्त हुआ है।

छप्पय - छप्पय संयुक्त मात्रिक विषम छन्द है।⁴ इसमें 6 पद तथा 148 मात्राएँ होती हैं। प्रायः इसका प्रयोग वीर रस में होता है, परन्तु भूधरदास ने इसका प्रयोग अन्य रसों में भी विषयानुसार किया है। कविवर भूधरदास द्वारा प्रबन्ध एवं मुक्तक दोनों ही काव्यरूपों में छप्पय छन्द का प्रयोग किया गया है। पार्श्वपुराण में छप्पय छन्द का प्रयोग 13 बार, जैन शतक में 13 बार तथा प्रकीर्ण साहित्य में 10 बार उपलब्ध है। कवि ने इस छन्द का प्रयोग परम्परा के विरुद्ध शान्त रस में भी किया है, किन्तु वहाँ भी शैली में ओज एवं प्रवाह छप्पय की अपनी प्रकृति के अनुसार ही परिलक्षित होता है।⁵ छप्पय छन्दों

1. छन्द प्रभाकर, जगन्नाथप्रसाद 'भानु' पृष्ठ 49

2. हिन्दी साहित्य कोश भाग 1 सम्पादक डॉ. धीरेन्द्र वर्मा पृष्ठ 320

3. प्राकृत पेंगलम् 1:70, सम्पादक डॉ. भोलाशंकर व्यास भाग 1 सन् 1959

4. हिन्दी साहित्य कोश भाग 1 सम्पादक डॉ. धीरेन्द्र वर्मा पृष्ठ 323

5. जैन शतक छन्द 8 तथा पार्श्वपुराण पृष्ठ 1 (भानुतिलक)

में कवि ने प्रायः अपभ्रंश की प्रकृति वाली विरज्जहिं, लज्जहिं, करिज्जै, लिज्जै, दज्जै, अरुज्जै, समपै, थपै, रुपै, मुच्चै आदि क्रियाओं का प्रयोग किया है।

अडिल्ल - अडिल्ल मात्रिक सम छन्द है।¹ अडिल्ल छन्द का प्रयोग वीररस एवं सामान्य इतिवृत्तात्मक प्रकरणों में हुआ है। भूधरदासकृत प्रबन्ध एवं मुक्तक प्रकीर्ण साहित्य दोनों ही रूपों में इसका प्रयोग हुआ है। कविकृत पार्श्वपुराण में 9 बार प्रकीर्ण साहित्य में केवल 1 बार इसका प्रयोग हुआ है। कवि ने अडिल्ल छन्द का प्रयोग नरक वर्णन, स्वर्ग वर्णन, बाबीस परीषह आदि वर्णनात्मक स्थलों पर तथा कथा को गति देने के लिए किया है।

पद्धड़ी - यह मात्रिक सम छन्द है। अपभ्रंश साहित्य में सामान्य वर्णन में इसका प्रयोग किया गया है। हिन्दी में चारण कवियों ने सामान्य वर्णन की परम्परा को गौण रखकर युद्धवर्णन एवं वीररस के वर्णन के लिए इसका प्रयोग किया है। पार्श्वपुराण में यह 74 बार प्रयुक्त हुआ है। कवि ने इसके प्रयोग में हिन्दी की परम्परा का निर्वाह न करते हुए अपभ्रंश की सामान्य परम्परा का पालन किया है। पार्श्वपुराण में प्रकृति वर्णन, सोलह स्वप्न, जन्म कल्याणक, संवरतत्त्व कथन आदि का वर्णन पद्धड़ी छन्द में किया गया है।

कुण्डलिया - यह एक मात्रिक छन्द है।² यह छन्द अपभ्रंश से लेकर आज तक हिन्दी में व्यवहृत होता रहा है। हिन्दी साहित्य के रीति काल में भक्त एवं नीतिवेत्ता कवियों द्वारा कुण्डलिया छन्द का सर्वाधिक व्यवहार हुआ है। भूधरदास के प्रकीर्ण साहित्य में केवल एक बार कुण्डलिया छन्द का व्यवहार हुआ है।³

1. हिन्दी विश्वकोश - सम्पादक डॉ. नगेन्द्र पृष्ठ 170 कलकत्ता

2. छन्द प्रभाकर - जगन्नाथ प्रसाद 'भानु' पृष्ठ 95 दशम संस्करण

3. पैसा दश प्रमाण कन यह तेरा सब ओर

तिस कारण दुख की कथा कहत न आवै ओर।

कहत न आवै ओर न भोर ठठि वही खराबी

हा हा करत विहाय जाय तिसना नहिं दावी

एक पलक नहिं चैन रे ना सुपना थी पैसा

यों ही हीरा जनम जाय तित अंजुलि पैसा। गुटका 6766 बीकानेर।

आर्या - आर्या छन्द भाषा का शुद्ध मात्रिक छन्द है।

आर्या छन्द का संस्कृत भाषा में प्रचुर प्रयोग रहा है। कवि साहित्य में इस छन्द का अत्यल्प व्यवहार परिलक्षित होता है। कवि द्वारा पार्श्वपुराण में दो बार उद्धरण हेतु आर्या छन्द का प्रयोग किया है। चर्चा समाधान में भी कई बार आर्या छन्दों के उद्धरण दिये गये हैं।

धत्ता - धत्ता मात्रिक अद्वयसम छन्द है।¹ यह अपभ्रंश का बहुत व्यवहृत छन्द रहा है। हिन्दी साहित्य में भी विरलता के साथ धत्ता छन्द का प्रयोग उपलब्ध होता है। भूधरदास ने "पंचमेरु की आरती" नामक फुटकर रचना में धत्ता छन्द का दो बार प्रयोग किया है।²

त्रिभंगी - त्रिभंगी मात्रिक सम छन्द का एक भेद है।³

इसका व्यवहार अपभ्रंश काल से ही रहा है। हिन्दी में तुलसी, केशव, घनानन्द आदि ने त्रिभंगी छन्द का प्रयोग किया है। प्रार्थनापरक एवं स्तुतिपरक भावों की अभिव्यक्ति के लिए त्रिभंगी छन्द का प्रयोग मुख्यतः हुआ है। वीर काव्यों में वीर रस के साथ उसके सहकारी रसों-रौद्र तथा वीरभक्त्य में भी यह छन्द प्रयुक्त हुआ है। भूधरदास के दो अष्टक त्रिभंगी छन्द में लिखे हैं; जिनमें प्रार्थना एवं स्तुतिपरक भावों की अभिव्यक्ति हुई है।⁴

हंसाल - हंसाल सममात्रिक दण्डक का एक भेद है।⁵

हंसाल, करखा और झूलना समान मात्रा वाले छन्द हैं। छन्द का निर्णय यति स्थान से कसौटी पर कसने से किया जाता है।⁶ मध्यकालीन निर्गुनिये सन्तों

1. हिन्दी साहित्य कोश भाग 1 सम्पादक डॉ. धीरेन्द्र वर्मा पृष्ठ 310

2. पंचमेरु की आरती, गुटका नं. 6766 बीकानेर

3. छन्द प्रभाकर - जगन्नाथ प्रसाद 'भानु' पृष्ठ 72 दशम संस्करण

4. अष्टक नेमिनाथ के प्रकीर्ण गुटका 6766 बीकानेर। नेमिनाथ अष्टक प्रकीर्ण

हस्तलिखित गुटका नम्बर 108 के पत्र 116 पर अंकित, आमेर शास्त्र भण्डार, जयपुर।

5. छन्द प्रभाकर - जगन्नाथ प्रसाद 'भानु' पृष्ठ 76 दशम संस्करण

6. सूर साहित्य का छन्द : शास्त्रीय अध्ययन डॉ. गौरीशंकर मिश्र "द्विजेन्द्र" प्रथम संस्करण पृष्ठ 271-72 सन् 1966।

के काव्य में हंसाल छन्द का प्रचलन रहा है। कबीर, रैदास, नानक, दादूदयाल, हरिदास निरंजनी आदि द्वारा हंसाल एवं करखा छन्द का प्रयोग हुआ है। शृंगारादि कोमल भावों की अभिव्यक्ति के लिए करखा और झूलना का तथा वीर और ध्यानक भावों की अभिव्यक्ति के लिए हंसाल का प्रयोग होता रहा है। कभी-कभी हंसाल का प्रयोग शृंगारपरक पदों में भी उपलब्ध होता है। भूधरदास द्वारा केवल एक “हंसाल” छन्द का प्रयोग “झूलना” के नाम से हुआ है।¹ जिसका छन्द निर्णय यहाँ यति स्थान 20-17 को दृष्टि में रखकर किया गया है। इसमें कवि द्वारा भक्तिपूर्ण कोमल भावों की अभिव्यक्ति हुई है।

हरिगीतिका - हरिगीतिका मात्रिक समछन्द का एकभेद है।² इसमें 16-12 के विश्राम से 28 मात्राएँ होती हैं। हिन्दी साहित्य के कवियों ने हरिगीतिका छन्द के प्रयोग में स्वतंत्रता बरती है और अपनी इच्छानुसार प्रयोग किया है।³ इस छन्द का व्यवहार सभी रसों में समान रूप से हो सकता है। भूधरसाहित्य में हरिगीतिका छन्द का प्रयोग प्रबन्ध और मुक्तक दोनों ही प्रकार के काव्य में उपलब्ध है। इस छन्द का “हरिगीत” तथा “गीता” नाम से 16 बार पार्श्वपुराण में और “गीतिका” नाम से केवल एक बार जैनशतक में प्रयोग हुआ है। कवि द्वारा इस छन्द का प्रयोग सामान्य वर्णन के लिए शान्त रस की अभिव्यक्ति में हुआ है।

रोला - रोला मात्रिक समछन्द है।⁴ इसमें 11-13 के विश्राम से 24 मात्राएँ होता है। हिन्दी साहित्य में इसका प्रयोग सूर, चन्दवरदाई, नन्ददास, केशव सूदन, आदि अनेक कवियों ने किया है। यह छन्द प्रत्येक रस की अभिव्यक्ति के लिए उपयुक्त हो सकता है; क्योंकि इस छन्द में वर्णन क्षमता की तीव्रता है।

1. भया पूत प्रिय कारिणी मायजी के किंधो लोक के चन्दने जनम लीया ॥

इन्द्र चन्द्र नागेन्द्र के नेन आछे जीये जीव पंछी तिने प्रेम दीया

गया पाप संताप सब आप हीते सकल शिष्टि घापी सुधा पान पीया

भूधरमल्ल से दास की आस पूर्ण मेरे चित्त आकास में वास कीया ॥

गुटका प्रकीर्ण 6766 बीकानेर

2. छन्द प्रभाकर - जगन्नाथ प्रसाद ‘भानु’ पृष्ठ 67

3. हिन्दी साहित्य कोश भाग 1 सम्पादक डॉ. धीरेन्द्र वर्मा पृष्ठ 61

4. छन्द प्रभाकर - जगन्नाथ प्रसाद ‘भानु’ पृष्ठ 61

भूधरदास ने अपने प्रकीर्ण साहित्य में 26 बार रोला छन्द का प्रयोग किया है। इस छन्द में कवि ने एकीभाव से भगवान् जिनेन्द्र की स्तुति की है।¹

चामर - चामर वर्णिक समवृत्त का एक भेद है। हिन्दी साहित्य में इसका व्यवहार होता रहा है। भूधरदास ने पार्श्वपुराण में केवल एक बार इस छन्द का प्रयोग किया है।²

मत्तगन्द सवैया - यह वर्णिक वृत्त के भगणाश्रित वर्ग का एक भेद है।³ इसमें 23 वर्ण होते हैं। यह छन्द हिन्दी साहित्य के रीतिकाल में अपनी लयचारुता एवं ध्वन्यात्मकता के लिये विख्यात रहा है। भूधरदास ने वर्णवृत्त मत्तगन्द सवैया का प्रयोग प्रबन्ध और मुक्तक दोनों प्रकार के काव्यरूपों में किया है। पार्श्वपुराण में 3 बार, एवं जैनशतक में 24 बार इसका प्रयोग हुआ है। कवि ने इसका प्रयोग स्तुति एवं आचारपरकादि भावों की अभिव्यक्ति के लिए किया है।

दुर्मिल सवैया - दुर्मिल सवैया सवैया छन्द का एक सगणाश्रित भेद है।⁴ इसका प्रयोग भूधरदास ने मत्तगन्द की अपेक्षा कम किया है। भूधरदास साहित्य में दुर्मिल सवैया का प्रयोग आचारपरक छन्दों में भक्तिपूर्ण अभिव्यक्ति के लिए अतिसुघड़ता के साथ हुआ है। कवि ने जैनशतक में 6 बार तथा प्रकीर्ण साहित्य में 2 बार इसका प्रयोग किया है।

मनहर कवित्त - मनहर कवित्त 21 वर्णमाला वर्णिक छन्द है।⁵ इसे सामान्यतः दण्डक या वृत्त भी कहते हैं। यह ब्रजभाषा का प्रिय छन्द है। तुलसी, सूर, केशव आदि ने भी इस छन्द का प्रयोग किया है। रीतिकाल में साहित्य का सारा वैभव मनहर कवित्त पर ही आधारित है। इस छन्द द्वारा सभी रसों की सफल अभिव्यक्ति की जा सकती है। मनहर कवित्त मुक्तक की विशेषता

1. एकीभाव स्तोत्र भाषा।

2. पार्श्वपुराण पृष्ठ 23

3. हिन्दी साहित्य कोश भाग 1 पृष्ठ - 897 द्वितीय संस्करण

4. हिन्दी साहित्य कोश भाग 1 सम्पादक डॉ. धीरेन्द्र वर्मा पृष्ठ - 897 द्वितीय संस्करण

5. वही पृष्ठ 613

है। अध्यात्म और भक्ति में इसका सफल प्रयोग हुआ है। साथ ही भूधरदास द्वारा यह छन्द सामान्य वर्णन में शांत रस की अभिव्यक्ति के लिए भी प्रयुक्त हुआ है। कवि ने इसका प्रयोग प्रबन्ध और मुक्तक दोनों रूपों में किया है।

इसके अतिरिक्त भूधरसाहित्य में ऐसे छन्दों का भी उल्लेख मिलता है जो तत्कालीन प्रचलित राग और छन्दों के मिश्रित रूप कहे जा सकते हैं। ये छन्द हैं — चाल,¹ बेली चाल,² नरेन्द्र जोगीरासा,³ पामावती,⁴ ढाल,⁵ एवं कुसुमलता।⁶

कवि की छन्द योजना के बारे में श्री नेमिचन्द्र ज्योतिषाचार्य अपने ग्रन्थ “हिन्दी जैन साहित्य परिशीलन” पृष्ठ 161 पर लिखते हैं कि—“कवि भूधरदास के काव्य ग्रन्थों में छन्द वैचित्र्य का उपयोग सर्वत्र मिलेगा। इन्होंने सभी सुन्दर छन्दों का प्रयोग रसानुकूल किया है। वैराग्य निरूपण करने के लिए नरेन्द्र (जोगीरासा) छन्द को चुना है। इसमें अन्त में गुरुवर्ण पर जोर देने से सारी पंक्ति तरंगित हो जाती है।”

संगीत विधान विभिन्न राग - संगीत की परिभाषा देशी और विदेशी विद्वानों के उपन्यस्त की है। किसी के अनुसार संगीत ध्वनि के परिवेश में भावनाओं को व्यक्त करने का प्रयास है।⁷ तो किसी के अनुसार गीत वाद्य और नृत्य की त्रिवेणी संगीत है।⁸ यहाँ पर नृत्य वाद्य का अनुगमन करता है और वाद्य गीत के अनुसार प्रसारित हुआ करता है। इसप्रकार से नृत्य, वाद्य और

1. पार्श्वपुराण पृष्ठ 6

2. पार्श्वपुराण पृष्ठ 60

3. बज्रनाभि चक्रवर्ति की वैराग्य भावना — प्रकीर्ण तथा पार्श्वपुराण पृष्ठ 17-18

4. बाबीस परीषह - प्रकीर्ण तथा पार्श्वपुराण पृष्ठ 32 से 34 तक

5. जमोकर महातल की ढाल - प्रकीर्ण तथा पार्श्वपुराण पृष्ठ 82

6. पार्श्वपुराण पृष्ठ 35

7. ए हिस्ट्री ऑफ़ म्यूजिक - पर्सी सी. बक पृष्ठ 12 द्वितीय संस्करण

8. ‘गीत वाद्य तथा नृत्य त्रय संगीतमुच्यते’ संगीत रत्नाकर, श्री सारंगदेव, पृष्ठ 6 आनन्द आश्रम संगीत ग्रंथावली, ग्रंथांक 35 सन् 1876

गीत की साणि में गीत की प्रधानता समुपस्थित हो जाती है।¹

गीत में विभिन्न रागों का प्रयोग होता है। राग स्वर वर्णों से विभूषित वह ध्वनि विशेष है, जो लोगों के चित्त का अनुरंजन करती है।² रागों के गायन वादन के लिए समय निर्धारित है। वैसे गायक के स्वर चातुर्य से एक स्वर विशेष का राग दूसरे समय में भी गाया जा सकता है। उसमें भेद केवल सप्तक के स्वर पर बल देने का ही रहता है। फिर भी समय के अनुसार रागों को स्थूल रूप से निम्नलिखित तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है।

1 कोमल रे ध वाले भाग - समय प्रातः 4 से 7 बजे तक

2 शुद्ध रे ध वाले राग - दिन एवं रात्रि 7 से 11 बजे तक

3 कोमल ग नि वाले राग - समय दिन एवं रात्रि 11 से 4 बजे तक

1. कोमल रे ध वाले राग - कोमल रे ध वाले भाग के गाने का समय प्रातः 4 बजे से 7 बजे तक का है। इन रागों में उत्तरांग प्रबल होगा तथा शुद्ध मध्यम का बाहुल्य होगा। जैसे प्रभाती, बंगाला, भैरव, भैरवी, रामकली, पंचम और कालंगा। कालंगा इन्हीं स्वरों के रागों में यदि पूर्वांग अथवा तीव्र मध्यम को प्रबल कर दिया जाय तो ये सायं 4 से 7 बजे तक गाये जाने वाले राग हो जायेंगे। यथा गौरी, श्री गौरी घनाश्री इत्यादि।

2. शुद्ध रे ध वाले राग- कोमल रे ध वाले रागों का समय समाप्त हो जाने के बाद दिन के 7 बजे से 11 बजे और रात्रि में 7 बजे से 11 बजे तक शुद्ध रे ध वाले रागों का गायन वादन होता है। उस समय दिन में निर्धारित समय में गाये जाने वाले राग नट, विहाग, कल्याण इत्यादि हैं।

3. कोमल ग नि वाले राग - शुद्ध रे ध वाले रागों के समय के पश्चात् गाये जाने वाले रागों में कोमल ग नि वाले राग आते हैं। उनका समय दिन के 11 बजे से शाम 4 बजे तक और इसीप्रकार रात्रि के 11 से प्रातः 4 बजे तक है। इसप्रकार के रागों में पूर्वांग और उत्तरांग के क्रमशः प्रबल और दुर्बल

1. 'नृत्यं वद्वानुगं प्रोक्तं वाद्यं गीतानुवृत्ति च' वही पृष्ठ

2. सोऽयं ध्वनि विशेषस्तु स्वरवर्ण विभूषितः।

रंजको जन वित्तानां सः रागः कथितो बुधः॥

अभिनव राग मंजरी पण्डित विष्णुशर्मा पृष्ठ 8 सन् 1921 बम्बई।

करने से राग भेद भी हो जाते हैं। दिन के 11 बजे से 4 बजे तक गाये जाने वाले रागों में सारंग, बरवा, पीलू इत्यादि हैं। रात्रि के उक्त निर्धारित समय में गाये जाने वाले रागों में सोरठा, काफी कान्हड़ा इत्यादि रहेंगे।

इसके अतिरिक्त कुछ राग ऋतु विशेष से सम्बन्धित भी होते हैं। यथा- मलार था मल्हार।

भूधर साहित्य में प्रयुक्त रागों का विवरण निम्नानुसार है-

क्रम	अकारादि क्रम से राग	कितनी बार और कहाँ प्रयुक्त हुए हैं	कुल प्रयोग	राग की प्रकृति और उसके गाने का समय
1.	कल्याण	भूधरविलास 1	1	शुद्ध रे ध वाला राग, समय रात्रि का प्रथम प्रहर
2.	काफी	भूधरविलास 3 प्रकीर्ण 1	4	कोमल ग नि वाला राग समय रात 11 बजे से प्रातः 4 बजे तक
3.	कान्हड़ी	भूधरविलास 1	1	कोमल ग नि वाला राग समय रात 11 बजे से प्रातः 4 बजे तक
4.	काफी कान्हड़ी	प्रकीर्ण 1	1	कोमल ग नि वाला राग समय रात 11 बजे से प्रातः 4 बजे तक
5.	गौरी	भूधरविलास 1 प्रकीर्ण पदों में 2	3	कोमल रे ध वाला राग समय सायं 4 से प्रातः 7 बजे तक

6.	घनाश्री (घनासरी)	भूधरविलास में 3 प्रकीर्ण में 1	4	कोमल रे ध वाला राग, समय सायं 4 से 7 बजे तक
7.	नट	भूधरविलास 1	1	शुद्ध रे ध वाला राग समय 7 बजे से रात 11 बजे
8.	पंचम	भूधरविलास 1 प्रकीर्ण 1	2	कोमल रे ध वाला राग समय प्रातः 4 से 7
9.	प्रभाती	भूधरविलास 1 प्रकीर्ण 1	2	कोमल रे ध वाला राग समय प्रातः 4 से 7
10.	पीलू	प्रकीर्ण 1	1	कोमल ग नि वाला राग दिन के 11 बजे से 4 बजे
11.	बंगाला	भूधरविलास 2	2	कोमल रे ध वाला राग समय प्रातः 4 से 7 बजे
12.	बरवा (कवि ने उसका नाम ख्याल बरवा दिया है)	भूधरविलास में 1 प्रकीर्ण में 2	3	कोमल ग नि वाला राग समय 11 बजे से 4 बजे तक
13.	बिलावल	भूधरविलास 2	2	शुद्ध रे ध वाला राग समय प्रातः 4 से 7 बजे
14.	भैरवी	प्रकीर्ण 1	1	कोमल रे ध वाला राग समय प्रातः 4 से 7
15.	भैरों (भैरव)	प्रकीर्ण 1	1	कोमल रे ध वाला राग समय प्रातः 4 से 7 बजे
16.	मलार (मल्हार)	भूधरविलास 2 प्रकीर्ण 1	3	ऋतु विशेष से सम्बन्धित पावस ऋतु

17. रामकली	प्रकीर्ण पदों में 1	1	कोमल रे ध वाला राग प्रातः 4 से 7 बजे
18. विहाग (विहागरा)	भूधरविलास 3 प्रकीर्ण 2	5	शुद्ध रे ध वाला राग समय 7 से 11 बजे रात
19. श्री गौरी	प्रकीर्ण पदों में 2	2	कोमल रे ध वाला राग समय सायं 4 से 7 बजे
20. सारंग	भूधरविलास 2	2	कोमल ग नि वाला राग समय 11 से 4 सायं तक
21. सोरठ	भूधरविलास में 14 प्रकीर्ण में 4	18	कोमल ग नि वाला राग समय रात्रि 11 बजे से प्रातः 4 बजे तक

इसके अतिरिक्त भूधरदास के पदों में प्रयुक्त अन्य राग ख्याल, गजल, रायसा, धमाल आदि के विश्लेषण से ये स्पष्ट होता है कि वस्तुतः ख्याल गायक की शैली विशेष है, राग नहीं है। इसीप्रकार गजल भी शैली विशेष है, जिसमें उर्दू भाषा की प्रेम सम्बन्धी कविता को गाया जाता है। रायसा लोक ध्वनि है, जो राजस्थान में गायी जाती है तथा धमाल धमार का बिगड़ा रूप है। धमार संगीत में एक ताल विशेष होती है। इस ताल विशेष के गीतों में राधा कृष्ण के होरी खेलने विषयक गीत रहते हैं, किन्तु भूधरदास के धमाल में इसप्रकार का कोई विवेचन उपलब्ध नहीं हुआ है। इसमें तो कवि ने अपने आराध्य की अन्य से महत्ता प्रदर्शित की है। भूधरदास के पदों के सम्पादक महोदय को संगीत के प्रति विशेष मोह रहा है। इसलिए उन्होंने ख्याल, गजल, रायसा, धमाल आदि के साथ भी राग शब्द का प्रयोग किया है जो वास्तव में उचित नहीं है।

(ग) अलंकार विधान

काव्य मानव की अन्तरात्मा को तृप्ति प्रदान करता है। काव्यगत सौन्दर्य के महत्वपूर्ण साधनों में गुण, रीति, अलंकार आदि आते हैं। प्रायः सभी काव्यशास्त्रियों ने अलंकार को काव्य का विशेष सौन्दर्यवर्धक तत्त्व स्वीकार किया है। अलंकारों के सम्यक् प्रयोग से भावाभिव्यक्ति में रमणीयता, कोमलता, सूक्ष्मता और तीव्रता आती है। सुन्दर भावों की सरस अभिव्यक्ति के लिए श्रेष्ठ अलंकारों की योजना आवश्यक है। "व्यावहारिक धरातल पर अलंकारों के द्वारा अपने कथन को कवि या लेखक श्रोता या पाठक के मन में भीतर तक बैठाने का प्रयत्न करता है। बात को बढ़ा-चढ़ा कर उसे मन का विस्तार करता है। बाह्य वैषम्य आदि का नियोजन कर आश्चर्य की उद्भावना करता है तथा बात को घुमा फिराकर चक्रता के साथ कहकर पाठक की जिज्ञासा को उद्दीप्त करता है।"

भूधरदास ने बलात् अलंकारों को लाने का प्रयास नहीं किया, अपितु उनकी रचनाओं में अलंकार स्वभावतः आ गये हैं। भूधरदास सहित प्रायः सभी जैन कवियों ने भावगत सौन्दर्य को अक्षुण्ण रखते हुए स्वाभाविक रूप से अलंकारों का प्रयोग किया है। इस सम्बन्ध में श्री नेमिचन्द्र ज्योतिषाचार्य लिखते हैं कि—“हिन्दी जैन कवियों की कविता कामिनी अनाड़ी राजकुलांगना के समान न तो अधिक अलंकारों के बोझ से दबी है और न ग्राम्यबाला के समान निराभरणा ही है। इसमें नागरिक रमणियों के समान सुन्दर उपयुक्त अलंकारों का समावेश किया गया है।”²

“भूधरसाहित्य” में प्रायः सभी प्रमुख अलंकारों का प्रयोग हुआ है परन्तु उनमें भी अनुप्रास, पुनरुक्ति प्रकाश, यमक, उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, विनोक्ति, विभावना, दृष्टान्त, उदाहरण आदि अलंकारों का साभिप्राय सहज और कलापूर्ण व्यवहार हुआ है। इनका विस्तृत विवेचन निम्नलिखित है—

1. हिन्दी जैन साहित्य परिशीलन - श्री नेमिचन्द्र ज्योतिषाचार्य, पृष्ठ 237

2. वही पृष्ठ 163

अनुप्रास - कविता में ध्वन्यात्मकता और संगीतात्मकता के लिए अनुप्रास अलंकार का प्रयोग हिन्दी में आरम्भ से ही हुआ है। कवित्तों और पदों की शैली में अनुप्रास अलंकार की छटा वस्तुतः दर्शनीय है। अलोच्य कवि भूधरदास ने भी कवित्तों, सवैयाओं और पदों में अनुप्रास का उपयोग स्वच्छन्तापूर्वक किया है। जिनवाणी और मिथ्यावाणी में तुलनात्मक विवेचन में अनुप्रास का व्यवहार द्रष्टव्य है।¹

पुनरुक्ति प्रकाश - भावोत्कर्ष और भाषा में शक्तिमत्ता की स्थापना के लिए कवि द्वारा पुनरुक्ति प्रकाश अलंकार का व्यवहार हुआ है। शब्दों की पुनरुक्ति तथा पदांशों की पुनरुक्ति का कवि द्वारा उपयोग हुआ है।²

यमक - शब्दालंकारों में यमयक अलंकार का बड़ा महत्वपूर्ण स्थान रहा है। इस अलंकार के व्यवहार में कवि की भावगत बारीकी तथा विचारगत बौद्धिक विलास के दर्शन सहज में ही हो जाते हैं। भक्ति भाव को व्यक्त करने में यमक का प्रयोग भूधरदास द्वारा हुआ है।³

उपमा - कवि द्वारा उपमा अलंकार के प्रयोग में नवीनता की स्थापना हुई है। उदाहरणार्थ-गर्भस्थ बाल भगवान की उपमा मोती से⁴, न्हीनसंस्कार के समय बाल पार्श्वकुमार की उपमा नीलाचल से तथा बुढ़ापे में बाल पकने तथा कषायों के बने रहने की बगुला से उपमा⁵ देकर अपने अभिप्रेत अर्थ को पूर्ण

1. जैनशतक छन्द 16

2. (अ) घोर वन घोर घरा चहु ओर डोरे ज्यों त्यों

चलत हिलोरें त्यों त्यों फेरि बल ये अरे ॥ जैनशतक भूधरदास छंद 13

(आ) या विधि संत कहे धनि हैं, धनि हैं जिन बैन बड़े उपकारी ॥

जैनशतक भूधरदास छंद 15

3.(अ) जनन जलधि जलज जल यान्...एक छन । जैनशतक छप्पय 8

(आ) कानन कहा सुनै यो कानन जोग लीन जिनराज खरे हैं । जैनशतक छंद 3

4. यथा सोप सम्पुट विषै मोती उपजै आन, त्यों ही निर्मल गर्भ में निराबाध भगवान ।

पार्श्वपुराण पृष्ठ 46

5. नीर वसन प्रभु देह पर कलश नीर छवि एम, नीचल सिर हेम के बादल बरसत जेम ।

पार्श्वपुराण पृष्ठ 52

6. सीस मयो बगुला सम सेत, रह्यो डर अंतर श्याम अजों ही । जैनशतक भूधरदास छन्द 31

अभिव्यक्ति प्रदान की है। इतना ही नहीं कवि मानव शरीर के उत्तरोत्तर परिवर्तन की समानता वृक्षों के पत्रों से करता है।¹ कवि धन-धौवन आदि की क्षणभंगुरता की तुलना इन्द्रधनुष की नश्वरता से करता है। ये सब इन्द्रधनुष के समान लुभावने, किन्तु क्षणस्थायी होते हैं।

रूपक - उपमा की भाँति कवि रूपक अलंकार के प्रयोग में नवीनता प्रदर्शित करता है। रीति काल में रूपक अलंकार के अन्तर्गत उपमान प्रायः रुढ़िगत व्यवहृत हुए हैं, किन्तु इस परम्परा में भूधरदास को परिगणित नहीं किया जा सकता। भूधरदास ने रूपक अलंकार में साभिप्राय मौलिक उपमानों का उपयोग किया है। काल को रहट, रात दिन को जल भरने वाली रहट की बाल्टियाँ और इस रहट को चलाने वाले सूरज-चन्द्रमा बैल हैं।² कवि का यह प्रयोग वस्तुतः अभिनव किन्तु भावाभिव्यक्ति के लिए अत्यन्त सशक्त है। इसके साथ ही कवि के काव्य का मूल स्वर भक्ति और वैराग्य पूर्ण होने के कारण हिन्दी भक्तिकालीन रूपकों की परम्परा ने कवि को प्रभावित किया है। भक्तिकालीन निर्गुण कवियों द्वारा व्यवहृत तोता, चरखा, ठगिनी आदि उपमानों का भूधरदास ने भी उपयोग किया है।³

कवि ने “वीर हिमाचल तैं निकसी” - जिनवाणी स्तुति में शारदा जिनवाणी को गंगा नदी का रूपक तथा “अब मेरे समकित सावन आयो” पद में सम्यक्त्व को सावन का रूपक देते हुए श्रेष्ठता का परिचय दिया है।

उत्प्रेक्षा - रूपक की तरह कवि ने उत्प्रेक्षाओं के प्रयोग में भी मौलिकता का परिचय दिया है। कवि द्वारा आकाश में उठते हुए काले घुएँ को पाप

1. बालक काया कूपल — पार्श्वपुराण पृष्ठ 28

2. रात दिवस घट माल सुभाव — पार्श्वपुराण पृष्ठ 28

3. (अ) मेरे मन सूवा, जिन पद पींजरे बसि, यार लाव न बाप रे।

तू क्यों निचिन्तो सदा तोको तकत काल मजार रे ॥ — भूधरविलास पद 5

(आ) चरखा चलता नाहिं, चरखा हुआ पुराना।

प्रकीर्ण पद तथा हिन्दी पद संग्रह कस्तूरचन्द कासलीवाल सन् 1965

(इ) सुनि ठगनि माया तैं सब जग ठग खाया।

जो इस ठगनि को ठग बैठे, मैं तिसको सिर नाया।

की¹, मुकुट मणियों की प्रतिछाया में भ्रमरों की² दुःखियों को सम्बल देने के अर्थ में भगवान की आजानुबाहु की³, तथा जिन भगवान के एक हजार आठ लक्षणों में कल्पतरु के पुष्पों की⁴, अनूठी कल्पनाएँ व्यवहृत हुई हैं। यहाँ पर जिन उत्प्रेक्षाओं का प्रयोग हुआ है, वे वस्तुतः रूढ़िगत हैं तथा उनसे कवि कथन में अनुप्रास चमत्कार भी परिलक्षित होता है यथा - देवगण भगवान के चरणों में अपना मस्तक झुका रहे हैं, मानों वे अपने कुकर्मों की रेखा मिटाना चाहते हैं।⁵ जन्माभिषेक के समय जल ऐसा लग रहा है, मानों निष्पाप होकर उर्ध्वगमन कर रहा हो।⁶ कुंकुमादि द्वारा बाल तीर्थंकर का लेपन ऐसा लग रहा है मानों नीलगिरि पर साँझ फूली हो।⁷ इसके अतिरिक्त कवि ने अन्य अनेक उत्प्रेक्षाएँ प्रकृति से ली हैं।⁸

विनोक्ति - जहाँ एक के बिना दूसरे के शोभित या अशोभित होने का वर्णन किया जाता है, वहाँ विनोक्ति अलंकार होता है। कवि द्वारा विनोक्ति अलंकार का प्रयोग दार्शनिक मान्यताओं की स्थापना के प्रसंग में सफलतापूर्वक हुआ है। इसके अन्तर्गत भूधरदास ने राग के बिना भोगों की हीनता का वर्णन किया है।⁹

विभावना - ईश्वरीय शक्ति का तालु ओष्ठ के बिना प्रभु द्वारा वाणी का खिरना वस्तुतः विभावना अलंकार का पुष्ट प्रयोग है।¹⁰

दृष्टान्त - जैन जगत में “नमोकार मंत्र” अथवा “नमस्कार मंत्र” का बड़ा ही महत्व रहा है। नमोकार मंत्र की महिमा स्थापित करने के लिए कवि ने अनेक

1. जैनशतक पद 1

2. जैनशतक पद 6

3. जैनशतक छन्द 1

4. पार्श्वपुराण अष्टम अधिकार पृष्ठ 68

5. जैनशतक छन्द 1

6. पार्श्वपुराण षष्ठ अधिकार पृष्ठ 52

7. वही पृष्ठ 52

8. पार्श्वपुराण अष्टम अधिकार पृष्ठ 71, 106

9. जैनशतक छन्द 18

10. पार्श्वपुराण, अधिकार 7

प्राचीन शास्त्रोक्त कथाओं का उपयोग दृष्टान्त अलंकार के रूप में किया है।¹ इसीप्रकार सप्त व्यसन की चर्चा करते हुए कवि द्वारा पाण्डव राजा, बक, जाम्बोगण, चारुदत्त, राजा ब्रह्मरत्न, शिवभूति ब्रह्मण तथा रावण का दृष्टान्त दिया गया है।²

उदाहरण अलंकार - नीतिपरक चर्चाओं में कवि द्वारा उदाहरण अलंकार का प्रयोग हुआ है। यह प्रयोग परम्परागत होते हुए भी यत्र - तत्र नवीनता के साथ अभिव्यक्त हुआ है। काचली, भुंजग, आक, जवासा आदि परम्परागत उदाहरण हैं और बूढ़ा बैल, दूब, खल, भैंस आदि के उदाहरण हिन्दी साहित्य में सर्वथा नवीन हैं।³ इन उदाहरणों द्वारा कवि का मूलोद्देश्य धार्मिक भावनाओं की अभिव्यक्ति करना है, न कि रीतिकालीन कला का प्रदर्शन करना।

भक्तिकालीन निर्गुण और सगुण भक्त कवियों की तरह भूधरदास में भी अलंकारों के प्रति आग्रह की बात नहीं दिखती। उन्होंने अपनी नैतिक, धार्मिक, जनोपयोगी आदि चर्चाओं में सहज रूप से अलंकारों का प्रयोग किया है। इन प्रयोगों में कवि ने प्रस्तुत से अप्रस्तुत एवं बाह्य से अंतस् को जोड़ा है। पूर्व प्रचलित हिन्दी जैन कवियों की परम्परा में भी कवि द्वारा अलंकारों का पर्याप्त प्रयोग किया गया है।

1. पदमरूप, सुलोचना, गंगादेवी, चारुदत्त, धरणेन्द्र, पद्मावती, सीता, चम्पापुर का ग्वाला, सेठ सुदर्शन, अंजन चोर, जीवक सेठ आदि नौकार महातम की ढाल प्रकीर्ण भूधरदास पद 50
2. जैनशतक छन्द 61
3. धर्म भार जब तन थकै, तब धरि सकै न कोय ।
थविर बैल, सो कहा बनै जो बोखर भारी होय ॥
जो खल कुवचन नहीं कहै तदपि बैर जिय संग ।
तजै कदाचित् कांचली, विष नहीं समत भुजंग ॥
जेठ मास में होत है द्दिरख बैल भुझाव ।
अपत आंक फूले तहां देखो नीच सुझाव ॥
सुनि रुचि नहिं बैठे रूठ सुझाव की चाल ।
छांड छावों भैंस कूं खल खाये खुसियाल ॥
प्रकीर्ण दोहे गुटका नं. 6766 बीकानेर

प्रतीक योजना

प्रत्येक भावुक कवि तीव्र रसानुभूति के लिए प्रतीक योजना का आश्रय लेता है। प्रतीक योजना भाषा को भावप्रवण बनाने के साथ-साथ भावों की यथार्थ अभिव्यंजना भी करती है। प्रतीक के बारे में श्री नेमिचन्द्र जैन ज्योतिषाचार्य लिखते हैं कि - "वर्ण्य विषय के गुण या भाव साम्य रखने वाले बाह्य चिह्नों को प्रतीक कहते हैं। मानव हृदय के गुह्यतम अन्तर्भावों की अभिव्यक्ति के लिए प्राकृतिक प्रतीकों को साधारण बनाया जाता है। ये प्रतीक अमूर्त भावनाओं की प्रतीति कराने में सहायक सिद्ध होते हैं। मानव हृदय के अमूर्त भावों का साक्षात्कार इन्द्रियों के द्वारा नहीं किया जा सकता है। वे अमूर्त भावनाएँ प्रतीक योजना के आश्रय से हृदय पर सर्वाधिक गम्भीर प्रभाव डालती हैं।"

प्रतीक योजना अमूर्त को मूर्त रूप देकर अत्यन्त सूक्ष्म भावनाओं का साक्षात्कार कराने में समर्थ होती है। विविध संस्कृतियों के अनुसार काव्य में रसोद्रेक के लिए साहित्यकार भिन्न भिन्न प्रतीकों का प्रयोग करते हैं। सभ्यता, शिष्टाचार, आचार, व्यवहार तथा आत्मदर्शन के अनुरूप प्रत्येक साहित्यकार अपनी काव्य कला में प्रतीकों की उद्भावना करता है। हिन्दी जैन साहित्य में उपमान के रूप में प्रतीकों का प्रयोग अधिक हुआ है।

विद्वानों ने प्रतीकों के दो भेद किये हैं -

1. भावोत्पादक 2. विचारोत्पादक। हिन्दी जैन साहित्य में इन दोनों भेदों के शुद्ध उदाहरण नहीं मिलते हैं। सुविधा के लिए जैन साहित्य में प्रयुक्त प्रतीकों को चार भेदों में विभक्त किया जा सकता है -

1. गुण व सुखबोधक प्रतीक
2. विकार एवं दुःख बोधक प्रतीक
3. शरीर- बोधक प्रतीक
4. आत्मबोधक प्रतीक

हिन्दी के जैन कवियों द्वारा प्रयुक्त प्रतीकों का वर्गीकरण करते हुए डॉ. नेमिचन्द्र शास्त्री भी प्रकारान्तर से इसीप्रकार के वर्गीकरण को स्थिर करते हैं।²

1. हिन्दी जैन साहित्य परीशीलन भाग 2 - नेमिचन्द्र जैन पृष्ठ 193

2. हिन्दी जैन साहित्य परीशीलन भाग 2 - नेमिचन्द्र जैन शास्त्री पृष्ठ 193

भाव, स्वरूप तथा सामग्री के आधार पर समग्र भूधरसाहित्य में व्यवहृत प्रतीकों को हम निम्नलिखित चार भागों में विभाजित कर सकते हैं -

1. सुख बोधक 2. दुःख बोधक 3. शरीर बोधक 4. आत्मबोधक - प्रतीक इनका विस्तृत विवेचन निम्नांकित है -

1. सुखबोधक प्रतीक :- यद्यपि सुख आत्मा का ही स्वभाव है तथापि लौकिक प्राणी इन्द्रियगत विषयों (वस्तुओं) एवं इन्द्रियजन्य सफल सन्तुष्टियों में सुख की अनुभूति कर लेता है। कवि भूधरदास ने अपने समग्र साहित्य में मधु, पुष्प, किसलय, मोती, ऊषा, अमृत, दीप, प्रभात, प्रकाश, हंस¹, दर्पण², चन्दन³, आम⁴, कमल⁵, ताम्बूल⁶, शंख⁷, साथियाँ⁸, सावन⁹, पपीहा¹⁰, नवनिधियाँ¹¹, अंजनवटी¹², सलाक¹³, आदि को सुख के प्रतीक के रूप में स्वीकार किया है। साथ ही बाल तीर्थंकर पार्श्वनाथ की माता को तीर्थंकर के जन्म के पूर्व दिखने वाले सोलह स्वप्न¹⁴ के रूप में ऐरावत हाथी, वृषभ, सिंह, कमला, पुष्पमाला, शशि, सूर्य, मीन, कुम्भ, सरोवर, समुद्र, सिंहासन, देवविमान, नागराज, रत्नराशि, एवं अग्निशिखा को भी शुभसूचक मानते हुए सुख का प्रतीक स्वीकार किया है।

2. दुःखबोधक प्रतीक :- समस्त प्रतिकूलताएँ एवं इन्द्रियगत असन्तुष्टियाँ दुःख का कारण हुआ करती हैं। वास्तव में तो दुःख का कारण जीव का अज्ञान या मोह-राग-द्वेष है; जिसके कारण ही संसार दुःखरूप हो जाता है। भूधरदास ने संसार को दुःख का कारण मानकर जलधि¹⁵ एवं उनके पर्यायवाची शब्द, सरवर¹⁶, स्वप्न¹⁷, झील¹⁸, शतरंज¹⁹, आदि को संसार का प्रतीक एवं सारस²⁰, बटोही²¹, पंछी²² को संसारीजन का प्रतीक बताया है।

1. पार्श्वपुराण पृष्ठ 4

4. वही पृष्ठ 8

7. वही पृष्ठ 48

10. भूधरविलास 18

13. जैनशतक छन्द 90

15. पार्श्वपुराण पृष्ठ 1 तथा 62,

17. भूधरविलास पद 32

19. जैनशतक छन्द 32

21. जैनशतक छन्द 68

2. वही पृष्ठ 7

5. वही पृष्ठ 1

8. वही पृष्ठ 13

11. पार्श्वपुराण पृष्ठ 15

14. पार्श्वपुराण पृष्ठ 45 - 46

16. पार्श्वपुराण पृष्ठ 21

18. भूधरविलास पद 33

20. पार्श्वपुराण पृष्ठ 21

22. पार्श्वपुराण पृष्ठ 21

3. वही पृष्ठ 7

6. वही पृष्ठ 47

9. भूधरविलास 18

12. जैनशतक छन्द 36

विषधर¹ एवं उनके पर्यायवाची² शब्द, इन्द्रायन³, आक⁴, जवास⁵, जोक⁶, कालकूट⁷, भैस⁸ आदि को दुर्जन का प्रतीक माना है। मोह या मिथ्यात्व का प्रतीक मतिरा⁹, श्यामरांग¹⁰, रात¹¹, जंघकर¹² को तथा राग का प्रतीक चोर¹³, नाग¹⁴, उरग¹⁵, को स्वीकार किया है। इसके अतिरिक्त -

माया - ठगिनी¹⁶, नागिनी¹⁷, कुमति - कागली¹⁸, दण्ड - कालौंस¹⁹, पाप - धतूरा²⁰, काल - मजार²¹, काक²², वृद्धता - सेत, धोरे²³ (श्वेत बाल), विपन्नता - पतझर²⁴, जेठमास²⁵, कामी - पतंग²⁶, कपटी - साँप²⁷, अस्थिरता - पतासा²⁸, बबूला²⁹ को प्रतीक माना गया है।

ये समस्त प्रतीक दुःख की प्रतीति कराने वाले होने से दुःखबोधक ही समझना चाहिए।

3. शरीरबोधक प्रतीक :- सुख-दुःख की तरह शरीर का बोध कराने वाले अनेक प्रतीकात्मक शब्दों का व्यवहार भी भूधरदास ने अपने साहित्य में किया है। कवि ने शरीर के लिए जिन विभिन्न प्रतीकों का प्रयोग किया है, वे प्रतीक हैं -

1. पार्श्वपुराण पृष्ठ 4	2. प्रकीर्ण पद	3. पार्श्वपुराण पृष्ठ 8
4. प्रकीर्ण पद गुटका संख्या 6766 राजस्थानी प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान शाखा बीकानेर		
5. से 8 तक वही गुटका 6766		
9. पार्श्वपुराण पृष्ठ 86		
10. जैनशतक छन्द 31		
11. जैनशतक छन्द 68		
12. भूधरविलास पद 13 एवं पार्श्वपुराण पृष्ठ 1		
13. जैनशतक छन्द 68		
14. पार्श्वपुराण पृष्ठ 1	15. प्रकीर्ण पद	
16. भूधरविलास पद 8	17. प्रकीर्ण पद गुटका संख्या 6766	
18. भूधरविलास पद 33	19. पार्श्वपुराण पृष्ठ 6	
20. भूधरविलास पद 4	21. भूधरविलास पद 5	
22. भूधरविलास पद 10	23. जैनशतक छन्द 29	
24. जैनशतक छन्द 29	25. प्रकीर्ण पद गुटका संख्या 6766	
26. भूधरविलास पद 32	27. प्रकीर्ण पद गुटका संख्या 6766	
28. भूधरविलास पद 9	29. भूधरविलास पद 19	

चरखा ¹, पिंजरा ², कोंपल ³, शालाब ⁴, गगार ⁵, कान्तार ⁶ आदि । इसके अतिरिक्त कवि द्वारा जिनेन्द्र देव की प्रतिमा ⁷ एवं तीर्थंकर की संज्ञा का बोध कराने के लिए विविध चिह्नों ⁸ का व्यवहार भी किया गया ।

4. आत्मबोधक प्रतीक :- निराकार को आकार देने के लिए भूधरदास ने आत्मबोधक शब्दों का प्रयोग किया है; जो निम्नांकित है -

आत्मा - हंस ⁹, मन - सूवा ¹⁰ ।

महाकवि भूधरदास की प्रतीक योजना के साधक उपमा, रूपक, अतिशयोक्ति, सारोपा, साध्यावसाना लक्षणा रहे हैं । अन्य हिन्दी जैन कवियों की परम्परा की भाँति भूधरदास ने भी प्रतीकों का प्रयोग अधिकतर रूपक अलंकार के रूप में किया है; परन्तु कहीं कहीं प्रतीकों का प्रयोग अपने सहज रूप में मिलता है । कवि के प्रतीक जैन परम्परानुमोदित तो है ही, साथ ही लोक जीवन से भी लिये गये हैं । ठगिनी, नागिनी, हंस, चरखा जैसे प्रतीकों के प्रयोगों में निर्गुनिये सन्तों की छाप स्पष्टतः दिखाई देती है । कवि की प्रतीक योजना में स्वाभाविक बोधगम्यता दिखाई देती है । बोधगम्य प्रतीकों के कारण भावों एवं सूक्ष्म मनोवृत्तियों के उद्बोधन में कवि को पूर्ण सफलता मिली है । इसी प्रकार अप्रस्तुत भावों की अभिव्यक्ति के लिए प्रयुक्त प्रतीकों द्वारा रसोद्बोधन एवं भावोद्बोधन में भी सफलता दृष्टिगत होती है ।

इस प्रकार भूधरसाहित्य में जैन परम्परानुमोदित सुखबोधक, दुःखबोधक, शरीरबोधक और आत्मबोधक प्रतीकों का प्रायः रूपक अलंकार की भाँति प्रयोग किया गया है ।

1. हिन्दी पद संग्रह सं. डॉ. कस्तूरचन्द कासलीवाल

2. भूधरविलास पद 27

3. पार्श्वपुराण पृष्ठ 28

4. पार्श्वपुराण पृष्ठ 48

5. प्रकीर्ण पद गुटका संख्या 6766

6. भूधरविलास पद 21

7. पार्श्वपुराण पृष्ठ 26

8. जैनशतक छन्द 81

9. दोय पक्ष जिनमत विपै, नय निश्चय व्यवहार ।

तिन दिन लहै न हंस यह, शिव सरवर की सार ॥

जैनशतक दोहा 100

10. मेरे मन सूवा जिन पद पीजरे बसि ।

भूधरविलास पद संख्या 5

(इ) भूधरसाहित्य में मुहावरे और कहावतें -

महाकवि भूधरदास ने अपने भावों एवं अनुभूतियों की विशेष प्रभावपूर्ण अभिव्यक्ति के लिए अपनी भाषा में मुहावरे एवं कहावतों का प्रयोग किया है।

मुहावरे ¹ और कहावतों ² की अपनी अपनी विभिन्न विशेषताएँ ³ हैं। इन विशेषताओं से युक्त होने के कारण भूधरसाहित्य अनूठा बन पड़ा है। भूधरदास ने मुहावरों एवं लोकोक्तियों द्वारा बड़ी से बड़ी बात को अति प्रभावशील ढंग से सूक्ष्म परिवेश में व्यक्त करने का प्रयास किया है।

भूधरदास ने अपने साहित्य में जिन मुहावरों एवं कहावतों का प्रयोग किया है; उनका विवेचन अकारादि क्रम से निम्नांकित है -

(पहले मूल मुहावरा फिर उसका काव्य में प्रयुक्त रूप और अन्त में कृति का उल्लेख है)

क्रम	मूल रूप	काव्य में प्रयुक्त रूप	कृति का नाम
1.	आंको आब उगाना	आंको आब उन्होंवे	जैनशतक छन्द 17
2.	आई गई कर जाना	गई करि जाठ	
		निवाह न हवै है	जैनशतक छन्द 19
3.	आग लगने पर कुओं खोदना	आग लागै जब झौंपरी जलन लागी ।	जैन शतक छन्द 26
4.	आँखों में धूल झोंकना	अंखियान में झोक्त है रज	जैनशतक छन्द 64
5.	आस पूजना	पूजौ आस मन की	जैनशतक छन्द 91
6.	ईधन सो आग धापना	ईधन सों आगि न धाप	पार्श्वपुराण पृष्ठ 60

1. अच्छी हिन्दी - रामचन्द्र वर्मा पृष्ठ 198, साहित्य रत्नमाला कार्यालय बनारस

2. राजस्थानी कहावतें : एक अध्ययन- डॉ. कन्हैयालाल सहल पृष्ठ 20

3. हिन्दी साहित्य कोश भाग 1 प्रो. धीरेन्द्र वर्मा पृष्ठ 954

द्वितीय संस्करण ज्ञानमण्डल वाराणसी

7. उपाय बनना	तब कछु बनै उपाय	पार्श्वपुराण पृष्ठ 29
8. उर में आस लगना	दुःखी देख लागै उर सार है	जैनशतक छन्द 88
9. एक म्यान में दो उरवार	दो खाँडे एक म्यान	भूधरविलास पद 16
10. औसर पड़ने पर कमान टूटना	औसर को पाइकै कमान टूट जाय	प्रकीर्ण पद गुटका 6766
11. अंधकार दीखना	दीसै जगत अंधारौ	भूधरविलास 13
12. अंजुली भर पानी	आज रह्यौ अंजली भर पानी	प्रकीर्ण सोरठा
13. अंजुली सीस धरना	मैं अंजरी निज सीस धरी है ।	जैनशतक 14
14. कफ कंठ में अडना	जबलौ कफ नहिं कंठ अडै	भूधरविलास पद 16
15. करोड़ों की घड़ी खोना	खोवत करोरन की एक-एक घड़ी है ।	जैनशतक छन्द 21
16. काक ढूँढ़ना	निशदिन ढूँढ़ै काक	भूधरविलास पद 10
17. काज सरना	तौ सब काज सरै जियरा जी	जैनशतक छन्द 32, प्रकीर्ण
18. कानी कौड़ी के लिए	कानी कोडी काज	जैनशतक छन्द 22
19. कान मानना	मानै कान रामा	जैनशतक छन्द 26
20. खलास करना	दास को खलास कीजै भवपास तै	जैनशतक छन्द 7
21. खखार का कीड़ा	जड़ खखारे को कीड़ा	भूधरविलास पद 41
22. खाज खुजाना	सारंग समाज खाज कबधौं खुजै है ।	जैनशतक छन्द 17

23. खाट पकड़ना	रंक भयो परयंक लई है	जैनशतक छन्द 38
24. खेत तजना	खेत तजै सो अपयश लेय	पार्श्वपुराण पृष्ठ 61
25. खेल खेल के खाम	अर सब खेल खेल के खाम	भूधरविलास पद 24
26. गरज सरना	तेरी गरज क्या सरियां रे	भूधरविलास पद 27
27. गाय वच्छ की रीति	राखे गाय वच्छ की रीति	पार्श्वपुराण पृष्ठ 35 भूधरविलास पद 1
28. गांठि का खोना	ज्ञान खोयो गांठि को	
29. गोद का छोड़कर पेट की आस करना	सो गंवार तजि गोद कौ करे पेट की आस	प्रकीर्ण साहित्य 1
30. घटा घोरना	घोर घन घोरै घटा	जैनशतक छन्द 13
31. चरन चांपना	कोई चापै चरण करो	पार्श्वपुराण पृष्ठ 47
32. चारा चलना	कहां धले मेरो चारो	भूधरविलास पद 13
33. चार दिन की चांदनी फिर अंधेरी रात	ये सुख है दिन दोय फिर दुख की संतान	भूधरविलास पद 32
34. चील अंडा छोड़ना	चील अंडा छौरै	जैनशतक छन्द 13
35. छाहं लौरना	पशु पंछी छाह लोरे	जैनशतक छन्द 13
36. जंगल में वास लेना	जंगल कीना वासा	भूधरविलास पद 9
37. जहर का प्याला पीना	पीव न जहर पियाला	प्रकीर्ण साहित्य
38. जलांजलि देना	भवदुखवास जलां- जलि देहि	पार्श्वपुराण पृष्ठ 42, 90
39. जुहार करना	जरा नै जुहार कीनी	जैनशतक छन्द 39
40. जो सोवै सो खोवै	सोवै जो अचेत सोई खोवै	जैनशतक छन्द 68

41. दूक ढाक होना फिटि आगै दूक डाक है जैनशतक छन्द 99
42. तगा हित तोरन तनक तगा हित -
43. तट ही तट पर डोलना भूधर मुक्ताफल की लरिया प्रकीर्ण साहित्य
44. तन तोड़ना तट ही तट पर डोलत सोय पार्श्वपुराण 72
45. तमासगीर रहना तन को न मोरै जैनशतक 13
46. तिनके तोड़ना याही ते सयाने तू तमासगीर रह जैनशतक 17
47. तीसरा पन आना तोरत नेह जथा तिनको जैनशतक 54
48. थोथी बातें अब आया पन तीजा जैनशतक 41
49. दमामा देना और सब थोथी बातें भूधरविलास 35
50. दृग भरना देय न दमामा जोलौ जैनशतक छन्द 26
51. दांतों में तिनका दबाना फल चाखन की
52. देखें बनना बार भरे दृग भूधरविलास पद 4
53. धतूरा बोना दांत लिए तृन रहै है जैनशतक 55, 66
54. धरती देखना दास भूधर भनै सुदिन
55. धापना देखे बने प्रकीर्ण साहित्य
56. पग धोक अज्ञानी पाप धतूरा न बोय भूधरविलास 4
57. नट का कुटुम्ब परतिय लिखि जे धरती निरखे जैनशतक 58
58. नायक के जीतने पर रूपामृत पीवत नहिं धापै जैनशतक 10
- लस्कर का भागना तिन्हें पग धोक
- त्रिकल हमारी जैनशतक पद 11, 12
- नट का कुटुम्ब जैसा भूधरविलास पद 15
- समझ देखि नायक के जीते जैहे भागि सहज
- सब लसकरि भूधर विलास पद 41

59. नाच नचाना	बहुविधि नाच नचावै	प्रकीर्ण साहित्य
60. नेह तोडना	देह नेह तोरै	जैनशतक छन्द 13
61. पंछी बाट लगना	पंछी लागै बाट	पार्श्वपुराण पृष्ठ 21
62. पद ढोकना	तुम पद ढोकत सीस झरी रज	भूधरविलास पद 12
63 . पत्थर की नाव पर चढकर पार होना	चढि पत्थर की नाव पै कोई सुनिये नाहिं तोरे	भूधरविलास पद 25
64. पग झारना	कांगे पर पग झारते	जैनशतक छन्द 34
65. पानी का बुलबुला	पानी माहिं पतासा	भूधरविलास पद 9
66. पायन लगना	यों कह पायन लागों	पार्श्वपुराण पृष्ठ 7
67. पांच पड़ना	हाथ जोरि हम पांच परै है ।	पार्श्वपुराण पृष्ठ 32
68. पैडे, (पैडा) करना	प्रिय के (पैडे) पैडों कीनौ	भूधरविलास 13
69. पैर में कुल्हाड़ी मारना	करै कुल्हाड़ी लेय के मति मारे पग जानि	भूधरविलास पद 32
70 . बंध पारना	आगै को न बन्ध पारें	भूधरविलास पद 29
71. बनि आना	देखे बनि आवै हों	भूधरविलास पद 3
72 . बड़ी बांह करना	किधौं बाह ये दीरध कीनी	जैनशतक छन्द 2
73 . बला लगना	बाय लगी कि बलाय लगी	जैनशतक 31
74. बार लाना	यार लाय न बार रे	भूधरविलास पद 5
75. बारि बबूला	तन धन वारि बबूला	भूधरविलास पद 19
76. बान पड़ना	नैननि को बानि परी दरसन की	भूधरविलास पद 48

77. बाट के बटोही	बाट के बटोही काक आने ठर माहि	प्रकीर्ण साहित्य
78. बांह सोंपना	निज सुत सोंपि राय की बाहि	पार्श्वपुराण पृष्ठ 5
79. बांकी भौ	जिनकी तनक देखि भौ बांकी	पार्श्वपुराण पृष्ठ 31
80. विष बोना	तू विष बोवन लागत	भूधरविलास पद 4
81. बुद्धि हरना	किन बुद्धि हरी है	जैनशतक छन्द 20
82. भोंदू होना	फिरि क्यों भोंदू होय.	भूधरविलास पद 4
83. मति हरना	तेरी मत कोने हरी है	जैनशतक छन्द 21
84. मन माना	मन भाई रे	जैनशतक छन्द 47
85. माथे करना	सो कुबेर निज माथे करी	पार्श्वपुराण पृष्ठ 43
86. मार्ग लगना	इन मारग मति लागो रे	पार्श्वपुराण पृष्ठ 82
87. मुंह छिपाना	वृद्ध वदन दुरावै है	जैनशतक छन्द 41
88. मुट्ठी की धूल	सब मत झूठी धूल की	जैनशतक 92
89. मुख में कालिख पोतना	साधन झार दई मुख छार	जैनशतक छन्द 65
90. राग रंग होना	काहु रंग रंग	जैनशतक छन्द 61
91. रात्रि का सुपना	यह संसार रैन का सुपना	भूधरविलास पद 19, 32
92. रोया रोई पडना	रोया रोई करी है ।	जैनशतक छन्द 21
93. लौ लगना	लगी लौ नाभिनन्दन सों	भूधरविलास पद 1
94. विदा होना	जोवन ने विदा लीनी	जैनशतक 39
95. सुपने का तमासा	जारे तमासा सुपने का सा	भूधरविलास पद 9

96. सिर पर धूल डालना धूल डाल निज
सीस लिए पार्श्वपुराण पृष्ठ 65
97. सिर घिसन गरि बहि लीस
प्रणाम करै है । जैनशतक छन्द 9
98. सफेदी आना आये सेत भैया जैनशतक छन्द 28
99. सिर दुलना तातै निज सीस डोलें जैनशतक छन्द 41
100. सलाह पारना पारनी सलाह है जैनशतक छन्द 45
101. सबेरा सोचते ही सांझ होन आई है
संध्या होना विचारत सबेर ही जैनशतक छन्द 77
102. सारस सरवर छोड़ना सारस सरवर तजि गये पार्श्वपुराण पृष्ठ 21
103. सिर धूल देना दो दुरमति सिर धूला रे भूधरविलास पद 19
104. सूरज के आगे रवि दुति आगैं पार्श्वपुराण
दीपक दिखाना दीपक लोय पृष्ठ 43, 62
105. सूसे की अंधेरी करना आँखिन विलोक अंध
सूसे को अंधेरी करे । जैनशतक छन्द 39
106. सेर में पूनी ऊबरी इतेक आयु
सेर माहि पूनी सी जैनशतक छन्द 35
107. सोते रहना सोवत विहाय जाय जैनशतक छन्द 21
108. हरी होना होउ हरी तब ही
अब भेंटो भूधरविलास पद 14
109. हरिहर ब्रह्मा होना हरिहर ब्रह्मा तुम ही भये पार्श्वपुराण पृष्ठ 59
110. हथियार डालना यों हार निज
हथियार डारे पार्श्वपुराण पृष्ठ 71
111. हाथ पड़ना कर बहे हैं । जैनशतक छन्द 55

112 हाथ हाथ पड़ना हाथ हाथ परी है जैनशतक छन्द 21

113. हाथ अंजुली करना हम हाथ अंजुली करे जैनशतक छन्द 13

मुहावरों की भांति लेखक ने अपने काव्य में कहावतों का भी प्रयोग किया है। भूधरसाहित्य में व्यवहृत कहावतें निम्नलिखित हैं :-

- 1 अब अपनों दाम खोटों तो सर्राफ़ को कहा दोष।
खोटो दाम आपनौ सर्राफ़ कहा लागै वीर ॥ जैनशतक 77
- 2 ज्यों-ज्यों भीजै कामरी त्यों-त्यों भारी होय।
भूधर पल-पल हो है भारी ज्यों ज्यों कमरी भीजै रे ॥ जैनशतक 11
- 3 इखने से हो अंगुल बन्नी ताल पार हो जाती है।
दो अंगुल बूढ़त बचै नाव का पहुँचै पार ॥ प्रकीर्ण साहित्य
- 4 बीती ताहिं विसारि देहु आगे की सुधि लेहु।
गई सो गई अब राखि रही को ॥ जैनशतक छन्द 29
- 5 बोया पेड़ बबूल का आम कहा से खाय।
आम चाखन चहे भोंदू बोय पेड़ बबूल ॥ भूधरविलास पद 28
- 6 विष का कीड़ा विष ही में राजी रहती है।
विषकौ सों कीरा नित विष ही में रम्यौ वीर ॥ प्रकीर्ण पद
- 7 मशालची अपने को नहीं देखता है।
ज्यों मशालची आप न देखे ॥ भूधरविलास पद 36
- 8 सापों के संग से चंदन पर भी कुल्हाड़ा चलता है।
सांपन से संग सों कटे चंदन अधिक सुगंध ॥ प्रकीर्ण दोहा
- 9 सांप टेडी चाल नहीं छोड़ता है।
वक्र चाल विषधर नहीं तजै ॥ पार्श्वपुराण पृष्ठ 4
- 10 सिर देने से सूर कहलाता है।
सूर कहावै ओ सिर देय ॥ पार्श्वपुराण पृष्ठ 61

इस प्रकार भूधरसाहित्य में विभिन्न मुहावरों एवं कहावतों का प्रयोग हुआ है। भूधरदास ने इन कहावतों एवं मुहावरों का प्रयोग बिना किसी प्रयास के स्वाभाविक रूप से किया है। उनकी अभिव्यक्ति की सरलता में जो कहावत या मुहावरा सर्वथा उपयुक्त ठहरता है, उसका उन्होंने उपयोग किया है। इन मुहावरों का प्रयोग भावाभिव्यक्ति की सम्पन्नता एवं अलंकरण सौन्दर्य के लिए ही हुआ है। इससे अर्थ व्यंजना के साथ-साथ भाषा पर उनके असाधारण अधिकार का परिचय मिलता है। उनके मुहावरों में सुबोधता एवं अकृत्रिमता सर्वत्र विराजती है। वास्तव में मुहावरे एवं कहावतों के सम्यक् प्रयोग से भाषा में प्रभावशीलता पैदा हुई है तथा भावसौन्दर्य में अभिवृद्धि हुई है।

भूधरदास की गद्य शैली

भूधरदास का एकमात्र गद्यग्रन्थ 'चर्चा समाधान' है। इसकी प्रतिपादन शैली उद्धरणयुक्त प्रश्नोत्तर शैली है। इसमें उन्होंने जैनधर्म, दर्शन से सम्बन्धित अनेक प्रश्न एवं उत्तर, चर्चा और समाधान के रूप में प्रस्तुत किए हैं। विषय परम्परागत होने पर भी उसके प्रस्तुतीकरण में मौलिकता है। इसके लिए उन्होंने सरल दृष्टान्तमयी उद्धरणयुक्त प्रश्नोत्तर शैली को अपनाया है। उनके गद्य का उदाहरण देखिये -

“इह चरचा समाधान ग्रंथविषै केतेक संदेह साधर्मीजनों के लिए आए, शास्त्रानुसार तिनका समाधान हुआ है तो लिखा है। अब जो बहुश्रुत सज्जन गुणग्राही हैं; तिनसूं मेरी विनती है इस ग्रन्थ को पढ़वे की अपेक्षा कीजो, आद्योपांत अवलोकन करियो। जो चरचा तुम्हारे विचार को सद्दहै सो प्रमाण करसौ, जो विचार में न सद्दहैं तहां मध्यस्थ रहना और जैन की चरचा अपार है काल दोष सों तथा मतिश्रुत की घटती सों तिविषै संदेह बहुत पड़े, तिसतें तिनका कैसे ताई कोई निर्णय करेगा।”

विषय को स्पष्ट करने के लिए स्वयं ही अनेक शंकाएँ उठाकर समाधान करना - उनकी शैली की विशेषता है। अपने समाधान को प्रामाणिक एवं आगमसम्मत सिद्ध करने के लिए वे अनेक ग्रन्थों की साक्षी देते हैं, विविध आगमों के उद्धरण देते हैं, अधिकाधिक प्रमाण प्रस्तुत करते हैं। उदाहरणार्थ -

“चरचा 60 मुनिराज शास्त्रादि उपकरण राखें कि नहीं ?

समाधान - वसुनंदी सिद्धांत चक्रवर्ती कृत मूलाधार, वीरनंदी सिद्धांतीकृत आचारसार, चामुंडराय कृत चारित्रसार, शिवकोटि मुनीश्वर कृत भगवती अराधना, लघुचरित्रसार, कुंदकुंदाचार्य कृत प्रवचनसार, रयणसार, नियमसार, भावपाहुड तथा वीतरागसमयसार, देवसेनकृत भावसंग्रह तथा वामदेवकृत भावसंग्रह, पद्मनंदिपञ्चीसी, ज्ञानार्णव, दर्शनसार, क्रियासार, तत्त्वार्थसार, परमात्मप्रकाश, योगसार, सूत्रकी टीका सर्वार्थसिद्धि, श्रुतसागरी तत्त्वार्थवृत्ति, सकलकीर्तिकृत धर्मप्रश्नोत्तर श्रावकाचार ग्यारहसौ छयासठ प्रश्न संयुक्त है, तत्त्वार्थसार टीका, आत्मानुशासन, आशाधर कृत यत्याचार, आदिपुराण, पद्मपुराण, यशस्तिलक काव्य चम्पूनामा, कर्मकांड की टीका, पंचपरमेष्ठी की टीका, यशोनंदीकृत पूजा पाठ, पद्मनंदिकृत रत्नत्रयपाठ, स्वामिकार्तिकियानुप्रेक्षा, टीका द्वादशानुप्रेक्षा, तथा स्वामिकार्तिकिय कथा, समंतभद्रकथा, भद्रबाहुकथा, श्रेणिकचरित्र, अभव्यसेन का प्रसंग, कुंदकुंदाचार्य के पंचनाम हेतु कथा, सूत्र के पाठ की फल स्तुति, राजमल्लकृत श्रावकाचार, ढोलसागर कथा, बृहत् प्रतिक्रमण, समाधितंत्र टीका, वचनकोष भाषा, साधुवंदना इत्यादि प्राकृत संस्कृत भाषा रूप अनेक जैन ग्रंथनिविधैं कह्या सो प्रमाण है। इहा कोई पूछे - कुन्दकुन्दाचार्य ने षट्पाहुड विषैं मुनि के तिल तुष मात्र परिग्रह का निषेध किया है, शास्त्रादि उपकरण ग्रहण क्यों कर संभवै ?

तथाहि गाथा _____ । 'तिसका उत्तर _____ ।'

गद्य शैली में भूधरदास के व्यक्तित्व की स्पष्ट छाप है। वे अपने अदम्य साहस, विश्वास एवं प्रखर पाण्डित्य के साथ प्रत्येक शंका का समाधान करते हैं। उन्हें किसी प्रकार का आग्रह भी दिखाई नहीं देता इसलिए वे बलात् अपनी बात को थोपते नहीं हैं, अपितु अपनी बात रखकर शंकाकार को उचित दिशा में सोचने के लिए प्रेरित करते हैं तथा उसे स्वयं आगम के परिप्रेक्ष्य में सही उत्तर को प्राप्त करने के लिए उत्साहित करते हैं। वे अपनी बात को मानने के लिए शंकाकार को बाध्य न करके निष्पक्ष निर्णय लेने का अवसर प्रदान करते हैं।

यद्यपि शंकाकार भी वे स्वयं हैं और समाधानकर्ता भी स्वयं। परन्तु समाधानकर्ता सर्वत्र उत्तम पुरुष में विद्यमान है। जबकि शंकाकार - इहां प्रश्न, इहां कोई कहें, इहां कोई पूछे - आदि के रूप में अन्य पुरुष में है। शंकाकार विनयशील है, पर है मुखर, जबकि समाधान कर्ता सर्वत्र दबंग एवं अनेक शास्त्रवेत्ता है। शंकाकार भी कम पंडित नहीं है। वह बुद्धिमान, जिज्ञासु एवं बहुशास्त्रविद् है। मात्र उसमें एक कमजोरी है कि वह यथाप्रसंग शास्त्रों के सही

अर्थ नहीं समझ पाता है। भूधरदास की शैली की यह विशेषता है, उन्होंने अधिकांश आर्षवाक्य शंकाकार के मुख में रखे हैं और समाधानकर्त्ता के द्वारा अनेक आगम प्रमाण दिलाकर उनका समाधान कराया है।

भूधरदास ने जिस समय 'चर्चा समाधान' गद्य ग्रन्थ लिखा, उस समय ब्रजभाषा का गद्य अपनी प्रारम्भिक अवस्था में था। यद्यपि छुटपुट रूप में भूधरदास से कुछ समय पूर्व के पिंगल गद्य के रूप मिल जाते हैं, परन्तु उससे यह नहीं कहा जा सकता कि उस समय गद्य विचारों के वहन का मुख्य साधन बन चुका था। हिन्दी साहित्य के इतिहासकारों ने गद्य की समस्त विधाओं से युक्त प्राचीन से प्राचीन गद्य सन् 1800 ई. के बाद का ही होना उल्लेखित किया है;¹ जब कि भूधरदास भी 18वीं शती के ही गद्यकार हैं। तत्कालीन गद्य की तुलना में भूधरदास का गद्य कहीं अधिक परमार्जित, सशक्त, प्रवाहपूर्ण एवं सुव्यवस्थित है।

चर्चा समाधान में प्रयुक्त भाषा भी तत्कालीन प्रचलित ब्रजभाषा है; परन्तु उसमें तत्सम शब्दों की बहुलता है; क्योंकि 'चर्चा समाधान' संस्कृत, प्राकृत भाषा में लिखित प्राचीन धार्मिक ग्रन्थों पर आधारित शास्त्रीय ग्रन्थ है। अतः उसमें संस्कृत, प्राकृत और उनकी परम्परा में विकसित शब्द अधिक हैं तथा देशी शब्द अपेक्षाकृत कम हैं। तत्सम शब्दों की अधिकता का एक कारण मूलग्रन्थों का संस्कृत, प्राकृत भाषा में होना भी है। लेखक गद्य में अपनी अभिव्यक्ति को सुगम बनाने के लिए तत्सम शब्दों का प्रयोग करता है तथा पद्य में तद्भव शब्दों का। पद्य में तद्भव शब्दों की अधिकता का कारण ब्रजभाषा में तद्भव और देशी शब्दों के प्रयोग के विधान का अनिवार्य होना है। इसीलिए भूधरदास पद्य में परम्परा से बँधे थे, जबकि ब्रजभाषा में गद्य का अभाव था; इसलिए गद्य में उन्हें तत्सम शब्दों के प्रयोग में किसी प्रकार की रुकावट नहीं थी।

निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि उनकी गद्य शैली प्रश्नोत्तर शैली है, जिसमें दृष्टान्तों एवं उद्धरणों का प्रयोग किया गया है। उनकी गद्य शैली में उनके व्यक्तित्व की झलक है, जिससे वह कहीं शास्त्रों में अति आस्थाशील व विनयवान एवं आगमों के अनुसरणकर्ता, तो कहीं कहीं उपदेशक के रूप में नजर आते हैं। उनकी शैली में शास्त्रीय चिन्तन, आगमों के प्रमाण एवं लोक व्यवहार के ज्ञान का सुन्दर समन्वय है।

1. हिन्दी साहित्य - डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी पृष्ठ 364-365

सप्तम अध्याय

भूधरदास द्वारा प्रतिपादित दार्शनिक, धार्मिक
एवं नैतिक विचार

(क) दार्शनिक विचार

(ख) धार्मिक विचार

(ग) नैतिक विचार

भूधरदास द्वारा प्रतिपादित दार्शनिक, धार्मिक एवं नैतिक विचार (क) दार्शनिक विचार

इस विश्व को अपनी-अपनी दृष्टि से देखने के कारण अनेक दर्शनों का प्रादुर्भाव हुआ। जिसके द्वारा देखा जाये वह दर्शन है। दृश धातु में ल्युट प्रत्यय के योग से "दर्शन" शब्द निष्पन्न हुआ है। दर्शन का अर्थ है "देखना"। देखना दो प्रकार है-स्वयं को देखना तथा पर को देखना। प्रथम आत्मदर्शन है तथा द्वितीय परदर्शन। इस स्व व पर के यथार्थ दर्शन को सम्यग्दर्शन तथा अयथार्थ दर्शन को मिथ्यादर्शन कहते हैं। दर्शन विचारमूलक होता है। अतः हेतुपूर्वक वस्तुस्वरूप की सिद्धि करते हुए यथार्थ का दिग्दर्शन कराना दर्शन का काम है। दार्शनिक विचारों के अन्तर्गत उन सभी सिद्धान्तों का परिज्ञान अपेक्षित है, जिनका मोक्षमार्ग में महत्त्व है अथवा जिनके यथार्थ ज्ञान बिना तत्त्वार्थश्रद्धानरूप सम्यग्दर्शन नहीं होता है। इस दृष्टि से प्रायः प्रत्येक दर्शन ने ईश्वर, जगत, मोक्ष आदि के बारे में विचार किया है तथा अपनी दृष्टि से उन सबका विवेचन किया है। जैन दर्शन में तीर्थंकर सर्वज्ञ जिनेन्द्रों की दिव्यध्वनि में आये हुए सभी विचारों का रहस्योद्घाटन गणधरों, आचार्यों तथा इसी परम्परा में आये विद्वानों द्वारा मौखिक तथा तत्पश्चात् लिखित रूप में किया गया। समग्र जैन दार्शनिक विचार प्रथम श्रुतस्कन्ध तथा द्वितीय श्रुतस्कन्ध के रूप में विश्रुत हुए। प्रथम श्रुतस्कन्ध को आगम या सिद्धान्त तथा द्वितीय श्रुतस्कन्ध को परमागम या अध्यात्म कहा जाता है।

आगम में मुख्यतः आत्मा का कर्मों तथा द्रव्यों से होने वाले विविध संबंधों का पर्यायदृष्टि परक संयोगी कथन है तथा परमागम में मुख्यरूप से शुद्धात्मस्वरूप या शुद्ध द्रव्यरूप वस्तु का विवेचन है। इन दोनों परम्पराओं में जैनदर्शन ने सर्वत्र अपनी अनेकान्त दृष्टि द्वारा विवेचन किया है जब कि अन्य दर्शनों ने अनेकान्त का आश्रय छोड़कर एकान्त दृष्टि से कथन किया है। आलोच्य कवि भूधरदास ने भी जीव, जगत, कर्म, मोक्ष आदि के विवेचन में पूर्वपरम्परा का निर्वाह करते हुए अनेकान्त दृष्टि को ही सुरक्षित रखा है।¹ उनके द्वारा प्रदर्शित दार्शनिक विचार निम्नलिखित हैं:-

1. कर्म तत्त्ववर्णन विस्तार। अनेकान्त वाणी अनुसार ॥

पार्श्वपुराण, कलकत्ता, अधिकार 4 पृष्ठ 40

उपादेय, हेय एवं ज्ञेय तत्त्व :-

जैनदर्शन के अनुसार आत्मा का हित सुख है और वह सुख आकुलता के बिना अर्थात् निराकुल अवस्था में होता है। आकुलता मोक्ष में नहीं है; ¹ इसीलिए मोक्ष एवं मोक्षार्थ का उपदेश सम्पूर्ण जिनजगत का एक मात्र अतिमार्ग है। ² भूधरदास मोक्ष को सब प्रकार से उत्तम मानते हुए मोक्ष के कारणस्वरूप भावों को ग्रहण करने योग्य बतलाते हैं -

“सब विधि उत्तम मोख निवास । आवागमन मिटै जिहि वास ॥

तातैं जे शिवकारन भाव । तेई गहन जोग मन लाव ॥” ³

संसार तथा संसार के कारणरूप भाव त्याग करने योग्य हैं -

“यह जगवास महादुख रूप । तातैं भ्रमत दुखी चिद्रूप ।

जिन भावन उपजै संसार । ते सब त्याग जोग निरधार ॥” ⁴

छह द्रव्य, सात तत्त्व, नौ पदार्थ तथा पंचास्तिकाय जानने योग्य हैं। इनकी सम्यक् जानकारी से सम्पूर्ण सन्देह दूर हो जाते हैं। ⁵

विश्व :-

इस विश्व में जीव और अजीव अथवा जड़ और चेतन - ये दो ही मूल द्रव्य हैं। ⁶ यह विश्व पृथक् से और कुछ नहीं है, छह द्रव्यों के समूह को ही विश्व कहते हैं। ⁷ वे छह द्रव्य हैं - जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल। जीव को छोड़कर बाकी पाँच द्रव्य अजीव हैं। इस तरह सारा जगत

1. आत्म को हित है सुख सो सुख आकुलता बिन कहिये ।

आकुलता शिव माहिं न तातैं शिवमग लागो चहिये ॥

पं. दौलतराम कृत छहडाला, तीसरी डाल, प्रथम छन्द

2. मगो मगफलं तिय दुविहं जिणसासणे समक्खादं ।

मगो मोक्खउवासो तस्स फलं होई णिव्वाणं ॥

नियमसार, आचार्य कुन्दकुन्द गाथा 2

3. पार्श्वपुराण, कलकता अधिकार 4 पृष्ठ 40

4 वही पृष्ठ 77

5. छहों द्रव्य पंचास्तिकाय । सात तत्त्व नौपद समुदाय ।

जानन जोग जगत में येह । जिनसों जाहिं सकल संदेह ॥

6. 'जीव अजीव विशेष बिन, मूल द्रव्य ये दोय ।' वही पृष्ठ 77

7. द्वादशानुप्रेक्षा- कुन्दकुन्द आचार्य गाथा 39

चिदचिदात्मक है। यह षड्रव्यात्मक विश्व अनादि अनन्त है, इसे न किसी ने बनाया है और न कोई इसका नाश कर सकता है, यह स्वयंसिद्ध है।¹ विश्व का सर्वथा नाश नहीं होता है, मात्र परिवर्तन होता है : यह परिवर्तन कभी-कभी नहीं, अपितु निरन्तर होता है। यह विश्व परिवर्तनशील होकर भी नित्य है और नित्य होकर भी परिवर्तनशील है। सत् अर्थात् अस्तित्व द्रव्य का लक्षण है² और वह अस्तित्व उत्पाद-व्यय-धौव्य से युक्त है।³ उत्पाद एवं व्यय परिवर्तनशीलता का नाम है और धौव्य नित्यता का। यह जगत द्रव्यदृष्टि से धौव्यरूप तथा पर्यायदृष्टि से उत्पादव्ययरूप है।⁴ इस प्रकार जगत नित्यानित्यात्मक है। नित्य और परिवर्तन-दोनों इसके स्वभावगत धर्म हैं। प्रत्येक पदार्थ सत् रूप होकर उत्पाद-व्यय-धौव्य से युक्त तथा गुण और पर्याय वाला होता है।⁵ गुण नित्य हैं और पर्याय अनित्य हैं।

इस विश्व में जाति की अपेक्षा जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल- ये छह द्रव्य हैं ; परन्तु संख्या की दृष्टि से जीव द्रव्य अनन्त हैं। पुद्गल द्रव्य जीव से भी अनन्त गुणे अर्थात् अनन्तानन्त हैं। धर्म, अधर्म और आकाश द्रव्य एक एक है तथा काल द्रव्य असंख्यात हैं।⁶

अनेकान्त एवं स्याद्वाद :-

प्रत्येक वस्तु (द्रव्य) अनन्त धर्मात्मक होने से अनेकान्त है। यह अनेकान्त ही वस्तु का सच्चा स्वरूप है।⁷ इस अनेकान्तात्मक वस्तु (द्रव्य) को एक-एक नय की दृष्टिसे देखने पर वही अनेकान्त एकान्तरूप है। जो वस्तु प्रमाण की

1. जीवादिक छह द्रव्य सदीव । तिनसौ भरयो यथाघट धीव ।

स्वयं सिद्ध रचना यह बनी । ना इस करता हरता धनी ॥

पार्श्वपुराण, कलकत्ता अधिकार पृष्ठ 5

2. सत् द्रव्यलक्षण- तत्त्वार्थसूत्र उमास्वामी अध्याय 5 पृष्ठ 29

3. उत्पादव्ययधौव्ययुक्तसत्- तत्त्वार्थसूत्र उमास्वामी अध्याय 5 पृष्ठ 30

4. द्रव्यदृष्टि सौ धौव्य सरूप । परजय सौ उपजत छयरूप ॥

जैसे समुद्र सदा थिर लसै । लहर न्याय उपजै अरु नसै ॥

पार्श्वपुराण, कलकत्ता अधिकार पृष्ठ 5

5. गुणपर्यायवद् द्रव्य- तत्त्वार्थसूत्र उमास्वामी अध्याय 5 पृष्ठ 38

6. लघु जैन सिद्धान्त प्रवेशिका- पं. गोपालदास बरैया पृष्ठ 14

7. अनेकान्त जिनमत विषै, कहे जगारथ रूप ।

द्रव्य अनेक नयातमक, एक एक नय साधि ॥ पार्श्वपुराण, कलकत्ता अधिकार 9 पृष्ठ 78

दृष्टि से अनेकान्त है। वही नय की दृष्टि से एकान्त है। यद्यपि जैनदर्शन अनेकान्तवादी दर्शन कहा जाता है तथापि यदि उसे सर्वथा अनेकान्तवादी मानें तो यह भी एकान्त हो जायेगा। अतः जैनदर्शन में अनेकान्त में भी अनेकान्त को स्वीकार किया गया है। जैनदर्शन न सर्वथा एकान्तवादी है और न सर्वथा अनेकान्तवादी। यह कथंचित् एकान्तवादी और कथंचित् अनेकान्तवादी है। इसी का नाम अनेकान्त में अनेकान्त है। आचार्य समन्तभद्र स्वयंभूस्तोत्र में कहते हैं कि —

अनेकान्तोऽप्यनेकान्तः प्रमाणनयसाधनः ।

अनेकान्तः प्रमाणात्ते तदेकान्तोऽपिन्नयात् ॥

प्रमाण और नय हैं साधन जिसके, ऐसा अनेकान्त भी अनेकान्तस्वरूप है; क्योंकि सर्वांशग्राही प्रमाण की अपेक्षा वस्तु अनेकान्तस्वरूप एवं अंशग्राही नय की अपेक्षा वस्तु एकान्तरूप सिद्ध है।

जैनदर्शन के अनुसार एकान्त दो प्रकार का होता है सम्यक् एकान्त और मिथ्या एकान्त। सापेक्ष नय सम्यक् एकान्त और निरपेक्ष नय मिथ्या एकान्त है। इसी प्रकार अनेकान्त भी दो प्रकार का होता है—सम्यक् अनेकान्त और मिथ्या अनेकान्त। सापेक्ष नयों का समूह अर्थात् श्रुतप्रमाण सम्यक् अनेकान्त है और निरपेक्षनयों का समूह अर्थात् प्रमाणाभास मिथ्या अनेकान्त है। कहा भी है—

जे वस्तु अणेयन्तं एयंतं पि होदि सविपेक्खं ।

सुयणाणेण णएहिं य णिरवेक्खं दीसदे णेव ॥¹

जो अनेकान्तरूप है वही सापेक्ष दृष्टि से एकान्तरूप भी है। श्रुतज्ञान की अपेक्षा अनेकान्तरूप है और नयों की अपेक्षा एकान्तरूप है। बिना अपेक्षा के वस्तु का रूप नहीं देखा जा सकता है। अनेकान्त में अनेकान्त की सिद्धि करते हुए राजवार्तिक में आचार्य अकलंकदेव लिखते हैं—

“यदि अनेकान्त को अनेकान्त ही माना जाय और एकान्त का सर्वथा लोप किया जाय तो सम्यक् एकान्त के अभाव में, शाखादि के अभाव में वृक्ष

के अभाव की तरह, तत्समुदायरूप अनेकान्त का भी अभाव हो जायेगा। अतः यदि एकान्त ही स्वीकार कर लिया जाय तो फिर अविनाभावी इतरधर्मों का लोप होने पर प्रकृत शेष का भी लोप होने से सर्वलोप का प्रसंग प्राप्त होगा।¹

“सम्यगेकान्त नय है और सम्यगनेकान्त प्रमाण।”²

अनेकान्तवाद सर्वनयात्मक है। जिस प्रकार बिखरे हुए मोतियों को एक सूत्र में पिरो देने से मोतियों का सुन्दर हार बन जाता है, उसी प्रकार भिन्न-भिन्न नयों को स्याद्वादरूपी सूत्र में पिरो देने से सम्पूर्ण नय श्रुतप्रमाण कहे जाते हैं।³

आचार्य अमृतचन्द्र समयसार की आत्मख्याति टीका के परिशिष्ट में स्याद्वाद और अनेकान्त के सम्बन्ध में लिखते हैं कि- “स्याद्वाद समस्त वस्तुओं के स्वरूप को सिद्ध करने वाला अर्हन्त सर्वज्ञ का अस्खलित (निर्बाध) शासन है। वह स्याद्वाद कहता है कि अनेकान्त स्वभाव वाली होने से सब वस्तुएँ अनेकान्तात्मक हैं। जो वस्तु तत् है, वही अतत् है, जो एक है, वही अनेक है, जो सत् है, वही असत् है, जो नित्य है, वही अनित्य है- इस प्रकार एक वस्तु में वस्तुत्व की उत्पादक परस्पर विरुद्ध दो शक्तियों का प्रकाशित होना अनेकान्त है।⁴

जो वस्तु प्रमाण की दृष्टि से अनेकान्तरूप है वही नय की दृष्टि से एकान्त रूप है परन्तु यह एकान्त किसी एक दृष्टि से होने के कारण सम्यक् है। यदि अनेक धर्म या गुण वाली वस्तु को बिना अपेक्षा के सर्वथा ही वैसा मान लें तो वह मिथ्या एकान्त हो जायेगा; क्योंकि सम्पूर्ण वस्तु वैसी नहीं है, अपितु वस्तु का एक अंश वैसा है। वस्तु के एक अंश का देखकर सम्पूर्ण वस्तु को वैसा ही मानना असत्य है। जैसे जन्मान्ध पुरुषों द्वारा हाथी के किसी अंग को जानकर सर्वांग हाथी को वैसा ही समझना असत्य है। संसार में अनेक मतों या दर्शनों

1. राजवार्तिक, अकलंकदेव अध्याय 1 सूत्र 6 की टीका पृष्ठ 35

2. वही पृष्ठ 35

3. स्याद्वाद मंजरी, श्लोक 30 की टीका, हेमचन्द्राचार्य।

4. ‘स्याद्वादो हि समस्तवस्तुतत्त्वसाधकमेकमस्खलितं शासनमर्हत्सर्वज्ञस्य।

स तु सर्वमनेकातात्मकमित्यनुशास्ति, तत्र तदेव तत्तदेवातत्,

यदेवैह तदेवानेकं, यदेव सत्तदेवासत्, यदेव नित्यं तदेवानित्यमित्येकवस्तु-

वस्तुत्वनिष्ठादकपरस्परविरुद्धशक्तिद्वयप्रकाशनमनेकान्तः।’

समयसार, परिशिष्ट आचार्य अमृतचन्द्र कृत टीका पृष्ठ 648

का प्रादुर्भाव एक अंश को ही पूर्ण मानने से हुआ है। वे किसी एक अंश को ग्रहण करने वाले जन्मान्ध पुरुषों के समान किसी एक अंश को सर्वांश मानकर परस्पर विरोध प्रगट करते हैं।¹

वस्तु का स्वरूप अनेकान्तात्मक या अनेकधर्मात्मक होने के कारण प्रत्येक वस्तु में परस्पर विरुद्ध प्रतीत होने वाली अनेक गुण या धर्म होते हैं। उस विरोध को दूर करने वाली सापेक्ष कथन पद्धति ही है; जिसे स्याद्वाद कहते हैं। यह स्याद्वाद समस्त संशयों को दूर करने वाला निर्मल सत्य सुखरूप जिनशासन का परम चिह्न है।²

स्याद्वाद शब्द में “स्यात्” पद का सही अर्थ समझना आवश्यक है, क्योंकि स्यात् पद तिङन्त न होकर निपात है।³ यह सन्देह का वाचक न होकर एक निश्चित अपेक्षा का वाचक है। “कथंचिद्” अर्थात् किसी अपेक्षा, वाद का अर्थ कहना या कथन करना, किसी अपेक्षा कथन करना ही स्याद्वाद है।⁴

वस्तु के अनेकान्त स्वरूप को समझाने वाली सापेक्ष कथन पद्धति को स्याद्वाद कहते हैं।⁵ अनेकान्त और स्याद्वाद में द्योत्य-द्योतक सम्बन्ध है। द्रव्य (वस्तु) को पूर्ण रूप से सात रूपों में कहा जाता है - स्यात् अस्ति, स्यात् नास्ति, स्यात् अस्ति नास्ति, स्यात् अवक्तव्य, स्यात् अस्ति अवक्तव्य, स्यात् नास्ति अवक्तव्य, स्यात् अस्ति नास्ति अवक्तव्य। इन सात रूपों को ही सप्तभंगी कहते हैं। इनका स्पष्टीकरण निम्नानुसार है - स्वचतुष्टय की अपेक्षा अस्ति,

1. देख अनेक नयातमक, एक एक नय साधि ।

भयो विविध मतभेद यों, जग में बड़ी उपाधि ॥

जन्म अन्ध गजरूप ज्यों, नहिं जानै सरबंग ।

त्यों जग में एकान्त मत, गहै एक ही अंग ॥

पार्श्वपुराण, कलकत्ता अधिकार 9 पृष्ठ 78

2. ता विरोध के हरन को, स्यादवाद जिनबैन ।

सब संशय भेटन विमल, सत्यारथ सुख चैन ॥

पार्श्वपुराण, कलकत्ता अधिकार 9 पृष्ठ 78

3. आत्मभीमांसा (देवागम स्तोत्र) समन्तभद्राचार्य श्लोक 103

4. स्याद शब्द को अर्थ जिन, कहुो कथंचित जान ।

नागरूप नय विषहरन, यह जग मंत्र महान ॥

पार्श्वपुराण, कलकत्ता अधिकार 9 पृष्ठ 78

5. ‘अनेकान्तात्मकार्थ कथनं स्याद्वाद’ लघ्वीयस्वय टीका (अनेकान्त और स्याद्वाद) पृष्ठ 22

परचतुष्टय की अपेक्षा नास्ति, एक ही साथ स्वचतुष्टय और परचतुष्टय की अपेक्षा अस्ति नास्ति, जिस प्रकार वस्तु का स्वरूप है उस प्रकार सर्वथा ज्यों का त्यों न कहने की अपेक्षा अवक्तव्य, स्वचतुष्टय और सर्वथा न कहने की अपेक्षा अस्ति अवक्तव्य, परचतुष्टय और सर्वथा न कहने की अपेक्षा नास्ति अवक्तव्य, स्वचतुष्टय परचतुष्टय और सर्वथा न कहने की अपेक्षा अस्ति नास्ति अवक्तव्य ।¹

उक्त सातरूपों को ही सप्तभंगी कहते हैं । मूल में तो दो ही भंग हैं - वक्तव्य और अवक्तव्य । उक्त सात भंगों में तीन भंग वक्तव्य के तथा चार भंग अवक्तव्य के हैं । अवक्तव्य का स्वतन्त्र भंग संभव होने के कारण उसके चार भंग हुए एवं वक्तव्य का स्वतन्त्र भंग संभव न होने के कारण उसके तीन भंग हुए ।

इस सम्बन्ध में आचार्य अमृतचन्द्र प्रवचनसार की तत्त्वदीपिका टीका में लिखते हैं -

“जो स्वरूप से, पर-रूप से और स्वरूप-पररूप से युगपत् सत्, असत् और अवक्तव्य है- ऐसे अनन्त धर्मों वाले द्रव्य के एक-एक धर्म का अश्रय लेकर विवक्षित अविवक्षित के विधि निषेध के द्वारा प्रगट होने वाली सप्तभंगी निरन्तर सम्यक्तया उच्चारित करने पर स्यात्कार रूप अमोघ मन्त्रपद के द्वारा एवकार में रहने वाले समस्त विरोध-विष के मोह को दूर करती है ।²

इससे स्पष्ट है कि स्याद्वाद, वस्तु में विद्यमान विवक्षित गुणों को मुख्य करता हुआ अविवक्षित गुणों को गौण करता है, अभाव नहीं । “स्यात्” पद के प्रयोग बिना अभाव का भ्रम उत्पन्न हो सकता है ।

1. अपने चतुष्टे की अपेक्षा दर्ब अस्ति रूप,
पर की अपेक्षा वही नास्ति बखानिये ।
एक ही समै सो अस्ति नास्ति सुभाव धरे,
ज्यों है त्यों न कहा जाय अवक्तव्य मानिये ।
अस्ति कहै नास्ति अभाव अस्ति अवक्तव्य,
त्यों ही नास्ति कहै नास्ति अवक्तव्य जानिये ।
एकै बार अस्ति नास्ति कहा जाय कैसे तार्त,
अस्ति नास्ति अवक्तव्य ऐसे परवानिये ॥

पार्श्वपुराण, कलकत्ता अधिकार 9 पृष्ठ 78

2. प्रवचनसार, अमृतचन्द्र कृत गाथा 115 की तत्त्वदीपिका टीका

विवक्षा-अविवक्षा, मुख्य-गौण वाणी के भेद हैं, वस्तु के नहीं। वस्तु तो पर से निरपेक्ष होती है, उसमें समस्त गुण सर्वत्र समानरूप से रहते हैं। उनमें मुख्य-गौण का भेद संभव नहीं है, किन्तु वाणी में समस्त गुणों को एक साथ कहने की सामर्थ्य न होने से कथन में मुख्य गौण का भेद किया जाता है।

प्रत्येक वस्तु में परस्पर विरोधी प्रतीत होने वाले अनेक धर्म-युगल होते हैं, जिन्हें स्याद्वाद अपनी सापेक्ष शैली में प्रतिपादित करता है। इस सम्बन्ध में क्षुल्लक जिनेन्द्र वर्णी 'जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश' में लिखते हैं - "अनेकान्तमयी वस्तु का कथन करने की पद्धति स्याद्वाद है। किसी भी एक शब्द या वाक्य के द्वारा सारी की सारी वस्तु का युगपत् कथन करना अशक्य होने से प्रयोजनवश कभी एक धर्म को मुख्य करके कथन करते हैं और कभी दूसरे को। मुख्य धर्म को सुनते हुए श्रोता को अन्य धर्म भी गौण रूप से स्वीकार होते रहें, उनका निषेध न होने पावे, इस प्रयोजन से अनेकान्तवादी अपने प्रत्येक वाक्य के साथ स्यात् या कथंचित् शब्द का प्रयोग करता है।"¹

इस प्रकार स्याद्वाद एकान्त नयों के विष को दूर करने वाला महान मंत्र है। जिस प्रकार सिद्ध व्यक्ति रस के द्वारा कुधातु को भी अनुपम स्वर्ण बना देता है; उसी प्रकार स्याद्वादी स्याद्वाद के द्वारा प्रत्येक नय को सत्य रूप ही अनुभव करते हैं।²

जीव-विषै सातों भंग निरूपण :-

जीव द्रव्यदृष्टि से नित्य है। पर्यायदृष्टि से अनित्य है। एक साथ द्रव्य-पर्याय दृष्टि से नित्यानित्य है। पूर्ण रूप से कहा नहीं जा सकता इसलिए अवक्तव्य है। द्रव्यदृष्टि तथा सर्वथा न कहने की अपेक्षा नित्य अवक्तव्य, पर्याय दृष्टि एवं सर्वथा न कहने की अपेक्षा अनित्य अवक्तव्य, द्रव्यदृष्टि, पर्यायदृष्टि

1. जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश, जिनेन्द्र वर्णी, भाग 4 पृष्ठ 497

2. इहि विधि ये एकान्त सों, सात भंग भ्रम खेत।

स्याद्वाद पौरुष धरै, सब भ्रम नाशन हेत ॥

स्याद शब्द को अर्थ जिन, कह्यो कथंचित जान।

नागरूप नय विषहरन, यह जग मंत्र महान ॥

ज्यों रसविद्ध कुधातु जग, कंचन होय अनूप।

स्याद्वाद संजोगवै, सब नय सत्य स्वरूप ॥ पार्श्वपुराण, कलकत्ता अधिकार 9 पृष्ठ 78

एवं न कहने की अपेक्षा नित्यानित्य अवस्तव्य है । ¹ इस प्रकार स्याद्वाद क द्वारा नयविषयाओं के अन्तर्गत जीव जैनमत में सिद्ध किया है । जो अन्य प्रकार से सिद्ध करते हैं उनके मत में अनेक दोष आते हैं । ²

जीव निरूपण :- जीव जीने वाला, उपयोगमय, कर्ता, भोक्ता, देहप्रमाण, संसारी, सिद्ध, अमूर्तिक और उर्ध्वगमन स्वभाव वाला है । ³ जीव की सिद्धि हेतु ये नौ अधिकार कहे हैं । इनका विस्तार जिनागम के अनुसार निम्नलिखित है—

जीवत्व-निश्चय से जो एक चेतन प्राण से जीता है और व्यवहार से आयु, इन्द्रिय, बल और स्वासोच्छ्वास- इन चार प्राणों से जीता है, वह जीव है । पाँच इन्द्रियाँ, तीन बल, आयु और श्वासोच्छ्वास - ये दश प्राण, चार प्राणों के उत्तर भेद हैं । मन सहित संज्ञी जीव के दश प्राण, मन रहित असंज्ञी के नौ प्राण, चार इन्द्रिय जीव के मन और कर्ण बिना आठ प्राण, तीन इन्द्रिय जीव के मन, कर्ण और चक्षु के बिना सात प्राण, दो इन्द्रिय जीव के मन, कर्ण, चक्षु और घ्राण के बिना छह प्राण, एकेन्द्रिय जीव के मन, कर्ण, चक्षु, घ्राण, वचन बल और रसना रहित चार प्राण होते हैं । मुक्त जीव के अस्तित्व, सुख, ज्ञानादि प्राण होते हैं । ⁴

उपयोगमयत्व- चैतन्य के साथ सम्बन्ध रखने वाले (अनुविधायी) जीव के परिणाम को उपयोग कहते हैं । ⁵ उपयोग को ही ज्ञान-दर्शन कहते हैं । यह ज्ञान-दर्शन सब जीवों में पाया जाता है तथा जीव के अतिरिक्त अन्य किसी द्रव्य में नहीं पाया जाता है । इसलिए उपयोग जीव का लक्षण है । ⁶ यह उपयोग दो प्रकार का है - ज्ञानोपयोग और दर्शनोपयोग । ज्ञानोपयोग के आठ भेद और

1. दशदिष्टि जिस नित सरूप । परजय न्याय अधिर चिद्रूप ।

नित्यानित्य कथंचित होय कह्यो न जाय कथंचित सोय ॥

नित्य अवाचि कथंचित वही । अधिर अवाचि कथंचित सही ।

नित्यानित्य अवाचक जान । कहत कथंचित सब परवान ॥ पार्श्वपुराण, पृष्ठ 78

2. इहि विधि स्याद्वाद नय छाहिं । साधो जीव जैनमत ताहिं ॥

और भांति विकल्प जे करें । तिनके मत दूधन विस्तरे ॥ पार्श्वपुराण, पृष्ठ 78

3. जीव नाम उपयोगी जान, करता भुगता देह प्रमान ।

जगत रूप शिव रूप अनूप, उर्ध्वगमन सुभाव सरूप ॥ पार्श्वपुराण, पृष्ठ 78-79

4. पार्श्वपुराण, कलकत्ता, अधिकार 9 पृष्ठ 79

5. सर्वार्थसिद्धि अध्याय 2 सूत्र 8 की टीका

6. 'उपयोगो लक्षणम्' - तत्त्वार्थसूत्र अध्याय 2 सूत्र 8

दर्शनोपयोग के चार भेद हैं । ¹ मति - अज्ञान (कुमति) श्रुत-अज्ञान (कुश्रुत) अवधि-अज्ञान (कुअवधि) मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान और केवलज्ञान- ये आठ प्रकार का ज्ञानोपयोग होता है । इनमें मतिज्ञान और श्रुतज्ञान परोक्ष है । अवधिज्ञान और मनःपर्ययज्ञान एकदेश प्रत्यक्ष हैं तथा लोकालोक सहित अनन्त द्रव्यपर्यायों को एक साथ जानने वाला केवलज्ञान सकल प्रत्यक्ष है । ² चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन और केवलदर्शन- ये चार दर्शनोपयोग के भेद हैं । ³ इस प्रकार आठ प्रकार का ज्ञान और चार प्रकार का दर्शन व्यवहार नय से जीव का लक्षण है तथा निश्चय नय से शुद्ध ज्ञान और शुद्ध दर्शन जीव का लक्षण है । ⁴

कर्तृत्व - उपचरित असद्भूत व्यवहार नय से जीव घट, पट आदि परद्रव्यों का कर्ता है । अनुपचरित असद्भूत व्यवहार नय से ज्ञानावरणादि द्रव्यकर्मों का कर्ता है तथा अशुद्ध निश्चय नय से मोह-राग- द्वेष आदि अशुद्ध भावों का कर्ता है तथा निश्चय नय से ज्ञान-दर्शन आदि शुद्ध भावों का कर्ता है । ⁵

1. (क) दो प्रकार उपयोग बखान । दर्शन चार आठ विधि ज्ञान ॥
पार्श्वपुराण, कलकत्ता, अधिकार 9, पृष्ठ 79
- (ख) 'सः द्विविधोऽष्ट चतुर्भेदः' तत्त्वार्थसूत्र, अध्याय 2 सूत्र 9
2. अब सुन वसुविधि ज्ञान विधान । मतिश्रुति अवधि ज्ञान अज्ञान ॥
मनपर्यय केवल निर्दोष । इनके भेद प्रत्यक्ष परोक्ष ॥
मति श्रुति ज्ञान आदि के दोय । ये परोक्ष जाने सब कोय ।
अवधि और मन परजय ज्ञान । एकदेश परतच्छ प्रमान ॥
केवलज्ञान सकल परतच्छ । लोकालोक विलोकन चच्छं ।
जहाँ अनन्त द्रव्य परजाय । एक बार सब झलकै आय ॥
पार्श्वपुराण, कलकत्ता, अधिकार 9, पृष्ठ 79
3. चक्षु अचक्षु अवधि अवधार । केवल ये दर्शन चार ॥
4. दर्शन चार आठ विधिज्ञान । ये व्यवहार चिन्ह जी जान ॥
निहचै रूप चिदात्म येह । शुद्ध ज्ञान दर्शन गुन गेह ॥ वही पृष्ठ 79
5. कल्पित असद्भूत व्यवहार । तिस नय घटपटादि करतार ॥
अनुपचरित अजथारथ रूप । कर्मपिंड करता चिद्रूप ॥
अब अशुद्ध निहचै बल धरै, तब यह राग दोष को करै ॥
यही शुद्ध निहचै कर जीव । शुद्ध भाव करतार सदीव ॥
पार्श्वपुराण, कलकत्ता, अधिकार 9, पृष्ठ 79

भोगतृप्त्य - व्यवहार नय से जीव सुख - दुःखरूप पुद्गलकर्म का फल भोगता है और निश्चय नय से अपने (चैतन्य भाव) परमार्थ सुख का भोक्ता है ।¹

देह प्रमाण - व्यवहार नय से जीव शरीर के प्रमाण प्रदेश वाला है तथा निश्चयनय से लोकाकाश के समान प्रदेशवाला है ।² व्यवहारनय से जीव संकोच विस्तार शक्ति के कारण समुद्घात अवस्था को छोड़कर छोटे और बड़े शरीर के प्रमाण में रहता है । जैसे दीपक का प्रकाश भाजन (पात्र) के प्रमाण रहता है ।³

समुद्घात - मूल शरीर को छोड़े बिना कार्माण एवं तैजस सहित आत्मप्रदेशों का शरीर के बाहर निकलना समुद्घात कहलाता है । समुद्घात के सात भेद हैं - वेदना, कषाय, विक्रिया, मारणान्तिक, तैजस, आहारक तथा केवली समुद्घात । अधिक दुःख होने पर (मूल शरीर को छोड़े बिना) जीव के प्रदेशों का बाहर निकलना वेदना समुद्घात है । तीव्र क्रोधादि कषाय के कारण शत्रु का नाशदि करने जीव के प्रदेशों का बाहर निकलना कषाय समुद्घात है । अनेक विक्रिया के लिए देव और नारकी जीवों के आत्मप्रदेशों का बाहर निकलना विक्रिया समुद्घात है । किसी जीव के मृत्यु के समय (मूल शरीर को न छोड़कर) अन्य जन्मस्थान (अगली बँधी हुई आयु के स्थान) को स्पर्श करने के लिए आत्मप्रदेशों का बाहर निकलना मारणान्तिक समुद्घात है । अनिष्टकारक पदार्थों को देखकर मुनियों के मन में क्रोध उत्पन्न होने से उनके बाँये कंधे से बारह योजन लम्बा और नौ योजन चौड़ा बिलावाकार सिन्दूरी रंग का पुतला निकलता है, जो उस व्यक्ति या वस्तु एवं नगर सहित साधु का भी नाश कर देता है, वह अशुभ तैजस कहलाता है । जगत को रोग, दुर्भिक्ष आदि से दुःखी देखकर मुनि को दयाभाव उत्पन्न होने से जगत का दुःख दूर करने के लिए मूल शरीर को छोड़े बिना ही तपोबल द्वारा दाहिने कंधे से पुरुषाकार सफेद पुतला निकलता है और दुःख दूर करके फिर अपने शरीर में प्रवेश करता है, उसे शुभ तैजस

1. प्राणी सुख दुःख आप, भुगते पुद्गल कर्म फल ।

यह व्यवहारी छाप, निहचै निज सुख भोगता ॥

पार्श्वपुराण, कलकत्ता, अधिकार 9, पृष्ठ 79

2. देह मात्र व्यवहार कर, कबो ब्रह्म भागवान ।

दरबित नय की दृष्टि सों, लोक प्रदेश समान ॥

पार्श्वपुराण, कलकत्ता, अधिकार 9, पृष्ठ 79

3. वही अधिकार 9, पृष्ठ 79

कहते हैं । छोड़े गुणस्थानवर्ती परमक्रुद्धिधारी किसी मुनि के तत्त्व में शंका होने पर अपने तपोबल द्वारा मूल शरीर को छोड़े बिना मस्तक से एक हाथ प्रमाण पुरुषाकार स्फटिक की तरह स्वच्छ और मनोहर शुभ पुतला निकलता है । वह केवली या श्रुतकेवली के पास जाकर दर्शन करके शंका-निवारण करके पुनः अपने स्थान में प्रवेश करना आहारक समुद्घात है । केवल ज्ञान उत्पन्न होने के बाद मूल शरीर को छोड़े बिना दंड, कपाट, प्रतर और लोकपूरण क्रिया करते हुए केवली के आत्मप्रदेशों का फैलना केवली-समुद्घात है । मार्गान्तिक और आहारक समुद्घात एक दिशा में होते हैं तथा शेष पाँच समुद्घात सभी दिशाओं में हो सकते हैं ।¹

संसारित्व और सिद्धत्व - संसारी जीव स्थावर और त्रस - दो प्रकार के होते हैं । उनमें पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, और वनस्पति- ये एक इन्द्रिय वाले स्थावर जीव हैं और दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चार इन्द्रिय, और पाँच इन्द्रिय- ये चार प्रकार के चलने-फिरने वाले त्रस जीव हैं । संख, सीप, कोड़ी, कृमि, जोक इत्यादि दो इन्द्रिय, चीटी, दीमक, जूँ इत्यादि तीन इन्द्रिय, मक्खी, खटमल, भौरा आदि चार इन्द्रिय, देव, नारकी, मनुष्य तथा पशु पाँच-इन्द्रिय जीव हैं । पंचेन्द्रिय जीव मनसहित (संज्ञी) और मनरहित (असंज्ञी) - दो प्रकार के होते हैं । इस प्रकार बादर (स्थूल) और सूक्ष्म एकेन्द्रिय, दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चार इन्द्रिय, संज्ञी पंचेन्द्रिय और असंज्ञी पंचेन्द्रिय - ये सातों पर्याप्त और अपर्याप्त दो प्रकार के होकर चौदह जीव समास होते हैं ।² आहार, शरीर, इन्द्रिय, स्वासोच्छ्वास, भाषा और मन-ये छह पर्याप्तियाँ हैं । एकेन्द्रिय जीव के चार, दो इन्द्रिय से असंज्ञी पंचेन्द्रिय तक के जीवों के पाँच और संज्ञी पंचेन्द्रिय जीवों के छह पर्याप्तियाँ होती हैं ।

संसारी जीव के चौदह गुणस्थान³ और चौदह मार्गणास्थान⁴ होते हैं ।

1. पार्श्वपुराण, कलकता, अधिकार 9, पृष्ठ 80-81

2. पार्श्वपुराण, कलकता, अधिकार 9, पृष्ठ 81

3. मिथ्यात्व, सासादन, मिश्र, अद्वित सभ्यत्व, देशसंयत, प्रमत्तसंयत, अप्रमत्तसंयत, अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण, सूक्ष्म सांपराय, उपशान्तमोह, क्षीण-मोह, संजोग केवली, अयोग केवली — ये 14 गुणस्थान हैं ।

4. गति, काय, इन्द्रिय, कषाय, योग, वेद, ज्ञान, संयम, दर्शन, लेश्या, धव्यत्व, सभ्यत्व, संज्ञित्व और आहार— ये 14 मार्गणास्थान हैं ।

अशुद्ध निश्चयनय से जीव संसारी है और द्रव्यदृष्टि (शुद्ध निश्चयनय) से सिद्ध है। कर्मसंयोग से जीव संसारी है और कर्म के नाश होने पर सिद्ध होता है। सिद्ध आठ गुणों से युक्त, सम्पूर्ण कर्ममल से रहित, उत्पत्ति-विनाश-स्थिति-सहित तथा चरमदेह से किञ्चिन्मूढ, पुरुषाकार, लोक के अग्रभाग में विराजमान होते हैं।¹

अमूर्तिक - पाँच वर्ण, पाँच रस, दो गंध, और आठ स्पर्श-इन बीस गुणों से रहित जीव अमूर्तिक है। यही जीव अनादि-कालीन कर्मबन्ध के संयोग के कारण कथंचित् मूर्तिक भी कहा जाता है। निश्चयनय से जीव अमूर्तिक है और व्यवहार नय से मूर्तिक है।²

उर्ध्वगमन - प्रकृति, प्रदेश, स्थिति और अनुभाग बन्ध से रहित आत्मा लेपरहित जलतुंबी की तस्ह उर्ध्वगमन करता है, जब कि कर्मबन्ध सहित जीव तिर्यक्गमन भी करता है।³

ज्ञान-दर्शन स्वाभावी आत्मा को जीव तत्त्व कहते हैं। आत्मा में ज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्य, श्रद्धा, चरित्र आदि गुण होते हैं। सब गुणों में निरन्तर परिवर्तन हुआ करता है, जिसे पर्याय या अवस्था कहते हैं। अवस्था की दृष्टि से आत्मा के तीन भेद किये जाते हैं- बहिरात्मा, अन्तरात्मा और परमात्मा।

जिसे जीवादि सात तत्त्वों या नौ पदार्थों का सही ज्ञान व श्रद्धान नहीं है, आत्मानुभूति प्राप्त नहीं हुई है तथा जो शरीरादि अजीव पदार्थों एवं रागादि रूप आस्त्रावादि में अपनापन मानता है व उनका कर्ता भोक्ता बनता है, वह आत्मा ही बहिरात्मा है।

जो आत्मा भेदविज्ञान के बल से आत्मा को देहादि और रागादि से भिन्न ज्ञान-दर्शन स्वाभावी जानता, मानता व अनुभव करता है वह ज्ञानी सम्यग्यदृष्टि आत्मा ही अन्तरात्मा है।

यही अन्तरात्मा गृहस्थावस्था त्यागकर शुद्धोपयोगरूप मुनिधर्म अंगीकार कर निजस्वभाव साधन द्वारा आत्मतल्लीनता की परम अवस्था में पूर्ण वीतरागी

1. पार्श्वपुराण, कलकत्ता, अधिकार 9, पृष्ठ 81

2. पार्श्वपुराण, कलकत्ता, अधिकार 9, पृष्ठ 82

3. पार्श्वपुराण, कलकत्ता, अधिकार 9, पृष्ठ 82

होकर सर्वज्ञता प्राप्त कर लेता है। वह परमात्मा कहलाता है। परमात्मा के अनंत-दर्शन, अनंतसुख और अनंतवीर्य प्रकट हो जाते हैं।¹

बहिरात्मा, अन्तरात्मा और परमात्मा अथवा आस्रव-बन्ध, सवंबर निर्जरा और मोक्ष तत्त्व तो परिवर्तनशील तत्त्व हैं तथा इन सभी पर्यायों में विद्यमान सामान्य ज्ञानादिरूप स्थिर तत्त्व है वह आत्मतत्त्व या जीवतत्त्व है। यह जीव तत्त्व आस्रवादि नौ तत्त्वरूप होकर भी अपने एकत्व को नहीं छोड़ता है।²

दृष्टि (श्रद्धा) की अपेक्षा वह जीव तत्त्व ही उपादेय है। उसे न जानने, न मानने एवं न अनुभवने से आत्मा बहिरात्मा रहता है तथा जानने, मानने एवं अनुभवने से अन्तरात्मा बन जाता है तथा उसी में पूर्णतः लीन होने पर परमात्मा हो जाता है। अतः दृष्टि की अपेक्षा तो उपादेय एक सामान्य जीवतत्त्व ही है, किन्तु प्रगट करने की दृष्टि से अन्तरात्मा और परमात्मा भी उपादेय है। बहिरात्मा-दशा सर्वथा हेय है। उस परम उपादेय ज्ञान-दर्शन स्वभावी एक शुद्ध निज आत्मतत्त्व (जीवतत्त्व) में उपयोग को स्थिर करने से, उसमें ही लीन रहने से सर्व आस्रवादि विकारीभाव नष्ट होते हैं तथा अतीन्द्रिय आनन्दरूप मोक्षदशा प्रगट होती है।³

अजीवतत्त्व कथन - ज्ञान-दर्शन स्वभाव से रहित तथा आत्मा से भिन्न समस्त द्रव्य अजीव हैं।⁴ पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल - ये पाँच अजीव या जड़तत्त्व के भेद हैं।⁵

1. योगसार और परमात्मप्रकाश, योगीन्दुदेवकृत पर आश्रित

2. नवतत्त्वगतत्वेऽपि यदेकत्वं न मुंचति

- समयसार कलश, अमृतचन्द्र आचार्य कलश 7

3. अहमिकको खलु सुद्धो गिम्ममओ णाणदंसणसमग्गो ।

तम्मि ठिओ तच्चित्तो सव्वे एदे खयं णेमि ॥

समयसार, कुन्दकुन्दाचार्य गाथा 73

4. 'तद्विपरीतलक्षणोऽजीवः'

सर्वार्थसिद्धि अध्याय 1 सूत्र 4 की टीका ।

5. पुद्गल धर्म अधर्म नभ, काल नाम अवधार ।

ये अजीव जड़तत्त्व के, भेद पंच परकार ॥

पार्श्वपुराण, कलकता, अधिकार 9, पृष्ठ 82

पुद्गलद्रव्य कथन - जिसमें स्पर्श, रस, गन्ध और वर्ण पाये जाते हैं; वह पुद्गल है।¹ वह पुद्गल अणु और स्कन्ध के भेद से दो प्रकार का है। पुद्गलद्रव्य रूपी है और शेष चार द्रव्य अरूपी हैं। अणुरूप पुद्गल का छेदन भेदन आदि नहीं किया जा सकता है। उसका अग्नि जलादि के संयोग से कभी नाश नहीं हो सकता है। वह आदि मध्य अवसान से रहित अविभागी है। शब्द से रहित होने पर भी शब्द का कारण है। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु आदि सभी का कारण है। अनेक कारण पाकर इसके वर्णादि पलट जाते हैं।²

पाँच वर्ण, पाँच रस, दो गन्ध और आठ स्पर्श - ये बीस पुद्गल के गुण हैं।³ दो या दो से अधिक अणुओं के मिलने से स्कन्ध होता है। स्कन्ध के अति स्थूल या स्थूल-स्थूल, स्थूल, स्थूल-सूक्ष्म, सूक्ष्म-स्थूल, सूक्ष्म और सूक्ष्म-सूक्ष्म - ये छह भेद हैं।⁴ जिनके टुकड़े-टुकड़े होने के बाद फिर मिलना नहीं होता - ऐसे मिट्टी, ईंट, लकड़ी, पत्थर इत्यादि अति स्थूल या स्थूल-स्थूल पुद्गल हैं। जो छिन्न-भिन्न होने के बाद फिर मिल जाते हैं - ऐसे घी, तेल, पानी आदि स्थूल पुद्गल हैं। जो देखने में स्थूल लगते हैं; परन्तु जिनको हाथ से पकड़ा नहीं जा सकता है, ऐसे धूप, चोंदनी आदि स्थूल-सूक्ष्म पुद्गल हैं। जो आँखों से दिखाई नहीं देते हैं, परन्तु जिसमें अनेक स्पर्श, रस, गन्ध आदि होते हैं वे सूक्ष्म-स्थूल पुद्गल हैं। अनेक प्रकार की कार्माण वर्गणाएँ जो इन्द्रियगोचर नहीं हैं, वे सूक्ष्म पुद्गल हैं। द्वयणुकादि अणुओं का बन्ध सूक्ष्म-सूक्ष्म पुद्गल है। इन छह प्रकार के पुद्गल स्कन्धों में पुद्गल के गुण स्पर्श रस वर्णादि सभी रहते हैं। यह सम्पूर्ण दृश्यमान लोक इन्हीं से निर्मित है। इस लोक में पुद्गल के अलावा अन्य कोई दृष्टिगोचर नहीं होता है। शब्द, बन्ध, छाया, अन्धकार, सूक्ष्म, स्थूल, भेद (खंड) संस्थान (आकार) उद्योत और आतप - ये दश पुद्गल की पर्याये हैं।⁵

धर्मद्रव्य कथन - जिस प्रकार मछली को चलने में जल कारण होता है; उसी प्रकार स्वयं चलते हुए जीवों और पुद्गलों के चलने में धर्मद्रव्य

1. 'स्पर्शरसगंधवर्णवन्तः पुद्गलः' - तत्त्वार्थसूत्र, उमास्वामी, अध्याय 5 सूत्र 23

2. पार्श्वपुराण, कलकत्ता, अधिकार 9, पृष्ठ 82

3. पार्श्वपुराण, कलकत्ता, अधिकार 9, पृष्ठ 82

4. पार्श्वपुराण, कलकत्ता, अधिकार 9, पृष्ठ 82

5. पार्श्वपुराण, कलकत्ता, अधिकार 9, पृष्ठ 82

निमित्त होता है। अथवा जो स्वयं चलते हुए जीवों और पुद्गलों के चलने में सहायक (निमित्त) है वह धर्मद्रव्य है।¹

अधर्मद्रव्य कथन - जिस प्रकार पथिक को ठहरने में वृक्ष की छाया निमित्त होती है, उसी प्रकार स्वयं ठहरते हुए जीवों और पुद्गलों के ठहरने में कारण अधर्मद्रव्य होता है। अथवा जो स्वयं ठहरते हुए जीवों और पुद्गलों को ठहरने में सहायक (निमित्त) है, वह अधर्मद्रव्य है।²

आकाशद्रव्य कथन - जो सब द्रव्यों को अवगाहन (स्थान) देता है, वह आकाश द्रव्य है। वह आकाश लोक और अलोक के भेद से दो प्रकार का है। जहाँ जीवादि पदार्थ रहते हैं; वह असंख्यात प्रदेशवाला लोकाकाश कहलाता है। इसके बाहर अनन्त अलोकाकाश है।³

कालद्रव्य कथन - असंख्यात प्रदेशी लोकाकाश के एक - एक प्रदेश पर एक - एक कलाणु रत्नों की राशि की तरह स्थित है। यह कलाणु हमेशा रहने वाला निश्चय काल द्रव्य है। वर्तना इसका लक्षण है और कभी इसका नाश नहीं होता है। समय, घड़ी, घण्टा आदि परिणामन लक्षण वाला व्यवहार काल है।⁴

1. जब जड़ जीव चलै सत भाय, धर्म दरब तब करत सहाय ॥
यथा भीन को जल आधार, अपनी इच्छा करत विहार ॥
पार्श्वपुराण, कलकत्ता, अधिकार 9, पृष्ठ 83
2. यों ही सहज कर चित होय, तब अधर्म सहकारी होय ।
ज्यों मग में पंथी को छाहिं, धिति कारन है बलसों नाहिं ॥
पार्श्वपुराण, कलकत्ता, अधिकार 9, पृष्ठ 83
3. जो सब द्रव्यन की अवकाश, देख सदा सो द्रव्य आकाश ।
ताके भेद दोय जिन कहे, लोक अलोक नाम सरदहे ॥
जहाँ जीवादि पदार्थ वास, असंख्यात प्रदेश निवास ।
लोकाकाश कहावै सोय, परै अलोक अनन्ता होय ॥
पार्श्वपुराण, कलकत्ता, अधिकार 9, पृष्ठ 83
4. लोक प्रदेश असंखे जहाँ, एक एक कलाणु तहाँ ।
रत्नराशिवत निवसै सदा, द्रव्य सरूप सुधिर सर्वदा ॥
बरतावन लक्षण गुण जास, तीन काल ताको नहिं नाश ।
समय घड़ी आदिक बहुभाय, ये व्यवहार काल पर्याय ॥
पार्श्वपुराण, कलकत्ता, अधिकार 9, पृष्ठ 83

इस प्रकार जीव तथा पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, काल - ये पाँच अजीव द्रव्य हैं। इन छह द्रव्यों के समुदाय को ही विश्व कहते हैं।¹ यह विश्व स्वनिर्मित है, इसे बनाने वाला कोई नहीं है। भगवान इसके जानने देखने वाले हैं, बनाने वाले नहीं।²

पंचास्तिकाय - विवरण - इन छह द्रव्यों में काल द्रव्य को छोड़कर शेष पाँच द्रव्य "पंचास्तिकाय" कहलाते हैं। अस्ति का अर्थ "है" तथा "काय" का अर्थ "बहुप्रदेशी" है। जो द्रव्य बहुप्रदेशी है, वे अस्तिकाय हैं।³

कालद्रव्य बहुप्रदेशी नहीं है, अतः वह अस्तिकाय नहीं है। जीव, धर्म, और अधर्म लोकाकाश के बराबर असंख्यात प्रदेश वाले हैं। आकाश अनन्तप्रदेशी है। पुद्गल संख्यात, असंख्यात और अनन्त - तीनों प्रकार के प्रदेश वाला होता है। कालाणु एक प्रदेशवाला है; इसलिए उसे "अस्ति" होने पर भी "काय" (बहुप्रदेश) रहित मानना चाहिए।⁴ यद्यपि पुद्गल-परमाणु भी एक प्रदेशी है; परन्तु उसमें स्निग्धरुक्षित्व गुण होने से परस्पर मिलकर स्कन्धरूप होने की शक्ति है इसलिए वह "काय" (बहुप्रदेशी) कहा गया है। जब कि कालाणु असंख्य हैं; परन्तु वे पृथक् - पृथक् होकर ही रहते हैं, आपस में कभी मिलते नहीं हैं; इसलिए वे "अस्ति" होकर भी "कायवन्त" नहीं कहे जा सकते हैं।⁵

1. द्वादशानुप्रेक्षा आचार्य कुन्दकुन्द गाथा 39

2. छहढाला, पांचपी ढाल, लोक भावना का छन्द

3. बहु परदेशी जो द्रव्य, कायवन्त सो जान।

तातै पंच अस्तिकाय है, काय काल बिन मान ॥

पार्श्वपुराण, कलकत्ता, अधिकार 9, पृष्ठ 83

4. जीव धर्म अधर्म द्रव्य ये, तीनों कहें लोक परमान।

असंख्यात परदेशी राजै, नभ अन्तर परदेशी जान ॥

संख असंख अनन्तप्रदेशी, त्रिविध रूप पुद्गल पहिचान।

एक प्रदेश धरै कालाणु, तातै काल काय बिन मान ॥

पार्श्वपुराण, कलकत्ता, अधिकार 9, पृष्ठ 83-84

5. पार्श्वपुराण, कलकत्ता, अधिकार 9, पृष्ठ 84

प्रदेश तथा उसकी शक्ति का कथन

आकाश के जितने स्थान को एक अविभागी पुद्गल परमाणु रोकता है, उसे "प्रदेश" कहते हैं। वह एक प्रदेश कालाणु, धर्म, अधर्म, जीव, पुद्गल आदि सभी द्रव्यों को स्थान देता है।¹

आकाश के एक प्रदेश में धर्म, अधर्म, काल, असंख्य प्रदेशी जीव और अनन्त पुद्गल कैसे आ जाते हैं ?²

जिस प्रकार एक मंदिर में अनेक दीपकों का प्रकाश आने में कोई बाधा नहीं है; उसी प्रकार आकाश के एक प्रदेश में अनेक द्रव्य निराबाधरूप से निवास करते हैं।³

आस्रवतत्त्व कथन - कर्मों के आने को आस्रव कहते हैं। उसके दो भेद हैं - द्रव्य आस्रव और भाव आस्रव। मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग - ये जीव के विकारी परिणाम हैं, इन्हीं को भावास्रव कहते हैं। इन चेतन परिणामों के अनुसार आत्म प्रदेशों में कर्म के योग्य पुद्गल (कार्माण) वर्गणाओं का आना, द्रव्यास्रव है।⁴

बन्धतत्त्व कथन - जिन रागादि परिणामों से जीव बंधता है, उन रागादि विकारी भावों को भावबन्ध जिनदेव ने कहा है। उन भावों के कारण आत्मप्रदेशों

1. पार्श्वपुराण, कलकत्ता, अधिकार 9, पृष्ठ 84

2. पार्श्वपुराण, कलकत्ता, अधिकार 9, पृष्ठ 84

3. बहुप्रदीप परकाश, यथा एक मंदिर विषै।

लहै सहज अवकाश, बाधा कछु उपजै नहीं ॥

त्यो ही नभ प्रदेश में, पुद्गल बंध अनेक।

निराबाध निवसै सही, ज्यो अनन्त त्यो एक ॥

पार्श्वपुराण, कलकत्ता, अधिकार 9, पृष्ठ 84

4. जो कर्मन को आवागमन, आस्रव कहिये सोय।

ताके भेद सिद्धान्त में, पावित दरवित होय ॥

मिथ्या अविरत योग कषाय। और प्रमाद दशा दुखदाय ॥

ये सब चेतन को परिणाम। भावास्रव इन्हीं को नाम ॥

तिनहीं भावन के अनुसार। दिगवरती पुद्गल तिहि बार ॥

आवै कर्म भाव के जोग। सो दरवित आस्रव अमनोग ॥

पार्श्वपुराण, कलकत्ता, अधिकार 9, पृष्ठ 84

पर पूर्वकाल में बैठे पुराने कर्मों (कार्माण वर्गणाओ) के साथ नये कर्मों का बंध जाना, सो द्रव्यबन्ध जानना चाहिए । ¹

संवरतत्त्व कथन - आस्रव को रोकने के कारणरूप आत्मा के शुद्धभावों को भावसंवर तथा उनके निमित्त से नये कर्मों का आना रुक जाना द्रव्य संवर है । ² पाँच व्रत, पाँच समिति, तीन गुप्ति, दशधर्म, बारह भावनाये, बाईस परीषहों का जीतना, तथा पाँच प्रकार का चरित्र - ये सब भावसंवर के भेद हैं । इन सबसे कर्म उसी प्रकार आना रुक जाते हैं; जिस प्रकार नाली के मुँह पर डाट लगाने से पानी आना रुक जाता है । ³

व्रत आदि का आचरण करने वाले शुभोपयोगी जीव के पापास्रव का संवर (रुक जाना) होता है, जबकि वीतरागभाव रूप शुद्ध - उपयोग का आचरण करने वाले साधु के पुण्य और पाप दोनों का संवर होता है । ⁴

निर्जरातत्त्व कथन - तप के बल से कर्मों की स्थिति का कम हो जाना अर्थात् बिना फल दिये कर्मों का खिर जाना (अविपाक निर्जरा) तथा फल देकर कर्मों का खिर जाना (सविपाक निर्जरा) जिन शुद्ध वीतरागी भावों से होता है उन शुद्ध भावों को (आंशिक शुद्धि की वृद्धि) को भाव निर्जरा कहते हैं । संवरपूर्वक निर्जरा ही मोक्षदायी है । बँधे हुए कर्मों का (आंशिक) खिर जाना

1. रागादिक परिणाम जिनसों चेतन बंधत है ।

तिन भावन को नाम, भावबन्ध जिनवर कह्यो ॥

जो चेतन परदेश पै, बैठे कर्म पुरान ।

नये कर्म तिनसों बंधै, दरब बन्ध सो जान ॥

पार्श्वपुराण, कलकत्ता, अधिकार 9, पृष्ठ 84

2. आस्रव अवरोधन हेतुभाव, सो जान भावसंवर सुभाव ।

जो दरबित आस्रव शुद्ध रूप, सो होय दरब संवर सरूप ॥

पार्श्वपुराण, कलकत्ता, अधिकार 9, पृष्ठ 84

3. व्रत पंच समिति पांचों सुकर्म । वर तीन गुप्ति दश भेद धर्म ॥

बारह विधि अनुप्रेक्षा विचार । बाईस परीषह विजय सार ॥

पुनि पांच जात चरित अशेष । ये सर्वभाव संवर विशेष ॥

इनसों कर्मास्रव रुके एम । परनाली के मुँह डाट जेम ॥

पार्श्वपुराण, कलकत्ता, अधिकार 9, पृष्ठ 84-85

4. पार्श्वपुराण, कलकत्ता, अधिकार 9, पृष्ठ 85

द्रव्य निर्जरा है। इस प्रकार जिनशासन में कहा गया है। सम्यग्दृष्टि इन सबका सच्चा श्रद्धान करता है।¹

मोक्षतत्त्व कथन - जो पूर्ण अभेद रत्नत्रय स्वरूप (सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र्य रूप) वीतराग भाव है, वह भाव मोक्ष है तथा द्रव्य कर्मों का जीव से पूर्णतः छूट जाना द्रव्य मोक्ष है। यह मोक्ष कभी नष्ट न होने वाला अर्थात् अविनाशी है।²

जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा और मोक्ष - ये सात तत्त्व हैं। इन सात तत्त्वों में पुण्य और पाप मिलकर नौ पदार्थ कहे जाते हैं। वैसे सात तत्त्वों में पुण्य - पाप, आस्रव तथा बन्ध तत्त्व में गर्भित हो जाते हैं।³

सात तत्त्वों में संसार के कारणरूप आस्रव - बन्ध तत्त्व हेय हैं अथवा बहिरात्मपना हेय है। मोक्ष के कारणरूप संवर - निर्जरा एकदेश उपादेय हैं अथवा अन्तरात्मा कथंचित् (आंशिक प्रकट करने के लिए) उपादेय है। मोक्ष अथवा परमात्मदशा प्रगट करने के लिए सर्वथा उपादेय है। ज्ञानानन्द स्वभावी शुद्ध त्रिकाली ध्रुव सामान्य निजात्मतत्त्व या जीवतत्त्व आश्रय लेने के लिए परम उपादेय है। शेष अन्य जीव तथा अजीव आदि ज्ञेय हैं। इस प्रकार हेय, उपादेय तथा ज्ञेयतत्त्व जानना चाहिए।⁴

निश्चयनय और व्यवहारनय -

अनेकान्तात्मक वस्तुस्वरूप को समझने के लिए जिस स्याद्वाद का वर्णन पूर्व में किया है, उसी सन्दर्भ में (किसी अपेक्षा कथन करने के संबंध में)

1. तप बल कर्म तथा धिति पात । जिन भावों रस दे शिर जात ॥
तेई भाव भाव निर्जरा । संवर पूरव है शिवकरा ॥
बन्धे कर्म छूटै जिस बार । दरब निर्जरा सो निर्धार ॥
इहि विधि जिन शासन में कहिया । समकितवंत सांच सरदहिया ॥
पार्श्वपुराण, कलकत्ता, अधिकार 9, पृष्ठ 85
2. जो अभेद रत्नत्रय भाव, सोई भाव मोक्ष ठहराव ।
जीव कर्म सो न्यारा होय, दरब मोक्ष अविनाशी सोय ॥
पार्श्वपुराण, कलकत्ता, अधिकार 9, पृष्ठ 85
3. पार्श्वपुराण, कलकत्ता, अधिकार 9, पृष्ठ 85
4. पार्श्वपुराण, कलकत्ता, अधिकार 9, पृष्ठ 77

प्रमुखरूप से एक अपेक्षा निश्चयनय की तथा एक अपेक्षा व्यवहारनय की होती है। सामान्यतः सम्पूर्ण जिनागम का कथन निश्चयनय और व्यवहारनय द्वारा प्रतिपादित होकर स्याद्वादरूप हुआ है। स्याद्वाद के अन्तर्गत आने पर भी निश्चयनय और व्यवहारनय का पृथक् प्रतिपादन जिनमत में हुआ है; इसीलिए भूधरदास भी उनका ज्ञान आवश्यक मानते हैं :-

दोय पक्ष जिनमत विधै, नय निश्चय व्यवहार ।

तिन बिन लहै न जीव, यह शिव सरवर की सार ॥ ¹

पुनर्जन्म एवं कर्मसिद्धान्त —

जीवादि छह द्रव्यों, सात तत्त्वों आदि के वर्णन करने के अतिरिक्त भूधरदास ने अपने साहित्य में पुनर्जन्म एवं कर्मसिद्धान्त का विवेचन भी किया है। यद्यपि मूलतः सभी जीव अनन्तशक्तिसम्पन्न समान हैं; परन्तु व्यवहारतः जो भेद दृष्टिगोचर हो रहे हैं, उन सबमें पूर्वजन्मकृत कर्म या संस्कार कारण हैं। वस्तुतः पूर्वकृतकर्मों या संस्कारों में कोई भेद नहीं है। वे दोनों आपस में पर्यायवाची हैं। जीव अनादि अनन्त स्वयंसिद्ध है, उसका अन्य कोई कर्ता धर्ता हर्ता नहीं है; परन्तु वह स्वयं अपने किये कर्मों के अनुसार सुख - दुःख, जीवन - मरण, हानि-लाभ, यश-अपयश आदि भोगता है तथा विभिन्न गतियों या योनियों में जन्म-मरण करता रहता है। जीव आयु आदि कर्मों से आवृत्त होकर पूर्व गति या योनि के शरीर को छोड़ता है तथा अगली गति या योनि के शरीर को धारण करता है। एक गति को छोड़कर दूसरी गति में जन्म लेना, फिर उसे छोड़कर अगली गति में जन्म लेना- इस प्रकार बार-बार जन्म लेना ही पुनर्जन्म है। दूसरे शब्दों में कर्मबन्धनयुक्त जीव का कर्मानुसार विभिन्न गतियों या योनियों में जन्म लेना, विभिन्न पर्यायों को प्राप्त करना ही पुनर्जन्म है। जब कोई जीव अपने पुरुषार्थ द्वारा अपने मूलस्वभाव को पहिचानकर उसमें ही लीन होकर आगामी कर्मबन्धन नहीं करता है तथा पूर्वकृत समस्त कर्मों का नाश कर देता है, तब वह जन्म मरण के चक्र से छूटकर मुक्त हो जाता है।

कवि भूधरदास ने जहाँ एक ओर पुनर्जन्म के समर्थन में पार्श्वनाथ,¹ ऋषभदेव,² चन्द्रप्रभु,³ शन्तिनाथ,⁴ नेमिनाथ⁵ आदि तीर्थंकरों, कमठ,⁶ राजा यशोधर व रानी चन्द्रमति,⁷ रुद्रदत्त पुरोहित⁸ आदि के पूर्वजन्मों या पूर्वभवों का उल्लेख किया गया है; वहीं दूसरी ओर प्रत्येक जीव अपने कर्मों के अनुसार ही फल भोगता है अथवा जो जैसा कर्म करता है, उसे वैसा ही फल प्राप्त होता है- यह कर्मसिद्धान्त भी प्रतिपादित किया है। कर्मसिद्धान्त के समर्थन में भूधरदास कहते हैं -

जैसी करनी आचरै, तैसों ही फल होय ।

इन्द्रायन ली लेलि कै, अलग = सागै कोश ॥⁹

इस प्रकार भूधरदास ने अपने साहित्य में जैनदर्शन के सभी प्रमुख विषय-जगत् (विश्व), जीव, अजीव (पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल) आस्रव - बन्धरूप संसार के कारणतत्त्व या मुक्तिमार्ग के बाधक तत्त्व, संवर-निर्जरारूप संसार के घातक या मोक्षमार्ग के साधक तत्त्व, मोक्षरूप साध्यतत्त्व, वस्तु स्वरूपात्मक अनेकान्त तथा उसका प्रतिपादक स्याद्वाद, निश्चयनय एवं व्यवहारनय, सप्तभंगी, पंचास्तिकाय, प्रदेश एवं उसकी सामर्थ्य, हेय, ज्ञेय, उपादेयतत्त्व, पुनर्जन्म एवं कर्मसिद्धान्त आदि का वर्णन किया है। अतः भूधरदास के दार्शनिक विचारों के अन्तर्गत उपर्युक्त सभी का विस्तृत विवेचन किया गया है।

धार्मिक विचार

भूधरदास के साहित्य में जैनधर्म का स्वर प्रतिध्वनित होता है। यद्यपि उनका साहित्य धार्मिकता से ओत-प्रोत है, फिर भी उसमें साहित्यिक सौष्ठव

1. पार्श्वपुराण, कलकत्ता, भूधरदास पृष्ठ 90 तथा जैनशतक छन्द 86

2. जैनशतक, भूधरदास छन्द 82

3. जैनशतक, भूधरदास छन्द 83

4. जैनशतक, भूधरदास छन्द 84

5. जैनशतक, भूधरदास छन्द 85

6. पार्श्वपुराण, कलकत्ता, अधिकार 9 पृष्ठ 90-91

7. जैनशतक, भूधरदास छन्द 87

8. निशि भोजन भुंजन कथा- भूधरदास, प्रकीर्ण साहित्य

9. पार्श्वपुराण, कलकत्ता, पृष्ठ 8

दर्शनीय है। वैसे भी किसी धार्मिक रचना का साहित्य होने के साथ विरोध नहीं है इसीलिये आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी जैसे मनीषी विद्वान समस्त धार्मिक एवं आध्यात्मिक साहित्य को काव्य की सीमा में स्वीकार करते हुए निर्देश देते हैं—
“धार्मिक प्रेरणा या आध्यात्मिक उपदेश होना काव्यत्व का बाधक नहीं समझा जाना चाहिए।”¹

मूधरदास के धार्मिक विचारों का आधार सामान्यतः जैनधर्म ही है, अतः सर्वप्रथम “जैनधर्म” का अर्थ समझना आवश्यक है।

जैनधर्म -

जैनधर्म दो शब्दों से मिलकर बना है— प्रथम “जैन” और द्वितीय “धर्म”। “जैन” शब्द “जिन” से बना है। “जिन” का अर्थ है “जीतने वाला।” जिसने रागद्वेषदि विकारों को जीता, इन्द्रियों और मन को जीता, ईश्वररूपी शत्रुओं को जीता; वही “जिन” है। “जिन” का बताया हुआ या कहा हुआ धर्म ही “जैनधर्म” है। “जिन” धर्म अर्थात् वस्तु के स्वभाव को बनाते नहीं, बताते हैं। उन्होंने अपने दिव्यज्ञान अर्थात् केवलज्ञान में जैसा वस्तु का स्वभाव देखा, वैसा ही अपनी दिव्यध्वनि द्वारा कहा। कोई स्वीकार करे या न करे - इससे उन्हें कोई सरोकार नहीं।

“जिन” कोई अवतार नहीं होते हैं, वे हम जैसे सामान्य प्राणियों में से ही बनते हैं। जैनधर्म के अनुसार प्रत्येक जीव में परमात्मा बनने की शक्ति निहित है अर्थात् प्रत्येक जीव “जिन” या परमात्मा बन सकता है। जो जीव अपने आत्मोन्मुखी पुरुषार्थ द्वारा मोह - राग - द्वेषादि भावकर्मों तथा ज्ञानावरणादि द्रव्यकर्मों पर विजय पा लेते हैं; वे जीव बहिरात्मपना छोड़कर “अन्तरात्मा” होकर परमात्मा अर्थात् “जिन” बन जाते हैं। “जिन” हो जाने पर वह जीव सर्वज्ञ और वीतराग हो जाता है, उसे सबका ज्ञान होता है और उसके अन्दर से राग-द्वेषादि का मूलोच्छेद हो जाता है। उस अवस्था में वह जो उपदेश देता है, वह सत्य, प्रामाणिक एवं श्रेष्ठ ही होता है; क्योंकि अप्रामाणिक एवं असत्य अज्ञानता एवं राग-द्वेषादि होने पर ही बोला जाता है। जब वह सब कुछ जानता है तथा राग - द्वेष से रहित हो गया है तो असत्य, अप्रामाणिक एवं बुरा क्यों कहेगा? अतः उसका उपदेश सच्चा, अच्छा एवं हितकारक ही होता है। इस

प्रकार "जिन" वीतरागी, सर्वज्ञ और हितोपदेशी होता है, इसे ही "सच्चा देव" कहते हैं तथा इसके द्वारा जो उपदेश दिया जाता है या जो सिद्धान्त प्रतिपादित किये जाते हैं, वही "जैनधर्म" कहलाता है। जैनधर्म की अन्य धर्मों से तुलना करते हुए भूधरदास ने जैनधर्म की अनेक विशेषताएँ बतलायी हैं, जो मूलतः द्रष्टव्य हैं।¹

धर्म के अंग विचार और आचार-

प्रत्येक धर्म के दो अंग होते हैं - विचार और आचार। विचारों के अन्तर्गत उस धर्म के वे सभी सिद्धान्त आ जाते हैं; जिन पर वह आधृत होता है। आचार के अन्तर्गत उस धर्म की पूजा, उपासना या आराधना की अनेक पद्धतियाँ, जप, तप, तीर्थ, व्रत, तिथि, त्यौहार, रीति-रिवाज, खान-पान आदि के तौर-तरीके आदि विधान सम्मिलित होते हैं। आचार व्यापक होता है, विचार भीतरी। इसी तरह आचार स्थूल होता है, विचार सूक्ष्म। विचार में चिन्तन और आचार में चारित्र्य (आचरण) आता है। विचार का सम्बन्ध दर्शन से और आचार का सम्बन्ध धर्म से होता है अथवा दर्शन विचार से तथा धर्म आचार से सम्बन्धित होता है। अतः दर्शन और धर्म अथवा विचार और आचार - दोनों में परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध है।

प्रायः प्रत्येक धर्म के धर्मप्रवर्तक ने न केवल आचार-रूप धर्म का उपदेश दिया; अपितु अपनी दृष्टि से वस्तु के स्वभावरूप धर्म का उपदेश भी दिया। इसलिए जिस प्रकार प्रत्येक धर्म की अपनी एक आचार संहिता है; उसी प्रकार उसका अपना एक दर्शन भी है। सामान्यतः दर्शन में आत्मा क्या है? परमात्मा (ईश्वर) क्या है? विश्व क्या है? परलोक क्या है? आदि प्रश्नों के उत्तर दिये रहते हैं। अर्थात् जहाँ दर्शन आत्मा, ईश्वर, जगत, कर्म, पुर्नजन्म, मोक्ष आदि के स्वरूप का विवेचन करता है, वहाँ धर्म आत्मा को परमात्मा या ईश्वर बनने का मार्ग बतलाता है। इसी प्रकार जब आचाररूप धर्म आत्मा को परमात्मा बनने का मार्ग बतलाता है; तब यह जानना आवश्यक हो जाता है कि आत्मा और परमात्मा क्या है या इनका स्वभाव क्या है? इन दोनों में अन्तर क्या और क्यों है? ये सब जाने बिना आचरण को सुधारने वाला उसी प्रकार लाभ नहीं उठा सकता या अपने उद्देश्य में सफल नहीं हो सकता, जिस प्रकार सोने के

1. जैनशतक, भूधरदास पद्य 93 से 105 तक

स्वभाव या गुण-धर्म से अनभिज्ञ व्यक्ति स्वर्ण-शोधन के प्रयत्न में सफलता प्राप्त नहीं कर सकता । जिस प्रकार सोने की पूर्ण शुद्धता दृष्टि में रखे बिना सोना शुद्ध नहीं किया जा सकता; उसी प्रकार शुद्धता दृष्टि में होने पर भी शुद्ध करने की विधि ज्ञात न होने से भी शुद्धता प्राप्त नहीं की जा सकती ।

मनुष्य के आचरण का मूल या आधार-शिला विचार ही हैं । विचार के अनुसार ही व्यक्ति का आचार होता है । उदाहरणार्थ - जो आत्मा, परलोक, ईश्वर, कर्म-फल आदि को नहीं मानता है, उसका आचार "खाओ, पीओ और मोज करो" अर्थात् भोगप्रधान ही होगा तथा जो मानता है कि आत्मा है, परलोक है, जीव अपने-अपने शुभाशुभ कर्मों के अनुसार फल भोगता है, इन कर्मों से ब्रूतवज मोक्ष भी प्राप्त किया जा सकता है; इसका आचार भोगप्रधान न होकर धर्मप्रधान ही होगा । अतः विचारों का मनुष्य के आचार (चारित्र) पर बड़ा गहरा प्रभाव पड़ता है । दर्शन विचारमूलक होता है अतः हेतुपूर्वक वस्तुस्वरूप की सिद्धि करते हुए सत्य का दिग्दर्शन कराना दर्शन का काम है । धर्म आचार-मूलक होता है अतः हृदय की पवित्रतापूर्वक आचरण या व्यवहार में शुद्धता लाना धर्म का काम है । धर्म और दर्शन का बड़ा गहरा सम्बन्ध है और एक के बिना दूसरे को नहीं समझा जा सकता है । "जैनधर्म" कहने से "जिन" देव के द्वारा कहे गये विचार और आचार-दोनों ग्रहण करना चाहिए ।

जैनधर्म के विचार और आचार किसी व्यक्ति विशेष, जातिविशेष, वर्ग या सम्प्रदाय विशेष के लोगों के लिए नहीं है । वे सबके लिए अर्थात् सार्वजनिक हैं । इसी प्रकार वे किसी काल-विशेष या स्थान-विशेष के लिए नहीं हैं; अतः सार्वकालिक और सार्वदेशिक या सार्वभौमिक हैं । दूसरे शब्दों में जैनधर्म एक सार्वजनिक, सार्वकालिक एवं सार्वभौमिक धर्म है ।

जैनधर्म के विचारों का मूल है स्याद्वाद और आचार का मूल है अहिंसा । न किसी के विचारों के साथ अन्याय हो और न किसी प्राणी के जीवन के साथ खिलवाड़ हो । सब सबके विचारों को समझें और सब सबके जीवनों की रक्षा करें । इस प्रकार व्यक्ति स्वातन्त्र्य तथा विचारस्वातन्त्र्य जैनधर्म के मूलतत्त्व हैं ।

जिन जो उपदेश देते हैं वह प्राणिमात्र के हित के लिए होता है । वे न केवल मनुष्यों के हित की बात करते हैं ; अपितु जंगम और स्थावर- सभी

प्राणियों के हित की बात करते हैं। उनका मूल मंत्र है "हिंस्यन् सर्वभूतानि" अर्थात् किसी भी प्राणी की हिंसा मत करो। वे न पशुओं तथा छोटे-छोटे जीव-जन्तुओं को बध्य मानते हैं और न मनुष्यों तथा बड़े-बड़े प्राणियों को अबध्य प्ररूपित करते हैं। वे न ब्राह्मण की पूजा करने का उपदेश देते हैं और न चाण्डाल से घृणा करने की बात करते हैं। उनकी वीतरागदृष्टि में सब बराबर हैं।

जैनधर्म किसी स्वयंसिद्ध, अवतार तथा पुस्तक को न मानकर अपने पुरुषार्थ से राग-द्वेष तथा अल्पज्ञता से छुटकारा पाने वाले वीतरागी सर्वज्ञ पुरुष को प्रमाण मानता है तथा उसी वीतरागी और सर्वज्ञ पुरुष के द्वारा कहे गये वचनों को या उनके कथनानुसार लिखे गये शास्त्रों को प्रमाण मानता है।

धर्म क्या है? वस्तु का स्वभाव एवं स्वाभाविक परिणमन धर्म है।

शाब्दिक व्युत्पत्ति के अनुसार जो धारण करता है अथवा जिसके द्वारा धारण किया जाता है, वह धर्म है। इस दृष्टि से प्रत्येक वस्तु को उसका स्वभाव ही धारण करता है अथवा प्रत्येक वस्तु अपने स्वभाव को ही धारण करती है। अतः वह स्वभाव ही उस वस्तु का धर्म है। जिस प्रकार अग्नि का उष्णता, पानी का शीतलता, नीबू का खटास, चीनी का मिठास स्वभाव है, उसी प्रकार जीव का जानना - देखना तथा पुद्गल का स्पर्श, रस गन्ध, वर्ण आदि स्वभाव हैं। ज्ञान, दर्शन आदि अनन्त-गुणों का पिण्ड ही आत्मा है। वे गुण ही आत्मा को धारण करते हैं अथवा आत्मा उन गुणों को धारण करता है; अतः वे आत्मा के स्वभाव हैं, धर्म हैं। इसी प्रकार स्पर्श, रस आदि पुद्गल के गुण हैं, वे ही उसे धारण करते हैं अथवा पुद्गल ही उन्हें धारण करता है; अतः वे ही पुद्गल के स्वभाव या धर्म हैं।

जिस प्रकार गुण वस्तु का स्वभाव है, उसी प्रकार गुणों का परिणमन भी वस्तु का स्वभाव है। गुणों का परिणमन दो प्रकार का होता है- स्वभाव के अनुकूल परिणमन तथा स्वभाव के प्रतिकूल परिणमन। अनुकूल परिणमन को स्वभाव पर्याय होने से धर्म तथा प्रतिकूल परिणमन को विभाव पर्याय होने से अधर्म कहते हैं।

जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल- इन छह द्रव्यों में जीव और पुद्गल स्वभाव और विभाव दोनों रूप से परिणमन करते हैं तथा शेष

चार द्रव्य मात्र स्वभावरूप ही परिणमन करते हैं, विभावरूप नहीं। जीव चेतन है, इसलिए उसमें ज्ञान है तथा दुःख दूर करने और सुख प्राप्त करने की इच्छा है तथा शेष पाँच अजीव हैं, इसलिए न तो उनमें ज्ञान है और न सुख-प्राप्ति व दुःख-निवारण की कोई इच्छा। अतः जीव के सुखी होने के लिए उसके सुख के कारणभूत स्वभाव तथा स्वभाव के अनुकूल परिणमन को वस्तु को स्वभाव होने से धर्म कहते हैं।

आत्मा का त्रैकालिक स्वभाव ज्ञानानन्द है। उस ज्ञानानन्द स्वभाव को जानने, मानने और अनुभवने का नाम ही धर्म है। इससे ही सच्चा सुख या निराकुलता रूप सुख प्राप्त होता है, संसार के दुःखों एवं कर्मों से छुटकारा मिलता है। आचार्य समन्तभद्र ने कहा है —

देशयमि समीचीनं धर्मं कर्मनिवर्हणम् ।

संसारदुःखतः सत्त्वान्, यो धरत्युत्तमे सुखे ॥ ¹

मैं कर्मों का नाश करने वाले उस समीचीन धर्म को कहूँगा, जो प्राणियों को संसार के दुःखों से छुड़ाकर उत्तम सुख में धरता है अर्थात् स्थापित करता है।

धर्म का आचरण करने की प्रेरणा देते हुए तथा उपादेयता बतलाते हुए आचार्य गुणभद्र का कथन है—

पापात् दुःखं धर्मात्सुखमिति सर्वजनसुप्रसिद्धम् ।

तस्मात् विहाय पापं सुखार्थी धर्मं सदा आचरतु ॥ ²

पाप से दुःख होता है, धर्म से सुख होता है—यह सर्वजनों में भले प्रकार प्रसिद्ध है; इसलिए सुख प्राप्त करने के इच्छुक व्यक्ति को पाप छोड़कर धर्म का आचरण करना चाहिए।

धर्म-सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यग्चारित्र -

आत्मा का स्वभाव शुद्ध, आनन्द और वीतरागरूप है। उसकी सच्ची श्रद्धा सम्यग्दर्शन, उसका यथार्थ जानना सम्यग्ज्ञान, और त्रिकाली शुद्ध स्वभाव

1. रत्नकरण्डश्रावकाचार- समन्तभद्राचार्य श्लोक 2

2. आत्मानुशासन - गुणभद्राचार्य श्लोक

में लीन रहना ही सम्यग्चारित्र है । ¹ सम्यग्दर्शनादि स्वभाव पर्याय होने से धर्म कहे गये हैं । रत्नकरण्डश्रावकाचार में आचार्य समन्तभद्र ने लिखा है कि-

सददृष्टिज्ञानवृत्तानि धर्मं धर्मेश्वराः विदुः ।

यदीयप्रत्यनीकानि भवन्ति भवपद्धतिः ॥²

धर्म के ईश्वर तीर्थंकरदेव ने सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र को धर्म तथा इसके विपरीत मिथ्यादर्शन-ज्ञान-चारित्र को संसार की परम्परा को बढ़ाने वाला अधर्म कहा है ।

सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र को "रत्नत्रय" कहा जाता है तथा रत्नत्रय को धर्म और मोक्ष का मार्ग प्ररूपित किया जाता है । उमास्वामी तत्त्वार्थसूत्र, अपरनाम मोक्षशास्त्र में लिखते हैं -

"सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः" ³

सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यग्चारित्र - ये तीनों मिलकर एक मोक्ष का मार्ग है ।

इन तीनों में भी सम्यग्दर्शन को धर्म का मूल "दंसणमूलो धम्मो"⁴ तथा सम्यग्चारित्र को साक्षात् धर्म - "चारित्तं खुल धम्मो"⁵ कहा गया है । साथ ही सम्यग्दर्शन की अनेक प्रकार ⁶ से महिमा बतलाकर उसकी सर्वप्रथम आराधना

1. परदृष्ट्यनतै भिन्न आप में रुचि सम्यक्त्व भला है ।

आप रूप को जानपनो सो सम्यग्ज्ञान कला है ॥

आप रूप में लीन भये धिर सम्यग्चारित्र सोई ।

अब व्यवहार मोक्षमग सुनिये हेतु नियत को होई ॥

छहठाला- पं. दौलतराम तीसरी ढाल छन्द 2

2. रत्नकरण्डश्रावकाचार - स्वामी समन्तभद्राचार्य श्लोक 3

3. तत्त्वार्थसूत्र - उमास्वामी, प्रथम अध्याय सूत्र 1

4. अष्टपाहुड़ (दंसण पाहुड़) कुन्दकुन्दाचार्य गाथा 2

5. प्रवचनसार कुन्दकुन्दाचार्य गाथा 7

6. दर्शनं ज्ञानं चारित्रात्साधिमानमुपाश्नुते ।

दर्शनं कर्णधारं तन्मोक्षमार्गे प्रचक्ष्यते ॥

विद्यावृत्तस्य सम्भूतिस्थिति वृद्धि फलोदयाः ।

न सन्त्यसति सम्यक्त्वे बीजाभावे तरोरिव ।

न सम्यक्त्वसमं किञ्चित् त्रैकाल्ये त्रिजगत्यपि ।

श्रेयोऽश्रेयश्च मिथ्यात्वसमं नान्यतनुभूतम् ॥

रत्नकरण्डश्रावकाचार - स्वामी समन्तभद्राचार्य श्लोक 31, 33, 34

करने का उपदेश दिया है; ¹ क्योंकि उसके होने पर ही ज्ञान और चारित्र सम्यक् होते हैं। सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यग्चारित्र - ये स्वभाव के अनुकूल परिणामन होने से जीव के स्वभाव हैं; अतः धर्म हैं। इसी प्रकार उत्तमक्षमादि दश धर्म तथा अहिंसा को भी स्वभावपर्याय होने से धर्म कहा गया है। इस तरह स्वभाव पर्याय को ध्यान में रखकर ही वस्तु-स्वभाव, रत्नत्रय, दशधर्म एवं अहिंसा को धर्म कहते हैं। निश्चय से रागादि के अभावरूप वीतराग भाव की प्रधानता से ये चारों एक ही हैं; परन्तु व्यवहार से पृथक्-पृथक् स्वरूप की अपेक्षा से इनमें भेद भी स्वीकार किया जाता है।

धर्म प्रवृत्तिपरक -

धर्म प्रवृत्तिमूलक होता है। वहाँ भी निश्चय धर्म शुभाशुभरूप पर की निवृत्तिपूर्वक स्व में प्रवृत्ति है तथा व्यवहारधर्म अशुभरूप परप्रवृत्ति से हटकर शुभरूप परप्रवृत्तिवाला ही है। व्यवहार धर्म पर प्रवृत्तिमूलक होने से पराश्रय-वृत्ति को द्योतक है, जब कि निश्चय धर्म स्वप्रवृत्तिवाला होने से स्वाश्रयरूप है।

धार्मिक विचारों के अन्तर्गत स्व-पर प्रवृत्तिमूलक आचरणों की चर्चा अभिप्रेत होती है। आत्मा को संसार मार्ग से हटाकर मोक्षमार्ग में लगाने के लिए स्वसन्मुख कराना या स्व में प्रवृत्तिवाला बनाना धार्मिक आचरणों का मुख्य उद्देश्य है। इसी उद्देश्य की सिद्धि के लिए अशुभरूप परप्रवृत्ति छोड़ाकर शुभरूप पर में प्रवृत्ति भी करायी जाती है और उसे व्यवहार से धर्म भी कहा जाता है। जब कि वास्तव में धर्म तो स्व-प्रवृत्तिरूप वीतरागता का नाम है। पर में प्रवृत्ति तो आस्त्व-बन्ध ही है, चाहे वह शुभरूप हो या अशुभरूप। फर्क यह है कि जहाँ अशुभ में प्रवृत्ति पापास्त्व-पापबन्ध, वहाँ शुभ में प्रवृत्ति पुण्यास्त्व और पुण्यबन्ध का कारण है। पापास्त्व-पुण्यास्त्व, पापबन्ध और पुण्यबन्ध आस्त्व और बन्ध के भेद होकर संसार के कारण हैं इसलिए हेय हैं। एकमात्र शुभाशुभ रूप पर-प्रवृत्ति से निवृत्ति द्वारा वीतरागभाव रूप स्व (निज शुद्धात्मा) में प्रवृत्ति ही परम धर्म है और वही परम उपादेय है।

स्वप्रवृत्तिपरक धर्म सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र रूप है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की पूर्णता मोक्ष या परमात्मदशा है, जो कि साध्यरूप है तथा सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र का आंशिक परिणामन मोक्षमार्ग होने से साधनरूप है।

1. तच्छादौ सम्यक्त्वं समुपाश्रणीयमखिलयत्नेन ।

तस्मिन् सत्येव भवति ज्ञानं चारित्रं च ॥ पुरुषार्थसिद्धयुपाय-अमृतचन्द्राचार्य श्लोक 30

सम्यग्दर्शन-

जीवादि सात तत्त्वों का सच्चा श्रद्धान सम्यग्दर्शन है । ¹ तत्त्वार्थसूत्र में भी कहा है -“तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनम् ।” ² सच्चे देव-शास्त्र-गुरु का श्रद्धान सम्यग्दर्शन है । ³ अथवा जन्म मरणादि अठारह दोष रहित देव, अन्तरंग बहिरंग परिग्रह रहित गुरु और हिंसारहित धर्म का श्रद्धान सम्यग्दर्शन है । ⁴ आपा (स्व) और पर का यथार्थश्रद्धान सम्यग्दर्शन है । ⁵ आत्मा का श्रद्धान सम्यग्दर्शन है । ⁶

सम्यग्दर्शन की प्राप्ति के लिए जीवादि सप्त या नव तत्त्वार्थों, देव-शास्त्र-गुरु के स्वरूप का सच्चा श्रद्धान तथा स्व-पर के भेदज्ञानसहित आत्मानुभूति भी अत्यन्त आवश्यक है । सम्यग्दर्शन के विभिन्न लक्षण उन्हीं में से किसी एक को मुख्य व अन्य को गौण करके बनाये गये हैं । यद्यपि प्रत्येक लक्षण में किसी एक को ही मुख्यरूप से ग्रहण किया गया है तथापि उसमें गौणरूप से अन्य सभी लक्षण गर्भित हो ही जाते हैं क्योंकि वे सभी लक्षण परस्पर में अविनाभावी हैं ।

इस सम्बन्ध में पंडित टोडरमल “मोक्षमार्ग प्रकाशक” में लिखते हैं - “मिथ्यात्वकर्म के उपशमादि होने पर विपरीताभिनिवेश का अभाव होता है, वहाँ चारों लक्षण युगपत् पाये जाते हैं तथा विचार अपेक्षा मुख्यरूप से तत्त्वार्थों का विचार करता है, या आपापर का भेदविज्ञान करता है या आत्मस्वरूप ही का स्मरण करता है या देवादिक का स्वरूप विचारता है । इस प्रकार ज्ञान में तो नाना प्रकार के विचार होते हैं, परन्तु श्रद्धान में सर्वत्र परस्पर सापेक्षपना पाया जाता है । तत्त्वविचार करता है, तो भेदविज्ञानादि के अभिप्राय सहित करता है

1. चर्चा समाधान, भूधरदास, चर्चा नं. 2 पृष्ठ 5

2. तत्त्वार्थसूत्र अध्याय 1 सूत्र 2

3. रत्नकरण्डश्रावकाचार श्लोक 4

4. दोष अठारह वर्जित देव, दुविध संग त्यागी गुरु एव ।
हिंसा वर्जित धर्म अनूप, यह सरधा समकित को रूप ॥
पार्श्वपुराण अध्याय 1 पृष्ठ 10

5. मोक्षमार्ग प्रकाशक - पं. टोडरमल पृष्ठ 316

6. (क) पुरुषार्थसिद्धयुपाय श्लोक 216

(ख) अष्टपाहुड़ (दर्शनपाहुड़) कुन्दकुन्दाचार्य गाथा 20

और भेदविज्ञान करता है तो तत्त्वविचारादि के अभिप्राय सहित करता है। इसी प्रकार अन्यत्र भी परस्पर सापेक्षपना है। इसलिए सम्यग्दृष्टि के श्रद्धान में चारों ही लक्षणों का अंगीकार है तथा जिसके मिथ्यात्व का उदय है, उसके विपरीताभिनिवेश पाया जाता है, उसके यह लक्षण आभासमात्र होते हैं; सच्चे नहीं होते।¹

भूधरदास ने “चर्चा समाधान” नामक ग्रन्थ में सम्यग्दर्शन का वर्णन अनेक प्रश्नोत्तरों के माध्यम से किया है। उनमें कुछ प्रमुख चर्चाएँ (प्रश्न) हैं - सम्यग्दर्शन का क्या स्वरूप है? ² व्यवहार सम्यक्त्व कैसे कहिए और निश्चय सम्यक्त्व कैसे कहिए? ³ सम्यक्त्व की उत्पत्ति दोय प्रकार है - एक निसर्गतै, दूजी अधिगमतै। तिनका स्वरूप क्या है? ⁴ पाँच लब्धियों के होने पर ही सम्यक्त्व होता है, उनमें चार लब्धियाँ तो भव्य और अभव्य दोनों को हो जाती हैं। पाँचवीं करणलब्धि जिसको सम्यक्त्व होना हो उसी को होती है। पाँच लब्धि में करणलब्धि का क्या स्वरूप है? ⁵ गोम्मटसार में सम्यक्त्व के छह भाग (भेद) कहे जाते हैं - मिथ्यात्व सम्यक्त्व, सासादन सम्यक्त्व, मिश्र सम्यक्त्व, उपशम सम्यक्त्व, क्षयोपशम सम्यक्त्व, और क्षायिक सम्यक्त्व - इन छह सम्यक्त्व का स्वरूप क्या है। ⁶ सम्यक्त्व सहज साध्य है कि यत्न साध्य है। ⁷ विद्यमान भरतखंडविषै पंचमकाल में सम्यग्दृष्टि जीव केतेक पाइए? ⁸ सम्यक्त्व अनुमान का विषय नहीं है; परन्तु शास्त्र के विषै या बिना तौ कोई वस्तु न होइ यातैं सम्यक्त्व के बाह्य लक्षण शास्त्र विषै क्यों न होहिंगे? ⁹ उपयुक्त सभी चर्चाओं के समाधान यद्यपि मूलतः पठनीय है; परन्तु इनके प्रतिपाद्य विषय का संक्षिप्त सार निम्नलिखित है -

1. पोश्चमार्ग प्रकाशक - पं. टोडरमल अध्याय 9 पृष्ठ 327-328
2. चर्चा समाधान, कलकत्ता, भूधरदास, चर्चा नं. 2 पृष्ठ 5
3. चर्चा समाधान, कलकत्ता, भूधरदास, चर्चा नं. 3 पृष्ठ 5
4. चर्चा समाधान, कलकत्ता, भूधरदास, चर्चा नं. 4 पृष्ठ 6
5. चर्चा समाधान, कलकत्ता, भूधरदास, चर्चा नं. 5 पृष्ठ 7
6. चर्चा समाधान, कलकत्ता, भूधरदास, चर्चा नं. 6 पृष्ठ 9
7. चर्चा समाधान, कलकत्ता, भूधरदास, चर्चा नं. 15 पृष्ठ 16
8. चर्चा समाधान, कलकत्ता, भूधरदास, चर्चा नं. 16 पृष्ठ 17
9. चर्चा समाधान, कलकत्ता, भूधरदास, चर्चा नं. 17 पृष्ठ 18

जीवादि तत्त्व का यथावत् सरधान का नाम सम्यग्दर्शन है ।¹ मिथ्यादृष्टि केवल आगमज्ञान से जीवादि सप्ततत्त्व का यथावत् स्वरूप जानै, श्रद्धानकर स्वसंवेदन ज्ञान का अभाव है । निजात्मा के श्रद्धान का अनुभव होइ नहीं, ताहीतैं आत्मज्ञानशून्य पुरुष कै तत्त्वार्थश्रद्धान कार्यकारी नहीं ।² आत्मतत्त्व बिना जो जीवादि तत्त्वों का श्रद्धान होई, तिसकुं व्यवहार सम्यक्त्व कहिए । तिस सहित निश्चय सम्यक्त्व है । जो रुचि अपने निर्मल ज्ञानमय चैतन्यरूप आत्मातैं और जीवादि पदार्थ के सन्मुख रुचि होइ सो व्यवहार सम्यक्त्व होइ और पूर्वोक्त अपने आत्मा के सन्मुख रुचि होइ तिसै निश्चय सम्यक्त्व कहिये ।³ सम्यक्त्व की उत्पत्ति दो प्रकार है - एक निसर्गतैं दूजी अधिगमतैं । निसर्ग कहिये स्वभावतैं होय तिसै निसर्ग सम्यक्त्व कहिये । अधिगम कहिये अर्थबोधतैं होइ तिसै अधिगम सम्यक्त्व कहिये । दोनों प्रकार के सम्यक्त्व विषैं अन्तरंग कारण दर्शनमोह का उपशम, क्षयोपशम तथा क्षय समान है । बाह्यकारण में दोय भेद है- परम्परा गुरु के उपदेशसौं अर्थावबोध होइ, तिसै अधिगमतैं हुआ कहिये ।⁴

क्षयोपशमादि पाँचों लब्धि की प्राप्ति बिना कदाचित् सम्यक्त्व होइ नहीं । प्रथम क्षयोपशम-लब्धिसों पंचैन्द्री सैनी पर्याप्त होइ । विशुद्ध- लब्धिसों पुण्यवन्त जोग्य भाव होइ, देशनालब्धिसों जैन गुरु के उपदेशसों अर्थावबोध होइ, प्रायोग्यलब्धिसों आयु बिना सात कर्मनि की मध्यम स्थिति अन्तः कोड़ाकोड़ी सागर राखै, करणलब्धिसों प्रति समय परिणाम अनंतगुणे निर्मल होइ तब अनादि मिथ्यात्वी अनिवृत्तिकरण के अन्तसमय विषैं अनन्तानुबन्धी के चतुष्क और मिथ्यात्व का उपशम करै प्रथम समय, तिसके अनन्तर समयविषैं सम्यक्त्वकाँ पावै । इस प्रकार पंचलब्धि परिणामनि करि जीव कौं सम्यक्त्व की प्राप्ति होइ । आदि चार लब्धि तौ भव्य-अभव्य कै समान है । पंचमी करणलब्धि मिलै तब सम्यक्त्व होइ ।⁵ जिन पंचलब्धिरूप परिणामनि की परणति करि सम्यक्त्व उपजै ते परिणाम इस कलिकाल में महादुर्लभ हैं ।⁶ यद्यपि सम्यक्त्व अनुमान का विषय नहीं है फिर भी तैसे ही शान्तभाव, संवेगभाव, दयाभाव, आस्तिक्य भाव, इन

1. चर्चा समाधान, कलकत्ता, भूधरदास, चर्चा नं. 2 पृष्ठ 5

2. चर्चा समाधान, कलकत्ता, भूधरदास, चर्चा नं. 3 पृष्ठ 5

3. चर्चा समाधान, कलकत्ता, भूधरदास, चर्चा नं. 3 पृष्ठ 6

4-5. चर्चा समाधान, कलकत्ता, भूधरदास, चर्चा नं. 4 पृष्ठ 7

6. चर्चा समाधान, कलकत्ता, भूधरदास, चर्चा नं. 16 पृष्ठ 17

च्यारि अव्यभिचारी भावनि सूं सम्यक्त्व रत्न जाना जाइ है । क्रोधादि रहित समभाव कूं शांतभाव कहिए । कोमलतायुक्त भावनि कौं दयाभाव कहिये । धर्म, धर्म के फलविषै प्रीति होइ, तथा देह भोग सूं उदासीनता होइ, तिसै संवेगभाव कहिये । आप्त आगम पदार्थनि विषै नास्ति बुद्धि न होई, तिसै आस्तिक्यभाव कहिये । ये च्यारौ भाव कभी व्यभिचार नहीं, । विकाररूप न होइ, यह सम्यग्दृष्टि का बाह्य लक्षण कह्या । ¹ शब्दशः उद्धृत है- “समयसार विषै श्रीं अमृतचन्द्रसूरि ने सम्यक्त्व यत्नसाध्य बताया है ।” “पश्य षण्मासमेकं” इति वचनात् । इस प्रकार सम्यक्त्व की प्राप्ति विषै छह महीने का वायदा किया तिसकी भाषा-“एक छह महीना उपदेश मेरा मान रे” । अर “काललब्धि बिना नहीं” यह भी प्रमाण है । तहाँ दोनू कारणविषै दृष्टांत कहिए है । जैसे कोई धनार्थी पुरुष यथायोग्य उद्यम करै है, धन की प्राप्ति भाग्य उदय सों होइ है । तैसें पूर्ण उपायसूं उद्यमी होना योग्य है । सम्यक्त्व की प्राप्ति काललब्धिसों होयगी अर जिस कार्य की लब्धि होनी है, तिस कार्य की सिद्धि उद्यम बिना होनी नहीं । जब होयगी तब उद्यमसूं होयगी- यह नियम है जैसे भरतजी के जानोत्पत्ति विषै एक मुहूर्त बाकी रहा था तौ भी दीक्षा ग्रहण किया, तब कार्य सिद्ध हुआ । इस प्रकार उद्यम कारण है । कारण बिना कार्य सिद्ध होता नहीं, यातैं उद्यमी रहना ।” ²

सम्यग्दर्शन सम्पूर्ण धर्म का मूल है । सभी गुणरूपी रत्नों का कोश है । मुक्तिरूपी महल का सोपान है, इसलिए यह सबका सार है । इसके बिना सम्पूर्ण आचारण व्यर्थ है-

सुन हस्ती शासन अनुकूल । सकल धरम को दर्शन मूल ॥

सब गुणरत्न कोष यह जान । मुक्ति धारै हरधुर सोपान ॥

तातैं यह सब ही को सार । या बिन सब आचरन असार ॥ ³

वह सम्यग्दर्शन निशंकित आदि आठ गुण सहित तथा शंकादि पच्चीस दोष रहित मोक्षरूपी वृक्ष के अंकुर के रूप में भव्य जीव के हृदय रूपी खेत में उत्पन्न होता है-

शंकादिक दूषन बिना, आठो अंग समेत ।

मोख खिरछि अंकुर यह, उपजै भवि उर खेत ॥ ⁴

1. चर्चा समाधान, कलकत्ता, भूषरदास, चर्चा नं. 17 पृष्ठ 18

2. चर्चा समाधान, कलकत्ता, भूषरदास, चर्चा नं. 15 पृष्ठ 17

3. पार्श्वपुराण, कलकत्ता, अधिकार 2 पृष्ठ 10

4. वही पृष्ठ 10-11

जिस प्रकार अक्षरहीन मंत्र विष की बाधा को दूर नहीं कर सकता; उसी प्रकार अंगहीन सम्यग्दर्शन संसार के दुःखों को दूर करने में समर्थ नहीं है। इसलिए अष्ट अंग सहित सम्यग्दर्शन का निर्णय हृदय में करना चाहिए। अर्थात् सम्यग्दर्शन धारण करना चाहिए-

अंगहीन दर्शन जग मौढ़ि। भ्रष्टदृष्ट मेटन समग्र नहिं ॥

अक्षर ऊन मंत्र जो होय। विष बाधा मेटे नहिं सोय ॥

तातैं यह निरनय उन आन। यह हिरदै सम्यक सरधान ॥¹

देव-शास्त्र-गुरु—

सम्यग्दर्शन की प्राप्ति के लिए छह द्रव्य, सात तत्त्व, नौ पदार्थ के स्वरूप की तरह देव-शास्त्र-गुरु का स्वरूप जानना भी अत्यन्त आवश्यक है। इस संबंध में आचार्य कुन्दकुन्द का निम्नलिखित कथन द्रष्टव्य है-

जो जाणदि अरहन्तं, दध्यत्तगुणत्तपज्जयत्तेहिं।

सो जाणदि अप्पाणं, मोहो खुल जाद तस्स त्वयं ॥²

जो द्रव्य-गुण-पर्याय से अरहन्त को जानता है, वह अपने आत्मा को जानता है और उसका दर्शनमोह नष्ट हो जाता है अर्थात् उसे सम्यग्दर्शन प्राप्त हो जाता है।

देव - जो वीतरागी, सर्वज्ञ और हितोपदेशी हो, वही सच्चा देव है।³ सच्चे देव के मोह-राग-द्वेष, जन्म-मरण, भूख प्यास आदि अठारह दोष नहीं होते हैं, इसलिए उसे वीतरागी कहते हैं।⁴ वह तीन लोक और तीन काल के समस्त पदार्थों को उनके अनन्तगुण - पर्यायों सहित एक समय में एक साथ स्पष्ट रूप से जानता है, इसलिए वह सर्वज्ञ कहलाता है। मोक्षमार्ग का प्राणिमात्र के हित के लिए उपदेश देने से वही हितोपदेशी है।⁵

1. पार्श्वपुराण, कलकत्ता, अधिकार 2 पृष्ठ 11

2. प्रवचनसार, कुन्दकुन्दाचार्य, गाथा 80

3. जैनशतक, भूधरदास, छन्द 46

4. दोष अठारह वरजित देव, तिस प्रभु को पूजै बहु भेव ॥

5. जैनशतक, भूधरदास, छन्द 46

शास्त्र - आप्त के वचन आदि हैं हेतु जिसमें ऐसे पदार्थ के ज्ञान को आगम कहते हैं।¹ अथवा अरहन्त परमात्मा की वाणी में समागत पूर्वापर विरोध रहित तत्त्वार्थों का शुद्ध प्रतिपादन ही आगम है।² ऐसा आदि - अन्त विरोधरहित आगम ही शुद्ध मनपूर्वक सुनने योग्य है।³ आप्त (सच्चे देव) वीतरागी और पूर्णज्ञानी होते हैं। अतः उनके वचन भी वीतरागता और पूर्णज्ञान के पोषक और प्रेरक होते हैं। उनके वचनों से मोह और अज्ञान नष्ट हो जाता है।⁴ जिनवाणी द्वारा वस्तुस्वरूप का यथार्थज्ञान होकर भेदविज्ञान होता है।⁵ सम्पूर्ण जिनवाणी का एक मात्र तात्पर्य वीतरागता है।⁶ जिनवचन परम उपकारी है।⁷ जिनेन्द्र भगवान के वचनों की महिमा वचनों से नहीं हो सकती। आगम के बिना अपार संसाररूपी समुद्र को भुजाओं के बल से तैरकर न कोई पार कर पाया है, न कर पायेगा।⁸

गुरु - सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र के द्वारा जो महान बन चुके हैं उनके गुरु कहते हैं। आचार्य, उपाध्याय और साधु गुरु कहलाते हैं।⁹ वे पंचेन्द्रियों के विषयों की आशा से रहित, सर्वप्रकार के आरम्भ और परिग्रह से रहित, ज्ञान ध्यान और तप में लीन रहने वाले होते हैं।¹⁰ वे बारह प्रकार के तप करते हैं।

1. आप्तवचनश्रुतिनिबन्धमर्थज्ञानमागमः - परीक्षामुख-माणिक्यनन्दि, अध्याय 3, सूत्र 95
2. तस्य मुह्यगदवयवणं पुष्पावरोष विरहितं सुद्धं।
आगमिदि परिकरितं तेण दु कहिया हवति तच्चत्था ॥ नियमसार कुन्दकुन्दचार्य गाथा 8
3. बंदौ जिनवाणी मन शोध। आदि अन्त जो विगत विरोध ॥
पार्श्वपुराण, कलकत्ता, भूधरदास, पीठिका पृष्ठ 10
4. जैनशतक, भूधरदास, जिनवाणी स्तुति छन्द 14
(मोहमहाचल भेद चली, जग की जड़ता तप दूर करी है।)
5. जैनशतक, भूधरदास, जिनवाणी स्तुति छन्द 15
(ता किस भांति पदारथ पांति, कहाँ लहते, रहते अविचारी।)
6. पंचास्तिकाय, गाथा 172 अमृतचन्द्राचार्य की टीका
7. जैनशतक, भूधरदास, छन्द 15
(या विधि संत कहै धन है, धन है जिन जैन बड़े उपकारी)
8. जैनशतक, भूधरदास, छन्द 103
महिमा जिनवर वचन की, नहीं वचन बल होय।
भुजबल सो सागर अगम, तिरे न तीरहि कोय ॥
9. भगवती आराधना, आचार्य शिवौटि, पृष्ठ 511
10. रत्नकरण्डश्रावकाचार, आचार्य समन्तभद्र, श्लोक 10

दशलक्षण धर्म का पालन करते हैं। अंग - पूर्वरूप शास्त्रों को पढ़ते हैं। एकाकी विचरण करते हैं। ग्रीष्मकालमें पर्वत के शिखर पर, वर्षा में वृक्ष के नीचे और शीतकाल में नदी के तट पर रहकर तप एवं ध्यानरूपी अग्नि द्वारा कर्मों को जला देते हैं।¹ मुनि क्रोधादि चौदह प्रकार के अंतरंग और दस प्रकार के बहिरंग परिग्रह से रहित निर्ग्रन्थ होते हैं। निर्ग्रन्थ हुए बिना मुनिपद नहीं होता है और मुनिपद बिना निर्वाण (मोक्ष) नहीं होता है। परिग्रह से निरन्तर बन्धन होता है और जहाँ बन्ध का कारण परिग्रह है, वहाँ मुक्ति कैसे हो सकती है? जिस प्रकार सूर्य पश्चिम से नहीं निकल सकता, अग्नि शीतल नहीं हो सकती; उसी प्रकार दशजात निर्ग्रन्थ हुए बिना मोक्ष प्राप्त नहीं हो सकता।² मुनि संसार, शरीर, भोग से विरक्त, अपने स्वभाव में अनुरक्त, जगत की ओर पीठ तथा मोक्ष की ओर दृष्टि करने वाले तथा पाँच महाव्रत, पाँच समिति, तीन गुप्तिरूप तेरह प्रकार का चारित्र्य पालने वाले होते हैं। इनके पालने से वे मोक्ष को प्राप्त करते हैं।³ मुनि अपने शुद्ध आत्म-स्वभाव में लीन रहते हैं। शत्रु-मित्र, महल-शमशान, कुंकुम-कीचड़, कोमल सेज-कठोर पाषाण, कंचन-काँच, दुष्ट-सज्जन, निदंक-सेवक, जीवन - मरण, आदि उनके लिए बराबर हैं; वे इन सबमें समानभाव रखते हैं। वे अपने शरीर के प्रति भी निर्ममत्व होते हैं, उनके हृदय में सात प्रकार के भय नहीं होते हैं।⁴ सम्पूर्ण आशाओं के त्यागी, वन में निवास करने वाले, नग्न दिगम्बर शरीर वाले, मद का परिहार करने वाले-ऐसे महान् मुनिराज के प्रति हम हाथ जोड़कर सिर झुकाते हैं।⁵

1. (क) बारह विधि दुद्धर तप करै। दशलाछनी धरम अनुसरै।
पढ़ै अंग पूरब श्रुति सार। एकाकी विचरै अनगार॥
ग्रीष्म बसै गिरि शीश। वर्षा में तरुवर मुनि ईश॥
शीत मास तटनी तट रहै। ध्यान अग्नि के कर्मनि दहै॥
पार्श्वपुराण, अधिकार 3 पृष्ठ 19
- (ख) जैनशतक, भूधरदास, पद्य 13 (साधु स्तुति)
2. पार्श्वपुराण, कलकत्ता, अधिकार 9 पृष्ठ 85
3. पार्श्वपुराण, कलकत्ता, अधिकार 9 पृष्ठ 86
4. पार्श्वपुराण, कलकत्ता, अधिकार 3 पृष्ठ 19
5. तजि सकल आस वनवास बस, नग्न देह मद परिहरे।
ऐसे महंत मुनिराज प्रति, हाथ जोर हम सिर धरे॥
पार्श्वपुराण, कलकत्ता, अधिकार 9 पृष्ठ 86

भूधरदास देव, शास्त्र, गुरु, धर्म-इनको संसार में महान रत्न मानते हैं तथा इनको परख (पहिचान) कर प्रमाण करने में मनुष्यभव की सार्थकता समझते हैं। जो व्यक्ति इनकी परख जानते हैं वे नेत्रवान् हैं। जो नहीं जानते, वे अज्ञानी अन्धे हैं। वास्तव में तो नेत्रहीन व्यक्ति अंधे नहीं हैं; बल्कि हृदयरूपी आँखें जिनके नहीं हैं, वे अंधे हैं।

देव धर्म गुरु ग्रन्थ ये, बड़े रत्न संसार ।
इनको परखि प्रमानिये, यह नरभव फल सार ॥
जे इनकी जानै परख, ते जग लोचनवान ।
जिनको यह सुधि ना परी, ते नर अंध अजान ॥
लोचनहीन पुरुष को, अन्ध न कहिये भूल ।
उर लोचन जिनके मुदे, ते अन्धे निर्मूल ॥¹

भेदविज्ञान एवं आत्मानुभव -

सम्यग्दर्शन की प्राप्ति के लिए भूधरदास ने देव-शास्त्र-गुरु के श्रद्धान तथा सात तत्त्वों के श्रद्धान के साथ-साथ भेदविज्ञान एवं आत्मानुभव को भी आवश्यक माना है। भेदविज्ञान के समर्थन में वे पूर्वाचार्यों के कथनों को उद्धृत करते हुए प्रेरणा देते हैं -

“एगो मे सासदो अप्पा, जाणदंसणलक्खणो ।
सेसा में बाहिरा भावा, सख्ये संजोगलक्खणा ॥

इस प्राकृत का अर्थ विचारकें विषय कषायतैं विमुख होई शुद्ध चैतन्य स्वरूप की निरन्तर भावना करनी।”² इस गाथा का अर्थ है - यह मैं ज्ञान-दर्शन लक्षण वाला शाश्वत आत्मा हूँ। शेष सभी संयोगलक्षण वाले मेरे बाहरी भाव हैं।

वे इस भेद विज्ञान को ही मोक्षमार्ग बतलाते हैं³ तथा कई प्राकृत गाथायें

1. पार्श्वपुराण, भूधरदास, अधिकार 5 पृष्ठ 44

2. चर्चा समाधान, कलकत्ता, भूधरदास, अन्तिम प्रशस्ति पृष्ठ 122

3. चर्चा समाधान, कलकत्ता, भूधरदास, अन्तिम प्रशस्ति पृष्ठ 122

उद्धृत करते हैं ।¹

आत्मानुभव की महिमा बतलाते हुए भूधरदास की प्रेरणा है - “ है भाई यह मनुष्य जीवन वैसे ही बहुत थोड़ी बुद्धिवाला है, ऊपर से उसमें बुद्धि और बल भी बहुत कम है, जब कि आगम तो अगाध सागर के समान है; अतः इस जीवन में उसका पार कैसे पाया जा सकता है ? इसलिए ऐसा करो कि सम्पूर्ण द्वादशांगरूप जिनवाणी का मूल जो आत्मा का अनुभव है, तुम उसे ही प्राप्त कर लो । यह आत्मानुभव अपूर्व कला है, संसाररूपी ताप को शान्त करने के लिए चन्दन की शलाका है । अतः इस जीवन में एकमात्र आत्मानुभवरूप अपूर्वकला को ही सीख लो, आत्मानुभव का अभ्यास करो और आत्मानुभव का ही परम आनन्द प्राप्त करो, यही भगवान् महावीर की वाणी है । आत्मानुभव ही सारभूत है । यही आत्मा का हित करने वाला है । यही मदार अर्थात् श्रेष्ठ करने योग्य उत्तरदायित्व पूर्ण कार्य है, इसके अतिरिक्त अन्य सब व्यर्थ है ।²

1. जेण णिरंतर मणधरियउ विसयकसाययहं जतु ।

मोक्खह कारण पतडउ अणणंत तणं मंतु ॥

जं सक्कइ तं कीरहं जं ण सक्केइ तं च सदहणं ।

सदहमाणा जीवो पावइ अजरामरं ठाणं ॥

तवयरणं वयघरणं संजमतरणं सव्वजीवदयाकरणं ।

अंतो समाहि मरणं चउगइदुक्खं निवारेई ॥

अंतो णत्थि सुइणं कालो थोवो वयं च दम्मेहा ।

तं णवरि सिनिखयज्जं जं जरमरणंक्खयं कुणई ॥

चर्चा समाधान, कलकत्ता, भूधरदास, अन्तिम प्रशस्ति पृष्ठ 122

2. जीवन अल्प आयु बुद्धि बल हीन तामै,

आगम अगाध सिन्धु कैसे ताहि डाक है

द्वादशांग मूल एक अनुभू अपूर्व कला,

पवदाघहारी वनसार की सलाक है ॥

यह एक सीख लीजै याही को अभ्यास कीजै,

याको रस न पीजै ऐसो वीर जिन-वाक है ।

इतनों ही सार ये ही आत्म को हितकार,

यहीं लौ मदार और आगे दूकडाक है ॥

जैनशतक, भूधरदास, छन्द 91

सम्यग्ज्ञान — जीवादि तत्त्वों को नय-प्रमाण-निक्षेप आदि के द्वारा भेदाभेदरूप यथार्थ जानना सम्यग्ज्ञान है -

नय प्रमाण निक्षेप करि, भेदाभेदविधान ।

जो तत्त्वन को जाननो, सोई सम्यग्ज्ञान ॥¹

जैन शास्त्रों में उपलब्ध सम्यग्ज्ञान की कुछ परिभाषायें निम्नलिखित हैं-

1. जिस-जिस प्रकार से जीवादि पदार्थ अवस्थित हैं, उस-उस प्रकार से उनका जानना सम्यग्ज्ञान है ।²

2. जो ज्ञान वस्तु के स्वरूप को न्यूनता-रहित, अधिकता-रहित, विपरीतता-रहित, जैसा का तैसा सन्देह-रहित जानता है, उसे सम्यग्ज्ञान कहते हैं ।³

3. आत्मा और अनात्मा का संशय, विपर्यय और अनध्यवसाय से रहित ज्ञान ही सम्यग्ज्ञान है ।⁴

4. आत्मस्वरूप का जानना ही सम्यग्ज्ञान है ।⁵

सम्यग्ज्ञान में "सम्यक्" पद सम्यग्दर्शन और मिथ्याज्ञान में "मिथ्या" पद मिथ्यादर्शन की उपस्थिति का सूचक है, इसलिए सम्यग्दृष्टि का सम्पूर्णज्ञान सम्यग्ज्ञान और मिथ्यादृष्टि का सम्पूर्ण ज्ञान मिथ्याज्ञान है, चाहे उसकी लौकिक जानकारी सत्य ही क्यों न हो; परन्तु आत्मानुभूति के बिना उसका समस्त ज्ञान मिथ्याज्ञान ही कहा जायेगा । इसी प्रकार सम्यग्दृष्टि की लौकिक जानकारी सत्य या असत्य कैसी ही क्यों न हो - आत्मानुभूति सहित होने से उसका समस्त ज्ञान सम्यग्ज्ञान ही माना जायेगा । इस प्रकार सम्यग्ज्ञान एक प्रकार से सच्चा तत्त्वज्ञान या आत्मज्ञान ही है । जीवादि पदार्थों का विशेषकर आत्मतत्त्व का संशय, विपर्यय और अनध्यवसाय - रहित ज्ञान ही सम्यग्ज्ञान है । लौकिक पदार्थों के ज्ञान से इसका कोई प्रयोजन नहीं है ।

1. पार्श्वपुराण, भूषरदास, अधिकार 9 पृष्ठ 85

2. सर्वार्थसिद्धि, पूज्यपाद आचार्य, अध्याय 1 सूत्र 1 की टीका

3. रत्नकरण्डावकाचार, समन्तभद्राचार्य, श्लोक 42

4. द्रव्यसंग्रह, नेमिचन्द्राचार्य, गाथा 42

5. आपरूप को जानपनो, सो सम्यग्ज्ञान कला है ।

छहढाला, पं. दौलतराम, तीसरी ढाल, छन्द 2

जिनागम में सम्यग्ज्ञान की महिमा का वर्णन बहुत उपलब्ध होता है ।¹
साथ ही आत्मज्ञान - रहित शास्त्रज्ञान, लौकिक ज्ञान एवं व्रत आदि की निरर्थकता
के कथन भी अनेक प्रकार से मिलने हैं ।²

सम्यग्चारित्र -

आत्मस्वरूप में लीनता, स्थिरता या रमणता ही चरित्र है ।³ चारित्र क्रिया
या आचरणरूप है और चारित्र दो प्रकार का है— सकलचारित्र और देश चारित्र ।

चारित किरिया रूप है, सो पुन दुखिध पवित्र ।

एक सकल चारित्र है, दुतिय देश चारित्र ॥⁴

पापों की प्रणालियाँ पाँच हैं— हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रह -
इनसे विरति का नाम भी चारित्र है ।⁵ सम्पूर्ण पापों का सर्वथा त्याग सकल चारित्र
है । सकल चारित्र का पालन मुनिराज करते हैं । सर्व पापों का एकदेश या
आंशिक त्याग देशचारित्र है और इसका पालन गृहस्थ करते हैं-

जहाँ सकल सावद्य, सर्वथा परिहरै ।

सो पूरन चारित्र महामुनिवर धरै ॥

1. (क) छहढाला-पं. दौलतराम, चौथी ढाल 4,5,7,8

(ख) नाटक सम्यसार - पं. बनारसीदास, निर्जरा द्वार छन्द 3 तथा 26

2. (क) कार्तिकेयानुप्रेक्षा - स्वामी कार्तिकेय, गाथा 464

(ख) अष्टपाहुड़ (मोक्षपाहुड़) - कुन्दकुन्द गाथा 100

(ग) योगसार - योगीन्दुदेव, श्लोक 43

(घ) समाधिशतक - पूज्यपाद, श्लोक 94

(ङ) छहढाला - दौलतराम, चौथी ढाल, छन्द 4

3. (क) 'स्वरूपे चरणं चारित्रम्' प्रवचनसार गाथा 7 की टीका अमृतचन्द्राचार्य कृत

(ख) 'आपूरूप में लीन भये थिर सम्यग्चारित्र सोई'

छहढाला, पं. दौलतराम, तीसरी ढाल, छन्द 2

4. पार्श्वपुराण, कलकता, भूधरदास, अधिकार 9 पृष्ठ 85

5. हिंसानूतचौयेंभ्यो मैथुन मैथुनपरिग्रहाभ्यां च ।

पाप प्रणालिकाभ्यो विरतिः संज्ञस्य चारित्रम् ॥

रत्नकरणश्रावकाचार - समन्तमद्राचार्य, श्लोक 49

लेश्या त्याग जहँ होय, देशचारित बही ।
सो गृहस्थ को धर्म, प्रही पालै सही ॥¹

चारित्र ही साक्षात् धर्म है । वह मोह (दर्शन मोह अर्थात् मिथ्यात्व) और क्षोभ (चारित्रमोह अर्थात् शम-द्वेष) से रहित सम्यग्ज्ञानरूप आत्मा का परिणाम है ।² चारित्र के पूर्व "सम्यक्" पद का प्रयोग अज्ञानपूर्वक आचरण की निवृत्ति के लिए है ।³ अज्ञानपूर्वक धारण किया हुआ चारित्र सम्यग्चारित्र नहीं कहा जा सकता है; इसीलिए सम्यग्ज्ञान के बाद ही सम्यग्चारित्र की आराधना करने को कहा गया है ।⁴ सम्यग्दर्शन के बिना सम्यग्ज्ञान और सम्यग्चारित्र नियमपूर्वक नहीं होते हैं ।⁵ इसलिए सम्पूर्ण प्रयत्न से सम्यग्दर्शन के लिए पुरुषार्थ करना चाहिए ।⁶

सकलचारित्र या मुनिधर्म - सकलचारित्रधारी मुनिराज पाँच महाव्रत, पाँच समिति और तीन गुप्ति - इसप्रकार तेरह प्रकार के चारित्र का पालन करते हैं ।⁷ बारह भावनाएँ भाते हैं, बाबीस परीषहों को सहते हैं, बारह प्रकार के तप तपते हैं और दशधर्मों का आराधन करते हैं ।⁸ अष्टाबीस मूलगुणों का अखंडित पालन करते हैं ।⁹

1. पार्श्वपुराण, कलकत्ता, भूधरदास अधिकार 9 पृष्ठ 85

2. चारित्रं खलु धम्मो धम्मो जो सो समोत्ति णिदिट्ठो ।

मोहक्खोह विहीणो परिणामो अप्पणो हु समो ॥ प्रवचनसार, कुन्दकुन्दाचार्य गाथा 7

3. "अज्ञानपूर्वकाचारणनिर्वृत्यर्थं सम्यग्विशेषम् ।"

सर्वार्थसिद्धि, पूज्यपाद, अध्याय 1 सूत्र 1 की टीका ।

4. न हि सम्यग्व्यपदेशं चारित्रमज्ञानपूर्वकं लभते ।

ज्ञानान्तरमुक्तं चारित्राराधनं तस्मात् ॥

पुरुषार्थसिद्धयुपाय, अमृतचन्द्राचार्य, श्लोक 7

5. सम्मतं विणा सण्णाणं सत्त्वारित्रं ण होई नियमेण । रयणसार, कुन्दकुन्द, गाथा 47

6. तत्रादौ सम्यक्त्वं समुपाश्रयणीयमखिलयत्नेन ।

तस्मिन् सत्येव यतो भवति ज्ञानं चारित्रं च ॥ पुरुषार्थसिद्धयुपाय, अमृतचन्द्राचार्य, श्लोक 21

7. पंच महाव्रत दुद्धर धरै, सम्यक पांच समिति आदरै ।

तीन गुप्ति पालै यह कर्म, तेरह विधि चारित मुनिधर्म ॥

8. पार्श्वपुराण, कलकत्ता, भूधरदास, अधिकार 9, पृष्ठ 86

9. बारह विधि दुद्धर तप करै, दशलाछनी धर्म अनुसारै ।

पदै अंग पूरब श्रुतिसार, एकाकी चिचरै अनगार ॥

पार्श्वपुराण, कलकत्ता, भूधरदास, अधिकार 3 पृष्ठ 19

पाँच महाव्रत -

हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रह - ये पाँच पाप हैं। मुनिराज को छह काय (पृथ्वीकाय आदि पाँच स्थावरकाय और एक त्रसकाय) के जीवों का सर्वथा घात न करने तथा राग-द्वेष, काम-क्रोधादि भावों की उत्पत्ति न होने से अहिंसा महाव्रत होता है। स्थूल और सूक्ष्म - दोनों प्रकार का झूठ न बोलने से सत्य महाव्रत, कोई भी वस्तु, यहाँ तक कि मिट्टी और पानी भी, बिना दिये ग्रहण नहीं करते हैं ; इसलिए अचौर्य - महाव्रत, आत्मा में लीन होने और अठारह हजार शील के धेड़ों का पालन करने से ब्रह्मचर्य महाव्रत तथा चौदह प्रकार का अंतरंग और दस प्रकार का बहिरंग परिग्रह न होने के कारण परिग्रह त्याग महाव्रत होता है।

पाँच समिति -

प्रमाद या असावधानी छोड़कर चार हाथ जमीन देखकर चलना ईर्या समिति है। हित-मित-प्रिय, सर्व शंकाओं को दूर करने वाले और मिथ्यात्वरूपी रोग का नाश करने वाले वचन बोलना भाषा समिति है। 46 दोषों को टालकर (दूर करके) उत्तम कुल वाले श्रावक के घर शरीर-पोषण हेतु नहीं अपितु तपवृद्धि के लिए रसों का त्यागकर नीरस भोजन लेना एषणा समिति है। पवित्रता के साधन कमण्डलु को, ज्ञान के साधन शास्त्र को एवं संयम के साधन पीछी को देखकर ग्रहण करना और देखकर रखना आदान-निक्षेपण समिति है। मल-मूत्र-श्लेष्मा आदि शरीर के मैल को जीवरहित स्थान देखकर त्यागना व्युत्सर्ग या प्रतिष्ठापन समिति है। मुनिराज इन पाँचों समितियों का पालन करते हैं।

तीन गुप्ति और पाँच इन्द्रियजय -

आत्मा के ध्यान में लगने से मन-वचन-काय की चेष्टाओं का रुक जाना क्रमशः मनगुप्ति, वचनगुप्ति और कायगुप्ति है। स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु और कर्ण-इन पाँचों इन्द्रियों के विषय शुभ (अच्छे) और अशुभ (बुरे) स्पर्श, रस, गंध, वर्ण और शब्द में राग या द्वेष नहीं करना-पाँच इन्द्रियों को जीतना है। मुनिराज तीन गुप्तियों को पालते हैं तथा पाँच इन्द्रियों को जीतते हैं।

छह आवश्यक और सात शेष गुण -

मुनिराज सामाग्यिक करते हैं, स्तुति बोलते हैं, जिनेन्द्र भगवान की वन्दना करते हैं, शरीर की ममता छोड़ते हैं अर्थात् कायोत्सर्ग करते हैं, तथा स्वाध्याय करते हैं - इसप्रकार छह आवश्यक कर्मों में निरत रहते हैं।

वे वीतरागी साधु कभी स्नान नहीं करते, दाँतों की सफाई नहीं करते, शरीर को ढकने के लिए वस्त्र नहीं रखते, रात्रि के पिछले प्रहर में एक करवट भूमि पर कुछ देर शयन करते हैं, दिन में केवल एक बार तथा खड़े रहकर अपने हाथ में रखकर थोड़ा सा आहार लेते हैं, और केशलोच करते हैं - इस प्रकार इन सात अन्य गुणों का भी पालन करते हैं।

मुनिराज (साधु) उपर्युक्त पाँच महाव्रत, पाँच समिति, पाँच इन्द्रियजय, छह आवश्यक और सात शेष गुण - इन 28 मूलगुणों का पालन करते हैं अर्थात् ये 28 मूलगुण साधुओं के आवश्यक लक्षण हैं।

बारह भावनायें -

अनित्य, अशरण, संसार, एकत्व, अन्यत्व, अशुचि, आस्रव, संवर, निर्जरा, लोक, बोधिदुर्लभ और धर्म - ये बारह भावनायें हैं। भूधरदास ने इनका विस्तृत विवेचन किया है। इस विवेचन में स्थूल और सूक्ष्म दोनों रूप दृष्टिगत होते हैं। इन दोनों दृष्टियों से उनके द्वारा वर्णित बारह भावनाओं का स्वरूप निम्नांकित है—

अनित्य भावना - अनित्य भावना में एक ओर भूधरदास सभी संयोगों का प्रतिनिधि शरीर को मानकर उसके वियोग अर्थात् मरण को अनिवार्य बतलाते हुए कहते हैं—

राजा राणा छत्रपति, हाथिन के असवार।

मरना सबको एक दिन, अपनी अपनी बार ॥¹

दूसरी ओर वे द्रव्यस्वभाव की नित्यता का ज्ञान कराते हुए पर और पर्याय को अनित्य मानकर तन-धन आदि सभी को कालरूपी अग्नि का ईंधन प्ररूपित करते हैं—

1. भूधरदास, पार्श्वपुराण, कलकता, अधिकार 4, पृष्ठ 30

द्रव्य सुभाव बिना जगमौहि, पर ये रूप कछू थिर नाहिं ।

तन धन आदिक दीखे जेह, काल अगनि सब ईधन तेह ॥¹

अशरण भावना - इसी प्रकार अशरण भावना में एक ओर वे कहते हैं कि शरीर का वियोग होने पर कोई रोक नहीं सकता अर्थात् सब अशरण हैं-
दल बल देवी देवता, माता पिता परिवार ।

मरती बिरियाँ जीव को, कोई न राखनहार ॥²

तो दूसरी ओर कहते हैं कि संसार में निरन्तर भ्रमण करते हुए जीव को निश्चय से स्वयं तथा व्यवहार से पंच परमेष्ठी शरण हैं ।

भव वर भ्रमत निरन्तर जीव, याहि न कोई शरण सदीव ।

व्योहारै परमेठी जाप, निहचै शरण आपकौ आप ॥³

संसार भावना - सम्पूर्ण संसार दुःखी है, निर्धन धन के बिना और धनवान तृष्णा (अधिक संग्रह) की इच्छा के कारण दुःखी है-

दाम बिना निर्धन दुखी, तिस्नावश धनवान ।

कहीं न सुख संसार में, सब जग देख्यो छान ॥⁴

सम्पूर्ण संसार असार एवं मोक्षमार्ग से विपरीत है-

सूर कहावै जो सिर देय । खेत तजै सो अपयश लेय ॥

इस अनुसार जगत की रीत । सब असार सब ही विपरीत ॥⁵

एकत्व भावना - जीव अकेला उत्पन्न होता है और अकेला ही मरता है, इसप्रकार वास्तव में उसका सगा साथी कोई नहीं है-

आप अकेला अवतरै, मरै अकेला होय ।

यों कबहुँ इस जीव का, साथी सगा न कोय ॥⁶

1. पार्श्वपुराण, कलकत्ता, भूधरदास, अधिकार 7 पृष्ठ 64

2. पार्श्वपुराण, कलकत्ता, भूधरदास, अधिकार 7, पृष्ठ 30

3. पार्श्वपुराण, कलकत्ता, भूधरदास, अधिकार 7, पृष्ठ 70

4. पार्श्वपुराण, कलकत्ता, भूधरदास, अधिकार 4, पृष्ठ 30

5. पार्श्वपुराण, कलकत्ता, भूधरदास, अधिकार 7, पृष्ठ 64

6. पार्श्वपुराण, कलकत्ता, भूधरदास, अधिकार 4, पृष्ठ 30

पुण्य-पाप के फल सुख-दुःख को जीव अकेला ही भोगता है। उसका तीन लोक और तीन काल में कोई साथी नहीं है-

तीन काल इस त्रिभुवन माहिं। जीव संघाती कोई नाहिं।

एकाकी सुख-दुख सब सहै, पाप पुन्य करनी फल लहै ॥¹

अन्यत्व भावना - जहाँ शरीर ही जीव का नहीं है, वहाँ अन्य पदार्थ उसके कैसे हो सकते हैं ? धन-सम्पत्ति, स्त्री पुरुष आदि परिजन प्रगट पर हैं। संसार में होने वाले संयोगी भाव भी जीव के स्वभाव से भिन्न हैं-

जहाँ देह अपनी नहीं, तहाँ न अपना कोय।

घर सम्पत्ति पर प्रगट ये, पर हैं परिजन लोय ॥²

जितने जग संयोगी भाव। वे सब जियसों भिन्न सुभाव।

नितसंगी तन ही पर सोय। पुत्र सुजन पर क्यों नहिं होय ॥³

अशुचि भावना - यह शरीर हाड-मांस आदि का घर है। इस पर चमड़े की चादर सुशोभित होती है, वैसे इसके समान अन्दर में कोई दूसरा घृणा का घर नहीं है-

दिपै चाम चादर मढ़ी, हाड़ पीजरा देह।

भीतर या सम जगत में, और नहीं घिनगेह ॥⁴

यह शरीर अशुचि हड्डी - मांस का पिंजड़ा है तथा घृणा का घर चमड़े से आवेष्टित है। चेतन चिड़ा (पक्षी) उसमें रहता है, वह ज्ञान के बिना उसमें ग्लानि नहीं करता है-

अशुचि अस्थि पिंजर तन येह, चाम वसन बेढो घिनगेह।

चेतन चिरा तहाँ नित रहै, सो बिन ज्ञान गिलानि न गहै ॥⁵

-
1. पार्श्वपुराण, कलकता, भूधरदास, अधिकार, 7 पृष्ठ 64
 2. पार्श्वपुराण, कलकता, भूधरदास, अधिकार, 4 पृष्ठ 30
 3. पार्श्वपुराण, कलकता, भूधरदास, अधिकार, 7 पृष्ठ 64
 4. पार्श्वपुराण, कलकता, भूधरदास, अधिकार, 4 पृष्ठ 30
 5. पार्श्वपुराण, कलकता, भूधरदास, अधिकार, 7 पृष्ठ 64

आस्रव भावना - मोह की नींद के जोर से संसारी हमेशा संसार में घूमता रहता है। कर्मरूपी चोर उसका सर्वस्व लूट लेते हैं, परन्तु उसे कुछ भी ध्यान नहीं रहता है—

मोह नींद के जोर, जगवासी घूमै सदा।

कर्मचोर चहुँ ओर, सर्वस लूटै सुधि नहीं ॥¹

मिथ्यात्व, अविरति, कषाय और योग - ये आस्रव के कारण हैं। आस्रव कर्मबंध का कारण है और बन्ध चार गति के दुःखों को देने वाला है—

मिथ्या अविरत जोग कषाय । ये आस्रवकारन समुदाय ॥

आस्रव कर्मबंध को हेत । बंध चतुरगति के दुख देत ॥²

संवर भावना - सतगुरु के जगाने पर जब मोह रूपी नींद का उपशम होता है, तब कुछ उपाय (सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र) से कर्मरूपी चोरों का आना रुकता है—

सतगुरु देहि जगाय, मोह नींद जब उपशमै ।

तब कछु बनै उपाय, कर्मचोर आवत रुकै ॥³

समिति, गुप्ति, धर्म, अनुप्रेक्षा, परीषह-सहन एवं संयम (चारित्र) - ये संवर के निर्दोष कारण हैं। संवर करने वाले को मोक्ष प्राप्त होता है—

समिति गुप्ति अनुपेक्षा धर्म । सहन परीषह संयम पर्य ॥

ये संवर कारन निर्दोष । संवर करै जीव को मोख ॥⁴

निर्जरा भावना - ज्ञानरूपी दीपक में तपरूपी तेल भरकर भ्रम को छोड़कर अपने निज घर को खोजें, जिससे पूर्व में बैठे कमरूपी चोर निकल जाते हैं—

ज्ञान दीप तल तेल भरि, घर सोधै भ्रम छोर ।

या विधि चिन निकसैं नहीं, पैठे पूख चोर ॥⁵

1. पार्श्वपुराण, कलकत्ता, भूषरदास, अधिकार 4, पृष्ठ 30

2. पार्श्वपुराण, कलकत्ता, भूषरदास, अधिकार 7, पृष्ठ 64

3. पार्श्वपुराण, कलकत्ता, भूषरदास, अधिकार 4, पृष्ठ 30

4. पार्श्वपुराण, कलकत्ता, भूषरदास, अधिकार 7, पृष्ठ 64

5. पार्श्वपुराण, कलकत्ता, भूषरदास, अधिकार 4, पृष्ठ 30

तप के बल से पूर्व कर्मों का खिर जाना और ज्ञान के बल से नये कर्मों का न आना, यही सुख देने वाली निर्जरा है। यह निर्जरा संसार के कारणों से पार करने वाली, निश्चय करना चाहिए—

तप बल पूर्व कर्म खिर जाहि । नये राख जान जाहवै नाहि ॥

यही निर्जरा सुखदातार । भवकारन तारन निरधार ॥¹

लोक भावना - चौदह राजू ऊँचे पुरुष के आकार वाले लोक में जीव बिना ज्ञान के अनादिकाल से भटक रहा है—

चौदह राजू उतंग नथ, लोक पुरुष संठान ।

तामैं जीव अनादिसौं, भ्रमत्त है बिन ज्ञान ॥²

कमर पर हाथ रखे पुरुष के आकार रूप स्वयं-सिद्ध तीन लोक में जीव अनादि से भ्रमण कर रहा है और यहाँ उसे सम्यग्दर्शन के बिना मोक्ष प्राप्त नहीं होता है—

स्वयं सिद्ध त्रिभुवन थित जान । कटि कर धरैं पुरुष संठान ।

भ्रमत्त अनादि आतमा जहाँ । समकित बिन शिव होय न तहाँ ॥³

धर्म भावना - कल्पवृक्ष याचना करने पर कुछ देता है, चिन्तामणि चिन्तन करने पर कुछ देता है; जबकि धर्म बिना माँगे, बिना चिन्तन किये सब कुछ देता है—

जाचैं सुस्तरु देहि सुख, चिन्तत चिन्ता रैन ।

बिन जाचैं बिन चिंतवै, धर्म सकल सुख दैन ॥⁴

उत्तम क्षमादि दश अंग रूप धर्म दुर्लभ है, वह जीव को सुख देने वाला तथा सहगामी है। वह दुर्गति में गिरते हुए जीव का हाथ पकड़ लेता है और स्वर्ग और मोक्ष स्थान प्रदान करता है।

1. पार्श्वपुराण, कलकत्ता, भूधरदास, अधिकार 7, पृष्ठ 64

2. पार्श्वपुराण, कलकत्ता, भूधरदास, अधिकार 4, पृष्ठ 30

3. पार्श्वपुराण, कलकत्ता, भूधरदास, अधिकार 7, पृष्ठ 64

4. पार्श्वपुराण, कलकत्ता, भूधरदास, अधिकार 4, पृष्ठ 30

दुर्लभ धर्म दशांग पवित्त । सुखदायक सहगामी नित्त ।

दुर्गति परत यही कर गहै । देव सुरग शिवधानक यहै ॥¹

बोधिदुर्लभ भावना - धन-सम्पत्ति, राज्य-सुख आदि सब कुछ सुलभ है; परन्तु संसार में एक यथार्थज्ञान सम्यग्ज्ञान दुर्लभ है । संसार के सभी सुख यहाँ तक कि नौ ग्रेवेयक तक के सुख जीव को सुलभ हैं । एक मात्र संसार के दुःख एवं दारिद्र्य को मिटाने वाला ज्ञानरूपी रत्न दुर्लभ है—

धन कन कंचन राज सुख, सबै सुलभ करि जान ।

दुर्लभ है संसार में, एक जथार्थ ज्ञान ॥²

सुलभ जीव को सब सुख सदा । नौ ग्रीवक ताई संपदा ।

बोधरत्न दुर्लभ संसार । भवदरिद्र दुख मेटनहार ॥³

ये बारह भावनाएँ माने से जीव को संसार, शरीर और भोगों से वैराग्य उत्पन्न होता है तथा इनकी असारता का ज्ञान होता है ।⁴

दसधर्म -

उत्तम क्षमा, उत्तम मार्दव, उत्तम आर्जव, उत्तम सत्य, उत्तम शौच, उत्तम संयम, उत्तम तप, उत्तम त्याग, उत्तम आकिंचन और उत्तम ब्रह्मचर्य—

इन दसधर्मों का पालन मुनिराज हमेशा करते हैं ।

उत्तम क्षमा - बिना दोष के दुर्जन दुःख देते हैं, समर्थ होकर भी जो सब दुःखों को सह लेता है । जहाँ क्रोध कषाय उत्पन्न नहीं होती है, वहाँ उत्तम क्षमा धर्म कहलाता है ।⁵

उत्तम मार्दव - आठ प्रकार के अनुपम महामद को उत्पन्न करने वाली स्थिति होने पर भी जो अभिमानरहित मृदुरूप वर्तिते हैं । जहाँ मान कषाय उत्पन्न नहीं होती है, वहाँ उत्तम मार्दव धर्म होता है ।⁶

1. पार्श्वपुराण, कलकत्ता, भूषरदास, अधिकार 7, पृष्ठ 64

2. पार्श्वपुराण, कलकत्ता, भूषरदास, अधिकार 4, पृष्ठ 30

3. पार्श्वपुराण, कलकत्ता, भूषरदास, अधिकार 7, पृष्ठ 64

4. ये दश दोष भावना भाय, दिङ् वैरागी भये जिनराय ।

देह भोग संसार सारूप, सब असार जानौ जगभूप ॥ वही, अधिकार 7, पृष्ठ 64

5. पार्श्वपुराण, कलकत्ता, भूषरदास, अधिकार 4, पृष्ठ 35

6. पार्श्वपुराण, कलकत्ता, भूषरदास, अधिकार 4, पृष्ठ 35

उत्तम आर्जव - जो मन में सोचता है, वही मुँह से कहता है, वही शरीर से कार्य करता है। जिसके हृदय में मायाचार नहीं होता है; उसके उत्तम आर्जव धर्म होता है अर्थात् मायाचार का न होना उत्तम आर्जव धर्म है।¹

उत्तम सत्य - जो स्व-पर के हित करने वाले सत्यरूप अमृत की तरह वचन बोलते हैं। भूलकर भी झूठ वचन नहीं बोलना, सत्य है। वह सत्य धर्मरूपी वृक्ष का मूल है।²

उत्तम शौच - जो परस्त्री और परधन से छल छोड़कर वास्तव में विरक्त होता है। जिसका हृदय सर्वांग रूप से शुद्ध होता है, उसको उत्तम शौच धर्म कहते हैं।³

उत्तम संयम - जो मन सहित पाँचों इन्द्रियों को वश में रखता है, उन्हें रंचमात्र शिथिल नहीं होने देता है। त्रस और स्थावर जीवों की रक्षा करता है, उसके उत्तम संयम धर्म होता है।⁴

उत्तम तप - ख्याति, लाभ, पूजादि की भावना छोड़कर पाँच इन्द्रियों को दण्डित करना - वह अनशन आदि बारह प्रकार का जगत में साररूप तपधर्म कहा गया है।⁵

उत्तम त्याग - संयम का पालन करने वाले, व्रतियों में प्रधान मुनिराज को चार प्रकार का उत्तम दान देना तथा दुष्ट (बुरे) विकल्पों को त्याग करना बहुत प्रकार से सुख देने वाला त्याग धर्म है।⁶

उत्तम आर्किचन - बाहर में बाह्य परिग्रह का त्याग और अंतरंग में ममत्व का अभाव उत्तम आर्किचन धर्म है। यह वास्तव में शिवपद देने वाला है।⁷

उत्तम ब्रह्मचर्य - बड़ी स्त्री को माता के समान, छोटी को पुत्री के समान और समानवयव वाली को बहन के समान मानते हुए जहाँ मन विकार रहित वर्तता है, उसे पूर्ण अर्थात् उत्तम ब्रह्मचर्य धर्म कहते हैं।⁸

1. पार्श्वपुराण, कलकत्ता, भूधरदास, अधिकार 4, पृष्ठ 35

2. से 8. तक पार्श्वपुराण, कलकत्ता, भूधरदास, अधिकार 4, पृष्ठ 35

-: बाबीस परीषह :-

क्षुधा, पिपासा, शीत, उष्ण, दंश-मशक, नग्नता, अरति, स्त्री, चर्या, निषद्या, शय्या, आक्रोश, वध, याचना, अलाभ, रोग, तृण-स्पर्श, मल, सत्कार-पुरस्कार, प्रज्ञा, अज्ञान और अदर्शन - ये बाबीस परीषह हैं।¹ मुनिराज इन बाबीस परीषहों को समताभावपूर्वक सहन करते हैं। यही उनका परीषहजय कहलाता है।

भूधरदास ने उपर्युक्त बाबीस परीषहों का अतिहृदयग्राही, मार्मिक एवं मौलिक वर्णन किया है। इस वर्णन में उन्होंने एक ओर परीषहों का स्वरूप बतलाया है तथा दूसरी ओर इन परीषहों को सहने वाले मुनिराजों की स्तुति की है, गुणानुवाद गाया है। परीषहजयी मुनिराजों के प्रति भक्ति प्रदर्शित की है। भूधरदास के अनुसार 22 परीषहों का वर्णन निम्नलिखित है-

क्षुधा परीषह (भूख की बाधा सहना) - अनशन, ऊनोदर आदि तप करते हुए दिन, पक्ष, महीने व्यतीत हो जाते हैं। योग्य आहार की विधि का योग नहीं बन पाता है। सम्पूर्ण शरीर के अंग शिथिल हो जाते हैं; फिर भी साधु दुस्सह भूख की वेदना को सहन करते हैं। रंच मात्र भी झुकते नहीं हैं अर्थात् दीनता नहीं दिखाते हैं। ऐसे साधु के चरणों में हम प्रतिदिन हाथ जोड़कर सिर झुकाते हैं।²

पिपासा परीषह (प्यास की बाधा सहना) - प्रकृति के विरुद्ध पारणा होने पर प्यास की वेदना बढ़ जाती है। ग्रीष्म काल में जब पित्त काफी पीड़ित करता है, तब दोनों आँखें धूमने लगती हैं; ऐसे समय में मुनिराज पानी नहीं चाहते हैं, उस प्यास की वेदना को सहन करते हैं। ऐसे मुनिराज जगत में जयवन्तवर्तों।³

शीत परीषह (ठण्ड की बाधा सहना) - शीतकाल में सब लोग काँपने लगते हैं। जहाँ वन में वृक्ष खड़े रहते हैं, वहाँ ठण्डी हवा से वृक्ष झुक

1. तत्त्वार्थसूत्र, उमास्वामी, अध्याय 9 सूत्र 9

तथा पार्श्वपुराण, कलकत्ता, भूधरदास, अधिकार 4 पृष्ठ 32

2. पार्श्वपुराण, कलकत्ता, भूधरदास, अधिकार 4, पृष्ठ 32

3. पार्श्वपुराण, कलकत्ता, भूधरदास, अधिकार 4, पृष्ठ 32

जाते हैं। वर्षा ऋतु में तूफानी हवा बहती है, बादल तीव्र वर्षा करते हैं। ऐसे समय में वीर मुनिराज नदी के किनारे, तालाब के किनारे, चौराहे पर कर्मों का दहन करते हैं। जो मुनिराज शीत की बाधा सहते हैं; वे तारण-तारण कहलाते हैं।¹

उष्ण परीषह (गर्मी की बाधा सहना) - भूख प्यास आदि अंतरंग में पीड़ित करते हैं, सम्पूर्ण शरीर दग्ध होता है, अग्निस्वरूप ग्रीष्मकाल की धूप गर्म रेत की तरह झुलसाने लगती है, पर्वत गर्म हो जाते हैं, शरीर में गर्मी उत्पन्न हो जाती है, पित्त कोष करता है, दाह ज्वर उत्पन्न हो जाता है - इत्यादि अनेक प्रकार की गर्मी की बाधा साधु सहते हैं और धैर्य नहीं छोड़ते हैं।²

दंशमशक परीषह (मच्छरों आदि के काटने की बाधा सहना) - मच्छर और मक्खी काटते हैं, वन पक्षी अनेक प्रकार से दुःख देते हैं, विषैले सर्प और बिच्छू डसते हैं, बहुत से कनखजूर चिपक जाते हैं, सिंह, सियार, हाथी सताते हैं; रीछ भालू, रोझ आदि बहुत दुःख देते हैं। ऐसे अनेक कष्टों को समभावों से सहने वाले वे मुनिराज हमारे (मेरे) पापों को दूर करें।³

नग्न परीषह (नग्नता की बाधा सहना) - अंतरंग में विषय वासना वर्तने से और बाहर में लोक-लाज के भय से दीन संसारी प्राणी परम दिगम्बर नग्न मुद्रा धारण नहीं कर सकते हैं; परन्तु शीलव्रतधारी साधु ऐसी कठोर नग्न परीषह को सहते हैं और बालकवत् निर्विकार और निर्भय रहते हैं। उन मुनिराज के चरणों में हमारा नमस्कार हो।⁴

अरति परीषह (अरति के कारणों को सहना) - देश और काल का कारण पाकर अनेक प्रकार के दुःख होते हैं, वहाँ संसारी प्राणी दुःखी होते हैं और स्थिरता छोड़ देते हैं। अरति परीषह के उत्पन्न होने पर धीर मुनिराज हृदय में धैर्य धारण करते हैं। धैर्यशील वे साधु हमारे हृदय में निरन्तर वास करें।⁵

स्त्री परीषह (स्त्री को देखकर काम विकार न होने देना) - जो वनराज-सिंह को पकड़ लेते हैं, सर्प को पकड़कर पैर से दबा लेते हैं, जिनकी

1. पार्श्वपुराण, कलकत्ता, भूधरदास, अधिकार 4, पृष्ठ 32

2. पार्श्वपुराण, कलकत्ता, भूधरदास, अधिकार 4, पृष्ठ 32

3 से 5. पार्श्वपुराण, कलकत्ता, भूधरदास, अधिकार 4, पृष्ठ 33

जरा सी भौंह टेढ़ी होने पर करोड़ों शूरवीर दीनता दिखाने लगते हैं, ऐसे पहाड़ उड़ाने वाले पुरुष, स्त्री-वेदरूपी हवा से स्वयं उड़ जाते हैं अर्थात् स्त्री के सामने दीनता दिखाने लगते हैं, स्त्री के प्रति मोहित हो जाते हैं। वे साहसी साधु धन्य हैं ! धन्य है ! जिनका मनरूपी सुमेरू स्त्री को देखकर डिगता नहीं है।¹

चर्या परीषह (गमन करने में थकावट की तरफ ध्यान न देना) - कोमल पैर कठोर पृथ्वी पर रखते हुए वे धीरे मुनिराज कष्ट नहीं मानते हैं। हाथी, घोड़ा पालकी पर चढ़े हुए लोगों द्वारा अपशब्द कहे जाने पर अपमानित होने पर हृदय में दुःख नहीं मानते हैं। इसप्रकार मुनिराज चर्या के दुःख सहन करते हैं और दृढ़ कर्मरूपी पर्वतों को भेदते हैं।²

निषट्ठा परीषह (जिस आसन से बैठना उससे चलायमान नहीं होना) - - मुनिराज गुफा, श्मशान, पर्वत, वृक्ष की कोटर आदि जहाँ बैठते हैं वहाँ भूमि को शुद्ध करके बैठते हैं। परिमित समय निश्चल शरीर रखते हैं, बार-बार आसन नहीं बदलते हैं। मनुष्य, देव, पशु और अन्य अचेतन द्रव्यों द्वारा उपसर्ग किये जाने पर स्थान नहीं छोड़ते हैं और स्थिरता धारण करते हैं। ऐसे गुरु सदैव मेरे हृदय में विराजमान होंगे।³

शय्या (शयन) परीषह (भूमि पर सोने से कंकड़ आदि चुभने का दुःख सहना) - जो महान पुरुष स्वर्ग के महलों में सुन्दर सेज पर सोकर सुख पाते थे, वे ही कोमल अंगों वाले अब अचल होकर एक आसन से कठोर भूमि पर शयन करते हैं। पत्थर के टुकड़े, कठोर कंकड़ आदि चुभने पर कायर नहीं होते हैं। ऐसे शय्या या शयन परीषह जीतने वाले मुनिराज कर्मरूपी कालिमा को धोते हैं।⁴

आक्रोश परीषह या दुर्वचन परीषह - (अज्ञानियों के द्वारा कहे गये कठोर वचनों का सहना) - जितने जगत में चराचर जीव हैं, मुनिराज उन सबको सुख देने वाले तथा सबका हित चाहने वाले हैं। मुनिराज को देखकर दुष्ट लोग - "पाखण्डी" "ठग" "अभिमानी" "भेष तपस्वी का है परन्तु वास्तव में चोर है" "इस पापी को पकड़कर मारो" - इत्यादि दुर्वचन कहते हैं। वे ज्ञानी मुनिराज ऐसे वचनरूपी बाणों की वर्षा को क्षमारूपी ढाल ओढ़कर सहन करते हैं।⁵

बध परीषह (अज्ञानियों द्वारा किये गये बध आदि के दुःखों को सहना) - महा मुनिराज वैररहित और अपराधरहित होते हैं। उनके दुष्ट लोग मिलकर मारें, कोई खींचकर खम्भे से बाँध दें, कोई अग्नि में जला दे, फिर वे कभी क्रोध नहीं करते हैं और पूर्व कर्म के फल का विचार करते हैं। समर्थ होकर भी बध-बंधन सहन करते हैं। ऐसे गुरु हमेशा हमारी सहायता करें।¹

याचना परीषह (आहारादि की याचना न करना) - तपस्वी वीर मुनिराज घोर तप करते हैं। तप करते हुए उनका शरीर सूख जाता है, क्षीण हो जाता है, हड्डियाँ तथा चर्म ही शरीर में शेष रहते हैं, नसाजाल दिखाई देने लगता है। वे औषधि, भोजन, पान आदि प्राण जाने पर भी माँगते नहीं हैं। कठोर अयाचीक व्रत करते हैं और पश्चात्ताप कर धर्म को मालिन नहीं करते हैं।²

अलाभ परीषह (विधि के अनुसार भोजन न मिलने पर दुःख न मानना) - मुनिराज एक बार भोजन के समय मौन लेकर बस्ती में भोजन के निमित्त आते हैं। यदि योग्य भिक्षा की विधि (आहार की विधि) नहीं मिल पाती है तो वे महापुरुष मन में खेद नहीं करते हैं। भोजन के बिना भ्रमण करते हुए बहुत दिन बीत जाते हैं; फिर भी वे कठोर तप करते हुए विशद बारह भावनाएँ भाते हुए कठिन अलाभ के परीषह को सहन करते हैं तथा मोक्ष प्राप्त करते हैं।³

रोग परीषह (शरीर में रोग आदि होने पर उपचार न कराना) - जब शरीर में वात, पित्त, कफ, शोणित के घटने- बढ़ने से रोग, संजोग आदि उत्पन्न हो जाते हैं, तब जगत के जीव कायर हो जाते हैं; परन्तु शूरवीर मुनिराज दारुण व्याधि की वेदना को सहते हैं और उपचार नहीं चाहते हैं, उपचार नहीं करवाते हैं। ऐसे आत्मा के लीन रहने वाले और शरीर से विरक्त रहने वाले जैन मुनि जिनेन्द्र के द्वारा कहे गये नियमों का निर्वाह करते हैं।⁴

तृण-स्पर्श परीषह (तिनके, काँटे आदि चुभने पर उन्हें न हटाना) - सूखे तिनके, तीक्ष्ण काँटे और कठोर पत्थर पैर विदारण कर देते हैं, धूल उड़कर आँखों में आ जाती है, तीर या फाँस शरीर में पीड़ा उत्पन्न करती

1. पार्श्वपुराण, कलकत्ता, भूधरदास, अधिकार 4, पृष्ठ 33

2 व 3 पार्श्वपुराण, कलकत्ता, भूधरदास, अधिकार 4, पृष्ठ 33

4. पार्श्वपुराण, कलकत्ता, भूधरदास, अधिकार 4, पृष्ठ 33-34

है; परन्तु फिर भी मुनिराज दूसरे की सहायता नहीं चाहते हैं अर्थात् दूसरे से नहीं निकलवाते हैं और स्वयं अपने हाथ से भी नहीं निकालते हैं। इसप्रकार तृण स्पर्श परीषह को जीतने वाले वे मुनिराज भव-भव में हमारे शरण होवें।¹

मल परीषह (शरीर मलिन होने पर उसे सहन करना) - जीवन पर्यन्त जल से स्नान का त्याग करने वाले मुनिराज वन में नग्नरूप में खड़े रहते हैं। चलते समय धूप से पसीना बहता है, धूल उड़कर सब अंगों पर लग जाती है, शरीर मलिन हो जाता है। सम्पूर्ण शरीर को देखकर मुनिराज मन में मलिन भाव नहीं करते हैं। इसप्रकार मलजनित परीषह को जीतने वाले मुनिराज को हम सिर झुकाकर प्रणाम करते हैं।²

सत्कार-पुरस्कार परीषह (विनय सत्कार आदि न करने पर खेद न मानना) - जो मुनिराज महती विद्या के निधान, ज्ञान-जयी, चिरतपस्वी, अतुल गुणों के भंडार हैं; परन्तु जिनकी लोग वचन से विनय नहीं करते हैं तथा काया से प्रणाम नहीं करते हैं, फिर भी मुनिराज वहाँ खेद नहीं मानते हैं तथा हृदय में मलिनता नहीं आने देते हैं, ऐसे परम साधु के हम दिन-रात हाथ जोड़कर पैर पड़ते हैं।³

प्रज्ञा-परीषह (विशेष ज्ञान होने पर भी अभिमान न करना) - जो तर्क, छन्द, व्याकरण आदि कलाओं के निधान हैं। जो आगम, अलंकार आदि के ज्ञाता हैं। जिसप्रकार सिंह की गर्जना सुनकर वन के हाथी भय मानकर भागते हैं, उसी प्रकार जिनकी सुमति देखकर परवादी दुःखी एवं लज्जित होते हैं। ऐसे महाबुद्धि के भाजन होने पर भी मुनिराज रंचमात्र भी अभिमान नहीं करते हैं।⁴

अज्ञान परीषह (विशेष ज्ञान न होने पर या ज्ञान की हीनता होने पर दुःख न मानना) - जो दिन-रात अपने आप में सावधान हैं, संयम में शूर हैं, परम वैरागी हैं, जिनको गुप्तियाँ पालते हुए बहुत दिन हो गये हैं। जो सम्पूर्ण परिग्रह एवं ममता के त्यागी हैं। "अभी तक मुझे विशेषज्ञान अवधिज्ञान या मनःपर्यज्ञान या केवलज्ञान नहीं हुआ है"- ऐसा विकल्प जो तपस्वी मुनिराज नहीं करते हैं, वे अज्ञान पर विजय पाने वाले बड़े भाग्यवान हैं।⁵

1. से 3. पार्श्वपुराण, कलकत्ता, भूषरदास, अधिकार 4, पृष्ठ 33

4. पार्श्वपुराण, कलकत्ता, भूषरदास, अधिकार 4, पृष्ठ 34

5. पार्श्वपुराण, कलकत्ता, भूषरदास, अधिकार 4, पृष्ठ 34

अदर्शन परीषह - (क्रद्धि आदि पाने की इच्छा न करना) -
 "मैं बहुत समय से घोर तप कर रहा हूँ, परन्तु अभी तक मुझे क्रद्धि, अतिशय आदि उत्पन्न नहीं हुआ है। तप का बल, क्रद्धि आदि सिद्ध होने पर सब सुनते हैं, महत्व देते हैं; परन्तु मेरे पास वह झूठा-सा लग रहा है अर्थात् मेरे पास वह तप का बल, क्रद्धि आदि नहीं है।" इसप्रकार मुनिराज कभी नहीं सोचते हैं तथा शुद्ध सम्यक्त्व व शान्तरस में लीन रहते हैं - ऐसे साधु अदर्शन परीषह को जीतने वाले हैं। उनके दर्शन करने से पाप धुन जाता है।¹

ज्ञानावरणीय कर्म के उदय से प्रज्ञा और अज्ञान परीषह होते हैं। महामोह अर्थात् दर्शनमोहनीय कर्म के उदय से अदर्शन परीषह तथा अन्तराय कर्म के उदय से अलाभ परीषह होते हैं। चारित्रमोहनीय कर्म के उदय से नग्न, अरति, स्त्री, निषद्या, आक्रोश याचना, और सत्कार-पुरस्कार- ये सात परीषह होते हैं। वेदनीय कर्म के उदय से शेष ग्यारह क्षुधा, तृषा, शीत, उष्ण, दंशमशक, चर्या, शैथ्या, वध, रोग, तृण, स्पर्श और मल परीषह होते हैं।²

एक मुनिराज के साथ अधिक से अधिक उन्नीस परीषहों का उदय हो सकता है। आसन (निषद्या), शयन (शय्या) विहार (चर्या) — इन तीनों में से एक समय में एक ही हो सकता है। शीत और उष्ण में भी एक समय में एक ही हो सकता है। इसप्रकार ये तीन परीषह एक साथ नहीं होती हैं।³

बारह तप - अनशन, अवमोदर्य (ऊनोदर) - व्रतपरिसंख्यान, रसपरित्याग, त्रिविक्तशय्यासन और कायक्लेश—ये छह बाह्यतप हैं।⁴ प्रायश्चित्त, विनय वैयावृत्य, स्वाध्याय, व्युत्सर्ग और ध्यान - ये छह अंतरंग तप हैं।⁵ मुनिराज इन बारह तपों को तपते हैं। तप करने से शुभध्यान होता है तथा इनके सेवन करने से निर्वाणपद प्राप्त होता है। तीन लोक और तीन काल में तप के बिना कर्मों का नाश कभी नहीं होता है।⁶

अनशन - एक दिन से लेकर वर्षों तक जिससे जितना त्याग हो सके, चार प्रकार के (खाद्य, स्वाद्य, लेह, पेय) भोजन का त्याग करना अनशन है। यह रागरूपी रोग को दूर करने का उपाय जिनेन्द्र भगवान ने कहा है।⁷

1. से 3 पार्श्वपुराण, कलकता, भूधरदास, अधिकार 4 पृष्ठ 34

4. पार्श्वपुराण, कलकता, भूधरदास, अधिकार 4, पृष्ठ 30

5. से 7. पार्श्वपुराण, कलकता, भूधरदास, अधिकार 4 पृष्ठ 31

अवमोदर्य (ऊनोदर) - भूख से तीन चौथाई, आधा, चौथाई, उससे भी आधा, एक ग्राम अथवा एक कण भी कम खाना अवमोदर्य (ऊनोदर) है । यह आलस्य को दूर करने वाला है ।¹

व्रतपरिसंख्यान - इसप्रकार की प्रतिज्ञा भोजन ग्रहण करने के पहले कर ली जाती है, वैसी प्रतिज्ञा मिलने पर ही भोजन ग्रहण करना अर्थात् विशेष प्रतिज्ञापूर्वक भोजन लेना व्रतपरिसंख्यान है । यह आशारूपी व्याधि को दूर करने वाला है ।²

रसपरित्याग - मीठा, खारा आदि रसों को छोड़कर नीरस भोजन लेना, रसपरित्याग है । यह इन्द्रियों के मद को नाश करने वाला नियम है ।³

विविक्तशय्यासन - शून्यगृह, पर्वत, गुफा, श्मशान, पुरुष-स्त्री-नपुसंक से रहित अन्य कोई स्थान में सोना, उठना, बैठना आदि विविक्तशय्यासन है । यह ध्यान की सिद्धि का कारण है ।⁴

कायक्लेश - मुनिराज गर्मों के समय पर्वत के शिखर पर, वर्षा के समय वृक्ष के नीचे तथा शीतकाल में नदी के किनारे पर विराजते हैं, यह कायक्लेश है । इस तप को करने से मुनि सहनशील होते हैं ।⁵

इसप्रकार ये छह बहिरंग तप हैं । छह अंतरंग तपों का स्वरूप निम्नलिखित है-

प्रायश्चित - प्रमादवश लगे हुए दोषों का आचार्य के कहे अनुसार शोधकर छोड़ना प्रायश्चित तप है ।⁶

विनय - जो दर्शन-ज्ञान-चारित्रवान साधु गुणों में अधिक हैं, उनकी विनय करना सुख देने वाला विनय तप है ।⁷

वैयावृत्य - जो बाल, वृद्ध रोगादि से पीड़ित मुनि हैं, अपने संयम का पालन करते हुए भी उनकी सेवा करना आगमानुसार वैयावृत्य है ।⁸

स्वाध्याय - शक्ति के अनुसार सम्पूर्ण गुणों के स्थानभूत परमागम का अभ्यास परमोत्तम स्वाध्याय तप है । इससे सभी संशय मिट जाते हैं ।⁹

व्युत्सर्ग - अपने शरीर की ममता को दूर कर कार्योत्सर्ग मुद्रा धारण करना तथा अंतरंग बहिरंग परिग्रह का त्याग करना व्युत्सर्ग नाम का तप है।¹

ध्यान - सभी चिन्ताओं का निरोध करके एक वस्तु में चित्त का स्थिर हो जाना, जिनागम में ध्यान कहा गया है। आर्त-रौद्र ध्यान को छोड़कर धर्म-शुक्ल ध्यान को ध्याना चाहिए।²

इसप्रकार धीर-वीर महामुनि इन बारह प्रकार के कठोर तपों का आचरण करते हैं।

∴ सोलहकारण भावनायें :-

दर्शनविशुद्धि, विनयसम्पन्नता, शील और व्रतों में अतीचार न लगाना, अभीक्ष्णज्ञानोपयोग, संवेग, यथाशक्ति-त्याग, यथाशक्ति-तप, साधु-समाधि, वैयावृत्ति, अर्हत्-भक्ति, आचार्यभक्ति, बहुश्रुतभक्ति, प्रवचनभक्ति, आवश्यक अपरिहाणि, मार्गभावना और प्रवचन-वात्सल्य - इन सोलह भावनाओं से "तीर्थकर" नाम कर्म की प्रकृति का आस्त्रव-बंध होता है।³

इनका विवेचन निम्नांकित है—

दर्शनविशुद्धि - आठ शंकादि दोष, आठ मद, छह अनायतन और तीन मूढ़ता - इन पच्चीस मलरहित सम्यक्त्व का होना दर्शनविशुद्धि कहलाती है।⁴

विनय सम्पन्नता - दर्शन, ज्ञान चारित्र के समुदायरूप रत्नत्रय के धारी मुनिराज के प्रति विनय करना, दूसरी पवित्र विनय सम्पन्नता भावना है।⁵

शील-व्रतों में अनतिचार - अठारह हजार अंग सहित शील का एवं व्रतों का पालन करना तथा उनके पालन में अतीचार न लगाना, तीसरी शीलव्रतों में अनतिचार भावना है।⁶

1. से 2. पार्श्वपुराण, कलकत्ता, भूधरदास, अधिकार 4, पृष्ठ 33

3. तत्त्वार्थसूत्र, उमास्वामी, अध्याय 6 सूत्र 24

4. पार्श्वपुराण, कलकत्ता, भूधरदास, अधिकार 4, पृष्ठ 33

5. पार्श्वपुराण, कलकत्ता, भूधरदास, अधिकार 4, पृष्ठ 35

6. पार्श्वपुराण, कलकत्ता, भूधरदास, अधिकार 4, पृष्ठ 35

अभीक्ष्णज्ञानोपयोग - अपनी बुद्धि एवं शक्ति के अनुसार आगम के कहे गये अर्थ को अवधारण करना तथा निरन्तर ज्ञान का अभ्यास करना, चौथी अभीक्ष्णज्ञानोपयोग भावना है ।¹

संवेग - धर्म एवं धर्म के फल में विशेष प्रीति एवं संसार से भयभीतपना, जिनागम के अनुसार पाँचवीं संवेग भावना है ।²

यथाशक्ति त्याग - औषधि, अभय, ज्ञान और आहार - इन चार प्रकार के महादानों को शक्ति के अनुसार देना, छठवीं यथाशक्ति-त्याग भावना है ।³

यथाशक्ति तप - अनशन आदि बारह प्रकार के मुक्ति देने वाले उत्तम तपों को शक्ति के अनुसार करना, सातवीं यथाशक्ति तप भावना है ।⁴

साधु-समाधि - यति वर्ग अर्थात् मुनिराजों को किसी कारण से विघ्न आने पर सहायता करना, साधु-समाधि नामक आठवीं भावना है ।⁵

वैयावृत्य - जिनागम में कहे गये दस प्रकार के साधुओं का जिनमार्ग में पीड़ित या रोगी देखकर उनकी सेवा सत्कार करना, नौवीं वैयावृत्य भावना है ।⁶

अर्हद्भक्ति - परमपूज्य अनन्त चतुष्टयवन्त अरहन्त आत्माओं के प्रति स्तुति, विनय, पूजा आदि का भाव, दसवीं अर्हद् भक्ति भावना है ।⁷

आचार्य भक्ति - जिनवर द्वारा कहे गये अर्थों का अवधारण करके अनेक प्रकार के ग्रन्थों की रचना करने वाले आचार्यों की भक्ति करना, ग्यारहवीं आचार्य भक्ति भावना है ।⁸

बहुश्रुत भक्ति - जो विद्या देने वाले, विद्या में लीन रहने वाले, गुणों में प्रधान, पाठकों में प्रवीण हैं, उनके चरणों में हमेशा चित्त रखना अर्थात् उनकी भक्ति करना, बहुश्रुत भक्ति नामक बारहवीं भावना है ।⁹

प्रवचन भक्ति - भगवान् सर्वज्ञ देव द्वारा कहे गये अनुपम अर्थों और गणधर द्वारा गूँथे हुए ग्रंथों के प्रति पवित्र भक्ति का होना, प्रवचन भक्ति नामक तेरहवीं भावना है ।¹⁰

आवश्यक-अपरिहाणि - षट आवश्यक क्रियाओं को सदैव सावधानीपूर्वक निम्न तित्त से करना, उन्हें लगी हाणि (कमी) नहीं करना, परम पवित्र चौदहवीं आवश्यक अपरिहाणि भावना है ।¹

मार्ग प्रभावना - जप, तप, पूजा, व्रतादि करके जिनधर्म के प्रभाव को प्रकट करना, पन्द्रहवीं मार्ग प्रभावना नामक भावना है ।²

प्रवचन वात्सल्य - चार प्रकार के संघ— मुनि, आर्यिका, श्रावक, श्राविका के प्रति गाय की बछड़े से प्रीति की तरह प्रेम रखना प्रवचन, वात्सल्य नाम की सबको सुख देने वाली सोलहवीं भावना है ।³

सोलहकारण भावनायें परम पुण्य का साधन हैं । ये पृथक्-पृथक् एवं सब एक साथ तीर्थंकर पद का कारण हैं । तीर्थंकर पद का बंध मिथ्यात्व अवस्था में नहीं होता है । इसका बंध सम्यक्त्व में ही होता है ।⁴

जो मुनिराज पाँच महाव्रत, पाँच समिति, तीन गुप्ति रूप तेरह प्रकार के चारित्र्य का पालन करते हुए बारह भावनायें भाते हैं, बाबीस परीषहों को सहते हैं, बारह प्रकार के तप तपते हैं, दशधर्मों का पालन करते हैं⁵ तथा सोलह कारण भावनाओं का चिन्तन करते हैं वे तीर्थंकर प्रकृति का बन्ध करते हैं ।⁷

1. पार्श्वपुराण, कलकत्ता, भूधरदास, अधिकार 4, पृष्ठ 36

2. पार्श्वपुराण, कलकत्ता, भूधरदास, अधिकार 4, पृष्ठ 36

3. पार्श्वपुराण, कलकत्ता, भूधरदास, अधिकार 4, पृष्ठ 36

4. पार्श्वपुराण, कलकत्ता, भूधरदास, अधिकार 4, पृष्ठ 36

5. पंच महाव्रत दुद्धर धरै, सम्यक पाँच समिति आदरै ।

तीन गुप्ति पालै यह कर्म, तेरह विधि चारित मुनि धर्म ॥

पार्श्वपुराण, कलकत्ता, भूधरदास, अधिकार 9, पृष्ठ 86

6. बारह विधि दुद्धर तप करै, दशलाक्षनी धर्म अनुसरै ।

पार्श्वपुराण कलकत्ता, भूधरदास, अधिकार 3, पृष्ठ 19

7. (क) सोलहकारण भावना, परम पुन्य का खेत ।

भिन्न भिन्न अह सोलहों, तीर्थंकर पद देत ॥

पार्श्वपुराण, कलकत्ता, भूधरदास, अधिकार 4, पृष्ठ 36

(ख) सोलह करन ये भवतार, सुमरत पावन होय हियो ।

भार्वे श्री आनन्द महामुनि, तीर्थंकर पद बंध कियो ॥

पार्श्वपुराण, कलकत्ता, भूधरदास, अधिकार 4, पृष्ठ 36

तीर्थकर प्रकृति का बन्ध करने वाले मुनिराज कषाय और कषाय को कृश (क्षीण) करते हुए संयमरूपी गुण का पालन करते हैं। तप के बल से अनेक ऋद्धियाँ उत्पन्न हो जाती हैं। राग-द्वेष का नाश हो जाता है। जहाँ वन में वे मुनिराज तप करते हैं, वहाँ सबकी विपत्ति टल जाती है; सूखे-सरोवर पानी से भर जाते हैं, सब ऋतु के फल फूल फलने लगते हैं; हंस, सर्प, मोर, विलाव, सिंह आदि जातिविरोधी जीव वैर छोड़कर आपस में प्रेम करने लगते हैं। वे मुनिराज समतारूपी रथ पर सवार होकर मोक्षरूपी पथ पर गमन करते हैं। उनके गुणों के सम्बन्ध में भूधरदासजी का कथन है —

सोहे साधु चढे समतारथ, परमारथ पथ गमन करें।

शिवपुर पहुँचन की उर चाँछा, और न कछु चित चाह धरै ॥

देह विरक्त ममत्व बिना मुनि, सबसों मैत्री भाव बहै।

अतम लीन अदीन अनाकुल, गुन धरनत नहि पार लहै ॥²

देशचारित्र या गृहस्थ धर्म :—

सम्यग्चारित्र के वर्णन में यह बात स्पष्ट की गई है कि सम्यग्दर्शनपूर्वक ही सम्यग्चारित्र होता है, सम्यग्दर्शन के बिना सम्यग्चारित्र नहीं होता है। अतः जिसे सम्यग्दर्शन हो गया है ऐसा सम्यग्दृष्टि - सम्यग्ज्ञानी जीव राग-द्वेष की निवृत्ति के लिए सम्यग्चारित्र अंगीकार करता है।³ जहाँ मुनिराज अनन्तानुबन्धी, अप्रत्याख्यानावरणी, एवं प्रत्याख्यानावरणी कषाय के अभाव में अन्तरंग में सकल चारित्ररूप आत्मशुद्धि (वीतरागता) प्रकट करके बाह्य में 28 मूलगुणरूप व्रतों का पालन करते हैं, वहाँ सम्यग्दृष्टि गृहस्थ अनन्तानुबन्धी एवं अप्रत्याख्यानावरणी कषाय के अभाव में अन्तरंग में देशचारित्ररूप आत्मशुद्धि (वीतरागता) प्रकट करके बाह्य में हिंसादि पाँच पापों के एकदेशत्यागरूप पाँच अणुव्रत, अणुव्रतों के रक्षण और अभिवृद्धिरूप तीन गुणव्रत एवं महाव्रतों के अभ्यासरूप चार शिक्षाव्रत - इन बारह व्रतों का पालन करता है। सम्यग्दृष्टि गृहस्थ का आचार एक प्रकार से मुनि-आचार की नींवरूप होता है; उसी के आधार पर मुनिआचार

1 व 2. पार्श्वपुराण, कलकत्ता, भूधरदास, अधिकार 4 पृष्ठ 37

3. मोहतिमिरापहरणे दर्शनलाभादवाप्तसंज्ञानः ।

रागद्वेषनिवृत्त्यै चरणं प्रतिपद्यते साधु : ॥ रत्नकरण्डश्रावकाचार, समन्तभद्राचार्य, श्लोक 47

का भव्य प्रासाद खड़ा होता है। अतः सच्चा गृहस्थ मुनि बनने की भावनापूर्वक गृहस्थधर्म का पालन करता है।

जैन गृहस्थ के आठ मूलगुण होते हैं - हिंसादि पाँच पापों के एकदेश त्याग से होने वाले अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह का एकदेश पालन तथा मद्य, मांस, मधु का सर्वथा त्याग।¹ उत्तरकाल में आठ मूलगुणों में पाँच अणुव्रतों के स्थान पर पाँच क्षीरिफल या उदुम्बर फलों के त्याग को ले लिया गया।²

“श्रावक के तीन भेद हैं - पाक्षिक, नैष्ठिक और साधक। जो एकदेश से हिंसा का त्याग करके श्रावक धर्म को स्वीकार करता है; उसे पाक्षिक श्रावक कहते हैं। जो निरतिचार श्रावक धर्म का पालन करता है; उसे नैष्ठिक श्रावक कहते हैं और जो देशचारित्र को पूर्ण करके अपनी आत्मा की साधना में लीन हो जाता है; उसे साधक श्रावक कहते हैं। अर्थात् प्रारम्भिक दशा का नाम पाक्षिक है, मध्यदशा का नाम नैष्ठिक है और पूर्णदशा का नाम साधक है। इस तरह अवस्था भेद से श्रावक के तीन भेद किये गये हैं।”³

इनमें पाक्षिक श्रावक उपर्युक्त आठ मूलगुणों का पालन करता है, रात्रि में भोजन नहीं करता है, अनच्छना जल काम में नहीं लेता है, जुआ आदि सप्त व्यसनों का त्यागी होता है तथा सच्चे देव-शास्त्र-गुरु का भक्त होने से प्रतिदिन देवपूजा, गुरुपासना, स्वाध्याय, संयम, तप और दान रूप षट् आवश्यक कार्यों को करता है।⁴

नैष्ठिक श्रावक के ग्यारह दर्जे हैं, जिन्हें 11 प्रतिमाएँ कहते हैं। भूधरदास ने इनका विस्तृत वर्णन किया है जो निम्नलिखित है -

1. मद्यमांसमधुत्यागैः सहाणुव्रतपञ्चकम् ।
अष्टोमूलगुणानाहुर्गृहिणां श्रमणोत्तमाः ॥
रत्नकरण्डश्रावकाचार, समन्तभद्राचार्य, श्लोक 66
2. पिप्प्लोदुम्बरप्लक्षवट प्लान्यदन् ।
हन्त्यार्द्राणि वसान् शुष्काण्यपि स्वं रागयोगतः ॥
सागरधर्मामृत, पं. आशाधर, श्लोक 13
3. जैनधर्म, पं. कैलाशचन्द्र शास्त्री, पृष्ठ 198- 199
4. जैनशतक, भूधरदास, पद्य 48 एवं 49

1. दर्शन प्रतिमा :-

प्राथमिक भूमिका वाला पाक्षिक श्रावक जिन आठ मूलगुणों को पालन करता है अर्थात् पंच उदुम्बर फल तथा तीन मकार (मद्य, मांस, मधु) का त्याग करता है, सप्त व्यसन का त्याग करता है, दर्शन प्रतिमा धारण करने वाला भी उन्हीं का त्याग करता है; परन्तु उसके त्यागरूप व्रत में वह कोई अतिचार (दोष) नहीं लगाता है। उसके श्रद्धान में दृढ़ता और नियमों में कठोरता आ जाती है। भूधरदास ने दर्शन प्रतिमा का कथन इस प्रकार किया है -

पंच उदंबर तीन मकार । सात व्यसन इनको परिहार ॥

दर्शन होय प्रतिज्ञायुक्त । सो दर्शन-प्रतिमा जिनउक्त ॥¹

पाँच उदुम्बर फलों के दोष एवं उनके त्याग का उपदेश :-

बड़, पीपल, उमर, कठूमार (गूलर) और पाकर - इन पाँच जाति के फलों को पाँच उदुम्बर फल कहते हैं।² इन पाँच उदुम्बर फलों में अनेक त्रस जीवों की उत्पत्ति होती है अर्थात् इनमें साक्षात् त्रस जीव पाये जाते हैं। इनके भक्षण से महती हिंसा होती है; इसलिए इनका त्याग अवश्य करना चाहिये। “पीपल, गूलर, पिलखन, वट और काक उदुम्बरी के हरे फलों को जो खाता है, वह त्रस अर्थात् चलते फिरते हुए जन्तुओं का घात करता है; क्योंकि उन फलों के अन्दर ऐसे जन्तु पाये जाते हैं और जो उन्हें सुखाकर खाता है, वह उनमें अति आसक्ति होने के कारण अपनी आत्मा का घात करता है।”³

मद्य, मांस और मधु - इनके आदि में “म” है; इसलिए इन्हें “मकार” तथा संख्या तीन होने से “तीन मकार” कहते हैं। भूधरदास ने मद्य, मांस, मधु के दोष बतलाकर उनके त्याग का उपदेश दिया है।

मद्य के दोष एवं उसके त्याग का उपदेश :-

मदिरा जीव समूहों का ढेर है, वह दुर्गन्धयुक्त वस्तुओं को सड़ाकर, गलाकर तैयार की जाती है। निश्चय ही उसके स्पर्श करने मात्र से व्यक्ति की

1. पार्श्वपुराण, कलकत्ता, भूधरदास, अधिकार 9 पृष्ठ 86

2. बालबोध पाठमाला भाग 3, पाठ तीसरा- डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल, पृष्ठ 15

3. जैनधर्म, पं. कैलाशचन्द्र शास्त्री, पृष्ठ 199-200

सारी पवित्रता नष्ट हो जाती है और उसे पी लेने पर तो सारी सुध-बुध ही हृदय से जाती रहती है। मदिरा पीने वाला माता आदि को भी पत्नी समझने लगता है। इस दुनिया में मदिरा के समान त्याज्य वस्तु अन्य कोई नहीं है। इसलिए यह उत्तम कुलों में ग्रहण नहीं की जाती है तथापि जो मूर्ख मदिरा की प्रशंसा करते हैं, उन्हें धिक्कार है, उनकी जीभ जल जावे।¹

मांस के दोष एवं उसके त्याग का उपदेश :—

मांस की प्राप्ति त्रस जीवों का घात होने पर ही होती है। मांस का स्पर्श, आकार, नाम और गन्ध सभी हृदय में ग्लानि उत्पन्न करते हैं। मांस का भक्षण नरक जाने की योग्यता वाले निर्दयी, नीच और अधर्मी पुरुष करते हैं, उत्तम कुल और कर्मवाले तो इसका नाम लेते ही अपना शुद्ध सात्त्विक भोजन तक छोड़ देते हैं। मांस अत्यन्त निंदनीय है, अत्यन्त अपवित्र है और सदैव जीव समूह का निवास स्थान है। यही कारण है कि मांस सदैव अभक्ष्य बतलाया गया है। हे दयालु चित्तवाले ! तुम इस मांसभक्षण रूप दोष का त्याग करो।² इसी बात को अन्य शब्दों में भूधरदास द्वारा इस प्रकार कहा गया है -

रज्जवीरज सों नीपजै (ज्ञानी) सो तन मांस कहवै रे।

जीव होते बिन होय ना (ज्ञानी) नाख लियौ धिन आवे रे॥³

मधु के दोष एवं उसके त्याग का उपदेश :—

मधु महान अपवित्र पदार्थ है। मधु-मक्खियों का मल है और बहुत से त्रस जीवों के घात से उत्पन्न होता है। मधु की एक बूँद भी मधु-मक्खियों की हिंसारूप होती है। स्वयं पतित मधु में उसी जाति के अनन्त जीव उत्पन्न होते हैं। उसके खाने से महती हिंसा होती है; इसलिए मधु का सेवन नहीं करना चाहिए।⁴

1. (क) जैनशतक, भूधरदास, पद्य 48 एवं 49

(ख) सड़ि उपजै कीड़ा भरी (ज्ञानी) मद दुर्गन्ध निवासो रे।

छीया सो शुचिता मिटै, (ज्ञानी) पीयां बुद्ध विनासो रे॥

2. जैनशतक, भूधरदास, पद्य 52

3. पार्श्वपुराण, कलकत्ता, भूधरदास, अधिकार 9, पृष्ठ 86

4. पुरुषार्थसिद्धयुपाय, अमृतचन्द्राचार्य, श्लोक 65 से 71

सप्त व्यसन एवं उनका निषेध :—

जुआ खेलना, मांस भक्षण, मद्यपान, वेश्यासेवन, शिकार, चोरी और परनारी रमण - ये सात व्यसन हैं। जो पारस्वरूप है, इनका निवारण करना चाहिए।¹

श्री गुरु शिक्षा सांभलौ (ज्ञानी) सात व्यसन परित्यागो रे।

ये जग में पातक बड़े (ज्ञानी) इन मारग मत लागो रे ॥²

जुआ के दोष एवं उनका निषेध :—

जुआ नामक व्यसन प्रत्यक्ष ही अपनी आँखों से अनेक दोषों से युक्त दिखाई देता है। वह सम्पूर्ण पापों को आमन्त्रित करने वाला है, आपत्तियों का कारण है, खोटा लक्षण है, कलह का स्थान है, दरिद्र बना देने वाला है, अनेक अच्छाइयाँ करके प्राप्त किये हुये उज्ज्वल यश को भी उसी प्रकार ढँक देने वाला है, जिस प्रकार केतु सूर्य को ढँक देता है। ज्ञानी पुरुष इसे अवगुणसमूह के घर के रूप में देखते हैं। इस दुनिया में जुआ के समान अन्य कोई अनीति दिखाई नहीं देती। इस व्यसनराज के खेल को कौतूहल मात्र के लिए भी कभी नहीं देखना चाहिये।³

इसी सम्बन्ध में भूधरदास का अन्य कथन इस प्रकार है —

जूवा खेलन पाँडिये, (ज्ञानी) जो धन धर्म गँवावें रे।

सब विससन को बीज है, (ज्ञानी) देखता दुख पावे रे ॥⁴

मांस-भक्षण एवं मद्यपान-निषेध :—

मांस भक्षण एवं मद्य पान का निषेध सप्त व्यसनों के त्याग में भी किया जाता है तथा अष्ट मूल गुणों के पालन करने में भी किया जाता है। इनके दोषों का वर्णन एवं निषेध अष्ट मूलगुणों का कथन करते समय पूर्व में ही किया जा चुका है।⁵

1. जुआ खेलन मांस मद वेश्या विसन शिकार।

चोरी परमनी- रमन सातों पाप निवार ॥ जैनशतक, भूधरदास, छन्द 50

2. पार्श्वपुराण, कलकत्ता, भूधरदास, अधिकार 9, पृष्ठ 86

3. जैनशतक, भूधरदास, छन्द 50

4. पार्श्वपुराण, कलकत्ता, भूधरदास, अधिकार 9, पृष्ठ 86

5. प्रस्तुत शोध प्रबन्ध, अध्याय 7

वेश्या सेवन निषेध :—

पापिनी वेश्या धन के लिए प्रेम करती है। यदि व्यक्ति के पास धन नहीं बचे तो सारा प्रेम तिनके की तरह तोड़कर फेंक देती है। वेश्या अधम व्यक्तियों के होठों का चुम्बन करती है अथवा उनके मुँह से निस्सृत लार आदि अपवित्र वस्तुओं का स्वाद लेती है। सम्पूर्ण शुचिता वेश्या के छूने से समाप्त हो जाती है। वेश्या सदा बाजारों में मांस-मदिरा खाती-पीती फिरती है। जो व्यसनों में अंधे हो रहे हैं, वे वेश्याव्यसन से घृणा नहीं करते हैं। जो मूर्ख व्यक्ति वेश्याव्यसन में लीन हैं, उन्हें बारम्बार धिक्कार है।¹

भूधरदास द्वारा इसी तथ्य को अन्य स्थान पर इस प्रकार कहा गया है -

धिक वेश्या बाजारनी, (ज्ञानी) रमती नीचन साथै रे।

धनकारन तन पापिनी, (ज्ञानी) बैचे व्यसनी हाथै रे ॥²

शिकार निषेध :—

मृग जंगल में रहता है, अत्यन्त गरीब है, अपने प्राण ही उसकी प्राणों से प्यारी पूँजी है, डरपोक स्वभाव वाला है, सभी से डरता रहता है, किसी से द्रोह नहीं करता है, कभी किसी का बुरा नहीं सोचता है, बेचारा अपने दाँतों में तिनका लिये रहता है, किसी पर नाराज नहीं होता है, किसी से अपने पालन-पोषण की अपेक्षा नहीं रखता है, परोक्ष में किसी के दोष नहीं कहता फिरता अर्थात् पीठ पीछे परनिन्दा करने का दुर्गुण भी उसमें नहीं है। फिर भी रे रे कठोर हृदय ! अपने जरा से स्वाद के लिए उस मृग को मारने के लिए तेरा हाथ कैसे उठता है ?³

इसी बात को इन शब्दों में भी कहा गया है -

अति कायर सबसों डरै, (ज्ञानी) दीन मिरग खनचारी रे।

तिनपै आयुध साधते, (ज्ञानी) हा अति कूर शिकारी रे ॥⁴

1. जैनशतक, भूधरदास, छन्द 54
2. पार्श्वपुराण, कलकत्ता, भूधरदास, अधिकार 9, पृष्ठ 86
3. जैनशतक, भूधरदास, छन्द 55
4. पार्श्वपुराण, कलकत्ता, भूधरदास, अधिकार 9, पृष्ठ 86

चोरी निषेध :—

चोर कभी और कहीं भी निश्चित नहीं होता, हमेशा और हर जगह चौकन्ना रहता है। देख लेने पर स्वामी (चोरी की गई वस्तु का मालिक) उसकी पिटाई करता है। अन्य अनेक निर्दयी व्यक्ति भी उसे मिल कर मारते हैं। राजा भी क्रोध करके उसे तोप के सामने खड़ा करके उड़ा देता है। चोर बहुत दुःख भोगकर मरता है और परभव में भी उसे अधोगति प्राप्त होती है। चोरी नामक व्यसन अनेक विपत्तियों की जड़ है। चोरी में प्रत्यक्ष ही बहुत दुःख दिखाई देते हैं। समझदार व्यक्ति तो दूसरे के अदत्त (बिना दिये हुये) धन को अंगारे के समान समझकर कभी अपने हाथ से छूते भी नहीं हैं।¹

इसी बात को भूधरदास ने इस प्रकार भी कहा है :—

प्रगट जगत में देखिये, (ज्ञानी) प्राननते धन प्यारो रे।

जे पापी परधन हरै, (ज्ञानी) तिनसम कौन हत्यारो रे ॥²

परस्त्री सेवन निषेध :—

परनारी का सेवन खोटी गति में ले जाने के लिए वाहन है, गुणसमूह को जलाने के लिए भयानक आग है, उज्ज्वल यशरूपी चन्द्रमा को ढँकने के लिये बादलों की घटा है, शरीर को कमजोर करने के लिए क्षय रोग है, धनरूपी सरोवर को सुखाने के लिये धूप है, धर्मरूपी दिन को अस्त करने के लिए संध्या है, और विपत्तिरूपी सर्पों के निवास के लिए बाँबी है। शास्त्रों में परनारी सेवन को इसी प्रकार के अन्य भी अनेक दुर्गुणों से भरा हुआ कहा गया है। वह प्राणों को हरण करने के लिए प्रबल फाँसी है। ऐसा हृदय में जानकर हे मित्र ! तुम कभी पलभर भी परस्त्री से प्रेम मत करो।³

इसी बात को दूसरों शब्दों में कहा गया है —

परतिय व्यसन महा बुरो, (ज्ञानी) यामें दोष बड़ोरो रे।

इहि भव तन धन यश हरै, (ज्ञानी) यामें परभव नरक बसेरो रे ॥⁴

1. जैनशतक, भूधरदास, छन्द 56

2. पार्श्वपुराण, कलकत्ता, भूधरदास, अधिकार 9, पृष्ठ 86

3. जैनशतक, भूधरदास, छन्द 50

4. पार्श्वपुराण, कलकत्ता, भूधरदास, अधिकार 9, पृष्ठ 86

इसी सन्दर्भ में भूधरदास ने परस्त्री का त्याग करने वालों की प्रशंसा तथा परस्त्री को देखकर हँसने, प्रसन्न होने वालों की निन्दा भी की है। परस्त्री को देखकर अपनी नजर धरती की ओर नीची करने वालों को वे बारम्बार धन्य मानते हैं -

दिखि दीपक-लोय बनी वनिता, जड़ जीव पतंग जहाँ परते ।
दुख पावत प्राण गवाँवत है, बरजै न रहै हठ सौँ जरते ॥
इहि भाँति विचच्छन अच्छन के वश, होय अनीति नहीं करते ।
परतिथ लखि जे धरती निरखै, धनि हैं, धनि हैं, धनि हैं नर ते ॥¹
पुनः कहते हैं कि —

दिठ शील शिरोमनि कारज मैं, जग मैं जस आरज तेइ लहैं ।
तिनके जुग लोचन वारिज है, इहि भाँति अचारज आप कहैं ॥
परकामिनी कौ मुखचन्द चितैं, मुँद जाहि सदा यह देख गहैं ।
धनि जीवन है तिन जीवन को, धनि माय उनै उरमाय बहे ॥²

परस्त्री को देखकर निर्लज्जतापूर्वक हँसने और प्रसन्न होने वालों के प्रति वे कहते हैं—

जे परनारि निहारि निलज्ज, हँसै विगसैं बुधिहीन बडेरे ।
जूँठन की जिमि पातर पेखि, खुशी उर कूकर होत घनेरे ॥
है जिनकी यह देख वहै, तिनकों इस भौ अपकीरति है रे ।
है परलोक विषै दृढ़ दण्ड, करै शतखण्ड सुखाचल केरे ॥³

पार्श्वपुराण में प्रसंगानुसार कामी पुरुष के स्वभाव के बारे में भूधरदास का कथन है -

पाप कर्म को डर नहीं, नहीं लोक की लाज ।
कामी जन की रीति यह, धिक तिस जन्म अकाज ॥

1. जैनशतक, भूधरदास, छन्द 58
2. जैनशतक, भूधरदास, छन्द 59
3. जैनशतक, भूधरदास, छन्द 60

कामी काज अकाज मैं, होहै अंध अविवेक ।

मदन मत्त मदमत्त सम, जरो जरो यह टेढ़ ॥

पिता नीर पर सै नहीं, दूर रहै रवि यार ।

ता अंगुज में मूढ़ अलि, उरझि मरै अविचार ॥

त्यो ही कुविसनरत पुरुष, होय अवशि अविवेक ।

हित अनहित सौचैं नहीं, हिये विसन की टेक ॥¹

परनारी-सेवन को महान पाप मानते हुए वे लिखते हैं —

परनारी सम पाप न आन । परभव दुख इहि भय जस हान ॥

इस ही वांछा सों अघ भरे । रावण आदि नरक में परे ॥²

एक-एक व्यसन का सेवन करने वालों के नाम व व्यसन का परिणाम —

पांडवों के राजा युधिष्ठिर ने कुंभ कापक जयन व्यसन के सेवन से सब कुछ खो दिया । राजा बक ने मांस खाकर बहुत कष्ट उठाये, यादव बिना जाने पूछे मदपान कर जल मरे, चारुदत्त ने वेश्या व्यसन में फँसकर बहुत दुःख भोगे । राजा ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती शिकार के कारण, श्रीभूति ब्राह्मण अदत्त ग्रहण चोरी में रति के कारण तथा रावण परस्त्री में आसक्त होकर नरक में गया । जब एक-एक व्यसन का सेवन करने वालों की यह दुर्दशा हुई तो सातों व्यसनों का सेवन करने वालों की क्या गति होगी ?³

1. पार्श्वपुराण, कलकत्ता, भूधरदास, अधिकार 1, पृष्ठ 5

2. पार्श्वपुराण, कलकत्ता, भूधरदास, अधिकार 1, पृष्ठ 5

3. (क) प्रथम पाण्डवा भूष, खेलि जुआ सब खोयौ ।

मांस खाय बक राय, पाय विपदा बहु रोयौ ॥

बिन जाने मदपान जोग, जादौंगन दज्जौ ।

चारुदत्त दुख सह्यौ, वैसवा विसन अरुज्जौ ॥

नृप ब्रह्मदत्त आखेट सौं, द्विज शिवभूति अदत्तरति ।

परमनि राचि रावन गयो, सातौं सेवन कौन गति ॥

जैनशतक, भूधरदास, छन्द 61

(ख) पाण्डव आदि दुखी भये, (ज्ञानी) एक व्यसन रति मानी रे ।

सातनसों जे शठ रचे, (ज्ञानी) तिनकी कौन कहानी रे ॥

पार्श्वपुराण, कलकत्ता, भूधरदास, अधिकार 9, पृष्ठ 86

इस प्रकार पाँच उदुम्बर फल एवं मधु-मद-मांसरूप तीन मकार तथा सात व्यसन का त्याग कर उनके दोषों को दूर करना पहली दर्शन प्रतिमा है -

पंच उदंबर फल कहे, मधु मद मांस मकार ।

इनके दूषण परिहरो, पहली प्रतिमा धार ॥¹

2. व्रत प्रतिमा :-

पाँच अणुव्रत, तीन गुणव्रत तथा चार शिक्षाव्रतों का अतिचार-रहित निर्दोष पालन करना, व्रत प्रतिमा है :-

पाँच अणुव्रत गुणव्रत तीन । शिक्षाव्रत चारों मलहीन ॥

बारह व्रत धारै निर्दोष । यह दूजो प्रतिमा व्रत पोष ॥²

पाँच अणुव्रत :- अहिंसाणुव्रत, सत्याणुव्रत, अर्चौर्याणुव्रत, ब्रह्मचर्याणुव्रत, परिग्रहपरिमाणुव्रत, ये पाँच अणुव्रत हैं ।

अहिंसाणुव्रत :- (त्रस जीवों की हिंसा न करना) जो नित्य मन-वचन-कर्म से एवं कृत-कारित-अनुमोदना से त्रस जीवों को दुःख नहीं देता है, वह प्रथम अहिंसा अणुव्रत है ।³

सत्याणुव्रत :- (स्थूल झूठ न बोलना) सब दोषों के निवास रूप झूठ वचन नहीं बोलना तथा हित मित प्रिय वचन बोलना - दूसरा सत्य अणुव्रत है ।⁴

अर्चौर्याणुव्रत :- किसी दूसरे का भूमि पर पड़ा हुआ, भूला हुआ, बिसरा हुआ, जीवन को दुःख देने वाला धन बिना दिये नहीं लेना, तीसरा अर्चौर्य अणुव्रत है ।⁵

ब्रह्मचर्याणुव्रत :- अपनी ब्याही स्त्री में सन्तोष करना तथा महान दोष उत्पन्न करने वाली परस्त्री का त्याग करना, चौथा ब्रह्मचर्य अणुव्रत है ।⁶

परिग्रहपरिमाण-अणुव्रत :- धन, धान्य, सोना आदि परिग्रह की सीमा निश्चित करना, पाँचवा परिग्रह परिमाण अणुव्रत है । यह व्रत तृष्णारूपी नागिन को वश में करने वाला महान मंत्र है ।⁶

1 व 2 पार्श्वपुराण, कलकत्ता, भूषरदास, अधिकार 9, पृष्ठ 86

3 से 6 तक पार्श्वपुराण, कलकत्ता, भूषरदास, अधिकार 9, पृष्ठ 87

तीन गुणव्रत :- दिग्व्रत, देशव्रत और अनर्थदण्डव्रत - ये तीन गुणव्रत हैं ।

दिग्व्रत :- अवधि का प्रमाण करके दशों दिशाओं में आने जाने की सीमा निश्चित करना तथा प्राण-पर्यन्त उसके बाहर पैर न रखना अर्थात् गमन न करना दिग्व्रत है ।¹

देशव्रत :- दशों दिशाओं में भी एकदेश (आंशिक) समय की मर्यादापूर्वक वन, नगर, नदी, आदि के लिये नित्य गमन करने का प्रमाण करना, देशव्रत है ।²

अनर्थदण्डव्रत :- जहाँ अपना कोई स्वार्थ (प्रयोजन) न हो तथा अपार पाप उत्पन्न होता हो, वह अनर्थदण्ड है । उसके पाँच भेद अप्रध्यान, पापोपदेश, प्रमादचर्या, हिंसादान, दुःश्रुति है । उन सबका त्याग अनर्थदण्डव्रत है ।³

चार शिक्षाव्रत :- सामायिक, प्रोषधोपवास, भोगोपभोग-परिमाणव्रत और अतिथिसंविभागव्रत - ये चार शिक्षाव्रत हैं ।

सामायिक :- एकान्त स्थान में आर्त-रौद्र ध्यान छोड़कर हृदय में शुभ भावनापूर्वक सामायिक की विधि का आदर करना सामायिक (शिक्षाव्रत) है ।⁴

प्रोषधोपवास :- एक महिने में दो अष्टमी और दो चतुर्दशी - इन चार पर्वों में घर का सब आरम्भ छोड़कर चार प्रकार के भोजन का त्याग करना, प्रोषधोपवास है ।⁵

भोगोपभोगपरिमाणव्रत :- भोजन, पानी आदि जो वस्तुएँ एक बार भोगने में आती हैं; वह भोग है तथा स्त्री, आभूषण आदि जो वस्तुएँ बार-बार भोगने में आती हैं; वह उपभोग है । इन भोग- उपभोग की वस्तुओं का समय का प्रमाण करके भोगने का नियम करना, भोगोपभोगपरिमाणव्रत है ।⁶

अतिथिसंविभागव्रत :- उत्तम अतिथियों (मुनिराजों) को हमेशा मान बढ़ाई का त्याग कर हृदय में उनके प्रति श्रद्धा धारण करके चार प्रकार आहार, औषधि, ज्ञान, अभय का दान देना, अतिथिसंविभागव्रत है ।⁷

इस प्रकार उपर्युक्त बारह व्रतों का निरतिचार पालन करना, व्रत प्रतिमा है। इनका पालन करने वाला व्रती श्रावक कहलाता है।

3. सामायिक प्रतिमा :- प्रातः, दोपहर और सायं - इन तीनों काल पाँच अतिचार (काययोग-दुष्प्रणिधान, वाग्योगदुष्प्रणिधान, मनोयोगदुष्प्रणिधान, अनादर और स्मृत्यनुपस्थान) रहित सामायिक करने वाला तथा शत्रु मित्र को एक समान मानने वाला मनुष्य ही तीसरी (सामायिक) प्रतिमाधारी है।¹

4. प्रोषध प्रतिमा :- जो महीने में दो अष्टमी और दो चतुर्दशी - इन चार पर्वों में आरम्भ छोड़कर मन को रोककर प्रोषधव्रत (आहार आदि का त्याग) धारण करता है तथा उत्कृष्टरूप से सोलह पहर तक शुभ ध्यान करता है, वही चौथी (प्रोषध) प्रतिमावाला है।²

5. सचित्तत्याग प्रतिमा :- जो दल, फल, कंद, बीज आदि अनेक हरितकायों का त्याग करता है, राग छोड़कर प्रासुक जल पीता है, वह (पाँचवी प्रतिमावाला) सचित्तत्यागी बड़ा भाग्यवान है।³

6. दिवामैथुनत्याग प्रतिमा :- जो दिन में मैथुन-सेवन का त्याग करता है, मन-वचन-कायपूर्वक दृढ़ शील धारण करता है, वह धीर छठवीं (दिवामैथुनत्याग) प्रतिमाधारी जघन्य श्रावक है।⁴

7. ब्रह्मचर्य प्रतिमा :- जो स्त्री को सब प्रकार से हमेशा के लिए छोड़ देता है, सदा मन-वचन-काय, कृत-कारित-अनुमोदना - इन नौ बाढ़ सहित शील व्रत का पालन करता है तथा कभी कामकथा में आसक्त नहीं होता है, वह सातवीं (ब्रह्मचर्य) प्रतिमाधारी है।⁵

8. आरम्भ त्याग :- जो सब व्यापार आदि का व्यवहार छोड़कर मदरहित निरारम्भ वर्तता है तथा दिन-रात हिंसा से भयभीत रहता है, वह पवित्र आठवीं (आरम्भ-त्याग) प्रतिमावाला है।⁶

9. परिग्रह त्याग प्रतिमा :- जो समस्त परिग्रह का त्याग करके बिना राग के उचित वस्त्रादि रखता है, वह नौवीं (परिग्रहत्याग) प्रतिमाधारी मध्यम श्रावक है।⁷

1 से 2 तक पार्श्वपुराण, कलकत्ता, भूधरदास, अधिकार 9, पृष्ठ 87

3 से 7 तक पार्श्वपुराण, कलकत्ता, भूधरदास, अधिकार 9, पृष्ठ 88

10. अनुमति त्याग प्रतिमा :- जो पाप के मूल गृहस्थ के कार्य हैं उनको करने की भूलकर भी अनुमति नहीं देता है, भोजन के समय बुलाने पर जाता है। वह सुख देने वाली दसवीं (अनुमतित्याग) प्रतिमा है।¹

11. उद्दिष्ट त्याग प्रतिमा :- ग्यारहवीं प्रतिमा श्रावक का सर्वोत्कृष्ट अन्तिम दर्जा है। ये श्रावक दो प्रकार के होते हैं - क्षुल्लक तथा ऐलक। इस प्रतिमा की उत्कृष्ट दशा ऐलक होती है। इसके आगे मुनिदशा हो जाती है।

जो गुरु के पास जाकर व्रत ग्रहण करता है, घर को छोड़कर मठ या मंडप में रहता है, शरीर पर एक वस्त्र (चादर) तथा लंगोटी रखता है। अपने पास पीछी, कमंडलु तथा (भोजन के लिए) एक भिक्षापात्र (कटोरा) रखता है। दो अष्टमी व दो चतुर्दशी - इन चारों पर्वों में उपवास करता है, निर्दोष उद्दिष्ट आहार रहित भोजन लेता है। जिसको लाभ और अलाभ में राग एवं द्वेष नहीं होता। जो सिर, दाढ़ी, मूँछों के बाल उचित समय पर उतरवाता है, किंचित भी बाल नहीं रखता है तथा तप का आचरण, आगम का अभ्यास आदि शक्ति के अनुसार गुरु के पास रहकर करता है। यह सब क्षुल्लक श्रावक का आचरण है। दूसरा ऐलक इससे अधिक पवित्र होता है।²

जो कमर में एक लंगोटी मात्र रखता है। जिनके पास पीछी और कमंडलु होता है। जो विधिपूर्वक बैठकर पाणिपात्र अर्थात् हाथरूपी पात्र में आगम के अनुसार भोजन (आहार) ग्रहण करता है, अपने द्वारा केशलोंच करता है तथा अतिधीर होकर सर्दी गर्मी आदि सहन करता है, वह ऐलक श्रावक कहलाता है।³

इस प्रतिमा के धारी श्रावक ऐलक और क्षुल्लक मुनि के समान नवकोटिपूर्वक उद्दिष्ट आहार के त्यागी व घर कुटुम्ब से विरत होते हैं।

देशचारित्ररूप पंचम गुणस्थान में उपर्युक्त जिन ग्यारह प्रतिमाओं का उपदेश है; वे प्रतिमाएँ प्रारम्भ से उत्तरोत्तर अंगीकार की जाती हैं अर्थात् पहले धारण की हुई प्रतिमाओं के नियम या दशा आगे की प्रतिमाओं के धारण में छूटती नहीं हैं; अपितु वृद्धि को ही प्राप्त होती है।

पहली से छठवीं प्रतिमा तक धारण करने वाला जघन्यव्रती श्रावक, सातवीं से नौवीं प्रतिमा तक धारण करने वाला मध्यम व्रती श्रावक तथा दसवीं व ग्यारहवीं प्रतिमाधारी उत्कृष्ट व्रती श्रावक कहलाता है।

पूर्व में श्रावक के पाक्षिक, नैष्ठिक और साधक - ये तीन भेद बतलाये गये हैं, उनमें जहाँ पाक्षिक श्रावक आठ मूलगुणों का पालन व सप्त व्यसन का त्याग करता है तथा नैष्ठिक श्रावक उपर्युक्त ग्यारह प्रतिमाओं का पालन करता है; वहाँ साधक श्रावक अन्तिम समय में अपनी सम्पूर्ण शक्ति को संभाल करके सल्लेखना भी धारण करता है। सल्लेखना धारण करने से व्रत-नियम, संयम आदि सब विशाल फल देने वाले हो जाते हैं।¹

सल्लेखना या समाधिमरण -

सल्लेखना या समाधि नाम निःकषाय भाव का है, शान्त परिणामों का है। कषायरहित शान्त परिणामों से मरण होना समाधिमरण है। "जब व्यक्ति उपसर्ग, दुर्भिक्ष, जरा (बुढ़ापा) तथा रोग प्रतिकार (उपाय-उपचार) रहित असाध्य दशा को प्राप्त हो जाये अथवा चकार से ऐसा ही कोई दूसरा प्राणघातक अनिवार्य कारण उपस्थित हो जाय तब धर्म की रक्षा-पालना के लिए जो देह का विधिपूर्वक त्याग है, उसको सल्लेखना या समाधिमरण कहते हैं।² मरण काल उपस्थित होने पर काय एवं कषाय को कृश करते हुए, भोजन वगैरह का त्याग कर आत्मध्यान द्वारा निःकषायभाव अर्थात् समताभाव की प्राप्तिपूर्वक देहत्याग करना समाधिमरण है और इस क्रिया को करने वाला साधक श्रावक है। सम्पूर्ण व्रतों का पालन करते हुए सल्लेखना करने वाला साधक श्रावक परलोक में सोलहवें (अच्युत) स्वर्ग तक उत्पन्न हो जाता है।³

इस प्रकार सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञानपूर्वक सकलचारित्ररूप मुनिधर्म का पालन करने से मोक्ष-पद प्राप्त होता है तथा देशचारित्ररूप गृहस्थधर्म का पालन करने से स्वर्ग सुख प्राप्त होता है।⁴

1. अन्त समय सल्लेखना, कीजै शक्ति संभालो जी ।
जासौ व्रत संजम सबै, ये फल देहि विशालो जी ॥
पाश्वर्यपुराण, कलकत्ता, भूधरदास, अधिकार 9, पृष्ठ 87
2. उपसर्गे दुर्भिक्षे जरसि रुजायां च निव्रतीकारे ।
धर्माय तनु विमोचनमाहुः सल्लेखनामार्याः ॥
रत्नकरण्डश्रावकाचार, समन्तभद्राचार्य, श्लोक 122
3. अब इन बारह व्रतन को, लिखो लेश विरतन ।
जिनको फल जिनमत कह्यो, अच्युत स्वर्ग पर्यन्त ॥
पाश्वर्यपुराण, कलकत्ता, भूधरदास, अधिकार 9, पृष्ठ 86
4. यातै सधै मुक्ति पद खेत, गिरही धर्म सुरग सुख देत ॥
पाश्वर्यपुराण, कलकत्ता, भूधरदास, अधिकार 9, पृष्ठ 86

(ग) नैतिक विचार

दार्शनिक एवं धार्मिक विचारों की तरह भूधरदास द्वारा वर्णित नैतिक विचार भी महत्त्वपूर्ण हैं। अतः उनकी चर्चा अभिप्रेत है। भूधरदास ने अपने साहित्य को हृदयग्राही एवं मार्मिक बनाने के लिए अनेक नीतियों का उल्लेख किया है। कई स्थानों पर नीतिवर्णन कथानक से सम्बद्ध होता हुआ निष्कर्षप्रद (सिद्धान्तपरक) एवं उपदेशपरक दृष्टिगत होता है।¹ कवि द्वारा उल्लिखित नैतिक विचार अत्यन्त मर्मस्पर्शी एवं हृदयग्राही हैं; जिनकी उपयोगिता आज भी असंदिग्ध है। भूधरसाहित्य में वर्णित कुछ प्रमुख नैतिक विचार निम्नांकित हैं -

1. सज्जन-दुर्जन लार्जन :- सज्जन और दुर्जन- दोनों का अपना अपना स्वभाव होता है। जिस प्रकार विषधर वक्रचाल कभी नहीं छोड़ता और हंस कभी वक्रता ग्रहण नहीं करता -

यों सुख निबसै बांधव दोय। निज निज टेव न टारे कोय।

वक्रचाल विषधर नहिं तजै। हंस वक्रता भूल न भजै॥²

सज्जन और दुर्जन एक ही गर्भ से उत्पन्न होते हैं। जैसे लोहे से बना कवच रक्षा करता है और लोहे से बनी तलवार देह का नाश करती है -

उपजे एकहि गर्भसों, सज्जन दुर्जन येह।

लोह कवच रक्षा करै, खाड़ो खंडे देह॥³

दुर्जन चाहे कितना ही कष्ट दे, उससे सज्जन के सद्स्वभाव में किसी प्रकार का विकार नहीं आता; अपितु और अधिक निखार आता है, जिस प्रकार दर्पण राख के द्वारा और अधिक उज्ज्वल हो जाता है।

दुर्जन दूखित सन्त को, सरल सुभाव न जाय।

दर्पण की छवि छारसों, अधिकहिं उज्जवल थाय॥⁴

1. दुर्जन को विश्वास जे, करि हैं नर अविचार।

ते मंत्री मरुभूति सम, दुख पावै निरधार॥

यह सुनि दुष्ट संग परिहरो, सुखदायक सत्संगति करो॥

पार्श्वपुराण, कलकत्ता, भूधरदास, अधिकार 1, पृष्ठ 5

2 व 3 पार्श्वपुराण, कलकत्ता, भूधरदास, अधिकार 1, पृष्ठ 5

4. पार्श्वपुराण, कलकत्ता, भूधरदास, अधिकार 1, पृष्ठ 7

यद्यपि कुल्हाड़ी चन्दन को काटती है तथापि बदले में चन्दन उसके मुख को सुवासित ही करता है। उसी प्रकार सज्जन दुर्जन द्वारा कष्ट दिये जाने पर अपने सदस्वभाव को नहीं छोड़ता -

सज्जन टरै न टेवसों, जो दुर्जन दुख देय।

चन्दन कटत कुठार मुख, अवशि कुठार करेय ॥¹

दुर्जन की तुलना श्लेषमा से करता हुआ कवि कहता है -

दुर्जन और श्लेषमा, ये समान जगमाहिं।

ज्यों ज्यों मधुरे दीजिये, त्यों त्यों कोप कराहिं ॥²

दुर्जन की प्रीति से सुख कैसे प्राप्त हो सकता है ? जिस प्रकार सर्प को दूध पिलाने से अमृत की प्राप्ति नहीं होती है -

दुर्जन जन की प्रीतिसों, कहो कैसे सुख होय।

विषधर पोषि पियूष की, प्राप्ति सुनी न लोय ॥³

जिस प्रकार सर्प के मिलने से सुख नहीं होता है, उसी प्रकार दुर्जन के मिलने से सुख नहीं होता -

खलसों मिले कहा सुख होय, विषधर भेटें लाभ न कोय ॥⁴

दुर्जन की तुलना सर्प से करते हुए कवि भूधरदास का कथन है -

करि गुण अमृतपान, दोष विष विषम समपै।

बंकचाल नहीं तजै, जुगल जिह्वामुख धपै ॥

तकै निरन्तर छिद्र उदै परदीप न रूच्चै।

बिन कारण दुख करै, बैर विष कबहुं न मुच्चै ॥

घर मौन मन्त्र सौ होय वश, संगत कीयै हान है।

बहु मिलत बान यातें सही, दुर्जन सौंय समान है ॥⁵

1 से 3 पार्श्वपुराण, कलकता, भूधरदास, अधिकार 1, पृष्ठ 8

4. पार्श्वपुराण, कलकता, भूधरदास, अधिकार 1, पृष्ठ 7

5. जैनशतक भूधरदास छन्द 79

2. कामी - कामी व्यक्ति पाप से नहीं डरता, लोकलज्जा नहीं करता तथा हित अहित का विचार नहीं करता है -

पाप कर्म को डर नहीं, नहीं लोक की लाज ।
 कामी जन की रीति यह, धिक तिस जन्म अकाज ॥
 कामी काज अकाज में, होहे अंध अविवेक ।
 मदनमत्त मदमत्तसम, जरो जरो यह टेव ॥
 पिता नीर परसै नहीं, दूर रहै रवि यार ।
 ता अंबुज में मूढ़ अलि, उरझि मरे अविचार ॥
 त्यों ही कुविसनरत पुरुष, होय अवशि अविवेक ।
 हित अनहित सोचें नहीं, हिये विसन की टेक ॥¹

3. अन्धपुरुष :- आँखरहित व्यक्ति को अन्धा नहीं कहते, अपितु हृदयरूपी आँखें न होने वाला व्यक्ति मूलतः अन्धा है -

लोचनहीने पुरुष को, अन्ध न कहिये भूल ।
 उर लोचन जिनके मुंदे, ते अंधे निर्मूल ॥²

इसी प्रकार जिनको सच्चे देव-शास्त्र-गुरु-धर्म की पहिचान होती है, वे नेत्रवान हैं तथा जिनको इनकी पहिचान नहीं है, वे अन्धे हैं -

देव धर्म गुरु ग्रन्थ ये, बड़े रतन संसार ।
 इनको परखि प्रमानिये, यह नरभव फल सार ॥
 जे इनकी जानै परख, ते जग लोचनवान ।
 जिनको यह सुधि ना परी, ते नर अंध अजान ॥³

4. दुर्गतिगामी जीव :- दुर्गति में गमन करने वाले जीव का स्वभाव है कि उसके हृदय में महामलिन (अति बुरे) भाव निवास करते हैं -

1 पार्श्वपुराण, कलकत्ता, भूधरदास, अधिकार 1, पृष्ठ 5

2 व 3 पार्श्वपुराण, कलकत्ता, भूधरदास, अधिकार 5, पृष्ठ 44

महामलिन उर बसैं कुभाव, दुर्गतिगामी जीव सुभाव ॥¹

5. कुकवियों की निन्दा :- भूधरदास विषय-कथाय (रागादि) के पोषक ग्रन्थों को कुशास्त्र तथा उनकी रचना करने वाले कवियों को कुकवि मानते हुए आलोचना करते हैं -

राग उदै जग अंध भयौ, सहजै सब लोगन लांछ गवाई ।
सीख बिना नर सीख रहे, बिसनादिक सेवन की सुधलाई ॥
तापर और रचै रसकाव्य, कहा कहिये तिनकी नितुराई ।
अंध असूझन की अँखियन में, झोंकत है रज रामदुहाई ॥²
कंचन कुम्भन की उपमा, कह देत उरोजन को कवि बारे ।
अपर श्याम विलोकत के, मनि नीलम की ढकनी ढँकि छारे ॥
यों सतवैन कहैं न कुपंडित, ये जुग आमिषपिंड उधारे ।
साधन झार दई मुँह छार, भये इहि हेत किछौं कुच कारे ॥³

6. कुलीन की सहज विनम्रता :- जिस प्रकार हंस की चाल स्वाभाविक होती है, उसे कोई सिखाता नहीं है। उसी प्रकार कुलीन व्यक्ति की विनम्रता सहज होती है -

यथा हंस के वंश को, चाल न सिखवै कोय ।

त्यों कुलीन नर नारि के, सहज नमन गुण होय ॥⁴

7. महापुरुषों का अनुसरण :- महापुरुषों द्वारा किये गये आचरण (कार्य) का अनुसरण सारा संसार करता है -

ज्यों महंत नर कारज करै । ताकी रीति जगत अत्तरै ॥⁵

1. पार्श्वपुराण, कलकत्ता, भूधरदास, अधिकार 1, पृष्ठ 5

2. जैनशतक, भूधरदास, छन्द 64

3. जैनशतक, भूधरदास, छन्द 65

4. पार्श्वपुराण, कलकत्ता, भूधरदास, अधिकार 4, पृष्ठ 26

5. पार्श्वपुराण, कलकत्ता, भूधरदास, अधिकार 4, पृष्ठ 29

४. पूर्वकर्मानुसार फलप्राप्ति :- संसारी व्यक्ति पूर्व में किये गये कर्मों के अनुसार ही फल प्राप्त करता है -

संसारी जन अपनी बार । पूर्व उदै करै अनुसार ॥¹

५. पूर्वपापोदय में धैर्यधारण का उपदेश :- कवि पूर्व-कर्मोदय के अनुसार फलप्राप्ति मानते हुए अशुभ (असाता) कर्म के उदय में प्राप्त दुःखों को समतापूर्वक सहने की प्रेरणा देता है -

आयौ है अचानक भयानक असाता कर्म,
ताके दूर करिवे को बलि कौन अह रे ।
जे जे मन भाये ते कमाये पूर्व पाप आप,
तेई अब आये निज उदैकाल लह रे ॥
ऐरे मेरे खीर ! काहे होत है अधीर यामैं,
कोऊ कौ न सीर तू अकेलो आप सह रे ।
भयैं दिलगीर कछू पीर न विनसि जाय,
ताहीतैं सयाने ! तू तमाशगीर रह रे ॥²

इसी प्रकार मृत्यु का भय एवं सुख की आशारूप दुःख के दावानल से बचने का उपाय भी धैर्यधारण करना ही है -

अन्तक सौं न छूटै निहचै पर, मूरख जीव निरन्तर भूजै ।
चाहत है चित मैं नित ही सुख, होय न लाभ मनोरथ पूजै ॥
तौ पर मूढ़ बँध्यों भय आस, वृथा बहु दुःखदावानल भूजै ।
छोड़ विचच्छन ये जड़ लच्छन, धीरज धारि सुखि किन हूजै ॥³

10. होनहार दुर्निवार :- जो होना होता है, होकर ही रहता है । उसे कोई मिटा नहीं सकता -

1. पार्श्वपुराण, कलकत्ता, भूधरदास, अधिकार 4, पृष्ठ 29

2. जैनशतक, भूधरदास, छन्द 71

3. जैनशतक, भूधरदास, छन्द 74

“होनहार सोई विधि होय, ताहि पिटाय सकै नहि कोय ।”¹

वास्तव में होनहार दुर्निवार है -

कैसे कैसे बली भूप भू पर विख्यात भये,
बैरीकुल काँपे नेकु भौह के विकार सो ।
लंघे गिरि-साथर दिवायर-से दिपै जिनों,
कायर किये हैं भट कोटिन हुंकार सों ॥
ऐसे महामानी मौत आये हू न हार मानी,
क्यों ही उतरें न कभी मान के पहार सों ।
देखसौ न हारे पुनि दानो सों न हारे और,
काहूसौ न हारे एक हारे होनहार सों ॥²

11. काल सामर्थ्य - मृत्यु से बचने के लिए अनेक उपाय करने पर भी मृत्यु नहीं छोड़ती -

लोहमई कोट केई कोटन की ओट करो,
काँगुरेन तोप रोपि राखो पट भेरिके ।
इन्द्र चन्द्र चौकायत चौकस है चौकी देहु
चतुरंग चमू चहुँ ओर रहो घेरिकै ॥
तहाँ एक भौंहिरा बनाय बीच बैठो पुनि,
बोलौ मति कोऊ जो बुलावै नाम डेरिकै ।
ऐसे परपंच पाँति रचो क्यों न भौंति भौंति,
कैसे हू न छोरै जम देख्यो हम हेरिकै ॥³

मृत्यु के आने पर सम्पूर्ण धन-धाम, काम, ऐश्वर्य आदि ज्यों के त्यों पड़े रह जाते हैं -

1. पार्श्वपुराण, कलकत्ता, भूधरदास, अधिकार 1, पृष्ठ 8

2. जैनशतक, भूधरदास, छन्द 72

3. जैनशतक, भूधरदास, छन्द 73

तेज तुरंग सुरंग भले रथ, मत्त मतंग उत्तंग खरे ही ।

दास खवास अवास अटा, धन जोर करोरन कोश भरे ही ॥

ऐसे झूठे तो कहा भसो हे नर ! होरि लले उठि अन्न खरे ही ।

घाम खरे रहे काम परे रहे, दाम गरे रहे ठाम धरे ही ॥¹

12. राज्य और लक्ष्मी :- भूधरदास राज्य को महापापों का कारण एवं आपस में वैर बढ़ानेवाला मानते हैं । लक्ष्मी को वेश्या के समान चंचल स्वाकरते हैं -

राज्य समाज महा अधकारन, वैर बढ़ावन हारा ।

वेश्या सम लक्ष्मी अति चंचल, याका कौन पतिधारा ॥²

13. मोह :- कवि मोह को महान शत्रु मानकर शरीर को कारागृह, स्त्री को बेड़ी तथा परिवार के लोगों को पहरेदार निरूपित करता है -

मोह महारिपु वैर विचारो, जग जिय संकट टारे ।

तन कारागृह बनित बेड़ी, परिजन जन रखवारे ॥³

14. भोग एवं तृष्णा :- पाँच इन्द्रियों के विषय-भोगों को भोगने से इच्छा तृप्त नहीं होती, अपितु और अधिक बढ़ती है -

ज्यों ज्यों भोग संयोग मनोहर, मनवांछित जन पावैं ।

तृष्णा नागिन त्यों त्यों डंकै, लहर जहर की आवैं ॥

मैं चक्री पद पाय निरन्तर, भोगे - भोग घनेरे ।

तो भी तनिक भये नही पूरन, भोग मनोरथ मेरे ॥⁴

इसलिये कवि भोगों का निषेध करता है -

तू नित चाहत भोग नए नर ! पूरव पुन्य विना किम पैहै ।

कर्म संजोग मिले कहिं जोग, गहे तब रोग न भोग सकै है ॥

1. जैनशतक, भूधरदास, छन्द 33

2. पार्श्वपुराण, कलकत्ता, पृष्ठ 18

3. पार्श्वपुराण, कलकत्ता, पृष्ठ 18

4. पार्श्वपुराण, कलकत्ता, अधिकार 3, पृष्ठ 18

जो दिन चार कौं व्योंत बन्यौं कहूँ, तो परि दुर्गति में पछितै है।

याहितैं यार सलाह यही कि, गई कर जाहु निवाह न है है ॥¹

(तृष्णा) आशारूपी नदी का वर्णन करते हुए कवि कहता है कि -

मोह से महान ऊँचे पर्वत सौं ढर आई,

तिहुँ जग भूतल में याहि विसतरी है।

विविध मनोरथ में भूरि जल भरी बहैं,

तिसना तरंगनि सौं आकुलता धरी है ॥

परे भ्रम - भौर जहाँ राग-सो मगर तहाँ,

चिंता तट तुंग धर्मवृच्छ ढाय ढरी है।

ऐसी यह आशा नाम नदी है अगाध ताकौं,

धन्य साथु धीरज-जहाज चढ़ि तरी है ॥²

कवि शरीर के शिथिल होने पर भी तृष्णा को निरन्तर वृद्धिगत ही मानता है।³

15. देह :- कवि ने कई स्थानों⁴ पर देह के स्वरूप का विस्तृत वर्णन किया है, परन्तु इस वर्णन का उद्देश्य देह से विरक्ति कराना ही है। उदाहरणार्थ

1. जैनशतक भूधरदास, छन्द 19 2. जैनशतक, भूधरदास, छन्द 76

3. (क) काँपत नार बहे मुख लार, महामति संगति छोरि गई है।

अंग ठपंग पुराने परे, तिसना डर और नवीन भई है ॥

(ख) तेज घट्यौ ताव घट्यौ जीतव को चाव घट्यौ,

और सब घट्यौ एक तिसना दिन दूनी सी ॥ जैनशतक, भूधरदास, छन्द 38 - 39

4. (क) देह अपावन अधिर घिनावन, यामै सार न कोई।

सागर के जलसो शुचि कीजै, तो भी शुचि नहीं होई ॥

सात कुधातमई मलमूरति, चाम लपेटो सोहै।

अंतर देखत या सम जग में, और अपावन को है ॥ पार्श्वपुराण, कलकत्ता, पृष्ठ 18

(ख) दिए चाम चादर मड़ी, हाड़ पींजरा देह।

भीतर या सम जगत में, और नहीं धिनगेह ॥ पार्श्वपुराण, कलकत्ता, पृष्ठ 30

(ग) अशुचि अस्थि पिंजर तन येह, चाम वसन बेड़ो धिन गेह।

चेतन चिरा तहाँ नित रहे, सो बिन ज्ञान मिलानि न गेह ॥

पार्श्वपुराण, कलकत्ता, पृष्ठ 64

मत्त-पिता-रज-वीरजसौं, उपजी सब सात कुघातु भरी है।

माखिन के पर माफिक बाहर, चाम के बैठन बेढ धरी है॥

नाहिं तो आय लगेँ अब झी बक, वायस जीव बचै न धरी है।

देह दशा यहै दीखत भात ! धिनात नहीं किन बुद्धि हरी है॥¹

16. संसार का स्वरूप एवं समय की बहुमूल्यता :- भूधरदास ने संसार के स्वरूप का विस्तार से अति मार्मिक वर्णन किया है।² संसार का स्वरूप और समय की बहुमूल्यता के सम्बन्ध में कवि का कथन है -

काहू घर पुत्र जायो काहू के वियोग आयो,

काहू राग-रंग काहू रोआ रोई करी है।

जहाँ भान ऊगत अछाह गीत गान देखे,

सांझ समै ताही शान हाय हाय परी है॥

ऐसी जगरीति को न देखि भयभीत होय,

हा हा नर मूढ़ ! तेरी मति कोने हरी है।

मानुष जनम पाय सोखत विहाय जाय,

खोखत करोरन की एक एक घरी है॥³

संसार की अति विचित्र स्थिति देखकर भी अज्ञानी चेतता नहीं -

देखो भरजोबन मैं पुत्र को वियोग आयो,

तैसें ही निहारी निजनारी कालपग मैं।

जे जे पुन्यवान जीव दीसत है या मही पै,

रंक भये फिरै तेऊ पनहीं न पग में॥

1. जैनशतक भूधरदास छन्द 20

2. पार्श्वपुराण, कलकत्ता, अधिकार 3 पृष्ठ 18

3. जैनशतक भूधरदास छन्द 21

ऐसे पै अभाग धन जीतब सौं घरे राग,
होय न विराग जानै रहूँगौं अलग मैं।
आँखिन विलौकि अंध सूसे की अंधेरी करे,
ऐसे राजरोग को इलाज कहा जग मैं॥¹

17. अवस्थाओं का वर्णन एवं आत्महित की प्रेरणा :- कवि भूधरदास ने अपने साहित्य में मानव जीवन की दारु, सुख एवं दुःख अवस्था का वर्णन करते हुए आत्महित के लिए सचेत रहने की प्रेरणा दी है -

बाल अवस्था भई वितीत। तस्लुसाई आई निज रीत॥
सो अब बीती जरा पसार। मरन दिवस यों पहुंचे आय॥
बालक काया कुंपल सोय। पत्ररूप जोवन में होय॥
पाको पात जरा तन करै। काल बयारि चलत झर परै॥²
मरण के पूर्व सचेत होने की प्रेरणा देते हुए कवि का कथन है -
पानी पहले बंधे जो पाल। वही काम आवै जलकाल॥
यही जान आत्महित हेत। करै विलम्ब न संत सुचेत॥
आज काल जे करत रहहि। ते अजान पीछै फछताहि॥³
कवि द्वारा यही बात दूसरे शब्दों में इस प्रकार कही गई है -

जौलौं देह तेरी काहु रोगसौं न घेरी जौलौं,
जरा नाहि नेरी जासों पराधीन परिहै।
जौलौं जमनामा बैरी देय ना दमामा जौलौं,
मानै कान रामा बुद्धि जाइ ना बिगारि है॥
तौलौ मित्र मेरे निज कारज सँवार ले रे,
पौरुख थकेंगे फेर पीछे कहा करि है।

1. जैनशतक, भूधरदास, छन्द 35

2. पार्श्वपुराण, कलकत्ता, अधिकार 4, पृष्ठ 29

3. पार्श्वपुराण, कलकत्ता, अधिकार 4, पृष्ठ 29

अहो आगे आयै अब झोपरी जरन लागी,
 कुआ के खुदायै तब कौन काज सरि है ॥¹
 सौ वर्ष की आयु का लेखा-जोखा देते हुए कवि कहता है -

सौ वरष आयु ताका लेखा करि देखा सबै,
 आधी तौ अकारध सोखत विहाय रे।
 आधी मै अनेक रोग बाल-वृद्ध-दशा भोग,
 और हू संयोग केते ऐसे बीत जाय रे ॥
 बाकी अब कहा रही ताहि तू विचार सही,
 कारज की बात यही नीकें मन लाय रे ॥
 खातिर मैं आवै तो खलासी कर इतने मै,
 भावै फौंसि फंद बीच दीनौ समुझाय रे ॥²

इसी सन्दर्भ में कवि अपनी कुशलता के बारे में बताता है -

जोई दिन कटै सोई आयु मै अवसि धटै,
 बूँद बूँद बीतै जैसें, अंजुली कौ जल है।
 देह नित क्षीन होत, नैन तेज हीन होत,
 जोबन मलीन होत, छीन होत बल है ॥
 आवै जरा नेरी, तकै अंतक अहेरी, आवै,
 परभौ नजीक, जात नरभौ निफल है।
 मिलकै मिलापी जन, पूछत कुशल मेरी,
 ऐसी दशा माहीं मित्र ! काहे की कुशल है ॥³

1. जैनशतक, भूधरदास, छन्द 26

2. जैनशतक, भूधरदास, छन्द 27

3. जैनशतक, भूधरदास, छन्द 37

कवि ने बचपन और जवानी को क्रमशः अज्ञान व विषय-भोगों में व्यतीत करने का वर्णन करते हुए वृद्धावस्था में सावधान होने की बात अनेक प्रकार से कही है।¹ साथ ही बुढ़ापे का विस्तृत विवेचन किया है।² उदाहरणार्थ -

आया रे बुढ़ापा पानी, सुधि बुधि बिसरानी ॥ टेक ॥

श्रवण की शक्ति घटी, चाल चलै अटपटी।

देह लटी भूख घटी, लोचन झस्त पानी ॥ 1 ॥

दाँतन की पंक्ति टूटी, हाड़न की संधि छूटी।

काया की नगरि लूटी, जात नहीं पहिचानी ॥ 2 ॥

बालों ने वस्त्र फेरा, रोग ने शरीर घेरा।

पुत्रहु न आवै नेरा, औरों की कहा कहानी ॥ 3 ॥

“भूधर” समुझि अब, स्वहित करोगे कब।

यह गति है है अब, तब पछितैहें प्राणी ॥ 4 ॥³

18. राग और वैराग्य का अन्तर व वैराग्य की कामना - कवि राग (मिथ्यात्व) के कारण ही भोग, शरीर एवं संसार में एकत्वबुद्धि व सुखबुद्धि मानता है तथा राग (मिथ्यात्व) के अभाव होने पर उनसे विरक्ति मानता है -

राग उदै भोगभाव लागत सुहावने-से,

बिना राग ऐसे लागें जैसे नाग कारे हैं।

राग ही सौ पाग रहे तन में सदीव जीव,

राग गये आवत गिलानि होत न्यारे है ॥

राग ही सौ जगरीति झूठी सब साँची जाने,

राग मिटे सूझत असार खेल सारे है।

1. जैनशतक, भूधरदास, छन्द 28 से 31

2. जैनशतक, भूधरदास, छन्द 38 एवं 39

3. प्रकीर्ण पद - भूधरदास

रागी-विनरागी के विचार में बड़ेई भेद
जैसे भट्ट पच काहू काहू को बयारे है ॥¹

वीतरागी होने की भावना भाते हुए कवि का कथन है -

कब गृहवास सों उदास होय वन सेऊँ,
वेऊँ निजरूप गति रोऊँ मन करी की ।
रहि हौं अडोल एक आसन अचल अंग,
सहि हौं परीसा शीत-घाम-मेघ-झरी की ॥
सारंग समाज खाज कबधौं खुजे हैं आनि,
ध्यान-दल-जोर जीतूँ सेना मोह-अरी की ।
एकल बिहारी जयाजात लिंगधारी कब,
होऊँ इच्छाचारी बलिहारी हौं आ धरी को ॥²

भूधरदास ने संसार, और भोगों के विरक्ति के लिए उनके स्वरूप का विस्तृत विवेचन किया है ।³ साथ ही बारह भावनाओं का चिन्तन भी किया है ।⁴ जिनका वर्णन पूर्व में धार्मिक विचारों के अन्तर्गत किया जा चुका है ।⁵

रागी जीव (मिथ्यादृष्टि) को धर्मोपदेश देना निरर्थक मानते हुए कवि का कथन है -

आयुहीन नर को यथा, औषधि लगे न लेश ।
त्योँ ही रागी पुरुष प्रति, कृथा धर्म उपदेश ॥⁶

1. जैनशतक, भूधरदास, छन्द 18

2. जैनशतक, भूधरदास, छन्द 17

3. प्रकीर्ण पद साहित्य एवं बज्रनाभि चक्रवर्ती की वैराग्य भावना
पार्श्वपुराण, कलकत्ता, पृष्ठ 17-18

4. पार्श्वपुराण, कलकत्ता, पृष्ठ 30 एवं 64

5. इसी शोधप्रबन्ध, अध्याय 7

6. पार्श्वपुराण, कलकत्ता, पृष्ठ 6

19. अभिमान - निन्दन : - जिनके गल्ले कंगाल के भण्डार भरे हैं, बहुत से लोग रास्ता निहारते हुए दरवाजे पर खड़े रहते हैं, जो वाहनों पर चढ़कर घूमते हैं, झीनी आवाज में बोलते हैं, किसी की भी ओर जरा ठीक से देखते तक नहीं हैं, जिनके बारे में लोग कहते हैं कि इनके पास इतना धन है कि न जाने ये उसे कब तक स्वायेगे, इनका धन तो ऐसे - वैसे कभी पूरा ही नहीं होनेवाला है, वे ही पापकर्म का उदय आने पर नंगे पैरों फिरते रहते हैं, कंगाल होकर दूसरों के पैरों की सेवा करते फिरते हैं। अहो ! ऐसी स्थिति होने पर भी अज्ञानी जीव वैभव पाकर अभिमान करते हैं। धिक्कार है उनकी उल्टी समझ को, जो वे धर्म नहीं सम्भालते हैं -

कंचन भण्डार भरे मोतिन के पुंज परे,
घने लोग द्वार. खरे भारग निहारते।
जान चढ़ि डोलत है झीने सुर बोलत हैं
काहू की हू ओर नेक नीके ना चितारते।
कोलों धन खांगे कोउ कहे सो न लागै,
तेई फिरै पाँय नांगे कांगे पर पग झारते।
एते पै अयाने गरबाने रहैं विभौ पाय,
धिक है समझ ऐसी धर्म ना संभारते ॥¹

कवि अभिमान न करने की बात दूसरों शब्दों में इस प्रकार कहता है -

गरब नहिं कीजै रे, ऐ नर निषट गँवार।
झूठी काया झूठी माया, छाया ज्यों लखि लीजे रे।
कै छिन सांझ सुहागरू जोवन, कै छिन जग में जीजै रे ॥²

20. धन के सम्बन्ध में चिन्तन, धनप्राप्ति भाग्यानुसार - संसारी प्राणी धन प्राप्त करने के लिए अनेक विचार करता है तथा धन होने पर अनेक मनसूबे बाँधता है -

चाहत है धन होय किसी विद्य, तौ सब काज सरै जियरा जी।
गेह चिनाय कसँ गहना कछू, ब्याहि सुता सुत बाँटिये भाजी ॥

चिन्तन यों दिन जाहि चले, जम आनि अचानक देत दगा जो ।

खेलत खेल खिलारि गये, रहि जाइ रूपी शतरंज की बाजी ॥¹

परन्तु वास्तव में धन की प्राप्ति भाग्य के अनुसार ही होती है -

जो धनलाभ लिखारि लिख्यौ, लघु दीर्घ सुकृत के अनुसारै ।

सो लहि है कछु फेर नहीं, मरुदेश के ठेर सुमेर सिधारै ॥

घाट न बाढ़ कहीं कह होय, कहा कर आवत सोच विचारै ।

कूप किधौ भर सागर में नर, गागर मान मिलै जल सारै ॥²

अतः व्यक्ति को प्रत्येक स्थिति में सन्तुष्ट रहना चाहिये ।

21. मन की पवित्रता :- भूधरदास बाह्य वेश-भूषा को बदलने की बात न कहकर मन को पवित्र करने की प्रेरणा देते हैं -

भाई ! अन्तर उज्ज्वल करना रे ॥ टेक ॥

कपट कृपान तजै नहिं तबलो, करनी काज न सरना रे ॥

जप तप तीरथ यज्ञ व्रतादिक, आगम अर्थ उचरना रे ।

विषय कषाय कीच नहिं धोये, यों ही पचि पचि मरना रे ॥

बाहिर भेष क्रिया ठर शुचि सों, किये पार उतरना रे ।

नाहीं है सब लोक रंजना, ऐसे वेदन वरना रे ॥

कामादिक मन सों मन मैला, भजन किये क्या तिरना रे ।

भूधर नील वसन पर कैसे, केसर रंग उठरना रे ॥³

22. हिंसा का निषेध - भूधरदास हिंसा को पाप का कारण, दुर्गति देने वाली तथा स्व और पर को दुःखदायी मानते हैं ।

हिंसा करम परम अध हेत, हिंसा दुर्गति के दुख देत ।

हिंसासों भमिये संसार, हिंसा निज पर को दुखकार ॥⁴

1. जैनशतक, भूधरदास, छन्द 32

2. जैनशतक, भूधरदास, छन्द 75

3. पद साहित्य (प्रकीर्ण पद) भूधरदास

4. पार्श्वपुराण, कलकत्ता, भूधरदास, पृष्ठ 10

जीवों का वध करने पर पाप निश्चित रूप से होता है तथा पाप से दुर्गति के दुख प्राप्त होते हैं -

जहाँ जीववध होय तगार तहाँ पाप तपजै निरधार ।

पाप सही दुर्गति दुख देय, यातैं दयाहीन तप खेय ॥¹

अतः जीववध एवं दयारहित तप निषेध्य है। यज्ञ में पशुबलि (हिंसा) का निषेध करने के लिए कवि पशु की ओर से कथन करता है -

कहै पशु दीन सुन यज्ञ के करैया मोहि

होमत हुताशन में कौन सी बड़ाई है।

स्वर्गसुख में न चहीं "देहु मुझे", यों न कहैं,

घास खाय रहों घेरे यही मन भाई है ॥

जो तू यह जानत है वेद यों बखानत है,

जग्य जलौ जीव पावै स्वर्ग सुखदाई है।

डारे क्यों न वीर यामें अपने कुटुम्ब ही कौं,

मोही जनि जारे जगदीश की दुहाई है ॥²

23. सप्तव्यसन निषेध :- जुआ खेलना, मांस भक्षण, मद्यपान, वेश्यासेवन, शिकार, चोरी और परस्त्री-रमण - इन सात व्यसनो का निषेध करते हुए भूधरदास कहते हैं -

जुआ खेलन मांस मद वेश्या विसन शिकार ।

चोरी पररमनी - रमण सातों पाप निवार ॥³

श्री गुरु शिक्षा सांभलै, (ज्ञानी) सात व्यसन परित्यागो रे।

ये जग में पातक बड़े, (ज्ञानी) इन मारग मत लागो रे ॥⁴

1. पार्श्वपुराण, कलकत्ता, भूधरदास, पृष्ठ 62

2. जैनशतक, भूधरदास, छन्द 47

3. जैनशतक, भूधरदास, छन्द 50

4. पार्श्वपुराण, कलकत्ता, भूधरदास, पृष्ठ 86

कवि ने समाज में सदाचार और नैतिकता की स्थापना के लिए इन सबके दोषों का विस्तृत विवेचन करके त्यागने की प्रेरणा दी है ।¹ जिनका वर्णन धार्मिक विचारों के अन्तर्गत विवेच्य 'दर्शन प्रतिमा' में किया जा चुका है ।² इसी सन्दर्भ में कवि ने कुशील की निन्दा तथा शील की प्रशंसा भी की है ।³

24. मिष्ट वचन की प्रेरणा :- कटु वचन बोलने के दोष एवं मिष्ट वचन बोलने के गुणों को बताते हुए कवि का कथन है -

काहे को बोलत बोल बुरे नर ! नाहक क्यों जस धर्म गमावै ।

कोमल वैन चवै किन ऐन, लगै कछु है न सबै मन भावै ॥

तालु छिदै रसना न भिदै, न धटै कछु अंक दरिद्र न आवै ।

जीभ कहै जिय हानि नहीं तुझ, जो सब जीवन की सुख पावे ॥⁴

अतः व्यक्ति को हित-मित-प्रियवचन ही बोलना चाहिये ।

25. मनरूपी हाथी का वर्णन :- स्वच्छन्द मनरूपी हाथी का वर्णन करते हुए कवि भूधरदास उसे वैराग्यरूपी खम्भे से बाँधकर वश में करने की बात कहते हैं -

ज्ञानमहावत डारि, सुमति संकल गहि खंडै ।

गुरु - अंकुश नहिं गिनै, ब्रह्मवत्-विरख विहंडै ॥

कर सिधंत-सर न्हान, केलि अघ-रज सो ठानै ।

करन - चपलता धरै, कुमति-करनी रति मानै ॥

डोलत सुछन्द मदमत्त अति, गुण - पथिक न आवत उरै ।

वैराग्य - खम्भतैं बाँध नर, मन-मतंग विचरत बुरे ॥⁵

1. (क) जैनशतक, भूधरदास, छन्द 51 से 63

(ख) पार्श्वपुराण, कलकत्ता, भूधरदास, अधिकार 9, पृष्ठ 86

2. प्रस्तुत शोध प्रबन्ध, सप्तम अध्याय

3. जैनशतक, भूधरदास, छन्द 59 से 60

4. जैनशतक, भूधरदास, छन्द 70

5. जैनशतक, भूधरदास, छन्द 67

इस प्रकार भूधरदास के साहित्य में अनेक नैतिकविचार दृष्टिगत होते हैं। इन विचारों को जीवन (आचरण) में उतारकर ही व्यक्ति, समाज, देश और विश्व में सुख-शान्ति स्थापित की जा सकती है और मानसिक कष्टों (मोह-रागद्वेष आदि विकारी भावों) से छुटकारा पाया जा सकता है।

भूधरदास द्वारा वर्णित समग्र दार्शनिक, धार्मिक एवं नैतिक विचारों का उद्देश्य मानव को मिथ्यात्व, क्रोध, मान, नाय, लोभ आदि विकारी भावों से मुक्त कराकर वीतरागता एवं अतीन्द्रिय सुख प्राप्त कराना है। वीतरागता को प्राप्त आत्मा संसार, शरीर, भोगों या सम्पूर्ण भौतिक सुखों में आसक्त नहीं होता है। भेदज्ञान एवं आत्मानुभूति होने के कारण उसे स्व-पर की सच्ची पहिचान हो जाती है जिससे परद्रव्यों में स्वामित्व (एकत्व) - ममत्व - कर्तृत्व एवं भोक्तृत्व - बुद्धि समाप्त हो जाती है। दूसरे शब्दों में मिथ्यादर्शन का नाश होकर सम्यग्दर्शन प्राप्त हो जाता है। सम्यग्दृष्टि जीव समस्त रागादि विभाव भावों में हेयबुद्धि छोड़ने की मान्यता होने से व्रतादि का पालन करते हुए गृहस्थधर्म या मुनिधर्म का आचरण करता है। धर्माचरण से युक्त जीव के नैतिकता एवं सदाचार का पालन तथा अनीति, अन्याय एवं अभक्ष्य आदि का त्याग स्वतः ही (सहजरूप से) हो जाता है।

इस प्रकार भूधरसाहित्य में वर्णित दार्शनिक, धार्मिक एवं नैतिक विचार व्यक्ति के अन्तर्तम (आत्मा) को प्रकाशित करने के लिए आलोक-स्तम्भ है। इस अद्वितीय आलोक में आत्मा वीतरागी (राग-द्वेष रहित) एवं सर्वज्ञ बनकर अनन्त सुखी (निराकुल) एवं कृतकृत्य हो जाता है। वस्तुतः यही मानवजीवन का चरम लक्ष्य (मोक्ष-प्राप्ति) है।

सुन ज्ञानी

सुन ज्ञानी प्राणी, श्री गुरु सीख सयानी ॥ टेक ॥

नर भव पाय, विषय मति सेवो, ये दुरगति अगवानी ॥

॥ सुन ज्ञानी प्राणी. ॥

यह भव, कुल, यह तेरी महिमा, फिर समझी जिनवाणी ।

इस अवसर में यह चपलाई, कौन समझ उर आनी ॥

॥ सुन ज्ञानी प्राणी. ॥

चन्दन काठ कनक के भाजन, भरि गंगा का पानी ।

तिल खर राधत मंद मती जो, तुझ क्या रीस विरानी ॥

॥ सुन ज्ञानी प्राणी. ॥

‘भूधर’ जो कथनी सो करनी, यह बुधि है सुखदानी ।

ज्यों मशालची आप न देखे, सो मति कहै कहानी ॥

॥ सुन ज्ञानी प्राणी. ॥

— भूधरदास

अष्टम अध्याय

हिन्दी सन्त साहित्य के सन्दर्भ में भूधर साहित्य का मूल्यांकन

सन्त शब्द का अर्थ

सन्त मतपर

सन्त मत पर अन्य प्रभाव

साहित्य-असाहित्य का निर्णय

सन्तों का काव्यादर्श

सन्त साहित्य की विशेषताएँ- समानताएँ, असमानताएँ

नवम अध्याय

उपसंहार : भूधरदास का योगदान

(क) उपसंहार

(ख) भूधरदास का योगदान

हिन्दी सन्त साहित्य में भूयस्साहित्य का गूढारक

सन्त शब्द का अर्थ :-

हिन्दी "सन्त" शब्द के संकुचित और उदात्त - जिन दो अर्थों का प्रारम्भ में विवेचन किया गया है, उनमें उदात्त शब्द अर्थ में कोई मतवैभिन्य है ही नहीं। परन्तु संकुचित अर्थ में हिन्दी आलोचना शास्त्र में "सन्त" शब्द नीची जाति में उत्पन्न, अशिक्षित कबीर आदि निर्गुण ब्रह्म के अनुयायियों के लिए प्रयुक्त हुआ है; जबकि जैन साहित्य में "सन्त" शब्द का प्रयोग सामान्यतः साधु के लिए हुआ है।¹ जैन साधु 5 महाव्रत, 5 समिति, 5 इन्द्रियजय, 6 आवश्यक और 7 शेष गुण - इन 28 मूल गुणों का पालन करते हैं। साथ ही पाँच इन्द्रियों की आशा से रहित, समस्त आरम्भ और परिग्रह से रहित, ज्ञान ध्यान और तप में लीन रहते हैं। परद्रव्यों में मोह, राग, द्वेष नहीं करते हैं। आत्मस्वरूप में लीन रहते हैं। क्षुधादि 22 परीषहों को जीतते हैं। उत्तमक्षमादि 10 धर्मों का पालन करते हैं। अनित्यादि 12 भावनाओं का चिन्तन करते हैं। अनशनादि 12 प्रकार के तपों को तपते हैं। संसार, शरीर और भोगों से पूर्णतः विरक्त रहते हैं। जब कि निर्गुण सन्तों में ये विशेषण नहीं पाये जाते हैं; अतः जैन साधुरूप सन्त और निर्गुण ब्रह्म की उपासना करने वाले कबीर आदि सन्त पृथक्-पृथक् ही हैं।

"सन्त" शब्द का सामान्य अर्थ, सज्जन, अस्तित्व-बोधक, परहित में निरत, दया, क्षमा, प्रेम, सहिष्णुता आदि मानवीय गुणों से युक्त व्यक्ति लेने पर जैन सद्गृहस्थ भी सन्त कहा जा सकता है; क्योंकि जैन धर्म का पालन करने वाला साधारण श्रावक भी अष्ट मूलगुणों का धारी, सप्त व्यसनों का त्यागी तथा अनीति, अन्याय, अपक्षय आदि का त्यागी होता है। वह देव पूजा, गुरुपासना आदि षट् आवश्यकों का पालन करता है। व्रती श्रावक 5 अणुव्रत, 3 गुणव्रत और 4 शिक्षाव्रत इन 12 व्रतों को धारण करता है। अतः जैन सद्गृहस्थ को भी जिसका आचरण शुद्ध है, जो ईश्वरस्वरूप आत्मगुणों में अनुरक्त है, संसार, शरीर और भोगों से आंशिक रूप से विरक्त है - "सन्त" कहा जा सकता है। जैन गृहस्थ रूप सन्त लोकमान्य उच्च कुल में उत्पन्न तथा शिक्षित होता है; जबकि कबीर आदि सन्त निम्न कुल में उत्पन्न एवं अशिक्षित या अर्द्धशिक्षित माने गये हैं। अतः जैन गृहस्थ सन्त और कबीर आदि सन्त भी स्पष्ट भिन्न प्रतीत होते हैं।

1. प्रस्तुत शोध प्रबन्ध, प्रथम अध्याय

2. राजस्थान के जैन सन्त : व्यक्तित्व एवं कृतित्व - डॉ. कस्तूरचन्द कासलीवाल, भूमिका

भूधरदास जैन सदगृहस्थ होने से कबीर आदि सन्तों से भिन्न ही हैं; परन्तु उनमें कबीर आदि हिन्दी सन्तों के अनेक लक्षण मिल जाते हैं। अतः हम उन्हें हिन्दी सन्त कवियों के निकटवर्ती मानते हैं।

डॉ. कस्तूरचन्द कासलीवाल ने अपने ग्रन्थ "राजस्थान के जैन सन्त व्यक्तित्व एवं कृतित्व" में संवत् 1450 से 1750 के राजस्थान के जैन सन्तों पर प्रकाश डाला है। इस सन्दर्भ में उनका कथन है - "इन 300 वर्षों में भट्टारक ही आचार्य, उपाध्याय एवं सर्व साधु के रूप में जनता द्वारा पूजित थे। ये भट्टारक अपना आचरण श्रमण परम्परा के पूर्णतः अनुकूल रखते थे। ये अपने संघ के प्रमुख होते थे...संघ में मुनि, ब्रह्मचारी, आर्यिकाएँ भी रहा करती थीं। इन 300 वर्षों में इन भट्टारकों के अतिरिक्त अन्य किसी भी साधु का स्वतंत्र अस्तित्व नहीं रहा...इसलिए ये भट्टारक और उनके शिष्य ब्रह्मचारी पद वाले सभी सन्त थे।"¹

उपर्युक्त कथन से भट्टारक एवं उनके शिष्य ब्रह्मचारी आदि भी सन्त की कोटि में आते हैं। परन्तु भूधरदास इन भट्टारकीय सन्तों की परम्परा में नहीं आते हैं।

इसप्रकार न तो दिगम्बर जैन साधु परम्परा के सन्त थे, न भट्टारकीय जैन साधु या ब्रह्मचारी थे और न कबीर आदि निर्गुण ज्ञानमार्गी सन्त थे। वस्तुतः वे एक ऐसे जैन सदगृहस्थ थे, जो आध्यात्मिक रुचि और जैन साधना में संलग्न थे। वे जगत में रहकर भी उससे निर्लिप्त थे। वे परोपकारी, दयालु एवं परहितचिन्तक महापुरुष होने से सन्त की कोटि में आते हैं।

निष्कर्षतः भूधरदास हिन्दी सन्त परम्परा से पृथक् होकर भी उसके निकट हैं; क्योंकि उनमें कबीर आदि सन्तों के अनेक गुण दृष्टिगत होते हैं। इसप्रकार सन्त शब्द निर्गुण सन्तों और सगुण भक्तों के साथ-साथ उन सभी आध्यात्मिक रुचि एवं प्रवृत्ति वाले साधनाशील गृहस्थ व्यक्तियों का बोध कराता है, जिनकी एक कड़ी भूधरदास भी हैं।

1. राजस्थान के जैन सन्त : व्यक्तित्व एवं कृतित्व - डॉ. कस्तूरचन्द कासलीवाल
प्रस्तावना पृष्ठ 6

सन्त परम्परा :-

हिन्दी सन्त के अर्थ या लक्षण के समान हिन्दी सन्त परम्परा की दृष्टि से कबीर आदि सन्तों की परम्परों में महाकवि भूधरदास नहीं आते हैं। कबीर को केन्द्र मानकर पूर्ववर्ती सन्त परम्परा, कबीर को समकालीन परम्परा एवं उत्तरकालीन सन्त परम्परा - इसप्रकार हिन्दी सन्त परम्परा को तीन भागों में बाँटा है, जिसका विवेचन यथास्थान किया गया है।¹ जबकि भूधरदास जिस परम्परा में आते हैं, वह करोड़ों वर्ष पहले हुए जैन धर्म के प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव (आदिनाथ) से चली आई हुई श्रमण परम्परा है। वे श्रमण परम्परा के प्रवर्तक न होकर अनुयायी सद्गृहस्थ श्रावक ही हैं। जहाँ जैन तीर्थंकर श्रमण परम्परा के प्रवर्तक माने जाते हैं, वहाँ साधु एवं गृहस्थ उसी परम्परा के अनुसरणकर्ता कहे जाते हैं।

इसप्रकार भूधरदास कबीर आदि निर्गुण सन्तों की परम्परा में न आकर जैन तीर्थंकरों एवं जैनाचार्यों द्वारा प्रवर्तित जैन श्रमण परम्परा के समर्थक जैन विद्वानों की परम्परा में आते हैं। 16 वीं शताब्दी तक अनेक जैन विद्वान कवि, साहित्यकार, लेखक, वक्ता आदि हुए हैं, जिन्होंने जिनवाणी की महती सेवा करते हुए जैन धर्म के प्रचार-प्रसार में पर्याप्त योगदान दिया है।² भूधरदास उसी श्रृंखला की एक कड़ी के रूप में प्रतिष्ठित हैं अर्थात् भूधरदास जैन तीर्थंकरों, जैनाचार्यों के अनुयायी जैन विद्वानों की परम्परा में समाहित हैं।

सन्त मत पर अन्य प्रभाव या सन्त मत के आधार :-

सन्त मत पर उपनिषद्, वेदान्त, सिद्धसम्प्रदाय, नाथ सम्प्रदाय, इस्लाम धर्म, बौद्ध धर्म, जैन धर्म, सूफी मत आदि का सभी का प्रभाव माना गया है।³ जबकि भूधरदास के साहित्य पर उपनिषद्, वेदान्त, सिद्धों, नाथों, मुसलमानों, बौद्धों, सूफियों आदि का प्रभाव न होकर जैन तीर्थंकरों, जैनाचार्यों एवं पूर्ववर्ती जैन विद्वानों का प्रभाव परिलक्षित होता है। भूधरदास द्वारा प्रतिपादित विषय-वस्तु जो कि पूर्णतया जैन धर्म सम्मत है, जैन श्रमण परम्परा के अनुरूप है। प्रस्तुतीकरण में नवीनता या मौलिकता होने पर भी सैद्धान्तिक विवेचन पूर्णतः आगम सम्मत एवं पूर्व परम्परा पोषित ही है। अतः हिन्दी सन्त कवियों के समान भूधरदास

1. प्रस्तुत शोध प्रबन्ध, प्रथम अध्याय : सन्त परम्परा

2. जैन साहित्य का इतिहास भाग 4 डॉ. नेमिचन्द्र जैन

3. प्रस्तुत शोध प्रबन्ध, पंचम अध्याय - पदसंग्रह का भावपक्षीय अनुशीलन

उपर्युक्त सभी मतों से प्रभावित नहीं हैं; इसलिए भूधरदास के साहित्य को हिन्दी सन्तों के उस साहित्य के अन्तर्गत समाहित नहीं किया जा सकता, जो अनेक प्रभावों को अपने में आत्मसात् करके उदित हुआ है। वास्तव में भूधरसाहित्य सम्पूर्ण जैन साहित्य का एक अंश है। जैन साहित्य और जैनधर्म ने हिन्दी संत साहित्य को काफी हद तक प्रभावित किया है। सन्त मत स्वयं जैनदर्शन एवं जैनधर्म से प्रेरित व प्रभावित है; जिसका सप्रमाण विवेचन पूर्व में किया जा चुका है।¹

साहित्य-असाहित्य का निर्णय :—

सन्त काव्य के साहित्य या असाहित्य होने के सन्दर्भ में विभिन्न विद्वानों के मतों² को उद्धृत करके हम इस निष्कर्ष पर पहुँच सकते हैं कि जिसप्रकार सन्त साहित्य अनुभूतिप्रधान, धार्मिक, आध्यात्मिक एवं उपदेशप्रधान है। उसी प्रकार भूधरसाहित्य भी अनुभूति प्रधान, धार्मिक, आध्यात्मिक, नैतिक एवं उपदेशप्रधान है। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी जैसे लब्धप्रतिष्ठ मनीषी नैतिक, धार्मिक एवं आध्यात्मिक साहित्य को साहित्य की सीमा से बाहर नहीं रखना चाहते हैं। इस सम्बन्ध में वे कहते हैं—“केवल नैतिक और धार्मिक या आध्यात्मिक उपदेशों को देखकर यदि हम ग्रंथों को साहित्य की सीमा के बाहर निकालने लगेंगे तो हमें तुलसी की रामायण से भी अलग होना पड़ेगा, कबीर की रचनाओं को भी नमस्कार कर देना पड़ेगा और जायसी को भी दूर से दण्डवत् करके विदा कर देना होगा। ... धार्मिक प्रेरणा या आध्यात्मिक उपदेश होना काव्यत्व का बाधक नहीं समझा जाना चाहिए।”³ अतः जिसप्रकार सन्त काव्य को साहित्य की सीमा के बाहर नहीं रखा जा सकता है; उसीप्रकार भूधरदास के साहित्य को साहित्य की सीमा से बाहर नहीं माना जा सकता है।

काव्यादर्श :—

सन्तों ने अपने काव्यादर्शों के बारे में अपने विचार विभिन्न प्रकार से व्यक्त किये हैं।⁴ जिसप्रकार सन्तों का काव्यादर्श ब्रह्मविचार, ब्रह्म का यशोगान

1. प्रस्तुत शोध प्रबन्ध, प्रथम अध्याय - सन्त मत पर अन्य प्रभाव

2. प्रस्तुत शोध प्रबन्ध, प्रथम अध्याय - सन्त काव्य : साहित्य-असाहित्य का निर्णय

3. हिन्दी का आदिकाल - डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृष्ठ 11

4. प्रस्तुत शोध प्रबन्ध, प्रथम अध्याय - सन्त साहित्य का काव्यादर्श

एवं आत्मसाधना का सार है; उसी प्रकार भूधरदास का काव्यादर्श जन्म-मरण के दुखों एवं चार गति व चौरासी लाख योनियों को आवागमन से छुटकारा दिलाकर आत्मसाधना के साररूप मोक्षप्राप्ति कराना है। इसलिए वे मोक्ष को सर्वप्रकार से उत्तम कहते हैं -

“सब विधि लखर मोक्ष निनाह । गालगलब नितै लिहि लख ॥”¹

मोक्ष को उत्तम कहकर मोक्ष के कारणरूप भावों को भी ग्रहण करने योग्य बतलाते हैं-

“तातैं जे शिवकारन भाव । तेई गहन जोग मन लाव ॥”²

साथ ही संसार व संसार के कारणों को छोड़ने योग्य प्रतिपादित करते हैं-

यह जगवास महादुखरूप । तातैं भ्रमत् दुखी चिद्रूप ॥

जिन भावन उपजै संसार । ते सब त्याग जोग निरधार ॥³

सनत कबीर के समान⁴ भूधरदास भी अपनी रचनाओं द्वारा संसार से पार होने की बात करते हैं -

प्रभु उपदेश पोत चहि धीर । अब सुख सों जे हैं जन तीर ।

तुम बानी कूंची कर धार । अब भवि जीव लहैं पयसार ॥⁵

जिसप्रकार सन्त कविता द्वारा स्व और पर का कल्याण चाहते हैं तथा उससे किसी लौकिक ऐश्वर्य या सम्मान आदि की चाह नहीं करते हैं। उसी प्रकार भूधरदास भी मान - बढ़ाई आदि के लिए कविता न करके स्वयं और दूसरे के हित के लिए कविता करते हैं।⁶

1. पार्श्वपुराण, कलकत्ता, अधिकार 9, पृष्ठ 77

2. पार्श्वपुराण, कलकत्ता, अधिकार 9, पृष्ठ 77

3. पार्श्वपुराण, कलकत्ता, अधिकार 9, पृष्ठ 77

4. हरिजी यहै विचारिया, साषी कहो कबीर ।

भौ सागर में जीव है, जे कोई पकड़े तीर ॥

5. पार्श्वपुराण, कलकत्ता, अधिकार 7, पृष्ठ 64

6. जौलो कवि काव्य हेत, आगम के अक्षर को...। पार्श्वपुराण, पृष्ठ 2

जिसप्रकार सन्तों ने ब्रह्मगुणगान या हरि का वशोगान करने के लिए काव्यरचना की; उसीप्रकार भूधरदास ने भी अपने इष्ट के गुणगान हेतु रचना की है -

“प्रभु चरित्र मिस कियपि यह कीनों प्रभु गुणगान।”¹

निष्कर्षतः जिसप्रकार सन्तों का काव्यादर्श ब्रह्मगुणगान के साथ-साथ पुस्तक ज्ञान की निरर्थकता, बाह्याचारों की हीनता, संसार व माया की निन्दा करते हुए काम-क्रोधादि मानसिक रोगों से मुक्त कर शुद्ध बनने की प्रेरणा देना, ब्रह्म में निरत रहने का उपदेश देना है। उसीप्रकार भूधरदास के साहित्य का आदर्श भी संसार, शरीर व भोगों की अनित्यता, निस्सारता, दुःखरूपता बतलाकर रागादि विकारी भावों से मुक्त होने एवं आत्मा में लीन होने की प्रेरणा देना है।

सन्त साहित्य की विशेषताएँ —

सन्त साहित्य में कलापक्ष सम्बन्धी अनेक विशेषताएँ हैं। विभिन्न विद्वानों ने सन्त साहित्य की विविध विशेषताओं की ओर ध्यान दिलाकर उनकी विवेचना की है। जिनका विवेचन प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में यथास्थान किया गया है।²

समानताओं और असमानताओं का विवेचन किया जा रहा है -

समानताएँ - सन्तसाहित्य और भूधरसाहित्य में या भूधरदास एवं सन्तों में अनेक समानताएँ दिखलाई देती हैं; जो निम्नलिखित हैं-

1. ईश्वरीय प्रेम एवं मानवीय प्रेम दोनों में है।
2. आध्यात्मिक विवाह एवं विरहभाव दोनों में है।
3. ईश्वर के प्रति भक्तिभाव एवं सेवा भाव दोनों में है।
4. गुरु का महत्व दोनों में समान है।
5. सत्संगति का महत्व दोनों में है।
6. वैराग्यपूर्वक मानवीय गुणों का महत्व दोनों में है।
7. अहंकार एवं विषयतृष्णा के त्याग की प्रेरणा दोनों में है।

1. पार्श्वपुराण, कलकता, अधिकार 9, पृष्ठ 25

2. प्रस्तुत शोध प्रबन्ध, प्रथम अध्याय, सन्त साहित्य की विशेषताएँ

8. बाह्याङ्गियों का विरोध तथा हृदय की पवित्रता दोनों में है ।
9. आध्यात्मिक विषयों का प्रतिपादन दोनों में समान है ।
10. अनुभवज्ञान एवं भाव का महत्त्व दोनों में है ।
11. आराध्य की अन्य देवों से महत्ता दोनों में है ।
12. दीनता व स्वदोष दर्शन दोनों में है ।
13. संसार, शरीर, भोगों का वर्णन व स्वर्ग-नरक का वर्णन लगभग समान है ।
13. रीतिकालीन श्रृंगारिक काव्य की आलोचना दोनों साहित्यों में है ।
15. पुण्य-पाप विकारों का वर्णन दोनों में सामान्य रूप से हुआ है ।
16. आत्मा का सूक्ष्म विवेचन दोनों में है ।
17. ईश्वर की सत्ता की स्वीकृति दोनों में है ।
18. दोनों के अनुसार संसार दुःखमय है । दुःख का कारण अज्ञान, माया या भ्रम है ।
19. भ्रम मृगमरीचिका के समान है । दोनों ने इसे समान ही माना है ।
20. दोनों ने सुख दुःख में साम्य स्थापित किया है ।
21. दोनों के अनुसार जब तक देह से ममता मोह है; तब तक अशान्ति है । मोह-भंग होते ही शान्ति मिल जाती है ।
22. मन पर दोनों ने विस्तार से चर्चा की है ।
23. दोनों के अनुसार अन्तरंग से विरक्त ही सच्चा वैरागी है, मात्र भेष बदलने से कोई वैरागी नहीं हो जाता ।
24. भूधरदास के अनुसार तप मोक्ष देने वाला है । सन्तों ने भी तप को इसी रूप में स्वीकार किया है ।
25. भय, आशा, स्नेह और लाभ से रहित भक्ति ही सच्ची भक्ति है । इसे दोनों ने माना है ।

26. मृत्यु की अनिवार्यता एवं पुनर्जन्म होना, दोनों ने स्वीकार किया है ।
27. सदाचार या आचरण पर दोनों ने समान बल दिया ।
28. दोनों ने ऊँच-नीच का भेद स्वीकार किया अर्थात् जातिवाद का विरोध दोनों ने किया ।
29. साधना के लिए साधु के साथ-साथ गृहस्थ जीवन का समर्थन दोनों ने किया ।
30. मांस खाना, शराब पीना, जुआ खेलना, वेश्या एवं परस्त्री का सेवन करना, शिकार करना, चोरी करना आदि व्यसनों का निषेध दोनों ने समान रूप से किया है ।
31. धार्मिक पाखंडों एवं क्रियाकाण्डों का विरोध दोनों ने किया ।
32. दान का महत्व दोनों ने समान रूप से प्रतिपादित किया ।
33. सत्य, अहिंसा, दया, क्षमा, मौन, आत्मसंयम, सन्तोष आदि का महत्व दोनों ने समान प्रतिपादित किया तथा दुष्प्रवृत्तियों पर रोक लगाई ।
34. नारी या काम भाव का निषेध एवं ब्रह्मचर्य पर बल दोनों में समान है ।
35. निन्दा करने वालों की परवाह न करने का उपदेश दोनों में है ।
36. शरीर शुद्धि के साथ अंतरंग की शुद्धि पर बल दोनों में दिया गया है ।
37. दोनों के द्वारा व्यवहार की महत्ता या कथनी करनी के ऐक्य पर समान बल दिया गया है ।
38. मैत्री भाव की प्रेरणा एवं समाज सुधार की भावना दोनों में समान रूप से दिखलाई देती है ।
39. यद्यपि सन्तसाहित्य में भक्ति का निषेध नहीं है, तथापि सन्त मात्र भक्त न रहकर भगवान भी बन जाना चाहता है । उसीप्रकार भूधरसाहित्य में भक्ति का विधान होकर भी भक्त से भगवान बनने का मार्ग प्रशस्त किया गया है ।

40. चूंकि सन्तों में स्वाश्रय एवं पुरुषार्थ की भावना प्रबल होती है, वह अपने आत्मगुणों को विकसित कर स्वयं भगवान बन जाना चाहता है। भक्त स्वयं भगवान नहीं बनना चाहता, अपितु उसका अनन्य दास बनकर ही कृतकृत्य हो जाता है। इस दृष्टि से वैदिक धर्म-परम्परा मुख्यतः भक्तिकाव्य की परम्परा है तथा श्रमण परम्परा सन्त काव्य की परम्परा है; क्योंकि उसमें आत्मा से परमात्मा बनने की साधना पद्धति का विधान है। इसी दृष्टि से भूधरसाहित्य भी सन्त साहित्य के निकट माना जा सकता है; क्योंकि उसमें भी स्वाश्रय एवं पुरुषार्थ द्वारा भगवान बनने की विधि बतलाई गई है।
41. सन्तसाहित्य के समान भूधरसाहित्य भी भावात्मक एवं अनुभूतिप्रधान है।
42. जिसप्रकार सन्त साहित्य का मूल लक्ष्य सत्य का निरूपण, विवेचन एवं प्रचार-प्रसार है; उसीप्रकार भूधर साहित्य का भी है।
43. जिसप्रकार सन्तसाहित्य में जन-जन के हित एवं उद्बोधन की भावना सन्निहित है; उसीप्रकार भूधरसाहित्य भी सर्वसाधारण के कल्याण के लिए रचा गया है।
44. जिसप्रकार सन्तों की भाषा में अनेक भाषाओं के शब्द मिल गये हैं। उसीप्रकार भूधरदास की भाषा में भी अनेक भाषाओं के शब्द पाये जाते हैं।
45. सन्तसाहित्य की भाषा के समान भूधरसाहित्य की भाषा भी सरल, सहज, कृत्रिमताविहीन एवं जनसाधारण तक पहुँचने में समर्थ है।
46. भूधरदास की उपदेशप्रधान शैली और सन्तों की उपदेशप्रधान शैली में काफी समानता है।
47. छन्दों के प्रयोग, विभिन्न रागों का व्यवहार एवं पदों की शैली दोनों साहित्य में समान रूप से पाई जाती है।
48. दोनों का प्रतिपादन तत्कालीन देशभाषा जनभाषा में हुआ है।
49. विनय का महत्त्व दोनों में है।
50. दोनों साहित्य के मूल में धार्मिक एवं आध्यात्मिक भावना समान है।

असमानताएँ :—

सन्त साहित्य और भूधरसाहित्य में अनेक असमानताएँ भी हैं; जो निम्नलिखित हैं -

1. जहाँ सन्तों का निर्गुण ब्रह्म सदसद्विलक्षण, भावाभावविनिर्मुक्त, अगम, अलख, निरंजन, निर्गुण व अनिर्वचनीय है। अनाम होने पर भी नामवाला, अरूप होने पर भी रूपमय, निराकार होने पर आकार वाला निर्गुण होने पर भी गुणमय है। वहाँ भूधरदास का राम या ब्रह्म परमात्मा के रूप में निश्चित स्वरूपवाला है। यद्यपि वह किसी दृष्टि से अनिर्वचनीय है; परन्तु फिर भी उसका स्पष्टतया कथन किया जा सकता है। वह परमब्रह्म (परमात्मा) अरहन्त के रूप में 46 गुणवाला तथा सिद्ध के रूप में 8 गुणवाला है। दूसरे शब्दों में अनन्त गुणवाला होकर भी 46 और 8 गुण रूप निश्चितस्वरूप वाला है।

भूधरसाहित्य में यद्यपि निर्गुण ब्रह्म को सिद्ध परमेष्ठी के रूप में स्वीकारा जा सकता है; परन्तु सिद्ध के अतिरिक्त अरहन्त, आचार्य, उपाध्याय और साधु परमेष्ठी को भी पूज्य माना गया है। अरहन्त और सिद्ध वीतरागता और सर्वज्ञता की दृष्टि से समान होने पर भी हितोपदेशी होने के कारण अरहन्त को प्रथम पूज्यता प्रदान की गई है। प्रत्येक परमेष्ठी का एक निश्चित स्वरूप माना गया है। ब्रह्म प्रारम्भ से भगवान हैं, जबकि अरहन्त व सिद्ध पहले संसारी थे, बाद में भगवान बने। अरहन्त परमेष्ठी में सगुण की तथा सिद्ध परमेष्ठी में निर्गुण ब्रह्म की सम्भावना की जा सकती है। परमात्मा रूप ब्रह्म में कर्तृत्व का आरोप होने पर सहज ज्ञातृत्व होता है।

2. भूधरदास के अनुसार प्रत्येक आत्मा अजर-अमर एवं अविनाशी है। शक्ति अपेक्षा सिद्ध समान होने पर भी व्यक्ति पर्याय अपेक्षा संसारी है। जहाँ सन्तों का जीव ब्रह्म का अंश है; वहाँ भूधरदास द्वारा वर्णित जीव, ब्रह्म का अंश न होकर एक स्वतंत्र सत्तावाला चैतन्य पदार्थ है। प्रत्येक आत्मा स्व को जानकर, पहिचानकर और अपने में लीन होकर परमात्मा बन सकता है। प्रत्येक जीव, स्वावलम्बनरूप पुरुषार्थ द्वारा परमात्मा बनता है अर्थात् ईश्वरत्व प्राप्ति पुरुषार्थ द्वारा होती है, किसी के आशीर्वाद या कृपा द्वारा नहीं।

3. भूधरदास द्वारा इष्ट का नाम स्मरण करने पर भी भावपूर्वक नाम लेने से कार्यसिद्धि होने का विधान किया गया है; मात्र नाम लेने से कार्यसिद्धि नहीं होती है। इसीप्रकार नामस्मरण की महिमा बतलाने पर भी भाव की ही महिमा है; क्योंकि जैसे भाव होते हैं, वैसा ही फल प्राप्त होता है। नाम लेने से फल में अतिशयता का आरोप होने पर भी सहज ज्ञातृत्व रहता है। कर्तृत्व या अतिशयता का कथन व्यवहारनय से किया जाता है।

4. गुरु का महत्व सन्तसाहित्य और भूधरसाहित्य में समान होने पर भी भूधरसाहित्य में गुरु संज्ञा, सिर्फ आचार्य, उपाध्याय और साधु की ही होती है, अन्य किसी की नहीं। यद्यपि लोक में माता-पिता एवं शिक्षा गुरु को भी गुरु माना जाता है, परन्तु वास्तव में धर्मगुरु धर्म में श्रेष्ठ व्यक्ति ही माने जा सकते हैं और वे आचार्य, उपाध्याय और साधु ही हैं। भूधरदास द्वारा गुरु की महिमा, गुरु का स्वरूप बतलाते हुए गुणपरक दृष्टि से की गई है। उनके द्वारा प्रतिपादित गुरु के गुणों का कथन जैनधर्मसम्मत है, जो सन्तों से अपना वैशिष्ट्य रखता है।

5. हिन्दी के कबीर आदि निर्गुण सन्त गुरु या आचार्य परम्परा को बहुत अधिक महत्व देते हैं; जबकि भूधरदास जिस जैनसद्गृहस्थ रूप सन्त या सज्जन व्यक्ति के रूप में माने गये हैं, उसकी कोई आचार्य या गुरुपरम्परा नहीं है।

6. सन्तकाव्य पढ़े लिखे लोगों में आदरणीय नहीं माना गया; जबकि भूधरसाहित्य सबके द्वारा सम्मानीय समझा गया।

7. प्रायः सन्तकवि निम्न वर्गों से आविर्भूत हुए और उनके द्वारा प्रवर्तित सम्प्रदायों में भी प्रायः निम्नवर्ग ही सम्मिलित हुआ। परन्तु भूधरदास लोकमान्य उच्च कुल से सम्बन्धित थे तथा उनके द्वारा इस तरह का कोई सम्प्रदाय प्रवर्तन भी नहीं हुआ, जिसमें निम्न वर्ग के लोग शामिल हुए हों।

8. सन्तों की रचनाएँ साहित्यिक दृष्टि से उत्कृष्ट नहीं मानी गई; परन्तु भूधरदास की रचनाएँ साहित्यिक दृष्टि से भी उच्चकोटि की हैं।

9. सन्त काव्य का जो महत्त्व सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक दृष्टि से है, वह साहित्यिक दृष्टि से नहीं है; जबकि भूधरसाहित्य का महत्त्व उक्त सभी दृष्टियों से है।

10. सन्तों ने प्रायः महाकाव्य की रचना नहीं की है, जबकि भूधरसाहित्य ने जैन धर्म के तेईसवें तीर्थंकर पार्श्वनार्थ के चरित्र का चित्रण करने वाले "पार्श्वपुराण" नामक महाकाव्य की रचना की है। इस महाकाव्य की रचना में उन्होंने काव्यशास्त्र में मान्य महाकाव्य के लक्षणों का पूर्णतः निर्वाह किया है।

11. सन्तों ने प्रायः गद्यात्मक रचनाएँ नहीं की; परन्तु भूधरदास ने "चर्चा समाधान" नामक गद्य रचना भी की है। इसमें जैनधर्म एवं जैनदर्शन से सम्बन्धित कुछ प्रश्नों के उत्तर दिये गये हैं या चर्चाओं के समाधान प्रस्तुत किये गये हैं।

12. सामान्यतः सन्तों ने कलापक्ष की उपेक्षा की है; जबकि भूधरसाहित्य का कला पक्ष भी दर्शनीय है।

13. सन्तों ने मिश्रित या सधुक्कड़ी भाषा को अपनाया है; जबकि भूधरदास की भाषा मूलतः ब्रजभाषा है, जिसमें अन्य भाषाओं के शब्द भी पाये जाते हैं।

14. सन्तों ने जिस सहज साधना, सहज समाधि, योग साधना, रहस्यवाद एवं विरह का वर्णन किया है, भूधरसाहित्य में वह उस रूप में अनुपलब्ध है। परन्तु यह बात अलग है कि इन सबके लिए मन को मारना वश में करना इन्द्रियों के विषयों को छोड़ना, ध्यान एकाग्र करना आदि दोनों में समान रूप से पाया जाता है।

15. भूधरदास के अनुसार माया कुटिल भाव है; परन्तु सन्तों ने उसे कई रूपों में देखा और उसके अनेक नाम दिये।

16. दोनों में कर्मबन्ध और मुक्ति को समानरूप से मानकर भी उसके साधन एवं प्रक्रिया में भिन्नता दृष्टिगत होती है।

17. साधु की व्याख्या दोनों साहित्य में पृथक् - पृथक् है।
18. बाह्य शुद्धि एवं आहार आदि का विधान दोनों में भिन्न - भिन्न है।
19. भूधरसाहित्य में वेश्या का उल्लेख कहीं - कहीं और एक निश्चित अर्थ में हुआ है; परन्तु सन्तसाहित्य में कई जगह और भिन्न-भिन्न अर्थों में हुआ है।

20. सन्त अशिक्षित या अर्द्धशिक्षित व निम्नवर्ग के गृहस्थ होने के साथ-साथ अपनी जाति, कुल या परम्परा के अनुसार व्यापार आदि लौकिक कार्यों में संलग्न, देश, काल, परिस्थितियों, अन्य मतों एवं दर्शनों से प्रभावित, बाहरी रूप या वेश-भूषा में विभिन्नता युक्त थे। परन्तु जैन सन्त शिक्षित एवं उच्चवर्ग के मुख्यतः साधु तथा गौणरूप से गृहस्थ व्यापारादि लौकिक कार्यों या भूमिकानुसार हिंसक कार्यों से निवृत्त, अन्य मतों से अप्रभावित, पूर्वपरम्परा के अनुसार जैनधर्म के पोषक तथा बाहरी वेशभूषा में समानता लिये हुए थे।

उपर्युक्त समानताओं और असमानताओं को दृष्टि में रखते हुए भूधरसाहित्य और सन्तसाहित्य का तुलनात्मक अध्ययन अति महत्वपूर्ण है। जैनसाहित्य और सन्तसाहित्य¹ तथा जैन कवियों और सन्त कवियों का तुलनात्मक अध्ययन किया जा चुका है।²

समग्र तुलनात्मक निष्कर्षों से यह प्रतिफलित होता है कि कबीर आदि सन्त जैनदर्शन के अत्यन्त निकट हैं। इसीप्रकार भूधरसाहित्य और सन्तसाहित्य में अति समीपता है; परन्तु वे दोनों अपने आप में कुछ वैशिष्ट्य भी रखते हैं। अतः दोनों को एक नहीं माना जा सकता है।

1. जैनदर्शन और कबीर : एक तुलनात्मक अध्ययन - जैन साध्वी डॉ. मंजुश्री, पूना विश्वविद्यालय की पी- एच.डी. उपाधि के लिए स्वीकृत शोध प्रबन्ध, आदित्य प्रकाशन, नई दिल्ली।
2. मध्यकालीन संत कवियों और जैन धर्म कवियों का तुलनात्मक अध्ययन - डॉ. मंजु वर्मा, आगरा विश्वविद्यालय द्वारा स्वीकृत शोध प्रबन्ध।

ऐसो श्रावक

ऐसो श्रावक कुल तुम पाय, वृथा क्यों खोवत हो ॥ टेक ॥

कठिन कठिन कर नर भव पाई, तुम लेखो आसान ।

धर्म बिसारि विषय में राखो, मानी न गुरु की आन ॥

॥ ऐसो श्रावक कुल. ॥

चक्री एक मतंगज पायो, तापर ईधन ढोयो ।

बिना विवेक, बिना भति ही को, पाय सुधा पग धोयो ॥

॥ ऐसो श्रावक कुल. ॥

काहू शठ चिन्ताभणि पायो, मरम न जानो ताय ।

वायस से देखि उदधि में फँक्यो, फिर पीछे पछिताय ॥

॥ ऐसो श्रावक कुल. ॥

सात व्यसन, आठों मद त्यागो, करुणाचिन्त विचारो ।

तीन रतन हिरदे में धारो, आवागमन निवारो ॥

॥ ऐसो श्रावक कुल. ॥

‘भूधरदास’ कहत भविजन सों, चेतन अब तो सम्हारो ।

प्रभु का नाम तरन तारन जपि, कर्म फन्द निवारो ॥

॥ ऐसो श्रावक कुल. ॥

— भूधरदास

उपसंहार : भूधरदास का योगदान

भारतीय संस्कृति अनादिकालीन है। यह वैदिक, बौद्ध एवं जैन धाराओं में प्रवाहमान होती हुई भारतीय जनजीवन को सदैव अनुप्राणित करती रही है। जैनधारा में प्रवर्तमान जैनकवियों, लेखकों और विचारकों ने हमेशा विश्वकल्याण का ही अनुचिन्तन किया है। उन्होंने जो विचार, तैवज्ञान एवं उपदेश दिया, विश्व की समस्याओं के जो समाधान प्रस्तुत किये, वे भारतीय संस्कृति की अमूल्य धाती हैं। इसी शृंखला में भूधरदास का योगदान भी उल्लेखनीय है। उनका जैन कवियों और विद्वानों में अपना विशिष्ट स्थान है। भूधरदास 18 वीं शताब्दी के जैनकवि हैं। उन्होंने रीतिकालीन परिवेश से अपने आपको सर्वथा पृथक् रखकर धार्मिक, नैतिक एवं आध्यात्मिक काव्य का सृजन किया और रीतिकालीन श्रृंगारी काव्य की आलोचना की। कवि भूधरदास आगरा में खण्डेलवाल जैन परिवार में उत्पन्न हुए। वे धार्मिक, परोपकारी, समाजसुधारक, मृदुभाषी एवं सदाचारी थे। यही कारण है कि उन्होंने धर्मप्राण जीवनयापन करने का उपदेश दिया तथा वैराग्यभाव एवं मुनिधर्म की भूरि-भूरि प्रशंसा की। विविध तर्कों एवं उल्लेखों के आधार पर उनका समय वि. स. 1756-57 से वि. सं. 1822-23 तक 65 वर्ष तथा समयांकित रचनाओं के आधार पर रचनाकाल 25 वर्ष सिद्ध होता है। जन्म-मृत्युस्थान एवं कार्यक्षेत्र निर्विवादरूप से आगरा ही है। रचनाओं में एक मात्र गद्यकृति "चर्चा समाधान" तथा पद्य में महाकाव्य "पार्श्वपुराण" तथा मुक्तक काव्य में जैनशतक, पदसंग्रह एवं अनेक फुटकर रचनाएँ सम्मिलित हैं; जिनका नामोल्लेखपूर्वक विस्तृत वर्णन किया जा चुका है।¹

कवि की रचनाओं का भावपक्ष और कलापक्ष अनूठा है। उसमें अनेक विशेषताएँ विद्यमान हैं। उन विशेषताओं में कुछ प्रमुख विशेषताएँ हैं -

1. महाकाव्य "पार्श्वपुराण" के कथानक में सर्गबद्धता, छन्दबद्धता, पुराणसम्मत, महानता, धर्म भावना की अधिकता, जैन धर्म एवं दर्शन के प्रमुख विषयों व तत्त्वों के वर्णन की बहुलता आदि है।

2. चरित्र - चित्रण में अतिमानवीय चरित्रों में इन्द्र-इन्द्राणि, देव-देवियों का कथन तथा मानवीय चरित्रों के अन्तर्गत उत्तमचरित्र के रूप में धीरोदात्त

1. प्रस्तुत शोध प्रबन्ध, अध्याय 4

नायक पार्श्वनाथ, मध्यम चरित्र के रूप में अनेक राजपुरुष तथा जघन्य चरित्र के रूप में कमठ के जीव का वर्णन । नायक पार्श्वनाथ के चरित्र के माध्यम से भक्ति भावना की अभिव्यक्ति । भक्ति भावना के द्वारा धार्मिक एवं आध्यात्मिक भावना की पुष्टि, संसार शरीर व भोगों से विरक्ति तथा नैतिक मूल्यों की स्थापना । धार्मिक एवं नैतिक मूल्यों की स्थापना के लिए दया, क्षमा, मैत्री, अहिंसा, सत्य, संयम, तप, त्याग आदि अनेक विषयों पर बल देते हुए सार्वकालिक, सार्वभौमिक एवं सार्वजनिक आदर्शों की प्रेरणा ।

3. रस निरूपण द्वारा रति, वात्सल्य, निर्वेद, क्रोध, घृणा आदि सभी मानवीय भावों का वर्णन तथा शान्तरस को प्रमुखता ।

4. प्रकृतिचित्रण के अन्तर्गत प्रकृति के आलम्बन और उद्दीपन के परम्परागत रूपों के अलावा मुनिराज द्वारा बाईस परीषहों को सहन करने अर्थात् उन पर विजय प्राप्त करने के सन्दर्भ में प्रकृति या प्राकृतिक दृश्यों या रूपों का वर्णन ।

सम्पूर्ण भावों, विचारों, कथ्यों या वर्ण्यविषयों की तत्कालीन साहित्यिक एवं लोक प्रचलित ब्रजभाषा में अभिव्यक्ति । ब्रजभाषा में सरलता, सहजता, माधुर्य, लालित्य, सौकुमार्य, कलात्मकता आदि अनेक गुणों का होना ।

6. लोक जीवन के विशिष्ट शब्दों, मुहावरों, लोकोक्तियों, उपनामों आदि के प्रयोग द्वारा भाषा की विशिष्ट समृद्धि, अनेक छन्दों, राग-रागनियों एवं शैलियों का प्रयोग, ढाल के रूप में देशी संगीत का विधान, लोक संगीत के अन्तर्गत टेक शैली की प्रमुखता, अनेक प्रकार के अलंकारों का सहज प्रयोग आदि हैं ।

मुक्तक काव्य में समाहित जैनशतक, पदसंग्रह और अनेक फुटकर रचनाएँ भी अपनी-अपनी भावगत एवं कलागत विशेषताओं से युक्त हैं । जैनशतक एक सुभाषित कृति है । इसमें जैनधर्म और उससे सम्बन्धित स्तुति, नीति, उपदेश, वैराग्य आदि का सुन्दर वर्णन है । पदसंग्रह के कई पद जिनदेव, जिनगुरु, जिनवाणी एवं जिनधर्म से सम्बन्धित हैं तथा कई पद आध्यात्मिक भावों से युक्त हैं । इसप्रकार भूधरदास के समस्त पद भक्तिपरक, नीतिपरक, अध्यात्म-परक, वैराग्यप्रेरक एवं उपदेशपरक हैं ।

भावपक्ष और कलापक्ष की अनेक विशेषताओं के साथ भूधरदास के दार्शनिक विचारों में जगत (विश्व) जीव, अजीव (पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल) आश्रय बन्ध के रूप में संसार के कारण तत्त्व या मुक्तिमार्ग के बाधक तत्त्व, संवर-निर्जरा के रूप में संसार के नाशक या मोक्षमार्ग के साधक तत्त्व, मोक्ष के रूप में साध्यतत्त्व, वस्तुस्वरूपात्मक अनेकान्त एवं उसका प्रतिपादक स्याद्वाद, निश्चयनय व व्यवहारनय, सप्तभंगी, पंचास्तिकाय, प्रदेश एवं उनकी सामर्थ्य, हेय-श्रेय-उपादेय तत्त्व, पुनर्जन्म एवं कर्मसिद्धान्त आदि का वर्णन है ।

धार्मिक विचारों में धर्म का सामान्य स्वरूप, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र रूप धर्म का वर्णन, सम्यग्दर्शन के कारण देव शास्त्र, गुरु, भेदविज्ञान, आत्मानुभूति आदि कथन, सम्यग्चारित्र के सकल चारित्र और देशचारित्र भेद करके सकल चारित्र के अन्तर्गत मुनिधर्म के रूप में पाँच महाव्रत, पाँच सभिति, तीन गुप्ति, पाँच इन्द्रियजय, छह आवश्यक, सात शेषगुण, बारह भावना, दस धर्म, बाईस परीषह, बारह तप, सोलहकारण भावनाओं का विवेचन है । देश चारित्र में अष्ट मूलगुण का पालन, सप्तव्यसन का त्याग ग्यारह प्रतिमाओं का स्वरूप एवं बारह व्रतों का पालन करने का विधान है ।

नैतिक विचारों में सज्जन, दुर्जन, कामी, अन्धपुरुष, दुर्गतिगामी जीव, कुकवियों की निन्दा, कुलीन की सहज विनम्रता, महापुरुषों का अनुसरण पूर्वकर्मानुसार फलप्राप्ति, धैर्य धारण का उपदेश, होनहार - दुर्निवार, काल - सामर्थ्य, राज्य और लक्ष्मी, मोह, भोग एवं तृष्णा, देह, संसार का स्वरूप, समय की बहुमूल्यता, मनुष्य की अवस्थाओं का वर्णन एवं आत्महित की प्रेरणा, राग और वैराग्य का अन्तर व वैराग्य कामना, अभिमान निषेध, धन के संबंध में अज्ञानी का चिन्तन, धनप्राप्ति भाग्यानुसार, मन की पवित्रता, हिंसा का निषेध, सप्तव्यसन का निषेध, मिष्ट वचन को प्रेरणा, मनरूपी हाथी का कथन आदि विषयों का वर्णन किया गया है ।

भूधरदास हिन्दी सन्तों के निकटवर्ती हैं । अतः हिन्दी सन्तसाहित्य के सभी सन्दर्भों में भूधरसाहित्य का समालोचनात्मक अध्ययन करते हुए भूधरसाहित्य और सन्तसाहित्य की समानताओं और असमानताओं के उल्लेखपूर्वक भूधरदास का मूल्यांकन किया गया है । यह मूल्यांकन हिन्दी साहित्य के विकास में जैन कवियों का योगदान सिद्ध करता है तथा भूधरदास के योगदान को भी रेखांकित करता है ।

भूधरदास का योगदान

ऐतिहासिक दृष्टि से भूधरदास का काल औरंगजेब, जहाँदरशाह, फरुखशियार एवं मुहम्मदशाह का शासन काल रहा है। कवि ने इस समय जिन राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक एवं साहित्यिक परिस्थितियों में रहकर साहित्यरचना की, वे परिस्थितियाँ अति विचित्र थीं। उनका विस्तृत विवेचन पूर्व में¹ किया ही है।

पूर्ववर्णित सभी परिस्थितियों के सन्दर्भ में कवि भूधरदास का हृदय सांसारिक जीवन और व्यवस्था के प्रति अनासक्त हो गया और वह पूर्णतः नैतिक व धार्मिक बन गया। उसने तत्कालीन विलासिता के विरुद्ध इन्द्रियों को जीतने की प्रेरणा दी। धर्म के नाम पर होने वाले बाह्याडम्बरों के विरुद्ध मन, वचन, कर्म में सामन्जस्य एवं मन की पवित्रता पर बल दिया। साथ ही संसार, शरीर एवं भोगों की अनित्यता, अशरणता, दुःखरूपता आदि के द्वारा भौतिक सुख-समृद्धि, मान-प्रतिष्ठा आदि को असार बतलाते हुए मोक्ष प्राप्ति हेतु प्रेरणा प्रदान की तथा रीतिकालीन परिवेश से पूर्णतः अप्रभावित रहते हुए धार्मिक एवं नैतिक साहित्य की रचना करके समाज का उचित मार्गदर्शन किया।

भूधरदास ने सांसारिक मोह-माया एवं इन्द्रिय-विषयों से अपने मन को हटाकर देव-शास्त्र-गुरु एवं शुद्धात्मतत्त्व में लगाने तथा सम्पूर्ण विश्व को कल्याण के पथ पर अग्रसित करने का महत्वपूर्ण कार्य किया। इस उद्देश्य की प्राप्ति हेतु अनेक दार्शनिक, धार्मिक एवं नैतिक विचारों का प्रतिपादन किया। मानव जीवन को समता, सहिष्णुता, विश्वबन्धुता आदि की ओर प्रेरित करने के लिए व्यक्तिगत जीवन में सत्य, दया, क्षमा, प्रेम आदि को अपनाने का महत्व प्रतिपादित किया। आत्मशुद्धि के लिए काम-क्रोध, मद-मोह, लोभ आदि विकारी भावों को त्यागने का उपदेश दिया। तत्कालीन सामाजिक जीवन में व्याप्त मद्यपान, चोरी, जुआ, आखेट, वेश्यासेवन, परस्त्रीगमन, मांसभक्षण आदि सभी दुष्प्रवृत्तियों के दोष बतलाकर उनकी कटु आलोचना की एवं उन्हें छोड़ने की प्रेरणा दी। कवि ने जैन सिद्धान्तों द्वारा संसार बंधन से छुटकारा दिलाकर मोक्षमार्ग को प्रशस्त किया

तथा व्यावहारिक शिक्षाओं द्वारा धर्माचरण का पाठ पढ़ाया। गृहस्थ जीवन में धर्माचरण हेतु देवपूजा, गुरुपासना, स्वाध्याय, संयम, तप और दान - इन छह आवश्यक कर्मों का महत्व प्रतिपादित किया तथा अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह आदि व्रतों का पालन करने का आदेश दिया।

भूधरदास ने अपने उपदेशों द्वारा हमारी संस्कृति की रक्षा की, मानवीय मूल्यों को पुष्ट किया, जाति-पाँति का भेद मिटाया, स्वावलम्बन का भाव जगाकर पुरुषार्थ करने की प्रेरणा दी तथा व्यक्ति, समाज, राष्ट्र व विश्व की समस्त समस्याओं का समाधान प्रस्तुत किया। इस दृष्टि से भूधरदास का प्रदेय सर्वाधिक महत्वपूर्ण है।

इसी दृष्टि से भूधरदास ने धर्म का ऐसा सार्वजनिक, सार्वभौमिक एवं सार्वकालिक रूप प्रस्तुत किया, जो मात्र सैद्धान्तिक न होकर व्यावहारिक भी है। उस धर्म को किसी भी धर्म, जाति, वर्ग या सम्प्रदाय का व्यक्ति आसानी से अपने जीवन में अपना सकता है। चूँकि कवि ने अपने साहित्यसृजन द्वारा अनुभवाश्रित सत्य को उजागर किया है और अनुभव पर आधारित सत्य की प्रतिष्ठा सभी जातियों, धर्मों एवं सम्प्रदायों में समान है। अतः भूधरसाहित्य किसी जाति, धर्म या सम्प्रदाय विशेष की धरोहर नहीं, अपितु समग्र मानव समाज की थाती है; जिसमें आत्मकल्याण के साथ विश्वकल्याण की भावना निहित है। व्यक्तिहित के साथ समष्टिहित संलग्न है। भूधरदास ने मानवतावाद, समाजवाद और अध्यात्मवाद के जिन विशिष्ट मूल्यों को स्थापित करने का प्रयास किया है, उनसे समस्त वैर-विरोध, कृत्रिम भेदोपभेद एवं विषमताएँ स्वतः विनष्ट हो गई हैं तथा मैत्री, एकता, समानता आदि भाव उदित हुए हैं।

कवि ने सम्प्रदायगत संकीर्णताओं, समाजगत कुरीतियों एवं बाह्याडम्बरों के कोरे प्रदर्शन से दूर रहकर मानवमात्र के लिए अपने साहित्य की रचना की और अध्यात्मप्रधान भारतीय संस्कृति के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया। सन्तों की उच्च भाव भूमि के स्तर पर पहुँचकर कवि ने सम्प्रदायगत, रूढ़िगत एवं जातिगत आचार - विचारों की संकीर्णता को त्यागकर, सम्पूर्ण मानव जगत को दिव्य आदर्श के दर्शन कराये हैं।¹

भूधरदास ने समसामायिक घोर श्रृंगारिक काव्यरचना करने वाले कवियों की तीव्र आलोचना की है।¹ इससे हिन्दी साहित्य में अश्लील भावों का प्रवेश तो रुका ही, साथ ही आने वाली पीढ़ी को भी प्रेरणा प्राप्त हुई तथा नारी के प्रति स्वच्छ दृष्टिकोण विकसित हुआ।

भूधरदास ने अपने साहित्य द्वारा श्रमण संस्कृति का पोषण किया है। श्रमण संस्कृति का मूलाधार "अहिंसा" की स्थापना करने हेतु कवि ने हिंसा को सब पापों एवं व्यसनों का मूल ठहराया है। कवि ने सामान्य जन जीवन की हित साधना के लिए इस रहस्य का उद्घाटन किया है।²

"निशि भोजन भुंजन कथा" के माध्यम से कवि ने जीव हिंसा की सम्भावनाएँ बलताकर उत्तम स्वास्थ्य की रक्षा हेतु समाज को सही मार्गदर्शन दिया है तथा अहिंसा धर्म को प्रोत्साहित भी किया है। आरोग्य की दृष्टि से भी रात्रि की अपेक्षा दिन में भोजन करना श्रेयस्कर है।

इसी तरह "हुक्का निषेध चौपाई" के द्वारा कवि ने धूम्रपान की दुष्प्रवृत्ति को रोकने का प्रयास किया है। इसमें विविध तर्कों के द्वारा धूम्रपान से होने वाली हिंसा का वर्णन किया है, साथ ही धूम्रपान के अन्य दुर्गुणों की ओर ध्यान आकर्षित किया है। प्रस्तुत रचना द्वारा कवि ने बढ़ते हुए धूम्रपान के रोग से समाज की रक्षा की है तथा मानवजाति के सुधार हेतु अनूठी देन दी है।

तीर्थंकर पार्श्वनाथ को केवलज्ञान की प्राप्ति हो जाने पर सामाजिकों द्वारा कुछ प्रश्न और भगवान पार्श्वनाथ द्वारा उनके उत्तर प्रस्तुत करवाकर कवि ने समाज में व्याप्त अनीति - अन्याय, हिंसा, झूठ, चोरी व्यभिचार आदि दुष्कर्मों पर अंकुश लगाने की प्रेरणा दी है। यदि जीव दुष्कर्मों से अपने आपको नहीं बचा पायेगा तो उसे दुर्गति में भंयकर दुःखों को सहना होगा। इसप्रकार भारतीय संस्कृति की अमूल्य धरोहर के रूप में कवि द्वारा सदाचरण एवं सत्कर्मों को प्रोत्साहित किया गया है; जिससे मानव जीवन उन्नत एवं सुन्दर बन सकेगा।³

भारतीय संस्कृति प्रारम्भ से ही लोक, परलोक, स्वर्ग, नरक आदि में आस्था व्यक्त करती आ रही है। इसी भाव-भूमि की प्रतिष्ठा द्वारा कवि ने कर्म

1. जैनशतक छन्द 64, 65, 66

2. जैनशतक छन्द 50 से 61

3. पार्श्वपुराण पृष्ठ 63, 64 तथा 85 से 87

सिद्धान्त का निरूपण किया है तथा यह घोषणा की है कि जो जैसा कर्म करता है, उसे वैसा ही फल भोगना पड़ता है।¹

भारतीय संस्कृति से प्रेरित प्राणी सदैव जीवन के अंतिम लक्ष्य मोक्ष की प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील रहा है। मोक्ष की प्राप्ति के लिए भोग, परिग्रह, तृष्णा आदि का त्याग अति आवश्यक माना गया है; क्योंकि इन सबमें सच्चा सुख एवं शांति कभी नहीं मिल सकती है। अतः भूधरदास ने इन सबको छोड़कर आत्मा परिष्कार करने के लिए संसारी जीव को संबोधित है।²

भारतवर्ष त्यागियों, ऋषियों, मुनियों, तपस्वियों, विचारकों और दार्शनिकों का देश है - ऐसा संसार में प्रसिद्ध है। यहाँ का प्रत्येक साधक संयम एवं तप द्वारा आत्मपरिष्कार करना चाहता है। इसी दृष्टि से भूधरदास ने मुनि के लिए बारह भावनाएँ, बारह तप, दस धर्म, बाईस परीषह, पाँच महाव्रत, पाँच समिति, तीन गुप्ति तथा श्रावक के लिए बारह व्रतों का विधान किया है एवं प्रत्येक भारतीय को आत्मोन्नति का मार्ग प्रशस्त किया है।

आत्मा बिना किसी साधनापरक पूर्व अभ्यास के निराकार पर ध्यान केन्द्रित नहीं कर सकता है। इसीलिए उसे ध्यान की एकग्रता हेतु किसी मूर्त आधार की आवश्यकता होती है। इसी दृष्टि को ध्यान में रखकर भूधरदास ने प्रतिमा पूजन का समर्थन किया। साथ ही उसे भावों की शुद्धता का कारण भी बताया है। प्रतिमा पूजन के विषय में तत्कालीन समाज में प्रचलित जितनी भी सम्भावित शंकाएँ थीं, उन सबका समाधान प्रस्तुत कर कवि ने समाज का बड़ा उपकार किया है।³

कवि ने अपनी पार्श्वपुराण नामक कृति में पार्श्वनाथ के जीवनवृत्त के साथ-साथ जैन दर्शन का सरलीकरण, सुबोध एवं सहज शैली में किया है। कवि के इस प्रयास से न केवल तत्कालीन जैन समाज, अपितु जैनेतर समाज भी लाभान्वित हुआ है। ऐसे उपयोगी ग्रन्थों के पारायण से आज भी समाज अपना कल्याण कर सकता है।

1. जैसी करनी आचरै, तैसी ही फल होय।

इन्द्रायन की बेलि के, आम न लागे कोय ॥ पार्श्वपुराण पृष्ठ 8

2. पार्श्वपुराण पृष्ठ 60-61, जैनशतक छन्द 25, भूधरविलास पद 32

3. पार्श्वपुराण पृष्ठ 26-27

समाज में सदाचरण की प्रतिष्ठा के लिए कवि ने पार्श्वपुराण में कमठ द्वारा अपने छोटे भाई की, जो पुत्रीसम विवेचित की गई है, दुराचार किये जाने पर राजा द्वारा दण्ड स्वरूप मुँह कालाकर देश निकाला दिये जाने का उल्लेख किया है।¹ अन्य कृति में भी उन्होंने इस कुकर्म परस्त्रीसेवन की खुलकर आलोचना की है। इस तरह कवि द्वारा समाज में सदाचार की स्थापना की गई है।²

कवि की उपदेश शैली "ऐसा ही करना चाहिए" के भाव लिए हुए नहीं है; अपितु परिस्थितियों, परिणामों आदि का दिग्दर्शन कराकर पाठक को स्वयं निर्णय करने की ओर प्रेरित करने वाली है। यह कवि की अभिव्यंजना शैली की अनूठी विशेषता है। इसप्रकार विचार अभिव्यंजना की दृष्टि से कवि की हिन्दी साहित्य को मौलिक देन रही है। भारतीय साहित्य के संरक्षण के साथ ही साथ कवि ने अपनी प्राचीन भारतीय संस्कृति का पोषण भी किया है।

वस्तुतः भूधरसाहित्य की आस्था उस धार्मिक एवं आध्यात्मिक उन्नति या विकास में है; जहाँ मैं-तू ज्ञाता-ज्ञेय, गुण-गुणी आदि सभी भेद तिरोहित हो जाते हैं और आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द या निराकुल सुख को प्राप्त करता है।

निराकुल सुख व सच्ची आध्यात्मिक शांति प्राप्त करने के लिए भूधरसाहित्य की उपादेयता आज भी है और आगे भी रहेगी।

भूधरसाहित्य हमारी सांस्कृतिक धरोहर का सजग प्रहरी एवं आगामी पीढ़ी का प्रेरणास्तोत्र है। उसने रीतिकालीन विषम परिस्थितियों में भी अपना अस्तित्व कायम रखकर मानवीय चेतना को सन्तुलित एवं समुन्नत किया है। इस दृष्टि से भूधरसाहित्य की प्रासंगिकता वर्तमान में भी है और भौतिकता के विरुद्ध भविष्य में भी रहेगी।

इसप्रकार निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि भूधरदास ने हिन्दी साहित्य के क्रमिक विकास में पर्याप्त योगदान दिया तथा उसे आध्यात्मिक, नैतिक, सामाजिक एवं साहित्यिक पृष्ठभूमि में प्रतिष्ठित करके अज्ञानान्धकार में भटकते प्राणियों को दिशा-निर्देश कर ज्ञान-आलोक प्रदान किया है।

1. पार्श्वपुराण पृष्ठ 8

2. जैनशतक छन्द 57 से 58

सन्दर्भ सूची

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. अभिनव इतिहास	दीनानाथ शर्मा
2. अध्यात्म भजनरंगगा	सं. पं. ज्ञानचंद जैन
3. अपभ्रंश भाषा और साहित्य की आधुनिक शोध प्रवृत्तियाँ	डॉ. देवेन्द्र कुमार जैन शास्त्री
4. अष्ट पाहुड	आचार्य कुन्दकुन्द
5. आत्मख्याति टीका	आचार्य अमृतचन्द
6. आक्सफोर्ड हिस्ट्री ऑफ इण्डिया	डॉ. स्मिथ
7. इण्डोपदेश	आचार्य पूज्यपाद
8. इनसायक्लोपीडिया, आफ इण्डियन लिटरेचर जिल्द 3	साहित्य अकादमी नई दिल्ली
9. इरविन दी लेटर मुगल्स	विलियम
10. उत्तरी भारत की सन्त परम्परा	परशुराम चतुर्वेदी
11. कबीर साहित्य की परख	परशुराम चतुर्वेदी
12. कबीर साखी दर्शन	डॉ. अनन्त
13. कबीर	डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी
14. कविवर बुधजन व्यक्तित्व एवं कृतित्व	डॉ. मूलचन्द शास्त्री
15. कबीर	विजेयन्द्र स्नातक
16. कबीर	पुष्पकुमारी
17. कबीर का रहस्यवाद	डॉ. रामकुमार वर्मा
18. कबीर काव्य का भाषा शास्त्रीय अध्ययन	डॉ. भगवत प्रसाद दुबे
19. कबीर का सहज दर्शन	जयबहादुर लाल
20. कबीर का सामाजिक दर्शन	डॉ. प्रहलाद मौर्य
21. कबीर की भाषा	डॉ. महेन्द्र
22. कबीर की विचारधारा	डॉ. गोविन्द त्रिगुणावत
23. कबीर ग्रंथावली	सं. श्यामसुन्दर दास
24. कबीर ग्रंथावली	डॉ. पारसनाथ तिवारी
25. कबीर ग्रंथावली	डॉ. भगवतस्वरूप मिश्र
26. कबीर ग्रंथावली	पुष्पपाल सिंह

27. कबीर : जीवन और दर्शन	डॉ. रामनिवास चंडक
28. कबीर वाणी	पन्नालाल जैन
29. कबीर साधना और साहित्य	डॉ. प्रतापसिंह चौहान
30. कबीर साहित्य का अध्ययन	पुरुषोत्तमलाल श्रीवास्तव
31. कबीर साहित्य का सांस्कृतिक अध्ययन	डॉ. आर्यभट्टा त्रिपाठी
32. कबीर साहित्य की भूमिका	डॉ. रामरतन भटनागर
33. कबीर साहित्य का चिन्तन	परशुराम चतुर्वेदी
34. कुन्दकुन्द भारती	सं. पं. पन्नालाल साहित्याचार्य
35. कुन्दकुन्द प्राभृत संग्रह	सं. पं. कैलाशचन्द शास्त्री
36. कार्तिकेयानुप्रेक्षा	स्वामी कार्तिकेय
37. काव्यादर्श	दण्डी
38. कामायनी का महाकाव्यत्व	डॉ. नगेन्द्र
39. काव्यालंकार	भामह
40. काव्य शास्त्र	सत्यदेव चौधरी
41. काव्यप्रकाश	आचार्य मम्मट
42. काव्य रूपों के मूल स्रोत और उनका काव्यशास्त्रीय अध्ययन	डॉ. शकुन्तला दुबे
43. काव्यालंकार	रुद्रट
44. गुजरात के सन्तों की हिन्दी साहित्य को देन	डॉ. रामकुमार गुप्ता
45. गुरुनानक और उनका काव्य	डॉ. महीपालसिंह एवं नरेन्द्रमोहन
46. गुर्जर जैन कवियों की हिन्दी साहित्य को देन	डॉ. हरीश शुक्ला
47. जैन न्याय	पं. कैलाशचन्द शास्त्री
48. जैन साहित्य का इतिहास भाग 1 से 6	पार्श्वनाथ विद्याश्रम वाराणसी
49. जैन दर्शन	पं. महेन्द्रकुमार न्यायाचार्य
50. जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश भाग 1 से 4	क्षुल्लक जिनेन्द्रवर्मा
51. जायसी ग्रंथावली की भूमिका	आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
52. जैन धर्म का प्राचीन इतिहास	पं. परमानन्द शास्त्री
53. जैन साहित्य और इतिहास पर	

	विशद प्रकाश	पं. जुगल किशोर मुख्तार
54.	जैन साहित्य का इतिहास	नाथूराम "प्रेमी"
55.	जैन साहित्य का वृहद् इतिहास	गुलाबचन्द चौधरी
56.	जैन धर्म और दर्शन	डॉ. मोहनलाल मेहता
57.	जैन धर्म और संस्कृति का इतिहास	डॉ. भागचन्द भास्कर
58.	जैन धर्म का मौलिक इतिहास	आचार्य हस्तीमल
59.	जैन निबन्ध रत्नावली	पं. मिलापचन्द रतनलाल कटारिया
60.	जैन पद विशेषांक	सं. नेमिचन्द जैन
61.	टोडरमल : व्यक्तित्व और कर्तृत्व	डॉ. हुकुमचन्द भारिल्ल
62.	तत्त्वार्थ सूत्र	उमास्वामी या उमास्वाति
63.	तीर्थंकर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा भाग 1 से 3	डॉ. नेमीचन्द शास्त्री
64.	तीर्थंकर महावीर और उनका सर्वोदय तीर्थ	डॉ. हुकुमचन्द भारिल्ल
65.	द्रव्य संग्रह	आचार्य नेमीचन्द
66.	देवागम स्रोत (आप्तमीमांसा)	आचार्य समन्तभद्र
67.	दौलतराम कासलीवाल व्यक्तित्व और कृतित्व	डॉ. कस्तूरचन्द कासलीवाल
68.	धवला टीका	आचार्य वीरसेन
69.	धर्मविलास	छानतराय
70.	नियमसार	आचार्य कुन्दकुन्द
71.	निर्गुण सम्प्रदाय	डॉ. पीताम्बरदत्त बड़धवाल
72.	निर्गुण साहित्य : सांस्कृतिक पृष्ठभूमि	मोतीसिंह
73.	निर्गुण भक्ति : स्वरूप एवं परम्परा	डॉ. राजदेवसिंह
74.	नाथ और सन्त साहित्य	नागेन्द्र उपाध्याय
75.	नाटक समयसार	बनारसीदास
76.	नाथपंथ और निर्गुण सन्त काव्य	डॉ. कोमलसिंह सोलंकी
77.	पंचास्तिकाव्य	आचार्य कुन्दकुन्द
78.	पल्लव की भूमिका	सुमित्रानन्दन पन्त
79.	पुण्यास्त्रव कथाकोश प्रशस्ति	पं. दौलतराम कासलीवाल

80.	प्रवचनसार	आचार्य कुन्दकुन्द
81.	पंचाध्यायी	पं. राजमलजी
82.	परमात्मप्रकाश	योगेन्दुदेव
83.	प्रशस्तिसंग्रह	डॉ. कस्तूरचन्द कासलीवाल
84.	परमात्मप्रकाश	स. डॉ. ए. एन. उपाध्याय
85.	परीक्षामुख	आचार्य माणिक्यनंदि
86.	पाश्चात्य दर्शन	चन्द्रधर शर्मा
87.	पुरुषार्थसिद्धयुपाय	आचार्य अमृतचन्द
88.	प्राचीन हिन्दी जैन कवि	मूलचन्द "वत्सल"
89.	परिचयी	मथुरादास
90.	पाहुड़दोहा	मुनि रामसिंह
91.	भूषण ग्रंथावली	भूषण
92.	भगवान् पार्श्वनाथ	देवेन्द्र मुनि
93.	भगवती सूत्र	मुनि मधुकर
94.	भक्ति काव्य में रहस्यवाद	डॉ. रामनारायण पाण्डेय
95.	भारतीय समाज और संस्कृति	डॉ. कैलाश शर्मा
96.	भारतीय सृष्टि विद्या	डॉ. प्रकाश
97.	भगवती अराधना	आचार्य शिवकोटि
98.	भारतीय समाज और संस्कृति	डॉ. कैलाश शर्मा
99.	भारतीय संस्कृति का विकास	लूनिया
100.	भारत में अंग्रेजी राज्य	सुन्दरलाल
101.	भारतीय साहित्य	डॉ. नगेन्द्र
102.	भारतीय संस्कृति के विकास में जैन वाङ्मय का अवदान खण्ड 1-2	डॉ. नेमिचन्द शास्त्री
103.	भारतीय संस्कृति और साहित्य	मदनमोहन शर्मा
104.	भारतीय धर्मों में भक्ति विचार	डॉ. शिव मुनि
105.	भारतीय संस्कृति के चार अध्याय	राधारीसिंह दिनकर
106.	भारतीय संस्कृति में जैनधर्म का योगदान	डॉ. हीरालाल जैन
107.	महावीर वाणी के आलोक में हिन्दी का सन्त काव्य	डॉ. पवनकुमार जैन

108. मध्ययुगीन सूफी और सन्त काव्य	डॉ. मुक्तेश्वर तिवारी
109. मुगलकालीन भारत	डॉ. आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव
110. योग प्रवाह	डॉ. पीताम्बरदत्त बड़थवाल
111. योगसार	आचार्य योगेन्दु देव
112. रत्नकरण्डश्रावकाचार	आचार्य समन्तभद्र
113. राजस्थान का जैन साहित्य	प्राकृत भारती अकादमी जयपुर
114. राजेन्द्र अधिधान कोश	विजयरजेन्द्र सूरीश्वर
115. राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारों की ग्रंथसूची भाग 1 से 5	डॉ. कस्तूरचन्द कासलीवाल
116. राजस्थान के जैन सन्त : व्यक्तित्व एवं कृतित्व	डॉ. कस्तूरचन्द कासलीवाल
117. रामचरितमानस	महाकवि तुलसीदास
118. जिनवाणी संग्रह	सं.पं. पन्नालाल बाकलीवाल
119. सर्वार्थसिद्धि	आचार्य पूज्यपाद
120. सन्त साहित्य की भूमिका	आचार्य परशुराम चतुर्वेदी
121. सर्वदर्शन संग्रह	माधवाचार्य
122. संस्कृति और उसका इतिहास	डॉ. सत्यकेतु विद्यालंकार
123. संत साहित्य की लौकिक पृष्ठभूमि	डॉ. ओमप्रकाश शर्मा
124. संत साहित्य के प्रेरणा स्रोत	परशुराम चतुर्वेदी
125. संत साहित्य और साधना	डॉ. भुवनेश्वर प्रसाद मिश्र
126. समयसार	आचार्य कुन्दकुन्द
127. सिद्ध साहित्य	डॉ. धर्मवीर भारती
128. सन्त काव्य	परशुराम चतुर्वेदी
129. सन्त कवि दरिया : एक अनुशीलन	डॉ. धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी
130. सन्त काव्य का लोक सांस्कृतिक अध्ययन	जीवनलाल शर्मा
131. सन्त काव्य में परोक्ष सत्ता का स्वरूप	डॉ. बाबूराव जोशी
132. सन्त काव्य का दार्शनिक विश्लेषण	डॉ. मनमोहन सहगल
133. सन्तगुरु रविदास	डॉ. बी. पी. शर्मा
134. सन्त साहित्य की रूपरेखा	आचार्य परशुराम चतुर्वेदी
135. सन्तों की सहज साधना	डॉ. राजदेव सिंह

136. सन्तबानी संग्रह भाग 1 से 2	डॉ. राजदेव सिंह
137. सन्त सुधासार प्रथम खण्ड	डॉ. राजदेव सिंह
138. सन्तमत का आचार दर्शन	नंदकिशोर राय
139. सन्तमत के साधना का स्वरूप	डॉ. प्रतापसिंह चौहान
140. सन्त परम्परा और साहित्य	सं. आचार्य नलिन विमोचन शर्मा
141. सन्त साहित्य	डॉ. सुदर्शन मजीठिया
142. सन्त साहित्य	श्री भुवनेश्वर मिश्र माधव
143. सन्त साहित्य	डॉ. प्रेमनारायण शुक्ल
144. सन्त साहित्य का सामाजिक अध्ययन	डॉ. ओमप्रकाश शर्मा
145. सन्त साहित्य की लौकिक पृष्ठभूमि	डॉ. सावित्री शुक्ल
146. सन्त साहित्य पुनर्मूल्यांकन	डॉ. राजदेव सिंह
147. सन्तों का भक्तियोग	डॉ. राजदेव सिंह
148. साहित्य के त्रिकोण	डॉ. नरेन्द्र भानावत
149. सन्तदर्शन	डॉ. त्रिलोकीनारायण दीक्षित
150. सन्त कबीर	रामकुमार वर्मा
151. सभ्यता की कहानी	अर्जुन देव
152. साहित्य दर्पण	विश्वनाथ
153. शब्द और अर्थ : सन्त साहित्य के सन्दर्भ में	डॉ. राजदेव सिंह
154. हिन्दी साहित्य में जैन कवियों का योगदान	डॉ. सुनीता जैन
155. हिन्दी साहित्य की युग एवं प्रवृत्तियाँ	शिवकुमार शर्मा
156. हिन्दी साहित्य का इतिहास	सं. डॉ. नगेन्द्र
157. हिन्दी साहित्य का इतिहास	डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी
158. हिन्दी जैन साहित्य का संक्षिप्त इतिहास	डॉ. कामताप्रसाद जैन
159. हिन्दी जैन साहित्य परिशीलन	डॉ. नेमिचन्द्र शास्त्री
160. हिन्दी जैन साहित्य का इतिहास	नाथूराम "प्रेमी"
161. हिन्दी जैन भक्ति काव्य और कवि	डॉ. प्रेमसागर जैन
162. हिस्ट्री ऑफ शाहजहाँ	डॉ. बेनीप्रसाद
163. हिन्दी साहित्य का इतिहास	डॉ. रामशंकर शुक्ल "रसाल"
164. हिन्दी नाट्य दर्पण वृत्ति	रामचन्द्र गुणचन्द्र

165. हिन्दी साहित्य	डॉ. श्यामसुन्दरदास
166. हिन्दी काव्य विमर्श	बाबू गुलाबराय
167. हिन्दी काव्य के विकास आलोक स्तम्भ	डॉ. शान्तिस्वरूप गुप्त
168. हिन्दी साहित्य की भूमिका	डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी
169. हिन्दी साहित्य का आदिकाल	डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी
170. हिन्दी साहित्य	डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी
171. हिन्दी साहित्य पर संस्कृत साहित्य का प्रभाव	डॉ. सरनाम सिंह
172. हिन्दी साहित्य का बृहद् इतिहास भाग 1 से 16	काशी नागरी प्रचारिणी सभा
173. हिन्दी साहित्य का बृहद् इतिहास	डॉ. राजबली पाण्डेय
174. हिन्दी साहित्य का इतिहास	आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
175. हिन्दी और मराठी का निर्गुण सन्त काव्य	डॉ. प्रभाकर माचवे
176. हिन्दी साहित्य का इतिहास	आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
177. हिन्दी की निर्गुण काव्यधारा और उसकी दार्शनिक पृष्ठभूमि	डॉ. गोविन्द त्रिगुणायत
178. हिन्दी को मराठी सन्तों की देन	आचार्य विजयमोहन शर्मा
179. हिन्दी संत काव्य के दार्शनिक स्रोत	अशरफी झा
180. हिन्दी संत काव्य में प्रतीक विधान	डॉ. देवेन्द्र आर्य
181. हिन्दी संत काव्य संग्रह	गणेशप्रसाद द्विवेदी
182. हिन्दी संत काव्य संग्रह	डॉ. त्रिलोकी नारायण
183. हिन्दी साहित्य का इतिहास	डॉ. जगदीशप्रसाद श्रीवास्तव
184. हिन्दी लिटरेचर	डॉ. राम अवध द्विवेदी
185. हिन्दी साहित्य द्वितीय खण्ड	सं. डॉ. धीरेन्द्र वर्मा
186. हिन्दी साहित्य कोश प्रथम भाग	सं. डॉ. धीरेन्द्र वर्मा
187. हिन्दी मुक्तक काव्य का विकास	जितेन्द्रनाथ पाठक
188. बृहद् बिनवाणी संग्रह	सं. पं. पन्नालाल बाकलीवाल

पत्र-पत्रिकाओं की सूची

1. अनेकान्त	त्रैमासिक	दिल्ली
2. अपभ्रंश भारती	त्रैमासिक	जयपुर

3.	अहिंसा वाणी	पार्श्वनाथ विशेषांक	दिल्ली
4.	अहर्तृ वचन	त्रैमासिक	इन्दौर
5.	कल्याण	सन्त विशेषांक	
6.	जिनवाणी		जयपुर
7.	जैन सिद्धान्त भास्कर		आरा
8.	जैन विद्या		
9.	जैन संदेश शोधक		दिल्ली
10.	तीर्थकर	मासिक	इन्दौर
11.	तुलसी प्रज्ञा		लाडनू
12.	परिषद पत्रिका		पटना
13.	प्रेक्षा ध्यान		लाडनू
14.	महावीर जयन्ती स्मारिका		जयपुर
15.	विद्या भास्कर		इलाहाबाद
16.	वीरवाणी		जयपुर
17.	वीतराग विज्ञान		जयपुर
18.	सन्मति संदेश		दिल्ली
19.	स्वाध्याय शिक्षा		जयपुर
20.	शोधादर्श		लखनऊ
21.	श्रमण		वाराणसी
22.	हितैषी		जयपुर
23.	हिन्दुस्तानी	त्रैमासिक	इलाहाबाद
24.	हिन्दी अनुशीलन		इलाहाबाद
25.	भूमिक्रान्त	साप्ताहिक	इन्दौर

शोधोपयोगी सामग्री प्राप्ति में सहयोगी ग्रन्थालयों की सूची

1.	शासकीय महाविद्यालय	खरगोन
2.	जिला पुस्तकालय	खरगोन
3.	प्रिन्स यशवन्त पुस्तकालय	खरगोन
4.	पुस्तकालय राजस्थान विश्वविद्यालय	जयपुर
5.	पुस्तकालय आगरा विश्वविद्यालय	आगरा

6.	जैन शोध संस्थान	श्रीमहावीर जी
7.	जैन शोध संस्थान	आगरा
8.	श्री दिगम्बर जैन शोध संस्थान	भट्टारकजी की नसिया, जयपुर
9.	श्री दिगम्बर जैन मन्दिर, रामाशाह	इन्दौर
10.	श्री दिगम्बर जैन मन्दिर, शक्कर बाजार	इन्दौर
11.	श्री दिगम्बर काँच जैन मन्दिर	इन्दौर
12.	श्री दिगम्बर जैन मन्दिर, हनुमालताल	जबलपुर
13.	श्री दिगम्बर जैन मन्दिर चौक	भोपाल
14.	श्री दिगम्बर जैन मन्दिर, आदर्शनगर	जयपुर
15.	श्री दिगम्बर जैन मन्दिर तेरागाँव	जयपुर
16.	पं. लूणकरण पांडे जैन मन्दिर	जयपुर
17.	श्री दिगम्बर जैन मन्दिर सिवाड़ बाकलीवाल	जयपुर
18.	श्री दिगम्बर जैन मन्दिर नसियाजी	अजमेर
19.	श्री दिगम्बर जैन पन्नालाल ऐलक सरस्वती भवन,	ब्यावर
20.	श्री दिगम्बर जैन बड़ा मन्दिर, मोतीकटरा,	आगरा
21.	श्री दिगम्बर जैन मन्दिर शाहगंज,	आगरा
22.	श्री जैन बड़ा मन्दिर, ताजगंज,	आगरा
23.	राजस्थानी प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान शाखा,	बीकानेर
24.	शास्त्र भण्डार, नया मन्दिर	दिल्ली
25.	आमेर शास्त्र भण्डार	जयपुर
26.	ऋषभदेव सरस्वती सदन	उदयपुर
